॥ श्रीः॥

श्रीमद्गदाधरभट्टाचार्यप्रणीतः

व्युत्पत्तिवादः

सुनन्दाख्यहिन्दीटीकाविभूषितः

प्रथमो भागः

सम्पादक एवं व्याख्याकार

डॉ० सच्चिदानन्द मिश्र

भारतीय विद्या प्रकाशन

वाराणसी (भारत) दिल्ली



॥ श्रीः ॥

श्रीमद्गदाधरभट्टाचार्यप्रणीतः

व्युत्पत्तिवादः

सुनन्दाख्यहिन्दीटीकाविभूषितः

द्वितीयो भागः

सम्पादक एवं व्याख्याकार

डॉ॰ सच्चिदानन्द मिश्र

आचार्य (नव्यन्याय, शाङ्करवेदान्त)

प्राध्यापक, संस्कृतविभाग

गन्ना किसान डिग्री कालेज,

पुवायाँ, शाहजहाँपुर (उ॰प्र॰)

प्रकाशकः

भारतीय विद्या प्रकाशन

वाराणसी (भारत) दिल्ली

प्रकाशक :

©भारतीय विद्या प्रकाशन

(1) पो० बा० नं० 1108 कचौड़ी गली, वाराणसी- 221001 © (0542)392376

(2) 1,यू० बी० जवाहरनगर, बंग्लोरोड, दिल्ली- 110007 © (011)3971570

अन्य-प्राप्ति-स्थान :

भारतीय बुक कारपोरेशन

1, यू.वी. जवाहर नगर, बंग्लोरोड, दिल्ली-110007

प्रथम संस्करण –2001

मूल्य रु. 500=00 (दो भाग में)

Printed at : R.K. Offset Process, Naveen Shahdara, Delhi-110032

अथ तृतीया

कारकविभक्तितृतीयायाः क्रियान्वयि कर्तृत्वं करणत्वञ्चार्थः- 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' इत्यनुशासनात्। कर्तृत्वञ्च मुख्यं क्रियानुकूलकृतिरेव, सा च कर्त्राख्यातसमभिव्याहृते 'चैत्रः पचति' इत्यादौ क्रियाविशेष्यतयाख्यातेन प्रतिपाद्यते। 'चैत्रेण पच्यते तण्डुलः' 'चैत्रेण शय्यते' इत्यादिकर्मभावाख्यातस्थले च क्रियायां विशेषणतया तृतीयया सा प्रत्यायते।

कारकविभक्ति तृतीया का क्रिया में अन्वयी कर्तृत्व और करणत्व अर्थ होता है क्योंकि **'कर्तृकरणयोस्तृतीया'** पा0 सू0 2।3।18 (कर्ता और करण में तृतीया होती है) ऐसा अनुशासन है। (तृतीया दो प्रकार की होती है। एक तो कारक तृतीया और दूसरी तदतिरिक्त, यहाँ पर कारक तृतीया का अर्थ बताया गया है) मुख्य कर्तृत्व क्रियानुकूल कृति ही है और वह मुख्यकर्तृत्वरूपा क्रियानुकूलाकृति कर्त्राख्यातसमभिव्याहृत (कर्तृवाच्य) स्थल में **'चैत्रः पचति'** इत्यादि स्थलों में क्रियाविशेष्यतया (क्रिया के विशेष्य रूप में) आख्यात से प्रतिपादित होती है। (इसीलिए **चैत्रः पचति** से **'पाकानुकूलकृतिमान् चैत्रः'** 'पाकानुकूलकृतिवाला चैत्र है' ऐसा शाब्दबोध हुआ करता है। इस शाब्दबोध में कृति आख्यात से-धातूत्तर तिप्-से उपस्थित होती है और (पाक क्रिया की विशेष्य बनती है) **'चैत्रेण पच्यते तण्डुलः'** **'चैत्रेण शय्यते'** इत्यादि कर्माख्यात व भावाख्यात स्थल में तृतीया से क्रिया में विशेषणतया वह कृति बोधित होती है। इसीलिए **'चैत्रेण पच्यते तण्डुलः'** से **'चैत्रनिष्ठकृतिजन्यपाकजन्यविक्लित्याश्रयस्तण्डुलः'** 'चैत्रनिष्ठकृतिजन्य पाकजन्यविक्लिति का आश्रय तण्डुल है' ऐसा शाब्दबोध होता है। यह कर्माख्यातस्थलीय प्रयोग है। **'चैत्रेण शय्यते'** उस भावाख्यातस्थलीय प्रयोग से **'चैत्रनिष्ठकृतिजन्यशयनव्यापारः'** 'चैत्रकृतिजन्य शयन व्यापार है' ऐसा शाब्दबोध होता है। इन दोनों स्थलों में कृति की उपस्थिति चैत्रपदोत्तर तृतीया से होती है और वह कृतिजन्यत्व सम्बन्ध से पाकक्रिया और शयनक्रिया में विशेषण बनती है।

यत्तु तत्राप्याख्यातार्थ एव कृतिः, तृतीयार्थश्चाधेयत्वम्, तस्य चाख्याता र्थकृतिविशेषणतयान्वयः, कृतेश्च क्रियाविशेषणतया। तथा कृतिबोधने चात्मनेपदरूपाख्यातस्य यगादिसमभिव्याहारज्ञानमपेक्षितम्- 'पचति' 'पचते' इत्यादौ तथा कृत्यन्वयाबोधात्। 'चैत्रेण ज्ञायते, गम्यते' इत्यादौ तृतीयाया आधेयत्वार्थकत्वं क्लृप्तमेवेति न तत्कल्पनमधिकमिति, तन्न- 'चैत्रेण पक्वम्' इत्यादौ तृतीयाया कृत्यर्थकताया आवश्यकत्वात्, तत्र कृत्यर्थकाख्यातविरहेण कृतश्च कर्तृकर्मवाचकत्वेन कृत्यर्थकताविरहात्।

जो लोग यह कहते हैं कि वहाँ पर भी (कर्मभावाख्यातस्थल में भी) कृति आख्यात का अर्थ ही है, तृतीया का अर्थ तो आधेयत्व है उसका (तृतीया के अर्थ आधेयत्व का) आख्यातार्थ कृति के विशेषण के रूप में अन्वय होता है और कृति का क्रिया में

विशेषणतया अन्वय होता है। इस प्रकार से कृति का बोध होने में आत्मनेपद रूप आख्यात का यक् आदि समभिव्याहार ज्ञान अपेक्षित होता है क्योंकि '**पचति** ''**पचते**' इत्यादिस्थलों पर कृति का वैसा अन्वयबोध नहीं होता है। '**चैत्रेण ज्ञायते**''**गम्यते**' इत्यादि स्थलों में तृतीया का आधेयत्व अर्थ स्वीकृत ही है इसलिए तृतीया का अर्थ आधेयत्व को स्वीकारने में अधिक कल्पना नहीं करनी पड़ती है। तो यह उचित नहीं है '**चैत्रेण पक्वम्**' इत्यादि स्थलों में तृतीया की कृत्यर्थकता आवश्यक होगी क्योंकि वहाँ पर कृत्यर्थक आख्यात है नहीं और कृत् के कर्तृकर्मवाचक होने के कारण कृत् की कृत्यर्थकता नहीं है। यहाँ पर पूर्वोत्तरपक्ष का आशय निम्नानुसार है।

पूर्वपक्षी का कहना है कि कर्तृवाच्यस्थल में आख्यात का अर्थ कृति मानने और भावाख्यात व कर्माख्यात स्थल में तृतीया का अर्थ कृति मानने की अपेक्षा उचित यह है कि आख्यात मात्र का अर्थ कृति को मान लिया जाये। कर्तृवाच्य, भाववाच्य और कर्मवाच्य स्थलों में आख्यात का अर्थ कृति ही है। तृतीया का अर्थ आधेयत्व है। जो भाव कर्माख्यातस्थल में तृतीया का अर्थ कृति मानते हैं उन्हें भी '**चैत्रेण ज्ञायते**' '**रथेन गम्यते**' इत्यादि स्थलों में तृतीया का अर्थ आधेयत्व ही मानना पड़ता है क्योंकि धात्वर्थ ज्ञान का कर्तृत्व ज्ञानानुकूलकृतिमत्त्व न होकर ज्ञानाश्रयत्व मात्र ही हुआ करता है। इसलिए तृतीया का अर्थ कृति मानने पर उस कृति का ज्ञान में जन्यत्वादि सम्बन्धों से अन्वय सम्भव नहीं है। रथ में कृति न होने से कृति का तृतीया से प्रत्यायन सम्भव नही है, इसलिए आधेयत्व ही तृतीया का अर्थ मानना पड़ता है। इस प्रकार इन वाक्यों से क्रमशः '**चैत्रवृत्तिज्ञानम्**' 'चैत्र वृत्तिज्ञान है' '**रथवृत्तिसंयोगानुकूलव्यापारः**' 'रथ में रहने वाला संयोगानुकूलव्यापार है' ऐसा शाब्दबोध होता है। इस प्रकार जो लोग तृतीया का अर्थ कृति मानते हैं उन्हें भी इन स्थलों में तृतीया का अर्थ आधेयत्व मानना पड़ता है। ऐसी परिस्थिति में सर्वत्र तृतीया का अर्थ आधेयत्व ही स्वीकारने में लाघव है। भावकर्माख्यात स्थल में आख्यातार्थभूत कृति में विशेषणतया तृतीयार्थ आधेयत्व का और कृति का क्रिया में विशेषणतया अन्वयबोध होने के प्रति आख्यात का यगादिसमभिव्याहारज्ञान अपेक्षित है। चूँकि '**पचति,पचते**' इत्यादिस्थलों में आख्यात में यगादिसमभिव्याहार नहीं है, अतः कृति का क्रियाविशेषणतया अन्वयबोध नहीं होता है।

उत्तरपक्षी का कहना है कि '**चैत्रेण पक्वम्**' यहाँ पर क्या करोगे? यहां पर '**चैत्रकृतिजन्यः पाकः**' 'चैत्रकृतिजन्य पाक है' ऐसा शाब्दबोध होता है। यह बताओ कि यहाँ पर कृति की उपस्थिति किससे होगी? तुम तृतीया का अर्थ तो कृति मानते नहीं और कृत्यर्थक आख्यात यहाँ है नहीं। कृत् प्रत्यय कर्तृकर्मवाचक होता है कृत्यर्थक नहीं होता है। इस कारण तृतीया का ही अर्थ कृति को यहाँ पर मानना पड़ेगा।

यदि च कर्तृकृतः कृतावेव शक्तिर्नतु विशिष्टे, 'ज्ञाता' इत्यादौ त्वाश्रयार्थकतायाः कृतः क्लृप्तत्वेन तत्र कृत्यन्वयादेव कर्तृलाभसम्भवा-दित्युच्यते? तथापि कर्मकृतः कृत्यर्थत्वमप्रसक्तमेव। उक्तप्रत्ययस्य क्वचित्

कर्तृवाचकत्वेऽपि 'चैत्रेण पाच्यः' 'दुष्पचश्चैत्रेणौदनः' 'चैत्रेणौदनस्य पाकः' इत्यादौ कृतां न कृतिबोधकत्वमिति तत्र कृतिबोधानुरोधेन तृतीयायाः कृतिवाचकत्वमावश्यकम् ।

कर्तृकृत् की (कर्तृवाचक कृत् प्रत्यय की) कृति में ही शक्ति स्वीकारी जाये कृतिविशिष्ट में नहीं स्वीकारी जाये क्योंकि '**ज्ञाता**' इत्यादि स्थलों में कर्त्रर्थककृत् प्रत्यय की आश्रयार्थकता स्वीकृत है (ज्ञान का कर्तृत्व ज्ञानाश्रयत्व ही है ज्ञानानुकूल कृतिमत्त्व नहीं, अतः कृत् प्रत्यय का यहाँ पर अर्थ आश्रयत्व ही है) उसी आश्रयत्व में कृति का अन्वय कर देने से ही कर्ता का लाभ सम्भव है। अर्थात् इस प्रकार से कृत् प्रत्यय के दो अर्थ हुए आश्रयत्व और कृति, उसी आश्रयत्व में कृति का अन्वय करके '**गन्ता**' इत्यादि से गमन कृत्याश्रय का बोध हो जायेगा। यदि ऐसा कहो तब भी कर्मकृत् का कृत्यर्थकत्व तो अप्रसक्त ही है। कर्तृकृत् का भले ही कृतिमात्र अर्थ सिद्ध हो गया हो किन्तु कर्मकृत् का अर्थ तो कृति नहीं ही बन पाया है। उक्तप्रत्यय के (कृत् प्रत्यय के) कहीं पर कर्तृवाचक होने पर भी (कर्तृवाचक होने की स्थिति में लाघवात् कृति वाचक होने पर भी) '**चैत्रेण पाच्यः**' '**दुष्पचश्चैत्रेणौदनः**' '**चैत्रेणौदनस्य पाकः**' इत्यादि स्थलों में कृत् प्रत्ययों का कृतिबोधकत्व नहीं है इसलिए उक्त स्थलों में कृतिबोध के अनुरोध से तृतीया का कृतिवाचकत्व आवश्यक है। यहाँ पर कर्मकृत् है चूँकि कर्मकृत् का कृतिवाचकत्व सम्भव नहीं है, अतः तृतीया को हीं कृतिवाचक मानना चाहिए।

एवञ्च 'चैत्रेण पच्यते' इत्यादावपि तृतीययैव कृतिर्बोध्यते, तत्र चैत्रादेः सम्बन्ध एवाधेयत्वमित्यत एव निर्वाहे कृतावाधेयत्वस्य विशेषणतया भानोपगमस्यानुचितत्वात्, तथा सति तत्संसर्गस्यापि विषयताकल्पनाधिक्यात्। तादृशवाक्यज्ञानघटितशाब्दसामग्र्यामधिकोपस्थितिनिवेशेन च गौरवात्।

इस प्रकार '**चैत्रेण पच्यते**' इत्यादि स्थलों में भी तृतीया से ही कृति बोधित होती है और उस कृति में चैत्रादि का सम्बन्ध ही आधेयत्व है। इतने से ही निर्वाह सम्भव होने की स्थिति में आधेयत्व का कृति में विशेषणतया भानोपगम अनुचित है। क्योंकि आधेयत्व का कृति में विशेषणतया भान स्वीकारने पर आधेयत्व का संसर्ग भी शाब्दबोध का विषय होगा और संसर्ग के भी विषयता की कल्पना अधिक करनी पड़ेगी। इसके अलावा तादृशवाक्यज्ञानघटित शाब्दबोधसामग्री में अधिकोपस्थिति का निवेश होने के कारण गौरव होगा।

अभिप्राय यह है—**चैत्रेण पाच्यः**' '**दुष्पचश्चैत्रेणौदनः**' '**चैत्रेणौदनस्य पाकः**' इत्यादि स्थलों में कृत्यर्थक आख्यात है नहीं और उक्तस्थलीय कृत्प्रत्यय भी कृति का वाचक नहीं है। अतः तृतीया का अर्थ ही कृति को मानना पड़ेगा। इस तरह जब आप यहाँ पर तृतीया का ही अर्थ कृति को मान रहे हो तो '**चैत्रेण पच्यते**' इत्यादि स्थलों में भी तृतीया का ही अर्थ ही कृति को मानो, यही उचित है क्योंकि जैसे '**चैत्रेण ज्ञायते**' में तृतीया का अर्थ आधेयत्व क्लृप्त है वैसे ही उपर्युक्त स्थलों में कृति रूप अर्थ भी तृतीया का क्लृप्त

ही हैं। अतः आपके द्वारा तृतीया के कृत्यर्थकत्व में दिखाया गया गौरव असङ्गत है। हाँ आधेयत्त्व को तृतीया का अर्थ मानने के पक्ष में अवश्य गौरव होगा क्योंकि आप चैत्र का आधेयत्त्व में अन्वय करेंगे और आधेयत्व का कृति में अन्वय करेंगे। चूँकि आधेयत्व तृतीया का अर्थ हैं; प्रकारतया कृति में भासित हो रहा है। अतः आधेयत्व का सम्बन्ध भी शाब्दबोध में संसर्गतया भासेगा। इस प्रकार एक तो आधेयत्व के सम्बन्ध में शाब्दबोध की संसर्गताख्या विषयता स्वीकारनी पड़ेगी। दूसरे आधेयत्व का प्रकारविधया भान होने के कारण उसकी उपस्थिति भी शाब्दसामग्री के अन्तर्गत आयेगी। इसप्रकार शाब्दसामग्री में अधिकोपस्थिति का निवेश करने के कारण गौरव होगा। आधेयत्व का संसर्गतया भान स्वीकारने पर आधेयत्त्व का संसर्ग शाब्दबोध का विषय नहीं होगा क्योंकि संसर्ग के संसर्ग का शाब्दबोध में भान नहीं होता है। आधेयत्व का संसर्गविधया भान होने के कारण आधेयत्व की उपस्थिति भी शाब्दसामग्री के अन्तर्गत नहीं आयेगी। इस प्रकार यह भी लाघव है। अतः कृति को ही तृतीया का अर्थ भावकर्माख्यातस्थल में स्वीकारना चाहिए।

अथ तत्र कृतेस्तृतीयार्थतोपगमे 'चैत्रेण पच्यते न मैत्रेण' इत्यादौ तृतीयान्तार्थमैत्रीयकृतेरभावः पाकेऽन्वेतीत्युपेयं तस्याश्च समवायसम्बन्धावच्छिन्नाभावो मैत्रकर्तृकपाकेऽपीत्यतिप्रसङ्गः, जन्यतायाश्च वृत्त्यनियामकतया तत्सम्बन्धावच्छिन्नाभावो प्रसिद्ध्ययत्येव न, मैत्रकर्तृकपाककर्मत्वाभावस्य कर्मणि तण्डुलादौ प्रतीतिश्च कर्मवाचकपदासमभिव्याहारस्थले दुर्घटा, आधेयत्वस्य तृतीयार्थत्वे चाधेयत्वाभावबोध एव कृतावङ्गीक्रियंते।

किन्तु वहाँ पर (भावकर्माख्यातस्थल में) कृति की तृतीयार्थता का उपगम करने पर (कृति को तृतीया का अर्थ मानने पर) **'चैत्रेण पच्यते न मैत्रेण'** 'चैत्र के द्वारा पकाया जा रहा है मैत्र के द्वारा नहीं' इत्यादिस्थलों में तृतीयान्तार्थ मैत्रीयकृति का अभाव पाक में अन्वित होता है यही स्वीकारना पड़ेगा और मैत्रीय कृति का समवायसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक अभाव मैत्रकर्तृक पाक में भी है इसलिए अतिप्रसङ्ग होगा (मैत्र कर्तृक पाक होने पर भी उक्त प्रयोग का प्रसङ्ग होगा) जन्यता के वृत्त्यनियामक होने के कारण जन्यता सम्बन्ध से अवच्छिन्न प्रतियोगिताक अभाव तो प्रसिद्ध ही नहीं होता है। मैत्रकर्तृक पाककर्मत्वाभाव की कर्म तण्डुल आदि में प्रतीति भी कर्मवाचक पद का समभिव्याहार न होने के स्थल में दुर्घट है। आधेयत्व की तृतीयार्थता होने पर तो आधेयत्वाभाव का ही बोध कृति में स्वीकार किया जाता हे।

अभिप्राय यह है यदि आप भावकर्माख्यातस्थल में आधेयत्व को तृतीया का अर्थ न मानकर कृति को तृतीया का अर्थ मानते हैं तो आप बताइए कि **'चैत्रेण पच्यते न मैत्रेण'** से क्या शाब्दबोध होगा? **'चैत्रेण पच्यते'** से **'चैत्रवृत्तिकृतिजन्यः पाकः'** 'चैत्रवृत्तिकृतिजन्य पाक है' ऐसा शाब्दबोध होता है, उसमें **न मैत्रः** इतना अंश और जोड़ देने पर मैत्र से मैत्र की, तृतीया से कृति की और न से अभाव की उपस्थिति होती है। इनका उस शाब्दबोध में कैसे अन्वय होगा? साधारणतया ऐसा लगता है कि मैत्रवृत्ति कृति का

अभाव पाक में बोधित होगा, किन्तु किस सम्बन्ध से मैत्रवृत्तिकृति का अभाव पाक में बोधित होगा? समवायसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक अभाव पाक में बोधित होना हो तो, यह तो तब भी बोधित हो सकता है जब मैत्र ही पका रहा हो। पाक में समवायसम्बन्ध से कृति तब भी नहीं रहेगी क्योंकि कृति आत्ममात्रवृत्ति गुण है। यदि मानो कि कृति का जन्यतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक अभाव पाक में बोधित होगा तो जन्यता सम्बन्ध तो वृत्तिता का अनियामक है और वृत्त्यनियामकसम्बन्ध तो अभावीयप्रतियोगितावच्छेदक नहीं होता है। यदि आप कहो कि मैत्रकृतिजन्यपाककर्मत्व का अभाव तण्डुल आदि में शाब्दबोध का विषय होता है तो जहाँ पर कर्म वाचक पद नहीं है जैसे कि ऊपर ही वाक्य में तण्डुल आदि कर्मवाचक पद नहीं है वहाँ पर मैत्रादिकृतिजन्यपाककर्मत्वाभाव भी बोधित नहीं हो सकता है। अतः आधेयत्व को ही तृतीया का अर्थ मानो कृति को नहीं। आधेयत्व को तृतीया का अर्थ मानने पर आधेयत्वाभाव का कृति में (आख्यातार्थ कृति में) बोध हो जायेगा। इस प्रकार **'चैत्रनिरूपिताधेयत्वाश्रया मैत्रनिरूपिताधेयत्वाभाववती या कृतिः तज्जन्यः पाकः'** 'चैत्र में रहने वाली और मैत्र में न रहने वाली कृति से जन्य पाक है' ऐसा बोध सम्भव होता है।

न च तथा सति चैत्रमैत्रोभयकर्तृकपाकस्थले चैत्रीयपाककृतौ मैत्रवृत्तित्वाभावसत्त्वात् 'मैत्रेण न पच्यते' इति प्रयोगापत्तिरिति वाच्यम्; 'मैत्रेण न पच्यते' इत्यत्र वर्तमानपाकानुकूलकृतित्वावच्छेदेन मैत्रवृत्तित्वाभावबोधनाद् उक्तस्थले च तादृशकृतित्वसामानाधिकरण्येन मैत्रवृत्तित्वसत्त्वात्तादृशवाक्याप्रामाण्यात्। वर्तमानत्वस्य कृतिविशेषणतया च 'चैत्रेण पक्ष्यतेऽपच्यत न तु पच्यते' इत्युपपद्यते, क्रियाविशेषस्य तथात्वाद् यदा मैत्रेणान्यत् क्रियते न तु पच्यते तदा 'मैत्रेण न पच्यते' इति प्रयोगश्च।

यदि कहो कि वैसा होने पर (आधेयत्व को तृतीया का अर्थ मानने पर) चैत्रमैत्रोभयकर्तृकपाकस्थल में चैत्रीयपाककृति में मैत्रवृत्तित्वाभाव रहने के कारण **'मैत्रेण न पच्यते'** इस प्रकार का प्रयोग होने की आपत्ति है। आशय यह है कि अभी बताया गया कि आधेयत्व को तृतीया का अर्थ मानने पर **'चैत्रेण पच्यते न मैत्रेण'** से **'चैत्रवृत्ति मैत्रवृत्तित्त्वाभाववत्कृतिजन्यपाकः'** ऐसा शाब्दबोध होता है। इसमें कृति में चैत्रवृत्तित्व और मैत्रवृत्तित्वाभाव भासता है। जहाँ पर चैत्र और मैत्र दोनों ही पका रहे हैं वहाँ पर भी चैत्र में जो कृति है उसमें मैत्रवृत्तित्वाभाव विद्यमान ही है, चैत्र में रहने वाली कृति मैत्र में नहीं ही रहेगी। इसलिए चैत्रवृत्ति और मैत्रवृत्तित्वाभाववती कृति से जन्य पाक को विषय करने वाला शाब्दबोध अबाधित है। अतः दोनों के द्वारा पाक होने की स्थिति में भी उक्त प्रयोग होना चाहिए।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि **'मैत्रेण न पच्यते'** यहाँ पर वर्तमान पाकानुकूलकृतित्वावच्छेदेन मैत्रवृत्तित्वाभाव का बोधन किया जाता है, किन्तु उक्तस्थल में (चैत्रमैत्रोभय कर्तृक पाकस्थल में) वर्तमानपाकानुकूलकृतित्वसामानाधिकरण्येन मैत्रवृत्तित्व

ही विद्यमान होने के कारण उक्त वाक्य का अप्रामाण्य होता है। आशय यह है कि '**मैत्रेण न पच्यते**' से वर्तमानकालिक पाकानुकूल समस्तकृतियों में मैत्रवृत्तित्वाभाव बोधित होता हैं। जब मैत्र पका रहा है उस स्थिति में वर्तमान जो पाकानुकूलकृति हैं उसमें से मैत्र में रहने वाली कृति में मैत्रवृत्तित्वाभाव नहीं ही बोधित किया जा सकता है क्योंकि उसकृति में मैत्रवृत्तित्व ही है। इस प्रकार वर्तमानपाकानुकूलकृतित्वावावच्छेदेन मैत्रवृत्तित्वाभाव का बोध अप्रमा ही होगा। इसीलिए चैत्रमैत्रोभयकर्तृक पाक की दशा में उक्त प्रयोग नहीं होता है।

वर्तमानत्व अंश के कृतिविशेषण होने के कारण (पाकविशेषण नहीं होने के कारण) '**चैत्रेण पक्ष्यतेऽपच्यत न तु पच्यते**' 'चैत्र के द्वारा पकाया जायेगा पकाया गया, पकाया जा नहीं रहा है' इत्यादि प्रयोग उपपन्न होते हैं। क्रियाविशेष के वैसा (वर्तमान कृतिजन्य) होने के कारण जब मैत्र और कुछ कर रहा है पका नहीं रहा है तब '**मैत्रेण न पच्यते**' ऐसा प्रयोग भी होता है। यहाँ पर वर्तमान जो पाकानुकूलकृतियाँ उनमें मैत्रवृत्तित्व तो है ही नहीं, पाक वर्तमानकृति से जन्य नहीं है, अन्य क्रिया वर्तमान कृति से जन्य है। इसलिए पाकानुकूलवर्तमान कृतित्वावच्छेदेन मैत्रवृत्तित्वाभाव का बोधन होने में कोई समस्या नहीं है।

न चाख्यातेन कालस्य कृतिविशेषणतया बोधनात् कालविशेष विशेषितकृतित्वस्यान्वयितावच्छेदकतया तदवच्छेदेन नञाभावः शक्यते बोधयितुं न तु कालक्रियाविशेषोभयविशेषितकृतित्वावच्छेदेन, कर्मप्रत्ययस्थले क्रियायाः कृतिविशेषणत्वाभावेन तद्घटितधर्मस्यान्वयितावच्छेदकत्वाभावादितिवाच्यम्; क्रियाविशेषघटित धर्मस्यान्वयितानवच्छेदकत्वेऽपि तदवच्छिन्नत्वविशिष्टविशेषणताया अभावसंसर्गतया भानसम्भवेन सामञ्जस्यात् ।

यहाँ पर गदाधर एक नवीन प्रश्न उठा रहे हैं। प्रश्न यह है कि जो धर्म अन्वयितावच्छेदक नहीं है, क्या तदवच्छिन्नत्व भी विशेषण के सम्बन्ध में भासित हो सकता है? आगे पुनः इसका समाधान भी करेंगे।

यदि कहो कि चूँकि आख्यात के द्वारा काल का कृतिविशेषणतया बोधन होता है इसलिए कालविशेषविशेषित कृतित्व के अन्वयितावच्छेदक होने के कारण तदवच्छेदेन (कालविशेषविशेषित कृतित्वावच्छेदेन) नञ् के द्वारा अभाव का बोधन शक्य है, कालक्रियाविशेष उभय से विशिष्ट कृतित्वावच्छेदेन नञ् के द्वारा अभाव बोधन शक्य नहीं है क्योंकि कर्म प्रत्ययस्थल में क्रिया के कृति में विशेषण न होने के कारण क्रिया से घटित धर्म (कालक्रियाविशेषोभयविशेषितकृतित्व) अन्वयितावच्छेदक ही नहीं होगा। अभिप्राय यह है कि कर्माख्यातस्थलीय शाब्दबोध में कृति जन्यत्व सम्बन्ध से क्रिया में विशेषण बन कर भासती है, क्रिया कृति में विशेषण नहीं होती है इसलिए क्रिया से विशेषित कृतित्व को अन्वयितावच्छेदक बनाकर तदवच्छेदेन नञ् के द्वारा अभाव का बोधन नहीं किया जा सकता है। हाँ, कालविशेषविशेषितकृतित्वावच्छेदेन नञ् के द्वारा अभाव का बोधन किया

जा सकता है क्योंकि आख्यात के द्वारा कृतिविशेषणतया ही काल का बोधन होता है। इस प्रकार चूँकि कालविशेष और क्रियाविशेष कृति में विशेषणतया शाब्दबोध के विषय नहीं होते है। इसलिए कालविशेष क्रियाविशेषोभयविशेषित कृतित्वावच्छेदेन नञ् के द्वारा अभाव बोधन नहीं सम्भव है। जबकि आप **'मैत्रेण न पच्यते'** इस वाक्य से वर्तमान पाकानुकूल कृतित्वावच्छेदेन मैत्रवृत्तित्वाभाव का बोधन स्वीकार कर रहे हैं। यहाँ पर पाकक्रिया और वर्तमान काल दोनों से विशेषित कृतित्वावच्छेदेन अभाव का बोधन नञ् के द्वारा स्वीकार कर रहे हैं जो कि सम्भव नहीं है।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि क्रियाविशेष से घटित धर्म के अन्वयितावच्छेदक न होने पर भी तदवच्छिन्नत्वविशिष्टविशेषणता का अभावसंसर्गतया भान सम्भव होने के कारण सामञ्जस्य हो जाता है।

समाधान का आशय यह है कि क्रियाविशेष से घटित धर्म के अन्वयितावच्छेदक न होने की दशा में आखिर कैसे कालक्रियाविशेषोभयविशेषित (वर्तमानपाकानुकूल) कृतित्वावच्छेदेन नञ् के द्वारा मैत्रवृत्तित्व का अभाव बोधित किया जा सकता है? यही तो प्रश्नकर्ता पूछ रहा है। इस पूछने में यह अन्तर्निहित है कि उस वाक्य से जो उपस्थिति हो रही है और उपस्थिति के वाद जो शाब्दबोध हो रहा है उसमें मैत्र का तृतीयार्थ वृत्तित्व में वृतित्व का अभाव में, अभाव का कृति में और कृति का पाक में अन्वय होता है। कृति वर्तमानकाल से विशिष्ट ही उपस्थित होती है। अतः वर्तमानकृतित्वावच्छेदेन ही मैत्रवृत्तित्वाभाव बोधित हो सकता है। वर्तमानपाकानुकूलकृतित्वावच्छेदेन कैसे बोधित होगा? इसका समाधान यह दे रहे हैं कि हम वर्तमानकृतित्वावच्छेदेन ही मैत्रवृत्तित्वाभाव का बोध स्वीकारते है। क्रिया और काल उभयविशेष से विशेषित कृति में मैत्रवृत्तित्वाभाव का अन्वय नहीं करते हैं। किन्तु अभाव का संसर्ग बनकर वर्तमान पाकानुकूलकृतित्वावच्छिन्नत्वविशिष्ट विशेषणता भासता है। संसर्गविधया भान होने के लिए तो उसकी उपस्थिति अपेक्षित नहीं है। इसलिए कोई मुश्किल नहीं है।

न चान्वयितावच्छेदकावच्छिन्नत्वमेव विशेषणसम्बन्धे भासत इति नियमः; तथा सति 'शरदि पुष्यन्ति सप्तच्छदाः' इत्यादौ सप्तच्छद-पुष्पोत्पत्तित्वादेः शरद्वृत्तित्वाद्यन्वयितानवच्छेदकत्वादाख्यातान्त-प्रतिपाद्यतावच्छेदकपुष्पोत्पत्तित्वाद्यवच्छेदेन च शरद्वृत्तित्वान्वय-बाधादवच्छेदकावच्छेदेनान्वयानुपपत्तेः अन्वयितावच्छेदकसामाना-धिकरण्यमात्रेण च तदन्वयोपगमे 'शरदि पुष्यन्ति सप्तच्छदाः' 'शरदि पुष्यन्ति चम्पकाः' इत्यविशेषेण प्रयोगापत्तिः।

यदि कहो कि विशेषण के सम्बन्ध में अन्वयितावच्छेदकावच्छिन्नत्व ही भासता है ऐसा नियम है। इसलिए मैत्रवृत्तित्वाभाव के अन्वयितावच्छेदक वर्तमानकृतित्व से अवच्छिन्नत्व ही मैत्रवृत्तित्वाभाव के सम्वन्ध (विशेषणताविशेष) में भास सकता है, वर्तमानपाककृतित्वा-वच्छिन्नत्व नहीं भास सकता है।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि इस नियम को मानने पर तो **'शरदि पुष्प्यन्ति सप्तच्छदाः'** 'शरत्काल में सप्तच्छद (पुष्पविशेष) फूलते हैं' इत्यादि स्थलों में सप्तच्छद पुष्पोत्पत्तित्वादि के शरद्वृत्तित्व का अन्वयितावच्छेदक न होने के कारण और आख्यातान्त प्रतिपाद्यतावच्छेदक पुष्पोत्पत्तित्वाद्यवच्छेदेन शरद्वृत्तित्वान्वयबाध होने के कारण अवच्छेद कावच्छेदेन अन्वय की अनुपत्ति होगी। अन्वयितावच्छेदकसामानाधिकरण्येन पुष्पोत्पत्तित्वादि का अन्वय स्वीकारने पर **'शरदि पुष्प्यन्ति सप्तच्छदाः'** की तरह ही **'शरदि पुष्प्यन्ति चम्पकाः'** प्रयोग भी समान रूप से होने लगेगा।

अभिप्राय यह है कि **'शरदि पुष्प्यन्ति सप्तच्छदाः'** यहाँ पर सप्तच्छद कर्ता है अतः वह मुख्यविशेष्यतया भासित होगा। सप्तम्यन्तार्थ शरद्वृत्तित्व का अन्वय पुष्पोत्पत्तित्व में होना चाहिए और पुष्पोत्पत्तित्व का सप्तच्छद में अन्वय होना चाहिए। इस प्रकार जो शाब्दबोध होगा उसमें शरद्वृत्तित्व का अन्वयी है पुष्पोत्पत्ति और अन्वयितावच्छेदक पुष्पोत्पत्तित्व होगा। सप्तच्छदपुष्पोत्पत्तित्व तो शरद्वृत्तित्व का अन्वयितावच्छेदक हो नहीं सकता है क्योंकि पुष्पोत्पत्ति की सप्तच्छदपुष्पोत्पत्तित्वेन उपस्थिति नहीं हुआ करती है। इसलिए शरद्वृत्तित्व के सम्बन्ध में सप्तदपुष्पोत्पत्तित्वावच्छिन्नत्व का भान तो हो नहीं सकता है क्योंकि आप ही नियम बता रहे हैं कि अन्वयितावच्छेदकावच्छिन्नत्व ही विशेषण के सम्बन्ध में भासता है। दूसरी समस्या यह है कि यहाँ पर अन्वयितावच्छेदक हुआ पुष्पोत्पत्तित्व और पुष्पोत्पत्तित्वावच्छेदेन शरद्वृत्तित्व नहीं है, सभी पुष्पोत्पत्तियों में शरद् वृत्तित्व नहीं ही है। कितने ही फूल गर्मियों में वसन्त में खिलते हैं। इसलिए पुष्पोत्पत्तित्वावच्छेदेन (अवच्छेदकावच्छेदेन) शरद्वृत्तित्व का अन्वय नहीं सम्भव है क्योंकि बाध है। यदि अवच्छेदकसामानाधिकरण्येन पुष्पोत्पत्तित्वसामानाधिकरण्येन अन्वय स्वीकारें तो यहाँ पर तो काम चल जायेगा क्योंकि शरद्वृत्तित्व का पुष्पोत्पत्तित्वसामानाधिकरण्येन पुष्पोत्पत्ति में अन्वय और पुष्पोत्पत्ति का सप्तच्छद में अन्वय होकर शाब्दबोध हो जायेगा। किन्तु समस्या यह है कि इस प्रकार तो ऐसा ही **'शरदि पुज्यन्ति चम्पकाः'** प्रयोग भी होने लगेगा क्योंकि इसी रीति से पुष्पोत्पत्तित्वसामानाधिकरण्येन शरद्वृत्तित्व का पुष्पोत्पत्ति में अन्वय और पुष्पोत्पत्ति का चम्पक में अन्वय होकर बोध उपपन्न ही है। चाहे चम्पक शरद् में फूलें चाहे न फूलें इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता है। उपर्युक्त रीति से जो अन्वय होना है उसका कहीं पर कोई बाध नहीं है।

इसलिए आप जो नियम मानना चाह रहे हैं कि अन्वयितावच्छेदकावच्छिन्नत्व ही विशेषण सम्बन्ध में भासता है वह नहीं मान सकते। अनेकस्थलों पर अन्वयितानवच्छेदक धर्मावच्छिन्नत्व भी विशेषणसम्बन्ध में भासता है जैसे कि यहीं पर विशेषण शरद्वृत्तित्व के सम्बन्ध में सप्तच्छदपुष्पोत्पत्तित्वावच्छिन्नत्व भासता है। जो कि अन्वयितावच्छेदक नहीं है। इसी प्रकार उपर्युक्तस्थल में भी वर्तमानपाकानुकूलकृतित्वावच्छिन्नत्व का मैत्रवृत्तित्वाभावीय सम्बन्ध विशेषणताविशेष में भान होने में कोई आपत्ति नहीं है। **'शरदि पुष्प्यन्ति चम्प काः'** प्रयोग इसी कारण नहीं होता है क्योंकि चम्पकपुष्पोत्पत्तित्वावच्छिन्नत्व का भान शरद्वृत्तित्व के सम्बन्ध में बाधित है।

यदि च तत्र शरत्सम्बन्धः सप्तच्छदविशेषणतया भासते न पुनराख्यातार्थे धातुमात्रार्थे वा पुष्पोत्पत्तौ, अत एव तत्र कारकविभक्ति रूपसप्तम्यनुपपत्त्या कालरूपविशेषणपदोत्तरं स्वातन्त्र्येण सप्तमी शर्ववर्मणानुशिष्टा। एवञ्च क्रियानिमित्तत्वरूपकारकत्वगर्भकर्तृत्वस्याख्यातार्थत्वे पुष्पोत्पत्तित्वनिमित्तत्वरूपाख्यातान्तार्थस्य विशिष्टान्वयानुरोधेन शरत्सम्बन्धेऽप्यन्वय उपगन्तव्य इति कारकत्वस्याख्यातान्तार्थत्वानुपगमेऽपि 'शीतलं सरोऽवगाढवतो निदाघदुःखं व्यपैति' इत्यादाविवोद्देश्यविधेयभावमहिम्नोद्देश्य विशेषणेन शरत्सम्बन्धेन विधेयभूतपुष्पोत्पत्तेः प्रयोज्यप्रयोजकभावस्य संसर्गमर्यादया भानमौत्सर्गिकमिति चम्पकादिपुष्पोत्पत्तौ शरत्सम्बन्धनिमित्तकत्वाभावान्नोक्तातिप्रसङ्ग इत्युक्तस्थलेऽवच्छेदकावच्छेदेनान्वय एव नोपेयते इत्युच्यते? तथापि तादृशनियमो निष्प्रामाणिक एव।

यदि वहाँ पर '**शरदि पुष्प्यन्ति सप्तच्छदाः**' में शरत् का सम्बन्ध (शरद्वृत्तित्व) सप्तच्छद का विशेषण बनकर भासता है, आख्यात के अर्थ में या धातुमात्र के अर्थ पुष्पोत्पत्ति में विशेषण बनकर नहीं भासता है। इसी कारण कारकविभक्ति रूप सप्तमी की अनुपपत्ति से कालरूपविशेषणपद के बाद स्वतन्त्र रूप से शर्ववर्मा के द्वारा सप्तमी का अनुशासन किया गया है। अर्थात् उक्त स्थल में जो सप्तमी है वह कारक विभक्ति नहीं है '**क्रियान्वयित्वं कारकत्वम्**' के अनुसार कारकविभक्ति का अर्थ क्रिया से ही अन्वित होता है। इसकारण यदि उक्त सप्तमी कारक विभक्ति होती तो उसके अर्थ का अन्वय क्रिया पुष्पोत्पत्ति से ही होता । किन्तु वह कारक विभक्ति नहीं है, अतः उसके अर्थ का अन्वय क्रिया से नहीं होता है। इसलिए शरत् पद से सप्तमी विधान के लिए वैयाकरण शर्ववर्मा को अलग से विधान करना पड़ा। वह शरत्सम्बन्ध सप्तच्छद में विशेषण बनकर भासता है।

इस प्रकार क्रियानिमित्तत्व रूप कारकत्वगर्भकर्तृत्व के आख्यात का अर्थ होने पर पुष्पोत्पत्तिनिमित्तत्वरूप आख्यातान्तार्थ का विशिष्टान्वय के अनुरोध से शरत्सम्बन्ध में भी अन्वय स्वीकारना चाहिए, इस कारण कारकत्व को आख्यातार्थ न मानने पर भी '**शीतलं सरोऽवगाढवतो निदाघदुःखं व्यपैति**' 'शीतल सरोवर में स्नान करने वाले का निदाघ दुःख दूर हो जाता है' इत्यादि स्थलों की तरह उद्देश्यविधेयभाव की महिमा से उद्देश्यविशेषणीभूत शरत्सम्बन्ध के द्वारा विधेयभूत पुष्पोत्पत्ति के प्रयोज्यप्रयोजकभाव का संसर्गमर्यादा से भान औत्सर्गिक है, इसलिए चम्पक आदि पुष्पोत्पत्ति में शरत्सम्बन्धनिमित्तकत्व न होने के कारण अतिप्रसङ्ग नहीं है। इस कारण उक्त स्थल में अवच्छेदकावच्छेदेन अन्वय ही नहीं स्वीकार किया जाता है।

अभिप्राय यह हैं कि शरद्वृत्तित्व रूप सप्तम्यन्तार्थ का अन्वय सप्तच्छद में होता है क्योंकि यह सप्तमी कारकविभक्ति नहीं है। आख्यात का अर्थ यहाँ पर कर्तृत्व है। क्या कारण है कि आख्यात का अर्थ कर्तृत्व है? क्योंकि यह कर्तृवाच्य प्रयोग है। आख्यातार्थ

कर्तृत्व कारकत्वगर्भ हो सकता है और कारकत्वगर्भ न भी हो सकता है। यदि आख्यातार्थ कर्तृत्व कारकत्वगर्भ है तो सप्तच्छद में पुष्पोत्पत्तिनिमित्तत्व का अन्वय करना होगा और केवल सप्तच्छद में नहीं शरद्वृत्तित्वविशिष्ट सप्तच्छद में अन्वय करना पड़ेगा। इस प्रकार आख्यातान्तार्थ का विशिष्ट में अन्वय करना पड़ रहा है, जब शरद्वृत्तित्वविशिष्ट सप्तछद में पुष्पोत्पत्तिनिमित्तत्व है तो स्वाभाविकरूप से विशेषण शरद्वृत्तित्व में भी पुष्पोत्पत्तिनिमित्तत्व है। इस तरह शरद्वृत्तित्व में पुष्पोत्पत्तिनिमित्तत्व का लाभ हो जाता है। यदि कारकत्व गर्भ कर्तृत्व को यहाँ पर आख्यातार्थ न माना जाये केवल क्रियाश्रयत्व रूप ही कर्तृत्व सप्तच्छद में स्वीकारा जाये तो पुष्पोत्पत्ति (क्रिया) का आश्रयत्व ही सप्तच्छद में अन्वित होगा पुष्पोत्पत्तिनिमित्तत्व नहीं । ऐसी स्थिति में चूँकि शरद्वृत्तित्वविशिष्ट सप्तच्छद में पुष्पोत्पत्त्याश्रयत्व का अन्वय किया जा रहा है। इसलिए उद्देश्य हुआ शरद्वृत्तित्वविशिष्ट सप्तच्छद और विधेय हुई पुष्पोत्पत्ति । तो जिस प्रकार से '**शीतलं सरोऽवगाढवतो निदाद्दुःखं व्यपैति**' इत्यादिस्थलों में उद्देश्यविधेयभाव की महिमा से (शीतलसरो-ऽवगाहनविशिष्ट उद्देश्य में दुःखदूरीभाव विधेय होने के कारण) शीतलसरोऽवगाहन रूप विशेषण (उद्देश्यतावच्छेदक) का विधेय दुःखदूरीभाव के साथ प्रयोज्यप्रयोजकभाव संसर्गमर्यादा से भासता है, पदों से उपस्थित न होने पर भी आकाङ्क्षाभास्य होता है। उसी प्रकार यहाँ पर भी शरद्वृत्तित्वविशिष्ट सप्तच्छद में पुष्पोत्पत्ति का विधेयतया अन्वय होने के कारण शरद्वृत्तित्व और पुष्पोत्पत्ति का प्रयोज्यप्रयोजकभाव संसर्गमर्यादा से नियमपूर्वक भासता है। चूँकि चम्पकादिपुष्पोत्पत्ति में शरत्सम्बन्धनिमित्तकत्व है ही नहीं, इसलिए वहाँ पर शरद्वृत्तित्वविशिष्ट चम्पक में पुष्पोत्पत्ति का अन्वय होने पर पुष्पोत्पत्ति और शरद्वृत्तित्व का प्रयोज्यप्रयोजकभाव संसर्गमर्यादा से भासित होने की स्थिति ही नहीं है। इसकारण '**शरदि पुष्प्यन्ति चम्पकाः**' प्रयोग नहीं होता है।

यदि ऐसा कहते हो तथापि तादृशनियम निष्प्रामाणिक ही है। यह नियम फिर भी प्रमाणसिद्ध नहीं होता है कि विशेषण सम्बन्ध में अन्वयितावच्छेदकावच्छिन्नत्व ही भासता है।

न च तादृशनियमानुपगमे 'इह भवने मैत्रेणैव पक्ष्यते तेमनम्' इत्यत्रैतद्भवनाधिकरणकतेमनपाकत्वेन रूपेण शब्दात् पाकानुपस्थित्या तदवच्छिन्ने मैत्रान्यसमवेतभविष्यत्कृतिविषयत्वव्यवच्छेदबोधासम्भवकथनं दीधितिकृतां विरुध्येतेतिवाच्यम्; अवच्छेदकावच्छेदेन विशिष्टबुद्धौ धर्मिणि विशेषणतया भासमानमेव रूपं विशेषणेऽवच्छिन्नत्वसम्बन्धेन विशेषण मित्याशयेन तेषां तदभिधानात् । विशेषणसम्बन्धे तदवच्छिन्नत्वमेव तदवच्छेदेन विशिष्टबुद्धौ भासत इत्युपगमे शब्दानुपस्थितरूपावच्छेदेन विशेणान्वये बाधकाभावात्।

यदि कहो कि उक्त नियम को स्वीकार नहीं करने पर (विशेषण सम्बन्ध में अन्वयितावच्छेदकावच्छिन्नत्व ही भासता है, इस नियम को नहीं मानने पर) '**इह भवने मैत्रेणैव पक्ष्यते तेमनम्**' 'इस मकान में मैत्र के द्वारा ही तेमन (मिर्च मसाला, चटनी) पकाया जायेगा' इस स्थल में एतद्भवनाधिकरणकतेमनपाकत्वेन रूपेण शब्द से उपस्थिति

न होने के कारण तदवच्छिन्न में (एतद्भवनाधिकरणकतेमनपाकत्वावच्छिन्न में) मैत्रान्यसमवेत भविष्यत्कालिककृतिविषयत्वव्यवच्छेद का बोध असम्भव है ऐसा दीधितिकार का कथन विरुद्ध हो जायेगा।

अभिप्राय यह है कि इस स्थल में दीधितिकार ने कह रखा है कि चूँकि एतद्भवनाधिकरणकतेमनपाकत्वेन पाक की उपस्थिति शब्द से नहीं होती है। यह कर्मवाच्यस्थलीय प्रयोग है, तेमन कर्म होने के कारण यहाँ पर शाब्दबोध में मुख्यविशेष्यतया भासेगा, पाक का विशेष्य बनकर भासेगा पाक का विशेषण बनकर नहीं भासेगा। इसलिए पाक की उपस्थिति एतद्भवनाधिकरणकतेमनपाकत्वेन नहीं होती है, यह मानी हुई बात है। इस कारण एतद्भवनाधिकरणकतेमनपाकत्वावच्छिन्न में मैत्रान्यसमवेतकृतिविषयत्वव्यवच्छेद का बोध सम्भव नहीं है। ऐसा दीधितिकार रघुनाथ शिरोमणि ने कहा है। यह कथन तभी सङ्गत हो सकता है यदि 'विशेषणसम्बन्ध में अन्वयितावच्छेदकावच्छिन्नत्व ही भासता है' इस नियम को स्वीकारें। इस नियम को स्वीकारने पर चूँकि पाक की उपर्युक्त रूप से उपस्थिति ही नहीं होती हैं इसलिए विशेषणीभूतमैत्रान्यसमवेत कृतिविषयत्वव्यवच्छेद के सम्बन्ध में एतद्भवनाधिकरणकतेमनपाकत्वावच्छिन्न का भान नहीं हो सकता है। क्योंकि उक्त रूप अन्वयितावच्छेदक रूप ही नहीं है। इस कारण उक्तरीति से शाब्दबोध सम्भव नहीं है, ऐसा दीधितिकार का कथन सङ्गत होता है। यदि इस नियम को न मानें तब तो उक्त वाक्य से शाब्दबोध होने में कोई असम्भाव्यता नहीं ही है। क्योंकि एतद्भवनाधिकरणक तेमनपाकत्वेन रूपेण शब्द से पाक की उपस्थिति न होने पर भी पाक में पाकत्वसामानाधिकरण्येन मैत्रान्य समवेतभविष्यंत्कृतिविषयत्वव्यवच्छेद का बोध हो सकता है और मैत्रान्यसमवेतभविष्यत्कृतिविषयत्वव्यवच्छेद के सम्बन्ध में अन्वयितानवच्छेदकीभूत धर्म एतद्भवनाधिकरणकतेमनपाकत्व से अवच्छिन्नत्व भासने में कोई परेशानी नहीं है। आप तो इसनियम को मानते ही नहीं कि अन्वयितावच्छेदकावच्छिन्नत्व ही विशेषणसम्बन्ध में भासित हो सकता है। इस नियम को मानने की स्थिति में—पाक में उपर्युक्त रीति से पाकत्वसामानाधिकरण्येन मैत्रान्यसमवेतकृतिविषयत्वव्यवच्छेद का अन्वय तो किया ही जा सकता है किन्तु उक्त व्यवच्छेद के सम्बन्ध में एतद्भवनाधिकरणकतेमनपाकत्वावच्छिन्नत्व नहीं भास सकता है क्योंकि एतद्भवनाधिकरणकतेमनपाकत्व अन्वयितावच्छेदक नहीं है। इस कारण दीधितिकार का जो यह कथन है कि 'यहाँ पर पाक की उपर्युक्त रूप से उपस्थिति न होने से शाब्दबोध सम्भव नहीं है' उसकी सङ्गति बनती है। इस नियम को न मानने की स्थिति में दीधितिकार का कथन सङ्गत नहीं होता है।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि 'अवच्छेदकावच्छेदेन विशिष्टबुद्धि होने की स्थिति में धर्मी में विशेषणतया भासमान रूप ही विशेषण में अवच्छिन्नत्व सम्बन्ध से विशेषण होता है' इस आशय से उनके द्वारा (दीधितिकार द्वारा) ऐसा अभिधान किया गया है। तदवच्छेदेन विशिष्ट बुद्धि होने की स्थिति में विशेषणसम्बन्ध में तदवच्छिन्नत्व ही भासता है, ऐसा स्वीकारने पर शब्द से अनुपस्थितरूपावच्छेदेन विशेषणान्वय स्वीकारने में बाधक नहीं है।

अभिप्राय यह है कि आप जो नियम बता रहे हैं कि 'विशेषण सम्बन्ध में अन्वयितावच्छेदकावच्छिन्नत्व ही भासता है' वह अधूरा है। पूरा नियम इस प्रकार है कि अवच्छेदकावच्छेदेन विशिष्ट बुद्धि हो रही हो तो अन्वयितावच्छेदकावच्छिन्नत्व ही विशेषण सम्बन्ध में भासता है अन्वयितावच्छेदक अवच्छिन्नत्व सम्बन्ध से विशेषण में विशेषण होता है। चूँकि यहाँ अवच्छेदकावच्छेदेन विशिष्टबुद्धि नहीं हो रही है, पाकत्वावच्छेदेन मैत्रान्यसमवेत भविष्यत्कृतिविषयत्वव्यवच्छेद का अन्वय विशिष्ट बुद्धि में नहीं हो रहा हैं। इसलिए अन्वयितावच्छेदकीभूतधर्मावच्छिन्नत्व ही भासित होने का कोई नियम नहीं है। यहाँ पर अन्वयितानवच्छेदकीभूतधर्म एतद्भवनाधिकरणकपाकत्व से अवच्छिन्नत्व विशेषणसम्बन्ध में भासने में कोई आपत्ति नहीं है। दीधितिकार ने यहाँ पर शाब्दबोधासम्भव प्रदर्शित किया है वह इसी आशय से प्रदर्शित किया है कि यदि यहाँ पर एतद्भवनाधिकरणकपाकत्वावच्छेदेन या पाकत्वावच्छेदेन मैत्रान्यसमवेतभविष्यत्कृतिविषयत्वव्यवच्छेद का अन्वय करना चाहो तो वह नहीं सम्भव है क्योंकि एतद्भवनाधिकरणकपाकत्वेन पाक की उपस्थिति नहीं होने के कारण वह अन्वयितावच्छेदक नहीं बन सकता है और यदि वह अन्वयितावच्छेदक नहीं हुआ पाकत्व अन्वयितावच्छेदक हुआ (और पाकत्वावच्छेदेन मैत्रान्यसमवेतभविष्यत्कृति विषयत्वव्यवच्छेद का अन्वय हो रहा है) तो न तो विशेषण मैत्रान्यसमवेतभविष्यत्कृति-विषयत्वव्यवच्छेद में अवच्छिन्नत्व सम्बन्ध से एतद्भवनाधिकरणकपाकत्व विशेषण बन सकता है और न तो विशेषण के सम्बन्ध में ही एतद्भवनाधिकरणकपाकत्वावच्छिन्नत्व भासित हो सकता है। इसलिए अवच्छेदकावच्छेदेन यहाँ पर विशिष्टबुद्धि स्वीकारने में शाब्दबोध की असम्भाव्यता ही दीधितिकार बता रहे हैं अवच्छेदकसामानाधिकरण्येन शाब्दबोध स्वीकारने में नहीं।

न चावच्छेदकावच्छिन्नत्वस्यावच्छेदकावच्छेदेन विशिष्टबुद्धौ विशेषणांशे भानमसम्भवदुक्तिकम्-'घटो द्रव्यम्' इत्यादौ घटत्वावच्छेदेन द्रव्यत्वादिमत्त्वबुद्धौ द्रव्यत्वादिविशेषणस्य स्वरूपत एव भानादिति वाच्यम्; तादृशशाब्दबोधे द्रव्यत्वाद्यवच्छिन्नस्यैवाऽभेदसम्बन्धेन विशेषणत्वात्, घटत्वादिविशिष्टे द्रव्यत्वादिविशेषणकतादृशप्रत्यक्षेऽवच्छेदकावच्छिन्नत्व भानानुपगमे क्षतिविरहात्। तथा च 'मैत्रेण न पच्यते' इत्यादौ पाककृति त्वस्यान्वयितानवच्छेदकत्वेऽप्यर्थलभ्यतादृशधर्मावच्छिन्नत्वस्य संसर्गांशे भानं निराबाधमिति चेत् ?

यदि आप कहो कि अवच्छेदकावच्छेदेन विशिष्टबुद्धि में विशेषणांश में अवच्छेदकावच्छिन्नत्व का भान तो असम्भवदुक्तिक है क्योंकि 'घटो द्रव्यम्' 'घट द्रव्य है' इत्यादि स्थलों में घटत्वावच्छेदेन द्रव्यत्वादिमत्त्वबुद्धि में द्रव्यत्वादि रूप विशेषण स्वरूपतः ही भासता है। अभिप्राय है कि आप तो कह रहे हैं कि अवच्छेदकावच्छेदेन विशिष्टबुद्धि में विशेषणांश में अवच्छेदकावच्छिन्नत्व भासता है किन्तु यह तो असम्भव है। 'घटो द्रव्यम्' यह विशिष्ट बुद्धि है इसमें घटत्वावच्छेदेन द्रव्यत्व का वैशिष्ट्य भासता है। द्रव्यत्व

विशेषणांश है किन्तु द्रव्यत्वात्मक विशेषणांश में अन्वयितावच्छेदक घटत्व का अवच्छिन्नत्व नहीं भासता है। द्रव्यत्व घटत्वावच्छिन्न होकर नहीं भासता है बल्कि द्रव्यत्व स्वरूपतः ही भासता है। इसलिए आपका कथन ग़लत है कि अवच्छेदकावच्छेदेन विशिष्टबुद्धि में विशेषणांश में अवच्छेदक से अवच्छिन्नत्व भासित होता है।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि **'घटो द्रव्यम्'** वाक्य से होने वाले शाब्दबोध में घटत्वावच्छेदेन अभेद सम्बन्ध से द्रव्यत्वावच्छिन्न ही विशेषण है अर्थात् आप जैसा समझ रहे हैं कि द्रव्यत्व विशेषण है तो द्रव्यत्व विशेषण नहीं है बल्कि अभेद सम्बन्ध से द्रव्य ही घटत्वावच्छेदेन विशेषण है इसलिए घटाभिन्न द्रव्य में अवच्छेदक घटत्व का अवच्छिन्नत्व तो भासता ही है। घटत्वादिविशिष्ट में द्रव्यत्वादिविशेषणक **'घटो द्रव्यम्'** इस प्रकार के प्रत्यक्ष में अवच्छेदकावच्छिन्नत्व का भान न स्वीकारने में कोई क्षति नहीं है। सार यह है कि **'घटो द्रव्यम्'** इस प्रकार की जो शाब्दबुद्धि होती है उसमें तो घट में अभेद सम्बन्ध से द्रव्य विशेषण होता है तथा घटत्वावच्छिन्नत्व द्रव्य में भासता है। किन्तु **'घटो द्रव्यम्'** ऐसा जो प्रत्यक्ष होता है उसमें घट में द्रव्यत्व विशेषण बनता है और वहाँ पर अन्वयितावच्छेदक घटत्व से अवच्छिन्नत्व द्रव्यत्व रूप विशेषणांश में नहीं भासता है। इस प्रकार **'मैत्रेण न पच्यते'** 'मैत्र के द्वारा नहीं पकाया जा रहा है ' इत्यादि स्थलों में पाककृतित्व के अन्वयितावच्छेदक न होने पर भी (क्योंकि कृति की कृतित्वेन उपस्थिति होती है पाककृतित्वेन नहीं, पाक इस वाक्य से जन्य बोध में कृति का विशेष्य बनकर उपस्थित होता है) अर्थलभ्य जो तादृश (पाककृतित्व) धर्मावच्छिन्नत्व है उसका संसर्ग अंश में भान निराबाध है, बग़ैर किसी बाधा के मैत्रवृत्तित्वाभाव रूप विशेषण (तृतीयान्तार्थविशिष्ट नञर्थ) के सम्बन्ध में पाककृतित्वावच्छिन्नत्व का भान हो सकता है क्योंकि संसर्गतया भान होने के लिए पदजन्य उपस्थिति की ज़रूरत नहीं पड़ती है।

न-'मैत्रेण न पक्वः' इत्यादौ कृतौ मैत्रादिकृतित्वाभावबोधसम्भवेन कृतिजन्यत्वस्य तृतीयार्थतां स्वीकृत्य क्रियायां मैत्रादिकृतिजन्यत्वाभाव बोधस्यावश्यमुपगन्तव्यतया 'मैत्रेण न पच्यते' इत्यादावपि तद्बोधोपगमेन सामञ्जस्यात् ।

तो ऐसा कहना उचित नहीं है (**अथ** प्रतीक से जो **'यत्तु'**मतानुसारी कथन तृतीया के आधेयत्वार्थकत्व को परिष्कृत करने का प्रयत्न किया गया है वह ठीक नहीं है) क्योंकि **'मैत्रेण न पक्वः'** 'मैत्र के द्वारा नहीं पकाया गया' इत्यादि स्थलों में कृति में मैत्रादिवृत्तित्वा भाव बोध असम्भव होने के कारण कृतिजन्यत्व की ही तृतीयार्थता स्वीकार करके क्रिया में मैत्रादिकृतिजन्यत्वाभावबोध अवश्य अभ्युपगन्तव्य (स्वीकार्य) होने के कारण **'मैत्रेण न पच्यते'** 'मैत्र के द्वारा नहीं पकाया जा रहा है' इत्यादि स्थलों में भी उसी के बोध (कृतिजन्यत्वाभाव बोध) को स्वीकारने से सामञ्जस्य बन जाता है।

अभिप्राय यह है कि **यत्तु** मतानुयायी तृतीया का अर्थ कृति या कृति जन्यत्व न मानकर तृतीया का अर्थ आधेयत्व मान रहा है और आख्यात का अर्थ कृति स्वीकार रहा है। किन्तु वह वहाँ पर क्या करेगा? जहाँ पर कि आख्यात नहीं है जैसे कि **'मैत्रेण न पक्वः'** यहाँ पर। यहाँ आख्यात है नहीं इसलिए कृति की उपस्थिति ही नहीं होगी। फलतः

कृति में मैत्रादिवृत्तित्वाभाव तो बोधित ही नहीं हो सकता है। जो उपस्थित ही नहीं है उसमें कैसे मैत्रादिवृत्तित्वाभाव बोधित होगा? इसलिए यहाँ पर कृति की उपस्थिति के लिए तृतीया का अर्थ आधेयत्व न मान कर कृतिजन्यत्व ही तृतीयार्थ मानना पड़ेगा। तथा क्रिया में (पाक में) मैत्रादिकृतिजन्यत्वाभावबोध स्वीकारना पड़ेगा। तो जब **'मैत्रेण न पक्वः'** यहाँ पर तृतीया का अर्थ कृतिजन्यत्व ही मानना है तो **'मैत्रेण न पच्यते'** इत्यादि स्थलों में भी तृतीया का अर्थ कृतिजन्यत्व ही मानना और पाकादि क्रिया में मैत्रादिकृतिजन्यत्वाभाव का बोध मानना उचित प्रतीत होता है।

न च यदा मैत्रः सुप्तस्तदा 'मैत्रेण पक्ष्यते न तु पच्यते' इति प्रयोगानुपपत्तिः–मैत्रवृत्तिवर्तमानकृतेरप्रसिद्ध्या तादृशकृतिजन्यत्वाभाव-प्रत्यायनासम्भवात्, वर्तमानत्वाविशेषिततदीयकृतिजन्यत्वाभावस्य च बाधितत्वादिति वाच्यम्; आख्यातार्थवर्तमानत्वादेर्नञ्समभिव्याहार-स्थलेऽभावांश एवान्वयस्य व्युत्पन्नत्वात्। अन्यथा 'विनष्टघटं न पश्यति' इत्यादौ तादृशघटकर्मकवर्तमानदर्शनाद्यप्रसिद्ध्याऽन्वयबोधानुपपत्तिः। प्रकृते च मैत्रीयवर्तमानकृत्यप्रसिद्धावपि वर्तमानकालावच्छिन्नतज्जन्यत्वाभावस्यैव पाके प्रतीत्या सामञ्जस्यात्। पाकत्वाद्यवच्छेदेनैव मैत्रादिकर्तृकत्वाभाव बोधोपगमाद् मैत्रादिकर्तृकपाकदशायामन्यकर्तृकपाके मैत्रादिकर्तृकत्वा-भावसत्त्वेऽपि 'न पच्यते मैत्रेण' इत्यादयो न प्रयोगाः।

यदि कहो कि जब मैत्र सोया है उस समय **'मैत्रेण पक्ष्यते न तु पच्यते'** 'मैत्र के द्वारा पकाया जायेगा न कि पकाया जा रहा है' इस प्रयोग की अनुपपत्ति है क्योंकि मैत्र वृत्तिवर्तमानकृति के अप्रसिद्ध होने के कारण तादृश (मैत्रवृत्तिवर्तमान) कृति जन्यत्वाभाव का प्रत्ययायन असम्भव है और वर्तमानत्व से अविशेषित मैत्रकृतिजन्यत्वाभाव तो पाक में बाधित है। अभिप्राय यह है कि **'मैत्रेण पक्ष्यते न तु पच्यते'** यहाँ पर **'मैत्रेण न पच्यते'** इस अंश से तृतीयान्त से मैत्रकृतिजन्यत्व उपस्थित होगा, नञ् से अभाव, धातु से पाक, आख्यात से वर्तमान काल की उपस्थिति होगी । वर्तमानकाल कृति में विशेषण बनेगा। इस प्रकार मैत्रवृत्तिवर्तमानकृतिजन्यत्व का अभाव पाक में बोधित होना चाहिए। किन्तु मुश्किल यह है कि शयनकाल में (सुषुप्ति की दशा में) मैत्र में कोई कृति तो है ही नहीं, इस कारण चैत्रवृत्ति वर्तमानकृति के ही अप्रसिद्ध होने के कारण चैत्रवृत्तिवर्तमानकृतिजन्य-त्वाभाव भी अप्रसिद्ध होगा । अतः उसका प्रत्यायन सम्भव नहीं है। यदि वर्तमानत्व से अविशेषित केवल चैत्रकृतिजन्यत्वाभाव का पाक में प्रत्यायन होता है ऐसा मानो तो ये भी सम्भव नहीं है क्योंकि **पक्ष्यते** इस कथन से पाक में चैत्रवृत्तिभविष्यत्कृतिजन्यत्व तो विद्यमान ही है। इस कारण सामान्यतया पाक में चैत्रकृतिजन्यत्वाभाव बाधित है।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि आख्यातार्थ वर्तमानत्व का नञ् समभिव्याहारस्थल में अभावांश में ही अन्वय व्युत्पन्न होता है। (कृति में नहीं इस प्रकार इस स्थल में पाक में वर्तमान मैत्रकृतिजन्यत्वाभाव का बोधन हुआ करता है) अन्यथा **'विनष्टघटं न पश्यति'**

विनष्टघट को नहीं देखता है' इत्यादि स्थलों में तादृश (विनष्ट) घटकर्मक वर्तमानदर्शन आदि की (वर्तमान दर्शन और दर्शनानुकूल वर्तमान कृति की) अप्रसिद्धि होने के कारण अन्वयबोध की अनुपपत्ति होगी। (यहाँ पर विनष्टघटकर्मकवर्तमानदर्शन का अभाव या विनष्टघटकर्मक दर्शनानुकूल वर्तमान कृति का अभाव ही शाब्दबोध का विषय हो सकता है किन्तु दोनों ही अप्रसिद्ध हैं इसलिए अन्वयबोध अनुपपन्न होगा अभावांश में वर्तमानत्व का अन्वय करने पर जो कि अभी बताया है विनष्टघटकर्मकदर्शन के वर्तमानकालिक अभाव का प्रत्यायन सम्भव है। इसमें कोई अनौचित्य नहीं है) प्रकृतस्थल में भी **'मैत्रेण पक्ष्यते न तु पच्यते'** में भी मैत्रीय वर्तमान कृति की अप्रसिद्धि होने पर भी वर्तमानकालावच्छिन्न (वर्तमानकालीन) मैत्रकृतिजन्यत्वाभाव की ही पाक में प्रतीति होने से सामञ्जस्य बन जाता है। चूँकि पाकत्वाद्यवच्छेदेन ही मैत्रादिकर्तृकत्वाभावबोध स्वीकारा जाता है इसलिए मैत्रादिकर्तृकपाकदशा में अन्यकर्तृक पाक में मैत्रादिकर्तृकत्वाभाव होने पर भी **'न पच्यते मैत्रेण'** इत्यादि प्रयोग नहीं होते हैं क्योंकि यदि पाकत्वसामानाधिकरण्येन मैत्रकर्तृकत्वाभाव (मैत्रकृतिजन्यत्वाभाव) का प्रत्यायन होता है ऐसा स्वीकारें तब तो ऐसा प्रयोग हो सकता है किन्तु यहाँ पर पाकत्वावच्छेदेन मैत्रकर्तृकत्वाभाव का प्रत्यायन होता है। मैत्रकर्तृक पाक रहने की दशा में पाकत्वावच्छेदेन मैत्रकर्तृकत्वाभाव बाधित है। अतः उक्त प्रयोग नहीं होता है।

यत्र मैत्रेणोदनं पच्यते न तु तेमनं तत्र 'मैत्रेण न पच्यते तेमनम्' इत्यादि प्रयोगनिर्वाहाय तेमनपाकत्वाद्यवच्छेदेनैवाभावान्वयबोध उपगम्यते न तु शुद्धपाकत्वाद्यवच्छेदेन-बाधितत्वात्। यथा च तेन रूपेण शब्दादनुपस्थितावपि तदवच्छेदेनान्वयबोधनिर्वाहस्तथोपपादितमाधेयत्वस्य तृतीयार्थत्ववादिनैव।

जहाँ पर मैत्र के द्वारा ओदन पकाया जा रहा है तेमन नहीं पकाया जा रहा है वहाँ पर **'मैत्रेण न पच्यते तेमनम्'** 'मैत्र के द्वारा तेमन नहीं पकाया जा रहा है' इत्यादि प्रयोगों के निर्वाह के लिए तेमनपाकत्वाद्यवच्छेदेन ही अभावान्वय स्वीकारा जाता है न कि शुद्ध पाकत्वाद्यवच्छेदेन क्योंकि शुद्ध पाकत्वावच्छेदेन मैत्रकृतिजन्यत्वाभाव बाधित है । पाकान्तर्गत ओदन पाक में मैत्रकृतिजन्यत्व ही है मैत्रकृति जन्यत्वाभाव नहीं। जिस प्रकार उस रूप से शब्द से अनुपस्थिति होने पर भी (उस रूप से शब्द से उपस्थिति न होने पर भी) तदवच्छेदेन अन्वयबोध का निर्वाह होता है वह आधेयत्व को तृतीया का अर्थ माननेवाले ने ही प्रतिपादित कर दिया है। अर्थात् पाक में मैत्रकृतिजन्यत्वाभाव पाकत्वसामानाधिकरण्येन बोधित होता है और मैत्रकृतिजन्यत्वाभाव के सम्बन्ध में तेमनपाकत्वावच्छिन्नत्व भासित होता है। संसर्गतया उसका भान भी हो सकता है जिसकी कि शब्द से उपस्थिति नहीं भी हुई है।

'घटेन न पच्यते' इत्यादयः प्रयोगाः 'आकाशं न पश्यति' इत्यादिप्रयोग समानयोगक्षेमाः एव मन्तव्याः। अचेतनस्य काष्ठस्थाल्यादेरपि कर्तृत्वविवक्षया 'काष्ठं पचति' 'स्थाली पचति' इत्यादित् 'काष्ठेन पच्यते' 'स्थाल्या पच्यते'

इति प्रयोगात् तत्र व्यापाररूपे कर्तृत्वे तज्जन्यत्वरूपे तत्कर्तृकत्वे वा तृतीयाया लक्षणा एवं 'चैत्रेण ज्ञायते, इष्यते, गम्यते' इत्यादावाश्रयत्वरूपे कर्तृत्वे आधेयत्वरूपे कर्तृमत्त्वे वा, 'नश्यते घटेन' इत्यादौ प्रतियोगित्वरूपे कर्तृत्वेऽनुयोगित्वरूपे कर्तृमत्त्वे वा लक्षणा। कर्तृपदमपि व्यापारादिमत्यचेतनादौ भाक्तमेव-अचेतनादौ स्वरसतः कर्तृपदाप्रयोगात्, अत एव च कृञो यत्नवाचकत्वम् ।

'घटेन न पच्यते' 'घट के द्वारा नहीं पकाया जा रहा है' इत्यादि प्रयोग **'आकाशं न पश्यति'** इत्यादि प्रयोगों के समानयोगक्षेम ही मानने चाहिए। अर्थात् जैसे **'आकाशं न पश्यति'** इत्यादि प्रयोगों से पदार्थोपस्थिति मात्र ही होती है शाब्दबोध नहीं होता है उसी प्रकार **'घटेन न पच्यते'** इत्यादि से भी पदार्थोपस्थिति मात्र होती है शाब्दबोध नहीं हुआ करता है। ये प्रयोग अप्रामाणिक हैं। अचेतन काष्ठ स्थाली आदि के भी कर्तृत्व की विवक्षा से होने वाले **'काष्ठं पचति' 'स्थाली पचति'** 'काष्ठ पका रहा है' 'स्थाली पका रही है' इत्यादि प्रयोगों की तरह **'काष्ठेन पच्यते' 'स्थाल्या पच्यते'** 'काष्ठ के द्वारा पकाया जा रहा है' 'स्थाली के द्वारा पकाया जा रहा है' इत्यादि प्रयोग होने के कारण वहाँ पर व्यापार रूप कर्तृत्व में या तज्जन्यत्व रूप तत्कर्तृकत्व में तृतीया की लक्ष्णा की जाती है। आशय यह है कि **'काष्ठेन पच्यते' 'स्थाल्या पच्यते'** इत्यादि प्रयोग **'घटेन न पच्यते'** की तरह नहीं है, ये प्रयोग अचेतन भी काष्ठ और स्थाली आदि के कर्तृत्व की विवक्षा से हुआ करते हैं। अचेतन काष्ठ और स्थाली आदि में कृतिमत्त्व रूप कर्तृत्व तो हो नहीं सकता है व्यापाराश्रयत्व रूप कर्तृत्व ही हो सकता है। अतः व्याारूप कर्तृत्व में या व्यापारजन्यत्व रूप तत्कर्तृकत्व में तृतीया की लक्षणा कर ली जाती है। ये प्रयोग प्रामाणिक हैं।

इसी प्रकार **'चैत्रेण ज्ञायते, इष्यते, गम्यते'** 'चैत्र के द्वारा जाना जाता है, चाहा जाता है, जाया जाता है' इत्यादि स्थलों में ज्ञान, इच्छा और गमन के आश्रयत्व रूप कर्तृत्व में अथवा आधेयत्व रूप कर्तृमत्त्व में तृतीया की लक्षणा होती है। **'नश्यते घटेन'** 'घट के द्वारा अपना नाश हो रहा है' इत्यादि स्थलों में प्रतियोगित्व रूप कर्तृत्व में या अनुयोगित्वरूप कर्तृमत्त्व में तृतीया की लक्षणा होती है।

अभिप्राय यह है कि ज्ञान, इच्छा आदि का कर्तृत्व तदनुकूलकृतिमत्त्व रूप न होकर ज्ञानाद्याश्रयत्व रूप ही होता है। इस प्रकार या तो तृतीया का अर्थ आश्रयत्व या तो आधेयत्व होगा और **'चैत्रनिष्ठाधारतानिरूपकं वर्तमानकालिकं ज्ञानम्** 'अथवा **'चैत्रनिरूपिताधेयताश्रयं वर्तमानकालिकं ज्ञानम्'** ऐसा शाब्दबोध होगा। नाश का घट में प्रतियोगित्व-रूप कर्तृत्व ही होगा वहाँ पर तृतीया की या तो प्रतियोगित्व रूप कर्तृत्व में या अनुयोगित्वरूपकर्तृमत्त्व में लक्षणा की जायेगा। फलतः या तो **'घटनिष्ठप्रतियोगितानिरूपको वर्तमानकालिको नाशः'** 'घटनिष्ठ प्रतियोगितानिरूपक वर्तमान कालिकनाश है' या तो **'घटनिरूपितानुयोगिताश्रयो वर्तमानकालिको नाशः'** 'घटनिरूपितानुयोगिताश्रय वर्तमान कालिक नाश है' ऐसा शाब्दबोध होगा।

कर्तृपद भी व्यापारवत् अचेतन में जो प्रयुक्त होता है वह लाक्षणिक ही प्रयुक्त होता है क्योंकि अचेतन में स्वरसतः मुख्यतः कर्तृपद का प्रयोग नहीं होता है इसीलिए कृञ् को यत्न का वाचक माना जाता है। यह विषय पूर्व में भी व्याख्यात ही है। **'रथो गच्छति'** इत्यादि प्रयोगस्थलों पर यह स्पष्ट है ।

न च यत्नवत एव कर्तृपदार्थत्वे 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' इत्यादौ कर्तृपदस्य मुख्यार्थत्यागे युक्तिविरहादचेतनकाष्ठादिपदप्रयोगे कर्तृप्रत्ययानुपपत्तिरितिवाच्यम्; सूत्रस्थकर्तृपदानां 'स्वतन्त्रः कर्ता' इति सूत्रकृत्परिभाषितकर्तृपरत्वात्, अन्यथा तत्प्रणयनवैयर्थ्याप्रसङ्गात् । स्वतन्त्रत्वं च कारकान्तरव्यापारानधीनत्वे सति कारकत्वम् । 'काष्ठं पचति' इत्यादौ स्वतन्त्र्यविवक्षया काष्ठादेः कर्तृत्वम् ।

यदि कहो कि यत्नवान् के ही कर्तृपद का अर्थ होने पर (यत्नवान् ही कर्ता होता है ऐसा मानने पर) **'कर्तृकरणयोस्तृतीया' पा0 सू0 2/3/18** इत्यादिस्थलों पर कर्तृपद के द्वारा मुख्यार्थ छोड़ देने में कोई युक्ति न होने के कारण अचेतन काष्ठ आदिपदों का प्रयोग करने पर कर्तृप्रत्यय की अनुपपत्ति होगी। अभिप्राय यह है कि काष्ठ के कर्तृत्व की विवक्षा से **'काष्ठं पचति' 'काष्ठेन पच्यते'** इत्यादि प्रयोग होते हैं किन्तु काष्ठ में वास्तविककर्तृत्व तो नहीं ही है गौण कर्तृत्व ही है। **'काष्ठेन पच्यते'** यहाँ पर काष्ठ पद से **'कर्तकरणयोस्तृतीया'** सूत्र के द्वारा तृतीया होती है। किन्तु काष्ठ पद यहाँ पर न तो कर्ता का वाचक है क्योंकि काष्ठ यत्नवान् नहीं है और न तो वह करण है क्योंकि काष्ठ की कर्तृत्वेन विवक्षा है करणत्वेन नहीं । इस कारण काष्ठ पद से तृतीया नहीं हो सकती है। यहाँ पर सूत्र में कर्तृपद अपने मुख्यार्थ को छोड़कर व्यापाराश्रय रूप लाक्षणिक अर्थ को बतलाता है यह मानने में तो कोई युक्ति है नहीं क्योंकि लक्षणा के लिए मुख्यार्थ बाध जरूरी होता है। इसलिए काष्ठपदोत्तर कर्तृप्रत्यय तृतीया की अनुपपत्ति होगी।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि सूत्रस्थित कर्तृपद **'स्वतन्त्रः कर्ता' पा0 सू0 1/4/54** से सूत्रकार द्वारा परिभाषित स्वतन्त्रार्थक कर्तृपरक है अन्यथा (यदि सूत्रघटक कर्तृपदों का अर्थ भी यत्नवान् ही हो तो) **'स्वतन्त्रः कर्ता'** इस सूत्र का प्रणयन व्यर्थ हो जायेगा। (लोक में तो यत्नवान् ही कर्तृपद का अर्थ होता है सूत्रों में भी कर्तृपद का वही अर्थ होने पर उक्तसूत्र की क्या ज़रूरत शेष बचती है?) और स्वतन्त्रत्व कारकान्तरव्यापारानधीनत्वविशिष्टकारकत्व ही है अर्थात् जो कारक भी हो और कारकान्तर (अन्यकारक) व्यापार के अधीन न हो उसे ही स्वतन्त्र माना जायेगा। **'काष्ठं पचति'** 'काष्ठ पका रहा है' इत्यादि स्थलों में स्वातन्त्र्य की विवक्षा से काष्ठादि का कर्तृत्व होता है। स्वातन्त्र्यविवक्षा होने पर **'कर्तृकरणयोस्तृतीया'** से काष्ठ पद से तृतीया हो जाती है क्योंकि काष्ठ स्वातन्त्र्यविवक्षा होने के कारण काष्ठ का पारिभाषिक कर्तृत्व उपपन्न हो जाता है।

न च स्वातन्त्र्यविवक्षणेऽपि पुरुषव्यापाराधीनक्रियानुकूलव्यापारवतामेषामन्यव्यापारानधीनक्रियानुकूलव्यापारवत्त्वरूपस्य स्वातन्त्र्यस्य

वास्तविकस्याभावात्तद्बोधकविभक्तीनामप्रामाण्यं दुर्वारमेवेतिवाच्यम्; समभिव्याहृतक्रियाकारकान्तरव्यापारानधीनतत्क्रियानुकूलस्य व्यापारस्यैव तत्क्रियावाचकपदसमभिव्याहृतविभक्त्यर्थत्वात्। अनधीनान्तविशेषण-प्रयोजनञ्च 'चैत्रः काष्ठैः स्थाल्यां पचति' इत्यादिस्थले 'चैत्रः काष्ठानि स्थाली पचति' इति प्रयोगापत्तिवारणम् । यत्र च 'चैत्रः पचति' 'काष्ठं पचति' इत्यादौ समभिव्याहृतकारकान्तराप्रसिद्धिस्तत्रानधीनान्तविशेषणं न प्रतीयत एव, तन्निर्वाहश्च तत्र लकारादेः स्वतन्त्रशक्त्यन्तरकल्पनात्, विशिष्टविषयकशक्त्या विशेषणांशाविषयकबोधाजननात् ।

यदि कहो कि **'काष्ठं पचति' 'काष्ठेन पच्यते'** इत्यादि स्थलों में काष्ठ आदि के स्वातन्त्र्य की विवक्षा कर लेने पर भी पुरुषव्यापार के अधीन क्रिया के अनुकूल व्यापारवाले काष्ठ, स्थाली आदि में अन्यकारकव्यापार के अनधीन क्रियानुकूल व्यापारवत्त्व रूप वास्तविक स्वातन्त्र्य न रहने के कारण तद्बोधक विभक्तियों का अप्रामाण्य दुर्वार होगा? इस प्रश्न का आशय यह है कि अरे भाई ! आप काष्ठ के स्वातन्त्र्य की विवक्षा भले ही कर लें किन्तु काष्ठ में स्वातन्त्र्य आ तो जायेगा नहीं कारकान्तरानधीन क्रियानुकूलव्यापारवत्त्वरूप वास्तविक स्वातन्त्र्य तो मैत्रादि में ही रहेगा न कि काष्ठ, स्थाली आदि में । किन्तु **'काष्ठेन पच्यते'** इत्यादि स्थलों में काष्ठपदोत्तर तृतीया से काष्ठ का उक्त स्वातन्त्र्य रूप कर्तृत्व ही बोधित हो रहा है। इसलिए काष्ठ में अविद्यमान स्वातन्त्र्य विभक्ति द्वारा बोधित होने के कारण विभक्ति का अप्रामाण्य होगा।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि समभिव्याहृत जो क्रिया का कारकान्तर उस कारकान्तरव्यापार के अनधीन तत् क्रियानुकूलव्यापार ही तत्क्रियावाचक पदसमभिव्याहृत विभक्ति का अर्थ होता है। **'काष्ठेन पच्यते'** यहाँ पर पाकक्रिया का काष्ठातिरिक्त जो समभिव्याहृत कारक, उसके-समभिव्याहृत कारकान्तर के– व्यापार के अधीन तो पाक क्रिया है ही नहीं, इस कारण समभिव्याहृतक्रियाकारकान्तरव्यापारानधीन पाकक्रियानुकूलव्यापार-वत्त्व रूप कर्तृत्व काष्ठ का सम्पन्न हो जाता है यही तृतीया से बोधित होता है। इसी प्रकार **'स्थाली पचति'** इत्यादि स्थलों पर भी देखना चाहिए।

अनधीनान्त (समभिव्याहृत क्रियाकारकान्तरानधीन) विशेषण का प्रयोजन **'चैत्रकाष्ठैः स्थाल्यां पचति'** 'चैत्र काष्ठ से स्थाली में पका रहा है' इत्यादि स्थलों पर **'चैत्रः काष्ठानि स्थाली पचति'** इस प्रकार से प्रयोग की आपत्ति वारण करना है। आशय यह है कि यदि क्रियानुकूलव्यापार ही तृतीया से बोधित होता है और **'काष्ठेन पच्यते'** इत्यादि स्थलों में काष्ठ का पाकक्रियानुकूलव्यापारात्मक कर्तृत्व ही प्रतीत होता है ऐसा कहा जाये तो **'चैत्रः काष्ठैः स्थाल्यां पचति'** की जगह पर **'चैत्रः काष्ठानि स्थाली पचति'** ऐसा प्रयोग होने लगेगा क्योंकि पाकक्रियानुकूलव्यापारात्मक कर्तृत्व तो इस स्थल में काष्ठ और स्थाली का भी प्रतीत होता है, अतः इस प्रकार के कर्तृत्व का प्रतिपादन करने के लिए काष्ठ और स्थालीपदोत्तर प्रथमा होने लगेगी।

जहाँ पर '**चैत्रः पचति**' '**काष्ठं पचति**' इत्यादिस्थलों में समभिव्याहृत कारकान्तर की अप्रसिद्धि है वहाँ पर अनधीनान्तविशेषण नहीं ही प्रतीत होता है और अनधीनान्त विशेषण की अप्रतीति का निर्वाह वहाँ पर लकार आदि के स्वतन्त्र शक्त्यन्तर की कल्पना से होता है क्योंकि विशिष्टविषयक शक्ति से विशेषण विषयक बोध नहीं उत्पन्न हो सकता है।

यहाँ पर अनधीनान्तविशेषण के विषय में यह ध्यातव्य है-जहाँ पर उस क्रिया का कारकान्तर समभिव्याहृत है किन्तु उस कारकान्तरव्यापार के अनधीन क्रियानुकूलव्यापारवत्त्व रूप स्वातन्त्र्य बोधित होता है वहाँ पर तो लकार और तृतीया की शक्ति एतादृश व्यापारवत्त्व में (विशिष्ट में) है जैसे कि '**देवदत्तः काष्ठेन पचति, देवदत्तः किं करोति काष्ठमेव पचति**' 'देवदत्त काष्ठ से पका रहा है, अरे! देवदत्त क्या कर रहा है काष्ठ ही पका रहा है' यहाँ पर पाकक्रिया का देवदत्त रूप कारकान्तर समभिव्याहृत तो है किन्तु देवदत्तव्यापारानधीन पाकक्रियानुकूलव्यापारवत्त्वरूप काष्ठ का कर्तृत्व लकार (आख्यात) के द्वारा बोधित होता है। '**देवदत्तः काष्ठेन पचति**' कहने पर देवदत्त का भी ऐसा ही कर्तृत्व आख्यात से बोधित होता है। किन्तु जहाँ पर कारकान्तर है ही नहीं जैसे '**काष्ठं पचति**' '**चैत्रः पचति**' इत्यादि स्थलों में। इन जगहों पर कारकान्तर न होने से कारकान्तराधीनत्व अप्रसिद्ध होगा और तदभाव रूप कारकान्तरानधीनत्व भी अप्रसिद्ध होगा। इसलिए इन जगहों पर अनधीनान्तांश नहीं ही प्रतीत होता है। तथा उसका निर्वाह लकार आदि की क्रियानुकूल व्यापार मात्र में स्वतन्त्र शक्ति की कल्पना से ही होता है। क्योंकि विशिष्ट विषयक शक्ति से विशिष्टविषयक ही बोध उत्पन्न हो सकता है विशेष्यमात्र विषयक नहीं ।

न च 'मैत्रश्चैत्रेण पाचयति' इत्यादौ हेतुकर्तृसमभिव्याहारस्थले कर्तरि तृतीयानुपपत्तिः– कर्तृव्यापारस्य समभिव्याहृतहेतुव्यापाराधीनत्वादिति वाच्यम्; तत्र ण्यन्तप्रतिपाद्यपाचनादिक्रियायामेव हेतोः कारकतया स्वतन्त्रकर्तृव्यापारस्य पच्यादिक्रियायां कारकान्तरव्यापारानधीनत्वात्। स्वतन्त्रं प्रयुञ्जानस्य पुंसो व्यापारस्तण्डुलक्रयणादिवत् पाकादावन्यथासिद्धतया न कारणमिति पाकादिप्रयोजकव्यापारवत्त्वेऽपि तस्य तत्क्रियाकारकत्वाभावात्। अत एव 'चैत्रो मैत्रेण पाचयति' इत्यादौ 'चैत्रः पचति' इति न प्रयोगः।

यदि कहो कि '**मैत्रश्चैत्रेण पाचयति**' 'मैत्र चैत्र के द्वारा पकवाता है' इत्यादिस्थलों में हेतुकर्ता के समभिव्याहारस्थल में कर्ता से तृतीया की अनुपपत्ति होगी क्योंकि कर्ता का व्यापार समभिव्याहृत हेतु व्यापार के अधीन है। आशय यह है कि उक्त वाक्य प्रयोग करने पर पाककर्ता चैत्र से तृतीया होती है किन्तु आपने जैसी उपस्थापना की है उसके अनुसार यदि चैत्र में 'समभिव्याहृतक्रियाकारकान्तरव्यापारानधीनक्रियानुकूलव्यापारवत्त्व' रूप स्वातन्त्र्य हो तब तो '**कर्तृकरणयोस्तृतीया**' सूत्र से चैत्र पद से तृतीया हो क्योंकि सूत्र घटककर्तृपदस्वतन्त्रार्थक है और स्वातन्त्र्य का उपर्युक्त अर्थ ही है। किन्तु चैत्र में तो समभिव्याहृत जो क्रिया कारकान्तर हेतु कर्ता मैत्र उसके व्यापार के अधीन क्रियानुकूल व्यापारवत्त्व ही है। अतः चैत्र पद से तृतीया नहीं हो सकेगी।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि ण्यन्तधातु से प्रतिपाद्य जो पाचन क्रिया है उसी क्रिया में हेतुकर्ता के कारक होने के कारण स्वतन्त्रकर्ताव्यापार पचि आदि क्रिया में कारकान्तरव्यापारानधीन ही है। स्वतन्त्र को प्रयुक्त करने वाले पुरुष का व्यापार तण्डुलक्रयणादिवत् पाकादि में अन्यथासिद्ध होने के कारण नहीं होता है इसलिए पाकादि प्रयोजक व्यापारवत् होने पर भी वह उस क्रिया का कारक नहीं होता है। इसीलिए '**चैत्रो मैत्रेण पाचयति**' की जगह पर '**चैत्रःपचति**' ऐसा प्रयोग नहीं होता है।

समाधान का आशय यह है कि '**मैत्रश्चैत्रेण पाचयति**' यहाँ पर जो चैत्र में कर्तृत्व है वह किस क्रिया का कर्तृत्व है? पाक क्रिया का कर्तृत्व है वह, न कि ण्यन्त प्रतिपाद्य पाचन क्रिया का। हेतु कर्ता मैत्र जिसे कि आप समभिव्याहृत कारकान्तर समझ रहे हैं। वह तो पाकक्रिया का कारक ही नहीं है। यदि मैत्र पाक क्रिया का कारक होता तो जैसे काष्ठादि कारकों के कर्तृत्व की विवक्षा से '**काष्ठं पचति**' प्रयोग होता है वैसे ही मैत्र के चैत्र का प्रेरक मात्र होने से '**मैत्रः पचति**' प्रयोग होना चाहिए। पाकक्रिया का कर्तृत्व चैत्र में है, 'पाकक्रियानुकूलव्यापारवत्त्व' रूप कर्तृत्व चैत्र में है और पाकक्रिया मैत्रादिव्यापारानधीन ही है। इसलिए चैत्र में उपर्युक्त स्वातन्त्र्यापरपर्याय कर्तृत्व विद्यमान है अतः उससे तृतीया उपपन्न होती है। मैत्र पाक क्रिया में कारक क्यों नहीं है? इसलिए जैसे कि तण्डुल क्रयण पाक के लिए ही होता है किन्तु पाक के लिए तण्डुलक्रयण अन्यथासिद्ध होता है बग़ैर खरीदे भी चावल पकाया जा सकता है। उसी प्रकार स्वतन्त्र पुरुष के द्वारा पाक क्रिया हो रही है उसमें प्रेरक (प्रयोजक) पुरुष का व्यापार अन्यथासिद्ध है। इस कारण पाकक्रिया में कारण ही नहीं है।

न च 'पञ्चभिर्हलैः कर्षति गृही' इत्यादौ भूमिलेखनरूपकृष्यादिक्रियायां स्वतन्त्रकर्तॄन् प्रयुञ्जानस्य गृहिणो व्यापारस्य दर्शितयुक्त्या लकारादिनाऽभिधानासम्भव इति 'कर्षति' इति न स्यात् 'कर्षयति' इति च स्यादिति वाच्यम्; तत्र कृषेः प्रतिविधानार्थत्वात्, उक्तञ्च "याजकाः यजन्ति इति यजिर्हविः प्रक्षेपार्थः 'पञ्चभिर्हलैः कर्षति' इति कृषिः प्रतिविधानार्थः" इति, यजेर्देवतोद्देश्यकद्रव्यत्यागेच्छाविशेषरूपार्थे मुख्यतया तत्र च यजमानस्यैव कर्तृतया हविःप्रक्षेपरूपलक्ष्यार्थपरत्वं दर्शितं तत्र चर्त्विजामेव स्वातन्त्र्यम्। 'होता' इत्यत्रापि हविःप्रक्षेप एव हुधातोरर्थो न तु तादृशफलावच्छिन्न स्त्यागः, तथा सति ऋत्विजस्तत्र स्वतन्त्रकर्तृताविरहेण होतृपदेन प्रतिपादनासम्भवात्। "धात्वर्थतावच्छेदकफलकर्तृत्वमेव कर्तृप्रत्ययेन प्रति पाद्यत इति ऋत्विजि होतृव्यवहारो न यष्टरि। अतः प्रतिगृहीतृव्यापारो न स्वत्वजनकस्तथा सति तत्र दातृव्यवहारापत्तेः" इति तु जीमूतवाहनः।

यदि कहो कि '**पञ्चभि हलैःकर्षति गृही**' 'पाँच हलों से गृही कृषि कर रहा है' इत्यादि स्थलों में भूमि लेखनरूप कृष्यादि क्रिया में स्वतन्त्रकर्ताओं को प्रयुक्त करने वाले गृही के व्यापार का दर्शित युक्ति से लकारादि से अभिधान सम्भव न होने के कारण

'कर्षति' ऐसा नहीं होना चाहिए और **'कर्षयति'** ऐसा होना चाहिए। अभिप्राय यह है कि कृषि का (कृष् धातु का) अर्थ भूमिविलेखन है। जिस प्रकार से **'चैत्रो मैत्रेण पाचयति'** यहाँ पर पाकक्रिया में मैत्र स्वतन्त्र है। जैसाकि आपने ऊपर प्रतिपादित किया है, उसी प्रकार **'पञ्चभिर्हलैः कर्षति गृही'** यहाँ पर भूमिविलेखन रूप कार्य में (क्रिया में) हल भी स्वतन्त्र है क्योंकि गृही भूमिविलेखन का कारक ही नहीं है। वह तो हल को धकेल रहा है, दबा रहा है किन्तु भूमिविलेखन में तो गृही का कोई कारकत्व नहीं है। भूमिविलेखन गृही के व्यापार के अनधीन है। जैसे आग जलती है यहाँ पर **'अग्निर्ज्वलति'** ही प्रयोग होता है, कोई व्यक्ति अग्नि के जलने में कोई उपकार नहीं करता है। फूँक वग़ैरह मानने का कार्य कोई कर रहा है तो वहाँ पर **ज्वलति** प्रयोग न हो कर **ज्वालयति** प्रयोग होता है। उसी प्रकार यहाँ पर भी **कर्षति** के बजाय **कर्षयति** प्रयोग होना चाहिए। यदि गृही का व्यापार किसी भी तरह से भूमिविलेखन क्रिया में कारक होता तब तो लकार से उसका अभिधान सम्भव होता क्योंकि क्रियानुकूल व्यापार ही कर्तव्य है किन्तु ऐसा तो है ही नहीं। इसलिए यहाँ पर लकार से हल के कर्तृत्व का ही अभिधान सम्भव होगा जैसेकि **'चैत्रो मैत्रेण पाचयति'** इस स्थल में **'पचति'** कहने पर मैत्र के ही कर्तृत्व का अभिधान सम्भव होता है न कि चैत्र के । अतः वहाँ **'चैत्रः पचति'** प्रयोग नहीं हुआ करता है। वैसे ही यहाँ पर **'पञ्चभिः हलैः कर्षति गृही'** प्रयोगन होकर **'पञ्चभिर्हलैः कर्षयति गृही'** प्रयोग होना चाहिए।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि कृष् धातु का अर्थ भूमि विलेखन न होकर प्रति विधान अर्थ होता है। (प्रतिविधान का कर्ता तो गृही ही है हल नहीं) कहा भी गया है कि "**याजकाः यजन्ति** यहाँ पर यज् धातु का अर्थ हविः प्रक्षेप है, **पञ्चभिर्हलैः कर्षति गृही** यहाँ पर कृषि का अर्थ प्रतिविधान है" यज् धातु का 'देवतोद्देश्यक द्रव्यत्यागेच्छा विशेष' यह इच्छा विशेष ऋत्विजों में नहीं है यजमान में है, अतः यज् धातु के मुख्यार्थपरक होने पर यजमान का ही कर्तृत्व होता है ऋत्विजों का नहीं । अतः यज् धातु लक्षणा से 'हविः प्रक्षेप' का वाचक होता है जब हम **'याजकाः यजन्ति'** प्रयोग करते हैं। इस प्रकार यहाँ पर याजकों का 'हविः प्रक्षेपानुकूलव्यापारवत्त्व' रूप कर्तृत्व ही बोधित होता है। तथा हविः प्रक्षेप के कारकान्तरानधीन होने के कारण याजकों का स्वतन्त्र्य भी उपर्युक्त रीति से उपपन्न होता है।

'होता' यहाँ पर भी 'हविः प्रक्षेप' ही हु धातु अर्थ है न कि तादृश (देवतोद्देश्यकद्रव्यत्वागेच्छा रूप) फल से अवच्छिन्न त्याग। क्योंकि देवतोद्देश्यक द्रव्यत्यागेच्छा वच्छिन्नत्याग को हु धातु का अर्थ मानने पर तो ऋत्विजों की उसमें स्वतन्त्रकर्तृता न होने के कारण होतृ पद से प्रतिपादन सम्भव नहीं होगा । होता का अर्थ हवन कर्ता ही होगा अर्थात् हुधात्वर्थ का जो स्वतन्त्रकर्ता होगा उसे होता कहेंगे। किन्तु हु धातु का अर्थ हविः-प्रक्षेप न मानकर यदि उपर्युक्त रीति से तादृशफलावच्छिन्न त्याग मानेंगे तो उसमें तो ऋत्विजों का स्वातन्त्र्य नहीं है क्योंकि कारकान्तर यजमान के अधीन उपर्युक्य त्याग होगा और इस कारण कारकान्तरानधीन क्रियानुकूल व्यापारवत्त्व होताओं में नहीं आयेगा, इस

कारण होतृ पद से उनका प्रतिपादन असम्भव हो जायेगा।

उसी प्रसङ्ग में जीमूतवाहन ने तो यह कहा है कि "धात्वर्थतावच्छेदकफलकर्तृत्व ही कर्तृप्रत्यय से प्रतिपादित किया जाता है इसी कारण ऋत्विज् में होता पद से व्यवहार होता है यज्ञ करने वाले में नहीं, अतः प्रतिगृहीता (लेने वाले) का व्यवहार स्वत्वजनक नहीं होता है (क्योंकि) वैसा होने पर प्रतिगृहीता में दातृपद के व्यवहार की आपत्ति आयेगी"

जीमूतवाहन के मत का अभिप्राय यह है कि हुधातु का अर्थ तो देवतोद्देश्यक द्रव्यत्यागेच्छा ही है। किन्तु इसमें प्रश्न यह है कि फिर होतृपद का व्यवहार यजमान के लिए होना चाहिए ऋत्विजों के लिए होतृपद का प्रयोग कैसे होता है? इसका उत्तर यह है कि कर्तृप्रत्यय के द्वारा चूँकि धात्वर्थतावच्छेदकफलकर्तृत्व का ही प्रतिपादन होता है, इस कारण यहाँ पर होतृपद से 'देवतोद्देश्यकद्रव्य त्याग' रूप धात्वर्थतावच्छेदक फल का कर्तृत्व बोधित होता है। इसी कारण होतृपद का प्रयोग ऋत्विजों के लिए होता है क्योंकि देवतोद्देश्यकत्याग का कर्तृत्व ऋत्विजों में है। 'स्वस्वत्वध्वंसविशिष्टपरस्वत्वोत्पत्तिविषयक इच्छा' ही दा धातु का अर्थ होता है। यहाँ पर धात्वर्थतावच्छेदकीभूत फल है 'स्वस्वत्वध्वंसविशिष्ट परस्वत्वोत्पत्ति' और उसका कर्तृत्व जिसमें रहेगा, उसी को दाता कहा जायेगा। स्वस्वत्वध्वंसविशिष्ट परस्वत्वोत्पत्ति का कर्तृत्व देने वाले में ही होता है। इसी कारण प्रतिगृहीता के व्यवहार को स्वत्व का जनक नहीं माना जाता क्योंकि यदि प्रतिगृहीता के व्यवहार को भी स्वत्व का जनक मान लिया जायेगा तो प्रतिगृहीता के लिए भी दातृव्यवहार होने लगेगा।

विमर्श– वस्तुतः यह जीमूतवाहन का मत तर्कसङ्गत नहीं है इसीकारण गदाधर ने इनके मत का अनादर व उपेक्षा के साथ उल्लेख किया है । यजमान शब्द में भी कर्त्रर्थक प्रत्यय ही है याजक शब्दवत् उसका प्रयोग भी ऋत्विजों में होने लगेगा क्योंकि याजक में जो धात्वर्थतावच्छेदक है वही यजमान में भी धात्वर्थतावच्छेदक है किन्तु याजकशब्द का प्रयोग ऋत्विजों के लिए होता है यजमान शब्द का नहीं, सिद्धान्ती मत में तो याजक में यज धातु हविःप्रक्षेपार्थक है और यजमान में देवतोद्देश्यकद्रव्यत्यागेच्छार्थक है।

अथास्तु 'चैत्रेण मैत्रेण पाच्यते' इत्यादौ स्वतन्त्रव्यापारस्य हेतुकर्तृव्यापाराधीनत्वेऽपि दर्शितरीत्या तस्य स्वतन्त्रकर्तृत्वनिर्वाहस्तथापि तद्वाचकपदोत्तरं तृतीयानुपपत्तिः– कर्तृत्वस्य णिच्प्रत्ययेनाभिधानादिति चेत्? न, कर्तृत्वनिर्वाहकत्वसम्बन्धेन पाकाद्यन्वयिनो हेतुकर्तृव्यापारस्य णिजर्थत्वेन स्वतन्त्रकर्तृत्वस्य णिचानभिधानात्। कर्तृत्वरूपफलावच्छिन्नस्य तादृशव्यापारस्य णिजर्थतामतेऽप्याश्रयोपरक्तस्य कर्तृत्वस्यान्यतोभानानिर्वाहेण कर्तुरनभिधानात् तृतीयोपपत्तिः। आख्यातस्य धर्म्यवाचकत्वेऽपि कृतिविशिष्टबोधकत्वरूपस्य कर्त्रभिधानस्याक्षततत्वात् 'चैत्रः पचति' इत्यादौ न तृतीया।

ठीक है, **'चैत्रेण मैत्रेण पाच्यते'** 'चैत्र के द्वारा मैत्र से पकवाया जा रहा है' इत्यादि स्थलों में स्वतन्त्रव्यापार के हेतुकर्ता के व्यापार के अधीन होते हुए भी दर्शित रीति से उसके स्वतन्त्रकर्तृत्य का निर्वाह हो जाता है (क्योंकि स्वतन्त्रकर्ता का व्यापार कारकान्तरव्यापारानधीन ही होता है, हेतु कर्ता तो पाकक्रिया में कारक हीन ही होता है)

फिर भी स्वतन्त्रकर्तृवाचक पद के बाद तृतीया की अनुपपत्ति है क्योंकि णिच् प्रत्यय के द्वारा स्वतन्त्र कर्तृत्व का अभिधान हो जाता है। अभिप्राय यह है कि जिसके कर्तृत्व का अभिधान नहीं हुआ होगा तद्बोधक पद से ही तृतीया होगी, यहाँ पर प्रयोज्यकर्ता मैत्र के कर्तृत्व का अभिधान णिच् प्रत्यय से हो रहा है क्योंकि पच् धातु का अर्थ पाक और णिच् प्रत्यय का अर्थ कर्तृत्वानुकूलव्यापार होता है इस प्रकार पाककर्तृत्वानुकूलव्यापार णिजन्त का अर्थ होता है। इसमें पाककर्तृत्व का अभिधान णिच् प्रत्यय से हो रहा है और वही पाककर्तृत्व मैत्र में है इसलिए मैत्र पद से तृतीया नहीं होनी चाहिए[1]।

ऐसा कहो तो ठीक नहीं है क्योंकि कर्तृत्वनिर्वाहकत्वसम्बन्ध से पाकादि से अन्वयी हेतुकर्तृ व्यापार के ही णिजर्थ होने के कारण स्वतन्त्रकर्तृत्व का णिच् से अभिधान नहीं होता है। आशय यह है कि पाक आदि से अन्वित व्यापार ही णिच् का अर्थ है, कर्तृत्व निर्वाहकत्व सम्बन्ध से पाक विशिष्ट व्यापार ही णिच् का अर्थ है। इसमें कर्तृत्व निर्वाहकत्व संसर्गविधया आ रहा है। इस कारण कर्तृत्व णिच् से अभिहित नहीं हो रहा है। कर्तृत्वरूप फलावच्छिन्न तादृशव्यापार की णिजर्थता के मत में भी आश्रयोपरक्त कर्तृत्व का अन्यतः भान का निर्वाह न होने के कारण कर्ता का अभिधान न होने के कारण तृतीया की उपयत्ति होती है। अर्थात् कर्तृत्व विशिष्ट व्यापार को भी णिच् का अर्थ मानने वाले पक्ष में कर्तृत्व का णिच् से यद्यपि अभिधान होता है किन्तु चूँकि आश्रय से उपरक्त कर्तृत्व का अभिधान णिच् से नहीं होता है इसलिए स्वतन्त्र कर्ता से तृतीया की उपपत्ति होती है।

यद्यपि आख्यात का भी धर्मी वाचकत्व नहीं है (आश्रयोपरक्त कर्तृत्व का अभिधान आख्यात से भी नहीं होता है) तथापि कृतिविशिष्टबोधकत्व रूप कर्त्रभिधान अक्षत होने के कारण तृतीया 'चैत्रः पचति' इत्यादिस्थलों में नहीं होती है। प्रथमा ही हुआ करती है।

न चैवं मुख्यविशेष्यतया कृतिबोधकत्वरूपस्य कर्त्रभिधानस्य विवक्षायां 'चैत्रेण पचति' इति स्यादिति वाच्यम्; आश्रयातिरिक्तांशेऽविशेषण तया कृतिबोधनस्यैव कर्त्रभिधानरूपत्वात्। तथा तदभिधानञ्च लकृत्तद्धित-समासानामेव अत एव तैरेवाभिधानं वृत्तिकृता विवृतम्।

यदि कहो कि मुख्यविशेष्यतया कृतिबोधकत्व रूप कर्त्रभिधान की विवक्षा होने पर 'चैत्रेण पचति' ऐसा प्रयोग होने लगेगा अर्थात् कृतिविशिष्टबोधकत्वरूप कर्त्रभिधान के अक्षत होने पर भी यदि विवक्षा हो कि 'जो मुख्यविशेष्यतया कृतिबोधकत्व है वही कर्त्रभिधान है' तो 'चैत्रः पचति' यहाँ पर कृति का मुख्यविशेष्यतया अभिधान तो हो नही रहा है, इस कारण चैत्रपदोत्तर तृतीया होने लगेगी। तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि आश्रय से अतिरिक्त अंश में अविशेषणतया कृतिबोधन ही कर्त्रभिधान रूप होता है। यहाँ पर कृतिविशिष्ट बोधकत्व है आख्यात में तथा इस रीति से आश्रय से अतिरिक्त अंश में कृति को विशेषण बनाकर अभिधान आख्यात द्वारा नहीं हो रहा है, आश्रयांश में ही कृति को विशेषण बनाकर अभिधान आख्यात द्वारा हो रहा है। इसलिए कर्त्रभिधान है ही इस कारण चैत्र पद से प्रथमा होती है तृतीया नहीं। और उसका (कृति का) अभिधान ल, कृत्, तद्धित और समासों द्वारा ही अभिप्रेत है, इसी कारण उन्हीं के द्वारा अभिधान वृत्तिकार द्वारा व्याख्यायित किया गया है।

1. द्वितीया कारक के अन्तर्गत यह विषय सम्पूर्णता से व्याख्यात है।

इदं त्ववधेयम्–यद्यपि स्वतन्त्रव्यापारमात्र एव तृतीयादेरनुशासनं तथापि लाघवात् कृतिरूप एव कर्तृत्वे तृतीयादेः शक्तिः। अचेतनव्यापारे निरूढलक्षणैव। अनुशासनस्यानादितात्पर्यमात्रग्राहकत्वात् लाघवसहकृतस्यैव तादृशतात्पर्यस्य शक्तिकल्पकत्वात् व्यापारे तत्सत्त्वेऽपि गौरवेण शक्त्यसिद्धेः। एवञ्च कर्तृत्वरूपकृतिबोधस्थले कारकान्तरव्यापारानधीनत्वं न प्रतीयत इति तदन्तर्भावेण शक्तिकल्पने मानाभावः। व्यापारलाक्षणिकेन कर्तृप्रत्ययेन लक्षणया तदन्तर्भावेण व्यापारबोधनादेव पूर्वोक्तातिप्रसङ्गवारणात् अन्यथा तदन्तर्भावेण कृतिशक्तावपि तादृशातिप्रसङ्गस्य दुर्वारत्वादिति।

इस प्रकार के विवेचन के उपरान्त अब गदाधर अपना मत स्पष्ट करते हैं—यहाँ पर यह ध्यातव्य है—यद्यपि स्वतन्त्रव्यापार मात्र में ही तृतीया आदे का अनुशासन किया गया है (क्योंकि **'स्वतन्त्रः कर्ता'** पा0सू0 1/4/54 के द्वारा स्वतन्त्र को कर्ता बताया गया है और **'कर्तृकरणयोस्तृतीया'** पा0 सू0 2/3/18 के द्वारा कर्ता से तृतीया का विधान किया गया है) तथापि स्वतन्त्रव्यापार में तृतीया की शक्ति स्वीकारने की अपेक्षा कृति मात्र में तृतीया की शक्ति स्वीकारने में लाघव होने के कारण कृतिमात्र में ही तृतीया की शक्ति है। अचेतनव्यापार में निरूढलक्षणा ही है। अनुशासन के अनादितात्पर्यमात्र का ग्राहक होने के कारण लाघव से सहकृत ही अनादितात्पर्य के शक्ति का कल्पक होने से व्यापार में अनादितात्पर्य रहने पर भी उसमें शक्ति स्वीकारने में गौरव होने के कारण शक्ति की सिद्धि नहीं होती है। अभिप्राय यह है कि अनुशासन शक्तिग्राहक नहीं होता है अनादितात्पर्यमात्र का ग्राहक होता है। इस कारण **'कर्तृकरणयोस्तृतीया'** और **'स्वतन्त्रः कर्ता'** इस अनुशासन से तृतीया की शक्ति स्वतन्त्रव्यापार में नहीं गृहीत होती है बल्कि स्वतन्त्रव्यापार में तृतीया के अनादितात्पर्य का ही ग्रहण उक्त अनुशासन से होता है। लाघव से सहकृत अनादितात्पर्य चूँकि कृतिमात्र में है, अतः तृतीया की शक्ति कृतिमात्र में गृहीत होती है। अचेतन व्यापार का निरूढलक्षणा से बोध होता है।

इसी प्रकार कर्तृत्वरूपकृतिबोधस्थल में कारकान्तरव्यापारानधीनत्व नहीं प्रतीत होता है (केवल कृति की प्रतीति होती है **'चैत्रः पचति'** ऐसा प्रयोग करने पर चैत्रव्यापार में कारकान्तरव्यापारानधीनत्व की प्रतीति नहीं होती है 'पाकानुकूल चैत्रकृति' की ही प्रतीति होती है) इस कारण कारकान्तरव्यापारानधीनत्व का अन्तर्भाव करके तृतीया की शक्ति की कल्पना करने में प्रमाण का अभाव है। व्यापार लाक्षणिक कर्तृप्रत्यय से लक्षणा के द्वारा कारकान्तरव्यापारानधीनत्व के अन्तर्भाव से व्यापार का बोधन होने से पूर्वोक्त अतिप्रसङ्ग का वारण हो जाता है। अन्यथा तदन्तर्भाव से (कारकान्तरव्यापारानधीनत्व के अन्तर्भाव से) कृति में तृतीया की शक्ति होने पर भी तादृश अतिप्रसङ्ग दुर्वार होगा।

यहाँ पर पूर्वोक्त और तादृश अतिप्रसङ्ग से आशय है **'चैत्रः काष्ठैः स्थाल्यां पचति'** के स्थान पर **'चैत्रः काष्ठानि स्थाली पचति'** प्रयोग की आपत्ति। यदि तृतीया की शक्ति कृतिमात्र में और लक्षणा अचेतन व्यापार में स्वीकारी जाये तो। यह ध्यातव्य है

कि आख्यात के अर्थ के विषय में भी यही बात कही गयी है आख्यात की भी शक्ति कृति मात्र में और अचेतनव्यापार में लक्षणा स्वीकारी गयी है। कर्ता के अर्थ में तृतीया के अलावा प्रथमा का भी विधान है। अचेतनव्यापार में लाक्षणिक कर्तृप्रत्यय से यदि व्यापार मात्र का बोधन किया जाये तो **'चैत्रः काष्ठानि स्थाली पचति'** यहाँ पर काष्ठ, स्थालीपदोत्तर कर्तृप्रत्यय प्रथमा से व्यापारमात्र का बोधन किया ही जा सकता है, इस प्रकार इस प्रयोग के साधुत्व की आपत्ति है। इसलिए कहा जा रहा है कर्तृप्रत्यय से लक्षणया जो अचेतन व्यापार बोधित होता है वह कारकान्तरव्यापारानधीनत्व विशेषित होकर बोधित होता है। उक्त स्थल में 'चैत्ररूप कारक व्यापाराधीन' ही काष्ठ और स्थाली का व्यापार प्रतीत होता है, अतः उनके बाद कर्तृप्रत्यय नहीं होता है। यदि लक्षणा के द्वारा इस प्रकार का अचेतन व्यापार न बोधित हो, कारकान्तरव्यापारानधीनत्वविशेषित कृति में कर्तृप्रत्यय की शक्ति मानी जाये तो भी यह अतिप्रसङ्ग दुर्वार ही होगा क्योंकि काष्ठ व स्थाली में तो कृति रहती नहीं है, अतः कारकान्तरव्यापारानधीनकृतिबोधक कर्तृप्रत्यय से तो काष्ठ व स्थाली का कर्तृत्व नहीं ही बोधित हो सकता है। अगत्या काष्ठ और स्थाली के कर्तृत्व में (अचेतनव्यापारमात्र में) तृतीयादि कर्तृप्रत्यय की लक्षणा स्वीकारनी पड़ेगी। तथा अचेतनव्यापार रूपी कर्तृत्व उपर्युक्तस्थल में भी बोधित ही हो सकता है। अतः उक्त प्रयोग की आपत्ति रहेगी ही। उसका वारण आप यही स्वीकार कर के कर सकते हैं कि कारकान्तरव्यापारानधीन अचेतनव्यापार का ही कर्तृप्रत्यय से निरूढलक्षणा द्वारा बोध होता है। फिर कर्तृप्रत्यय की शक्ति केवल कृति में मानी जाये इसी में लाघव है, कारकान्तरव्यापारानधीन कृति में कर्तृप्रत्यय की शक्ति स्वीकारने का कोई भी लाभ नहीं है।

'घटो जायते' 'ओदनः सिद्ध्यति' इत्यादौ सत्कार्यवादविद्वेषिणां नैयायिकानां कारकत्वं कर्तृत्वञ्च घटौदनादेर्यथाश्रुतसूत्रानुसारेण दुरुपपादमेव।

'घटो जायते' 'घट उत्पन्न होता है' **'ओदनः सिद्ध्यति'** 'ओदन सिद्ध होता है' इत्यादि स्थलों में सत्कार्यवाद से विद्वेष रखनेवाले नैयायिकों के मत में घट ओदन आदि का कारकत्व और कर्तृत्व यथाश्रुत सूत्र के अनुसार दुरुपपाद ही है।

नैयायिकों के मत में कार्य उत्पत्ति के पूर्व अविद्यमान रहता है, अविद्यमान की ही उत्पत्ति होती है। यही असत्कार्यवाद कहलाता है। यथाश्रुत सूत्र **'स्वतन्त्रः कर्ता'** के अनुसार 'कारकान्तरव्यापारानधीन क्रियानुकूल व्यापारवत्त्व' ही कर्तृत्व है किन्तु जो विद्यमान ही नहीं हैं ऐसे घट और ओदन कैसे 'उत्पत्त्यनुकूलव्यापारवत्' और 'सिद्ध्यनुकूल व्यापारवत्' हो सकेंगे? अतः कारकान्तरव्यापारानधीनत्वविशेषित उक्त कर्तृत्व उनका कैसे बन सकेगा? यह उक्त सूत्र के अनुसार दुरुपपाद है।

मुख्यञ्च क्रियाकर्तृत्वं न क्रियानुकूलकृतिमात्रम्—एकक्रियाविषयक कृतितो यत्र नान्तरीयकक्रियान्तरनिर्वाहस्तत्र तत्कृतिमतस्तत्क्रिया-कर्तृत्वाभावात्। अत एव 'मत्तो भूतं न तु मया कृतम्' इति व्यपदेश इति। किन्तु तत्क्रियाविषयकत्वे सति तदनुकूला या कृतिस्तदेव तत्कर्तृत्वन्।

अन्योद्देश्येन नाराचक्षेपाद् यत्र ब्राह्मणवधस्तत्र मरणानुकूलस्य नाराचक्षेपरूपव्यापारस्य कृतिविषयत्वेऽपि ब्राह्मणमरणानुकूलव्यापारत्वेन तस्यानभिसंहितत्वात् तेन रूपेण कृतिविषयत्वं न तादृशव्यापारस्येति ब्राह्मणमरणानुकूलव्यापारत्वेन कर्तृत्वं न तादृशव्यापारकर्तुरिति न तस्य सम्पूर्णप्रायश्चित्तम् ।

मुख्य क्रियाकर्तृत्व क्रियानुकूलकृतिमात्र नहीं होता है—क्योंकि एक क्रियाविषयक कृति से जहाँ पर नान्तरीयक क्रियान्तर का (अनिवार्यतः जुड़ी हुई कोई दूसरी क्रिया का) निर्वाह हो जाता है वहाँ पर उस कृति वाले में नान्तरीयक क्रिया का कर्तृत्व नहीं होता है (जैसे जाने की क्रिया से ही भूमि स्पर्श की क्रिया का निर्वाह होता है किन्तु जाने की क्रिया होने के काल में गमन कर्ता में भूमिस्पर्शकर्तृत्व नहीं रहता है, इसीलिए '**भूमिं स्पृशति**' प्रयोग वहाँ नहीं होता है) इसीलिए 'यह मुझ से हो गया मैने ऐसा किया नही' ऐसा व्यपदेश हुआ करता है। किन्तु तत्क्रियाविषयक होते हुए तत्क्रियाविषयक जो कृति वही उस क्रिया का कर्तृत्व है। अन्य के उद्देश्य से नाराच (लौह निर्मित बाण) क्षेप से जहाँ पर ब्राह्मण वध हो जाये वहाँ पर मरणानुकूल जो नाराचक्षेपात्मक व्यापार है उस व्यापार के कृतिविषय होने पर भी ब्राह्मणमरणानुकूलव्यापारत्वेन उसके अनभिसंहित होने के कारण उस रूप से नाराचक्षेपात्मक व्यापार का कृतिविषयत्व नहीं है, इसी कारण ब्राह्मणमरणानुकूलव्यापारत्वेन उस व्यापार का कर्तृत्व नाराचक्षेपात्मकव्यापार करने वाले कां नहीं होता है। अतः उसके लिए सम्पूर्ण प्रायश्चित का विधान नहीं है।

अभिप्राय यह है कि 'तत्क्रियाविषयक तत्क्रियानुकूलकृतिमत्त्व' ही तत्क्रियाकर्तृत्व है। इसी कारण चलने के प्रसङ्ग में भूमिस्पर्श होने पर भी भूमिस्पर्शकर्तृत्व का व्यवहार उसकाल में नहीं होता है क्योंकि भूमिस्पर्शानुकूल कृतिमत्त्व होने पर भी उस कृति में भूमिस्पर्शविषयकत्व नहीं है। जहाँ पर नाराच फेंका तो गया था अन्य किसी को मारने के लिए, किन्तु मर गया ब्राह्मण, वहाँ पर ब्राह्मणमरणानुकूल व्यापारानुकूल कृतिमत्त्व तो नाराच फेंकने वाले में है क्योंकि नाराचक्षेपात्मक व्यापार ब्राह्मण मरणानुकूल है। और चूँकि किसी को मारने के लिए ही नाराच फेका था अतः मरणानुकूलव्यापार (वधक्रिया) विषयकत्व भी मरणानुकूलव्यापारात्मक वधक्रिया अनुकूल व्यापार (नाराचक्षेप) अनुकूल कृति में विद्यमान है। किन्तु चूँकि ब्राह्मणवधक्रियात्वेन ब्राह्मणमरणानुकूलव्यापारत्वेन नाराचक्षेपात्मकव्यापार का अभिसंधान नहीं किया गया था है, नाराचक्षेप से ब्राह्मण को मारने के विषय में नहीं सोचा गया था। अतः माराचक्षेप करने वाले को ब्राह्मणवध कर्ता नहीं माना जाता है, इसलिए उक्त स्थिति में सम्पूर्ण प्रायश्चित्त का विधान नहीं किया गया है।

अत एव सम्पूर्णप्रायश्चित्तप्रयोजकस्य कर्तृव्यापारस्य लक्ष्यताभिप्रायेण हिंसालक्षणे मणिकृतां मरणोद्देशेनानुष्ठीयमानत्वादृष्टाद्वारकत्वविशेषणयोरुपादानमिति मिश्राभिधानसङ्गतिः। मरणोद्देशेनानुष्ठीयमानस्य व्यापारस्यावश्यं मरणानुकूलव्यापारत्वेन प्रतिसंहितत्वात् तादृशरूपेण कृतिविषयत्वमिति

तादृशविशेषणस्य विशिष्टकर्तृतानिर्वाहकत्वात् तद्विशेषणवतो व्यापारस्य नियमेन लक्ष्यत्वात्। तच्छून्यस्य चालक्ष्यत्वनियमात्।

इसीलिए (तत्क्रियाविषयक तत्क्रियानुकूलकृतिमत्त्व को ही तत्क्रियाकर्तृत्व मानने के कारण ही) सम्पूर्णप्रायश्चित्तप्रयोजक कर्तृव्यापार की लक्ष्यता के अभिप्राय से मणिकार का मरणोद्देशेनानुष्ठीयमानत्व अदृष्टाद्वारकत्व विशेषणों का हिंसालक्षण में उपादान है इस मिश्राभिधान की सङ्गति बनती है। अभिप्राय यह है—मणिकार गङ्गेशोपाध्याय द्वारा जो हिंसा का लक्षण किया गया है उसमें दो विशेषण दिये गये हैं (1) मरणोद्देशेनानुष्ठीयमानत्व (2) अदृष्टाद्वारकत्व। केवल मरणानुकूलव्यापार ही हिंसा नहीं है अपितु जो मरणानुकूल व्यापार मरणोद्देशेन अनुष्ठीयमान होगा और अदृष्टाद्वारक होगा उसे ही हिंसा कहा जायेगा। ऐसी स्थिति में यह जो दो विशेषण दिये गये हैं उन विशेषणों की सार्थकता बतलाते हुए मिश्र ने कहा है कि 'मणिकार ने इस हिंसालक्षण का लक्ष्य सम्पूर्णप्रायश्चित्तप्रयोजक कर्तृ व्यापार को मानकर इन दोनों विशेषणों का उपादान किया है' तत्क्रियाविषयक तत्क्रियानुकूल कृतिमत्त्व को ही तत्क्रिया कर्तृत्व मानने पर ही इस मिश्राभिधान की सङ्गति होती है। अन्यथा तत्क्रिया को न विषय करने वाली कृति भी यदि तत्क्रियानुकूला है तो तत्क्रियाकर्तृत्व तत्कृतिमान् का भी हो जायेगा। द्वितीयविशेषण, चूँकि श्येनयागादि द्वारा शत्रुमरण होने पर भी सम्पूर्ण प्रायश्चित का विधान नहीं किया गया है, अतः दिया गया है।

मरणोद्देशेन अनुष्ठीयमान व्यापार मरणानुकूलव्यापारत्वेन अवश्य प्रतिसंहित होने के कारण उसमें मरणानुकूलव्यापारत्वेन कृतिविषयत्व होगा। इस कारण तादृशविशेषण विशिष्टकर्तृता का निर्वाहक होता है। अतः तद्विशेषणवत् व्यापार नियम से लक्ष्य होता है और उससे शून्य का अलक्ष्यत्व नियम से होता है।

उक्त मणिकार के हिंसा लक्षण की सङ्गति क्या है? तत्क्रियाविषयकत्वविशिष्ट तत्क्रियानुकूलकृति ही तत्क्रियाकर्तृत्व है। यह जो मुख्य कर्तृत्व का लक्षण किया गया वह विशिष्टकर्तृत्व है (तत्क्रियाविषयकत्व से विशिष्ट कर्तृत्व है) वध का विशिष्ट कर्तृत्व जहाँ पर होगा वही हिंसक माना जायेगा, वध का विशिष्ट कर्तृत्व ही हिंसा है। इस हिंसा का (वध के विशिष्ट कर्तृत्व का) निर्वाहक होता है मरणोद्देशेन अनुष्ठीयमानव्यापार क्योंकि यदि मरणोद्देशेन अनुष्ठीयमान है तो मरणानुकूलव्यापारत्वेन कृतिविषय होगा। इसलिए तत्क्रियाविषयकत्व रूप विशेषणांश है, कर्तृत्व में उसका निर्वाहक होने के कारण मरणोद्देशेन अनुष्ठीयमानत्व विशेषण वाला व्यापार नियम से हिंसा लक्षण का लक्ष्य होता है और जहाँ पर मरणोद्देशेन अनुष्ठीयमानत्व विशेषण नहीं है वहाँ पर तत्क्रियाविषयकत्व कृति में नहीं बनता है, अतः विशिष्टकर्तृता का निर्वाह नहीं होता है। इस कारण जहाँ पर मरणोद्देशेन अनुष्ठीयमानत्व नहीं है, वह हिंसालक्षण का लक्ष्य ही नहीं होता है।

अथ मरणोद्देशेनानुष्ठितस्यापि व्यापारस्य यत्र खड्गाभिघातत्वादिनैवेष्ट साधनत्वकृतिसाध्यत्वधीविषयता न तु मरणानुकूलत्वविशेषिततद्रूपेण, तत्र न मरणानुकूलत्वविशिष्टविषयिणी कृतिरिति तादृशव्यापारकर्तुर्न वधत्व-विशिष्टकर्तृत्वमिति कथमुक्तविशेषणस्य विशिष्टकर्तृतानिर्वाहकत्वम्? यदि

च मरणोद्देशेनानुष्ठीयमानत्वस्य मरणानुकूलत्वेन कृतिविषयत्वमेवार्थ इत्युपेयते? तदा व्यापारे तादृशविशेषणस्य तत्कर्तरि विशिष्टकर्तृता-निर्वाहकत्वेप्युक्तस्थले खड्गाभिघातादौ तादृशलक्षणाऽव्याप्तिर्दुर्वारैव। तत्र सम्पूर्णप्रायश्चित्तस्य निर्विवादतया लक्ष्यताया आवश्यकत्वात्।

अभी बताया गया कि 'मरणोद्देशेन अनुष्ठीयमान व्यापार अवश्य मरणानुकूल व्यापारत्वेन प्रतिसंहित होगा, इसकारण मरणोद्देशेन अनुष्ठीयमान व्यापार होने की दशा में मरणानुकूलव्यापारत्वेन कृतिविषयत्व अवश्य मरणानुकूलव्यापार में आयेगा और इसलिए मरणानुकूलव्यापार की विशिष्टकर्तृता का निर्वाहक होता है उक्त विशेषण'। अब इसी में एक प्रश्न उठा रहे हैं गदाधर कि 'मरणाोद्देशेन अनुष्ठीयमान व्यापार मरणानुकूलव्यापारत्वेन प्रतिसंहित ही होगा यह नियम नहीं है, अन्यरूप से भी प्रति संहित हो सकता है और ऐसी स्थिति में मरणोद्देशेन अनुष्ठीयमानत्व विशेषण मरणानुकूल व्यापार की विशिष्टकर्तृता का निर्वाहक नहीं हो सकेगा' यही प्रश्न इस स्थल में '**अथ**' इस प्रतीक से उठा रहे हैं—

लेकिन मरणोद्देशेन अनुष्ठित भी व्यापार की जहाँ पर खड्गाभिघातत्वादि रूप से इष्टसाधनत्व, कृतिसाध्यत्वज्ञान की विषयता होती है, मरणानुकूलत्वविशेषित तद्रूप से (मरणानुकूलव्यापारत्वेन) विषयता नहीं होती है। वहाँ पर मरणानुकूलत्वविशिष्टविषयिणी कृति नहीं है इसलिए मरणानुकूलव्यापार (खड्गाभिघात) करने वाले की वधत्वविशिष्ट कर्तृता नहीं है। इस कारण उक्त विशेषण 'मरणोद्देशेनानुष्ठीयमानत्व' का विशिष्टकर्तृतानिर्वाहकत्व कैसे होगा?

अभिप्राय यह है कि जहाँ व्यापार तो मरणोद्देशेन ही अनुष्ठित हुआ किन्तु प्रवृत्ति के लिए आवश्यक इष्टसाधनत्वज्ञान व कृतिसाध्यत्वज्ञान '**मरणानुकूलव्यापारो मदिष्टसाधनम्**' '**मरणानुकूलव्यापारो मत्कृतिसाध्यः**' मरणानुकूल व्यापार मेरा इष्ट साधन है' 'मरणानुकूलव्यापार मेरी कृति से साध्य है' इस प्रकार से न होकर '**खड्गाभिघातो मदिष्टसाधनम्**' '**खड्गाभिघातो मत्कृतिसाध्यः**' 'खड्गाभिघात मेरे इष्ट का साधन है' 'खड्गाभिघात मेरी कृति से साध्य है' इस प्रकार से हुआ। ऐसी स्थिति में मरणानुकूलव्यापारत्वेन मरणानुकूलव्यापार की कृतिविषयता नहीं है। यद्यपि खड्गाभिघात ही मरणानुकूल व्यापार है और उसमें कृतिविषयता है किन्तु मरणानुकूलव्यापारत्वेन उसमें कृति विषयता नहीं है बल्कि खड्गाभिघातत्वेन कृति विषयता है। इस प्रकार यह बात खण्डित हो जाती है कि 'मरणोद्देशेन अनुष्ठित व्यापार अवश्य ही मरणानुकूलव्यापारत्वेन प्रतिसंहित होगा' क्योंकि मरणोद्देशेन अनुष्ठित व्यापार मरणानुकूलव्यापारत्वेन प्रतिसंहित नहीं भी हो सकता है, खड्गाभिघातत्वेन भी प्रतिसंहित हो सकता है। इसलिए उक्त (खड्गाभिघातात्मक) व्यापार करने वाले की विशिष्टकर्तृता नहीं होती है। क्योंकि वध का विशिष्ट कर्तृत्व है 'वध क्रियाविषयक होते हुए जो वधक्रियानुकूलकृति' वही वधक्रियाकर्तृत्व है। वधक्रिया का अर्थ है मरणानुकूलव्यापार। अब यहाँ पर देखिए जो खड्गाभिघात कर रहा है उसकी कृति वधक्रियानुकूल है क्योंकि खड्गाभिघात मरणानुकूलव्यापारात्मक है और खड्गाभिघातानुकूल

वह कृति तो है ही। किन्तु उस कृति का विषयत्व मरणानुकूलव्यापारत्वेन मरणानुकूल खड्गाभिघातात्मक व्यापार में नहीं है। इस कारण वधक्रिया का विशिष्टकर्तृत्व खड्गाभिघातकर्ता में नहीं उपपन्न होता है। ऐसी स्थिति में 'मरणोद्देशेन अनुष्ठीयमानत्व' विशेषण विशिष्ट-कर्तृता का निर्वाहक कैसे हो सकता है? यहाँ मरणोद्देशेन अनुष्ठीयमानत्व है किन्तु विशिष्टकर्तृता नहीं बन रही है। इसलिए विशिष्टकर्तृता का निर्वाहकत्व इस विशेषण में न होने के कारण 'विशष्टकर्तृतानिर्वाहक होने से इस विशेषण की सार्थकता होती है' यह कथन ग़लत होता है ।

यदि 'मरणोद्देशेन अनुष्ठीयमानत्व का अर्थ मरणानुकूलत्वेन कृतिविषयत्व ही है' ऐसा स्वीकारते हो तो व्यापार में दिये गये 'मरणोद्देशेनानुष्ठीयमानत्व' विशेषण का विशिष्ट कर्तृतानिर्वाहकत्व बन जाने पर भी उक्त स्थल में खड्गाभिघात आदि में हिंसा के उक्त लक्षण की अव्याप्ति दुर्वार ही होगी। वहाँ पर सम्पूर्ण प्रायश्चित्त के निर्विवाद होने के कारण उसकी लक्ष्यता आवश्यक है।

आशय यह है यदि मरणोद्देशेन अनुष्ठीयमानत्व का अर्थ मरणानुकूलत्वेन कृति विषयत्व कर दिया जाये तो हिंसा लक्षण में दिये गये इस विशेषण के द्वारा वध क्रिया के विशिष्टकर्तृता का निर्वाह हो जायेगा क्योंकि वधक्रियाविशिष्टकर्तृत्व वधक्रियानुकूल वध क्रियाविषयक कृतिमत्व ही है। इसमें वध क्रियाविषयकत्व का सम्पादन मरणोद्देशेन अनुष्ठीयमानत्व के द्वारा किया जायेगा। क्योंकि इसका अर्थ मरणानुकूलत्वेन कृतिविषयत्व ही है। किन्तु उपर्युक्तस्थल में जहाँ पर खड्गाभिघातत्वेन इष्टसाधनत्व ज्ञान और कृति साध्यत्वज्ञान हुआ है वहाँ पर हिंसा लक्षण की अव्याप्ति होगी क्योंकि उक्तस्थलीय मरणानुकूलव्यापार में मरणोद्देशेन अनुष्ठीयमानत्व (मरणानुकूलत्वेन कृतिविषयत्व) नहीं है। जबकि वहाँ पर सम्पूर्ण प्रायश्चित निर्विवाद होने के कारण उक्त खड्गाभिघात रूप मरणानुकूल व्यापार में हिंसा का लक्षण जाना ही चाहिए ।

न च विशेषणीभूतफलनिष्ठोद्देश्यताख्यविषयतानिरूपकत्वे सति व्यापारनिष्ठसाध्यताख्यविषयतानिरूपकत्वमेव विशिष्टविषयकत्वं कृतेरुपदर्शितस्थलेऽनुकूलतासम्बन्धेन मरणवैशिष्ट्यस्य साध्यतारूपकृति विषयतावच्छेदकताविरहेऽपि न विशिष्टकर्तृत्वानिर्वाह इति मरणोद्देशेनानुष्ठी यमानत्वस्य मरणकामनाधीनकृतिविषयत्वरूपतैवेति वाच्यम्; 'ब्राह्मणं न हन्यात्' इत्यादौ धात्वर्थतावच्छेदकस्य मरणस्य स्वोद्देश्यकत्वसम्बन्धेन कृतावन्वयसम्भव एव निरुक्तविशिष्टकर्तृत्वस्य निषेधविधिविषयत्वसम्भवात्, व्यापारविशेषणतयोपस्थितस्य कृत्यंशे विशेषणतयान्वयस्य व्युत्पत्ति-विरुद्धत्वात् ।

यदि कहो कि विशेषणीभूतफलनिष्ठ उद्देश्यताख्यविषयतानिरूपकत्वसहित व्यापार-निष्ठसाध्यताख्यविषयतानिरूपकत्व ही कृति का विशिष्टविषयत्व है, इसलिए उपदर्शित स्थल में अनुकूलतासम्बन्ध से मरणवैशिष्ट्य की साध्यता रूप कृतिविषयतावच्छेदकता न

रहने पर भी विशिष्टकर्तृत्व का अनिर्वाह नहीं होता है, इस कारण मरणोद्देशेनानुष्ठीयमानत्व की मरणकामनाधीनकृतिविषयत्वरूपता ही है।

इस पक्ष से कहा यह जा रहा है कि मरणोद्देशेन अनुष्ठीयमानत्व का अर्थ है मरणकामनाधीनकृतिविषयत्व। कृति में मरणविशिष्टव्यापार विषयकत्व आना चाहिए मरणविशिष्टव्यापार में विशेषणांश है मरण और विशेष्यांश है व्यापार। कृति को विशेषणीभूत मरणरूप फलनिष्ठ उद्देश्यताख्यविषयता का निरूपक होना चाहिए और व्यापारनिष्ठसाध्यताख्यविषयता का निरूपक होना चाहिए। यही कृति का मरणविशिष्टव्यापारविषयकत्व है। उपदर्शितस्थल में जहाँ पर इष्टसाधनत्वकृतिसाध्यत्वज्ञानविषयत्व खड्गाभिघातत्वादिना मरणानुकूलव्यापार में है, वहाँ पर अनुकूलता सम्बन्ध से मरण वैशिष्ट्य में साध्यतारूप कृति विषयता का अवच्छेदकत्व नहीं है क्योंकि जिसकी साध्यता कृतिविषय होती है उसमें मरणवैशिष्ट्य नहीं भासता है । खड्गाभिघात की साध्यता कृति विषय होती है किन्तु खड्गाभिघात में विशेषण बनकर मरण वैशिष्ट्य (अनुकूलत्व सम्बन्ध से) नहीं भासित होता है। किन्तु इस रीति से कृति का विशिष्ट विषयकत्व नहीं अनुपपन्न होता है क्योंकि मरणनिष्ठ उद्देश्यताख्यविषयता निरूपकत्व और व्यापार (खड्गाभिघात) निष्ठसाध्यताख्यविषयतानिरूपकत्व दोनों ही कृति में हैं। इसलिए वहाँ पर भी विशिष्टकर्तृत्व का निर्वाह हो जाता है।

यहाँ पर ध्येय यह है कि इस पक्ष द्वारा दो बातें परिष्कृत की जा रही हैं दो अलग रूपों में । (1) मरणोद्देशेन अनुष्ठीयमानत्व का अर्थ मरणकामनाधीन कृतिविषयत्व है। यह मरणोद्देशेन अनुष्ठीयमानत्व हिंसालक्षण में दिया गया है। (2) कृति में वधक्रिया विषयकत्व क्या है? इसका अर्थ किया मरणनिष्ठोद्देश्यताख्यविषयतानिरूपकत्वविशिष्टव्यापार-निष्ठसाध्यताख्यविषयतानिरूपकत्व । यही कृति का वध क्रिया (मरणविशिष्टव्यापार) विषयकत्व है। यह वधक्रियाविषयकत्व वधक्रियाकर्तृत्व लक्षण के अन्तर्गत है। वधक्रियाकर्तृत्व का लक्षण किया गया है वधक्रियांविषयक वधक्रियानुकूलकृति।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि **'ब्राह्मणं न हन्यात्'** 'ब्राह्मण को नहीं मारना चाहिए' इत्यादि स्थलों में धात्वर्थतावच्छेदक मरण का स्वोद्देश्यकत्व सम्बन्ध से कृति में अन्वय सम्भव होने पर ही निरुक्त विशिष्टकर्तृत्व का निषेधविधिविषयत्व सम्भव है क्योंकि व्यापारविशेष्यतया उपस्थित का कृत्यंश में विशेषणतया अन्वय व्युत्पत्तिविरुद्ध है।

अभिप्राय यह है कि **'ब्राह्मणं न हन्यात्'** यहाँ पर ब्राह्मणहनन का निषेध किया ज़ा रहा है, यह निषेधविधि है। निषेध किसका किया जा रहा है? ब्राह्मणवधकर्तृत्व का निषेध किया जा रहा है। अब देखना चाहिए कि ब्राह्मणवध कर्तृत्व क्या चीज़ है? ब्राह्मणमरण विशिष्टव्यापारविषयक और ब्राह्मणमरणव्यापारानुकूल कृति ही ब्राह्मणवध का विशिष्ट कर्तृत्व है। यह बताया जा चुका है। इसका निषेध उक्त प्रयोग से जन्य शाब्दबोध में विषय होता है या नहीं ? यदि होता है तो कैसे होता है? यही विचार्य पक्ष है। यहाँ पर किसकी उपस्थिति किससे होती है ? हन् धातु से मरणानुकूलव्यापार की उपस्थिति होती है। आख्यातोपस्थित कृति में मरणानुकूलव्यापार विशेषण होता है। कृति का निषेध में (अभाव में) अन्वय होगा। इस प्रकार ब्राह्मणमरणानुकूलव्यापार (ब्राह्मणवध) कर्तृत्व का

निषेध इस निषेध से होता है। किन्तु यह निषेध ब्राह्मणवध के सामान्य कर्तृत्व का हो रहा है विशिष्ट कर्तृत्व का नहीं ! क्योंकि जहाँ पर नाराचादिक्षेप मृगादिवध के लिए किया जा रहा है किन्तु मर गया ब्राह्मण, वहाँ पर भी इस प्रकार का ब्राह्मणवध का सामान्यकर्तृत्व है ही क्योंकि ब्राह्मणमरणानुकूलव्यापारानुकूल कृति वहाँ पर भी है। उसका निषेध भी किया जा रहा है। किन्तु चूँकि विशिष्ट कर्तृत्व ही पूर्ण प्रायश्चित्त का प्रयोजक है, अतः विशिष्ट कर्तृत्व का ही निषेध इस वाक्य से होना चाहिए। उक्त सामान्य कर्तृत्व का निषेध नहीं होना चाहिए। विशिष्ट कर्तृत्व का निषेध तभी सम्भव होगा जब मरण का स्वोद्देश्यकत्व सम्बन्ध से कृति में अन्वय किया जाये चूँकि जहाँ पर अनजाने में ब्राह्मणवध हो गया है वहाँ पर ब्राह्मणवधानुकूलकृति ब्राह्मणमरणोद्देश्यक नहीं है, अतः विशिष्टकर्तृत्व वहाँ पर न होने से वह निषेध विधि का विषय नहीं होगा । किन्तु यह (मरण का स्वोद्देश्यकत्व सम्बन्ध से कृति में अन्वय) हो नहीं सकता है, जो मरण व्यापार का विशेषण बन कर उपस्थित हुआ है उसका कृति में विशेषण बनकर भान व्युत्पत्तिविरुद्ध होगा। व्युत्पत्ति है कि 'एक-विशेषणतया उपस्थित का दूसरे का विशेषण बनकर भान नहीं होता है' ।

अथ मरणोपलक्षितव्यापारकर्तृत्वस्य तादृशनिषेधविषयत्वेऽपि न क्षतिः–अन्योद्देशेन नाराचक्षेपस्यापि ब्राह्मणमरणोपधायकस्य नरक-साधनत्वात्, परन्तु मरणप्रायश्चित्तविधेरेव तदविषयकत्वमुपपादनीयं तच्च मरणोद्देशेन तदनुकूलव्यापारकर्तृत्वबोधकस्य शब्दस्य तद्विधावन्तर्भाव एवोपपद्यत इति चेत् ?

एवमपि ब्राह्मणमरणकामनया यत्र न तन्मरणानुकूलव्यापारानुष्ठान मपि तु फलान्तरकामनाधीनतन्मरणानुकूलव्यापारत्वप्रकारकचिकीर्षया तदनुष्ठितं तत्राव्याप्तिरेतन्मते दुर्वारैव। तत्रापि सम्पूर्णस्यैव प्रायश्चित्तस्या-चरणादलक्ष्यतोपगमासम्भवादिति।

यदि कहो कि मरणोपलक्षितव्यापारकर्तृत्व के तादृशनिषेध का विषय होने पर भी क्षति नहीं है क्योंकि अन्योद्देशेन नाराचक्षेप ब्राह्मणमरणोपधायक होने पर नरकसाधन हुआ करता है। परन्तु मरणप्रायश्चित्तविधि का ही अन्योद्देशेन प्रयुक्त नाराच द्वारा ब्राह्मणवध का अविषयत्व उपपादित करना चाहिए और वह मरणोद्देशेन तदनुकूलव्यापार कर्तृत्वबोधक शब्द का उस प्रायश्चित्तविधि में अन्तर्भाव से ही उपपन्न हो जायेगा।

अभिप्राय यह है—अभी आपत्ति दी गयी कि '**ब्राह्मणं न हन्यात्**' यहाँ पर धात्वर्थतावच्छेदकीभूत मरण का स्वोद्देश्यकत्व सम्बन्ध से कृति में अन्वय सम्भव होने पर ही उक्त विशिष्टकर्तृत्व का निषेधविधिविषयत्व सम्भव है, किन्तु मरण की उपस्थिति व्यापार विशेषणत्वेन होने के कारण कृतिविशेषणतया मरण का अन्वय व्युत्पत्तिविरुद्ध है। इसकारण स्थिति यही बनती है कि सामान्यतः कर्तृत्व का ही निषेधविधिविषयत्व होगा। इसमें समस्या यह है कि अन्य मृगादि के उद्देश्य से नाराचक्षेप से ब्राह्मण मरण होने पर भी नाराचक्षेप कर्ता में सामान्यतः ब्राह्मणवधकर्तृत्व है क्योंकि ब्राह्मणमरणानुकूलव्यापारानुकूल कृतिमत्त्व

नाराचक्षेपकर्ता में है। उक्त सामान्यतः ब्राह्मणवधकर्तृत्व में भी निषेधविधि विषयत्व आयेगा। इसलिए उक्तस्थिति में भी ब्राह्मणवध के लिए विहित प्रायश्चित्त होना चाहिए। इसमें सीधा तर्क ये है कि उक्त निषेध विधि से जैसा ब्राह्मणवधकर्तृत्व निषिद्ध है वैसे ब्राह्मणवधकर्तृत्व के होने पर ब्राह्मणवध के लिए विहित प्रायश्चित होना चाहिए। इस समस्या के समाधान के लिए कहा ये जा रहा है यद्यपि सामान्यतः ब्राह्मणवध कर्तृत्व ही निषेध विधि का विषय है इसीलिए अनजाने भी ब्राह्मणवध करने वाले को नरकप्राप्ति होती है। अनजाने में किया हुआ ब्राह्मणवध भी नरक साधन होता है। किन्तु अनजाने ब्राह्मणवधं के लिए ब्राह्मणवध हेतु विहित प्रायश्चित्त जैसे प्रायश्चित्त का विधान नहीं है क्योंकि प्रायश्चित्त विधि में मरणोद्देशेन मरणानुकूलव्यापारकर्तृत्वबोधक शब्द का अन्तर्भाव है। इसकारण जहाँ पर मरणोद्देशेन मरणानुकूलव्यापारकर्तृत्व होता है उसी के लिए उक्त प्रायश्चित्तविधि है। जहाँ पर ऐसा कर्तृत्व नहीं है वहाँ पर उक्त प्रायश्चित्तविधि नहीं है। इस प्रकार उक्त निषेध विधि के द्वारा सामान्यतः ब्राह्मणवध कर्तृत्व को विषय करने पर भी सामान्यतः वध कर्ता के लिए प्रायश्चित्तविधान होने की आशंका भी समाहित हो जाती है।

तो इस प्रकार से भी ब्राह्मणमरणकामना से जहाँ पर ब्राह्मणमरणानुकूलव्यापार का अनुष्ठान नहीं किया गया अपितु फलान्तर (धन आदि ग्रहण) की कामना के अधीन ब्राह्मणमरणानुकूलव्यापारत्वप्रकारक चिकीर्षा से ब्राह्मणमरणानुकूलव्यापार अनुष्ठित हुआ वहाँ पर प्रायश्चित्तविधिविषयत्व की अव्याप्ति इस मत में दुर्वार ही है, वहाँ पर सम्पूर्ण ही प्रायश्चित्त का आचरण होने के कारण उक्त विधिविषयत्व की अलक्ष्यता का उपगम तो असम्भव ही है।

चूँकि धनाहरणादि के उद्देश्य से ब्राह्मणमरणानुकूलव्यापार किया गया है इसलिए वहाँ पर ब्राह्मणमरणोद्देशेन ब्राह्मणमरणानुकूलव्यापारकृत्व नहीं (उद्देश ब्राह्मण मरण नहीं धनाहरणादि हैं) ऐसी स्थिति में उक्त वधकर्तृत्व में प्रायश्चित्तविधिविषयत्व नहीं होगा, प्रायश्चित्तविधिविषयत्व तो ब्राह्मणमरणोद्देशेन ब्राह्मणमरणानुकूलव्यापारकर्तृत्व में ही होगा यह ब्राह्मणमरणानुकूलव्यापारकर्तृत्व तो धनाहरणोद्देशेन है । अतः अव्याप्ति होगी।

मैवम्– यत्र हि मरणानुकूलव्यापारत्वेन कृतिसाध्यताधीस्तत्रेव यत्र व्यापारविशेषत्वेनैव तद्धीस्तत्रापि मरणरूपफलकामनाधीनव्यापारविषयिणी कृतिर्मरणानुकूलत्वेन व्यापारमवगाहते–कृतेः कामनाविषयफलोपरागेणोपायविषयतोपगमात्, विशृङ्खलफलभानोपगमे यत्र तृप्तिकामनया भोजनं फलान्तरकामनया च गमनमवगाहमाना समूहालम्बनकृतिस्तत्र 'तृप्तये गमनं करोति' इति व्यवहारापत्तेः। उपायांशे फलस्यानुकूलत्वं सम्बन्धः प्रकारो वेत्यन्यदेतत् । एवञ्च मरणावच्छिन्नव्यापारविषयकत्वमुभयत्रैव कृतेरिति विशेषणावच्छिन्नविषयककृतिमत्त्वरूपं विशिष्टकर्तृत्वमुभयस्थले निष्प्रत्यूहम्। मरणोद्देशेनानुष्ठीयमानत्वमपि मरणानुकूलत्वोपरागेण कृतिविषयत्वरूपमेव लक्षणघटकमिति न कापि दुरुपपत्तिः।

'अथ' शब्द से पृ०557 द्वारा जो आशङ्का उठायी गयी थी उसी का समाधान अब **'मैवम् -'** से प्रारम्भ कर रहे हैं—

ऐसा नहीं है, जहाँ पर मरणानुकूलव्यापारत्वेन कृतिसाध्यताज्ञान होता है, वहाँ की तरह जहाँ पर व्यापारविशेषत्वेन कृतिसाध्यताज्ञान होता है वहाँ पर भी मरणरूपफलकामनाधीन व्यापारविषयककृति मरणानुकूलत्वेन व्यापार का अवगाहन करती है क्योंकि कृति की कामनाविषय फल के उपराग से उपायविषयता स्वीकारी जाती है। आशय यह है कि यदि **'मरणानुकूलव्यापारो मत्कृतिसाध्यः'** ऐसा कृति साध्यत्वज्ञान हो तो इसमें व्यापार का मरणानुकूलत्वेन अवगाहन होता ही है, इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं है। किन्तु यदि व्यापार विशेषत्वेन कृतिसाध्यताज्ञान होता है जैसे **'खड्गाभिघातो मत्कृतिसाध्यः'** ऐसा कृति साध्यताज्ञान होता है तो इसमें अभी तक आप जैसा मान रहे थे कि मरणानुकूलत्वेन खड्गाभिघातात्मक व्यापार का अवगाहन नहीं होता है तो ऐसा नहीं है बल्कि यहाँ पर भी मरणरूप कामना के अधीन खड्गाभिघातात्मक व्यापार को विषय करने वाली कृति मरणानुकूलत्वेन खड्गाभिघात का अवगाहन किया करती है । कारण ये है कि कृति कामना के विषयीभूत फल के उपराग से ही उपाय को विषय किया करती है। यहाँ पर खड्गाभिघात उपाय है यदि कृति उसको विषय करेगी, तो उस खड्गाभिघात जन्य फल, जो कि कामना विषय है, के उपराग से ही खड्गाभिघात को विषय करेगी।

विशृङ्खल रूप से फल का भान स्वीकारने पर जहाँ पर तृप्ति की कामना से भोजन और फलान्तर की कामना से गमन का अवगाहन करने वाली समूहालम्बन कृति हुई वहाँ पर **'तृप्तये गमनं करोति'** ऐसे व्यवहार की आपत्ति है। भाव यह है कि यदि उपाय विषयककृति उपायजन्य कामनाविषयीभूत फल का अवगाहन नियम से करती है ऐसा न हो तो यदि किसी को कृति साध्यत्वज्ञान समूहालम्बनात्मक हो जाये **'भोजनं गमनञ्च मत्कृतिसाध्यम्'** 'भोजन और गमन मेरी कृति से साध्य हैं' इस समूहालम्बनात्मक कृति साध्यत्व ज्ञान के पूर्व कामना हुई है **'तृप्तिर्भवतु, फलान्तरं भवतु'** 'तृप्ति होवे, फलान्तर होवे' उपर्युक्त कृतिसाध्यता ज्ञान कामनाओं के अधीन है। उक्त कृतिसाध्यत्वज्ञान में तृप्ति और फलान्तर रूप फलानुकूलत्वेन क्रमशः भोजन और गमन का यदि अवगाहन न हो तो जैसे **'तृप्तये भोजनं करोति'** प्रयोग होता है वैसे **'तृप्तये गमनं करोति'** प्रयोग भी होने की आपत्ति आ जायेगी। इस प्रकार यह तय है कि उपायांश की फलानुकूलत्वोपरागेण ही कृति विषयता होती है।

यह अलग बात है कि उपायांश में फल का अनुकूलत्व संसर्गविधया भासता है या प्रकार होता है। इस प्रकार मरणावच्छिन्नव्यापार विषयकत्व दोनों ही स्थलों में कृति का होता है । दोनों स्थलों का अभिप्राय यही है जहाँ पर मरणानुकूलव्यापारत्वेन कृतिसाध्यताज्ञान होता है वहाँ पर और जहाँ पर खड्गाभिघातत्वेन कृति साध्यताज्ञान होता है वहाँ पर दोनों ही स्थलों में कृति मरणावच्छिन्न व्यापार विषयक होती है। इस कारण विशेषण से अवच्छिन्न कृतिमत्त्वरूपी विशिष्टकर्तृत्व दोनों ही स्थलों में विना विघ्नबाधा के उपपन्न हो जायेगा। मरणोद्देशेन अनुष्ठीयमानत्व भी मरणानुकूलत्वोपराग से कृतिविषयत्व रूप ही लक्षण का घटक होता है। इसलिए कोई अनुपपत्ति नहीं है।

अभिप्राय यह है कि हिंसालक्षणघटक मरणोद्देशेन अनुष्ठीयमानत्व का अर्थ भी 'मरणानुकूलत्वोपराग से कृतिविषयत्व' ही है। इसलिए जहाँ पर ब्राह्मणमरणानुकूलत्वोपराग से कृतिविषयत्व ब्राह्मणमरणानुकूल व्यापार में होगा वहाँ पर सम्पूर्ण प्रायश्चित्त का ही विधान है। जब धनाहरणादि की कामना से ब्राह्मणमरणानुकूलव्यापार आचरित होता है तब भी ब्राह्मणमरणानुकूलव्यापार विषयिणी कृति में ब्राह्मणमरणानुकूलत्वोपराग से ही विषयत्वं आयेगा। इसलिए वहाँ पर भी सम्पूर्ण प्रायश्चित्त का ही विधान किया गया है।

यद्याप्यदृष्टद्वारा पाकानुकूलकृतिमतोऽपि न पाकादिकर्तृत्वमिति तत्क्रिया-कर्तृत्वघटककृतिनिष्ठतदनुकूलत्व एवादृष्टाद्वारकत्वमपेक्षितं न तु क्रियानिष्ठ-फलानुकूलत्वे तदपेक्षितमिति व्यापारनिष्ठमरणानुकूलत्वेऽदृष्टाद्वारकत्व-रूपमणिकारोक्तविशेषणस्य न कर्तृताघटकत्वम्, तथाप्यनुष्ठीयमानत्वप्रविष्ट-कृतेरेवादृष्टाद्वारकमरणानुकूलत्वं विवक्षितं विशिष्टकर्तृत्वञ्चादृष्टाद्वारक-त्वविशेषितमरणानुकूलत्वेन कृतिविशेषणेन घटितमिति मिश्राशयः।

यद्यपि अदृष्ट द्वारा पाकानुकूलकृतिमान् का भी चूँकि पाकादिकर्तृत्व नहीं होता है इसलिए तत्क्रियाकर्तृत्वघटक कृति में रहने वाले पाकानुकूलत्व में ही अदृष्टाद्वारकत्व अपेक्षित है न कि क्रियानिष्ठफलानुकूलत्व में वह अपेक्षित है। अभिप्राय यह है कि यदि कोई व्यक्ति मन्त्रादि के द्वारा पाक कर रहा है उस स्थिति में मन्त्र से अदृष्ट और अदृष्ट द्वारा पाक हो रहा है। किन्तु अदृष्ट द्वारा पाक होने की दशा में अदृष्टद्वारा पाकानुकूलकृतिमान् में (पाककर्ता में) पाककर्तृत्व नहीं होता है, पाककर्तृत्व का व्यवहार नहीं होता है। इस कारण अदृष्टाद्वारक जो पाकानुकूल कृति है वही पाककर्तृत्व है ऐसा स्वीकारा जाता है। इस प्रकार तक्रियाकर्तृत्वघटकीभूत कृति अंश में रहने वाले तत्क्रियानुकूलत्व में ही अदृष्टाद्वारकत्व अपेक्षित होता है। यहाँ पर ध्येय यह है एक तो व्यापार में फलानुकूलत्व होता है और दूसरा कृति में व्यापारानुकूलत्व होता है। इसमें कृतिनिष्ठ व्यापारानुकूलत्व में ही अदृष्टाद्वारकत्व अपेक्षित होता है। व्यापारनिष्ठ फलानुकूलत्व में अदृष्टाद्वारकत्व अपेक्षित नहीं होता है।

व्यापारनिष्ठ मरणानुकूलत्व में अदृष्टाद्वारकत्व रूप मणिकारोक्त विशेषण का कर्तृताघटकत्व ही नहीं है (क्योंकि वह अनपेक्षित है) तथापि व्यापार में मरणानुकूलत्व अदृष्टाद्वारक नहीं विवक्षित होकर अनुष्ठीयमानत्वप्रविष्ट कृति का ही अदृष्टाद्वारकमरणा-नुकूलत्वविवक्षित है और विशिष्ट कर्तृत्व अदृष्टाद्वारकत्व विशेषितमरणानुकूलत्व रूप कृति विशेषण से घटित है। अर्थात् अदृष्टाद्वारकमरणानुकूलत्व रूप कृति विशेषण की विशिष्टकर्तृत्व हेतु आवश्यकता होती ही है। उसी से घटित विशिष्टकर्तृत्व विवक्षित है। ऐसा मिश्र का आशय है।

तथा चैवं पर्यवसितम्- हिनस्तेः प्रवृत्तिनिमित्तं मरणरूपफलावच्छिन्न व्यापारत्वमेव 'न हिंस्यात्' इत्यादौ फलविशिष्टस्वनिरूपितकर्तृत्वसम्बन्धेन हिनस्त्याद्यर्थस्यानिष्टविशेषसाधनत्वं प्रतीयते, श्येनस्य हिनस्त्याद्यर्थत्वेऽपि न तस्य तादृशकारणतावच्छेदकसम्बन्धेन क्वचिदपि सत्त्वम्- तत्कर्तुरदृष्टा

द्वारकानुकूलताघटितफलकर्तृत्वविरहेण विशिष्टाकर्तृत्वादिति नानिष्टविशेषं प्रति हिंसात्वेन साधनत्वमिति न क्रियायां विध्यर्थान्वयमतेऽपि श्येन विध्यर्थबाधः।

तो इस प्रकार यह पर्यवसित हुआ- हिनस्ति (हिंसार्थक धातु) का प्रवृत्तिनिमित्त मरणरूपफलावच्छिंन्नव्यापारत्व ही है (मरणावच्छिन्नव्यापारत्व विशिष्ट में हिंसा पद का प्रयोग होता है) **'न हिंस्यात्'** इत्यादि स्थलों में फलविशिष्ट स्वनिरूपित कर्तृत्वसम्बन्ध से हिंस धातु के अर्थ का अनिष्टविशेषसाधनत्व प्रतीत होता है, श्येन के हिनस्ति आदि का (हिंसार्थक धातु का) अर्थ होने पर भी (मरणावच्छिन्न व्यापाररूप होने पर भी) उसका कहीं पर भी कारणतावच्छेदक सम्बन्ध से सत्त्व नहीं है क्योकि श्येन यागकर्ता का अदृष्टाद्वारक अनुकूलता घटित फलकंर्तृत्व न होने के कारण विशिष्ट कर्तृत्व नहीं होता है इसलिए अनिष्ट विशेष के प्रति हिंसात्वेन साधनत्व नहीं है। अतः क्रिया में विध्यर्थान्वय के मत में भी श्येनविध्यर्थ का बाध नहीं है

अभिप्राय यह है—मत है कि क्रिया में विध्यर्थ का अन्वय होता है। विध्यर्थ है इष्टसाधनत्व। **'श्येनेनाभिचरन् यजेत'** 'श्येन से अभिचार करता हुआ याग करे' यहाँ पर यज्धातूत्तर विधिलिङ् का अर्थ इष्टसाधनत्व होगा। इस इष्ट साधनत्व का अन्वय हमको कहाँ पर करना है ? श्येन कारणक याग (श्येन याग) में क्योंकि वही क्रिया है। किन्तु समस्या यह है कि श्येन याग तो हिंसा है और हिंसा अनिष्टविशेषसाधन होती है। ऐसी स्थिति में श्येन याग में विध्यर्थ इष्टसाधनत्व का अन्वय कैसे किया जाये ? वह तो बाधित होगा? इसी का समाधान गदाधर **'तथा चैवं पर्यवसितम्'** प्रतीक से कर रहे हैं। कहना है- मरणरूपफलावच्छिन्न व्यापार हिंसा है **'न हिंस्यात् सर्वभूतानि'** 'सभी भूतों की हिंसा नहीं करनी चाहिए' इत्यादि स्थलों में फलविशिष्ट स्वनिरूपित कर्तृत्व सम्बन्ध से हिंसा का अनिष्टविशेषसाधनत्व प्रतीत होता है, 'मरणरूपफलावच्छिन्नव्यापार' जहाँ पर स्वनिरूपितकर्तृत्व सम्बन्ध से रहेगा वहीं पर अनिष्ट विशेष का साधन करेगा। इस सम्बन्ध से जहाँ पर नहीं है वहाँ पर अनिष्ट विशेष का साधन नहीं होगा। श्येन याग यद्यपि हिंसा है, मरण रूपफलावच्छिन्न व्यापार है तथापि स्वनिरूपित कर्तृत्व सम्बन्ध से कहीं पर भी नहीं रहता है। क्योंकि यहाँ पर कर्तृत्व पद से उपर्युक्त विशिष्ट कर्तृत्व को लेना है और श्येनयागकर्ता में अदृष्टाद्वारक मरणानुकूल कर्तृत्व नहीं है क्योंकि श्येन याग से अदृष्टद्वारक ही मरण होता है न कि अदृष्टाद्वारक । इसलिए श्येनयाग में अनिष्टविशेषसाधनत्व नहीं ही उपपन्न हो सकता है। फलतः श्येनयाग में इष्ट साधनत्व रूपी विध्यर्थ का अन्वय होने में कोई बाध नहीं है। यदि सामान्यतः हिंसात्वेन अनिष्टविशेषसाधनत्व होता तब तो श्येन विध्यर्थबाध होता, किन्तु सामान्यतः हिंसात्वेन अनिष्ट विशेषसाधनत्व नहीं है अपितु हिंसात्वेन स्वनि रूपित कर्तृत्व सम्बन्ध से अनिष्टविशेषसाधनत्व है तथा उक्त सम्बन्ध कुक्षि में विशिष्टकर्तृत्व प्रविष्ट है।

वस्तुतः श्येनानुकूलकृतेर्मरणप्रयोजकत्वमेव न तु मरणकारणत्वम्

अन्यथासिद्धत्वात् मरणोपलक्षितान्यकर्तृकखड्गाभिघातादिरूपवैरिवधं प्रत्येव श्येनस्य हेतुताया वेदेन बोधितत्वात्। क्रियाजन्यकार्ये तत्क्रियानुकूलकृति-हेतुताया नियमेऽपि खड्गाभिघातादावेव श्येनकृतेर्हेतुत्वात्। तथा चानिष्ट-विशेषफलजनकतावच्छेदकप्रत्यासत्तिप्रविष्टमरणानुकूलत्वं मरणजनकत्वमेव न तु प्रयोजकत्वम्। अतोऽदृष्टाद्वारकत्वं न तत्र निवेशनीयम् कारणत्वपर्यन्त-निवेशलाभायैव वा तदुपादानम्।

यदि च विशिष्टान्वयपरताया वेद औत्सर्गिकत्वेन वधसाधनता-बोधकश्रुत्या विशेषणीभूतमरणसाधनतापि श्येनस्य प्रत्याय्यते तदापि श्येनानुकूलकृतेर्मरणसाधनत्वमप्रामाणिकमेव–क्रियाजनककृतेस्तज्जन्य-जनकतानियमस्याप्रामाणिकत्वात्।

वस्तुतः श्येनानुकूल (श्येन यागानुकूल) कृति का मरण प्रयोजकत्व ही होता है मरण कारणत्व नहीं होता है क्योंकि वह अन्यथासिद्ध है मरणोपलक्षितान्यकर्तृक खड्गाभिघाता दिरूप वैरिवध के प्रति ही श्येन की हेतुता वेदबोधित है। क्रियाजन्य कार्य में उसक्रिया कारणीभूत कृति की हेतुता का नियम होने पर भी खड्गाभिघातादि में ही श्येनकृति की हेतुता है। इस प्रकार अनिष्टविशेषफलजनकतावच्छेदकप्रत्यासत्ति में प्रविष्ट मरणानुकूलत्व मरणजनकत्व ही है मरणप्रयोजकत्व नहीं। इसलिए उसमें अदृष्टाद्वारकत्व विशेषण नहीं देना चाहिए अथवा कारणत्वपर्यन्त निवेशलाभ के लिए ही अदृष्टाद्वारकत्व विशेषण दिया गया है।

यहाँ पर गदाधर अपना मत बता रहे हैं। इसमें मूल कथ्य यह है कि अदृष्टाद्वारकत्व विशेषण देने की ज़रूरत नहीं है। कहना है कि श्येन याग के अनुकूल कृति मरणकारण नहीं होती है मरणप्रयोजक होती है। क्योंकि मरण के प्रति श्येनयागानुकूल कृति अन्यथा सिद्ध है और कारण तो अनन्यथासिद्ध ही हो सकता है। श्येन यागानुकूल कृति मरण के प्रति अन्यथासिद्ध क्यों है? इसका कारण यह है कि मरणोपलक्षित अन्यकर्तृक खड्गाभिघातादिरूप शत्रुवध के प्रति ही श्येन की हेतुता वेद से बोधित है। इससे सिद्ध यही होता है कि श्येन याग की कारणता खड्गाभिघात आदि के प्रति ही है और शत्रुमरण के प्रति खड्गाभिघात आदि ही कारण हैं। सीधे-साधे शत्रु मरण के प्रति श्येनयाग कारण नहीं है। इस प्रकार श्येनयागानुकूलकृति मरण के प्रति अन्यथासिद्ध होने के कारण कारण नहीं बनती है। क्रिया से जन्य कार्य में ही क्रियाजनककृति कारण होती है ऐसा नियम है। श्येनयाग रूपी क्रिया से जन्यकार्य है अन्यकर्तृक खड्गाभिगातात्मक कार्य। अतः श्येनयागजनक कृति अन्यकर्तृक खड्गाभिघाताद्यात्मक कार्य के प्रति ही कारण होगी। इस प्रकार अनिष्टविशेष फल के प्रति जनकतावच्छेदकीभूत प्रत्यासत्ति स्वकर्तृत्व में—**'अनिष्ट विशेष के प्रति स्वकर्तृत्व सम्बन्ध से मरणावच्छिन्न व्यापार कारण है'** ऐसा कार्यकारणभाव है, इसमें कारणतावच्छेदक सम्बन्ध है स्वकर्तृत्व, उसमें—घटकीभूत मरणानुकूलत्व मरणजनकत्व ही है, मरणप्रयोजकत्व नहीं है। इसलिए अदृष्टाद्वारकत्व का निवेश स्वकर्तृत्व घटक मरणानुकूलत्व में नहीं करना

चाहिए। अदृष्टद्वारक मरण जनकत्व तो होता ही नही है, अदृष्टद्वारक तो मरण प्रयोजकत्व ही हो सकता है। इसकारण यदि मरणानुकूलत्व का अर्थ मरणजनकत्व है तो उसके लिए अदृष्टाद्वारकत्व विशेषण देने की कोई भी आवश्यकता नहीं है। वह तो व्यर्थ ही है। अथवा अदृष्टाद्वारकत्वनिवेश से ही मरणजनकत्व का लाभ होता है, जनक प्रयोजक साधारण अनुकूलत्व प्रविष्ट है किन्तु चूँकि अदृष्टाद्वारक मरणानुकूलत्व मरणजनकत्व ही है। अतः अदृष्टाद्वारकत्व विशेषण देने से मरणकारणत्व का लाभ हो जाता है। इस प्रकार वस्तुतः अदृष्टाद्वारकत्व विशेषण न देने पर भी कोई नुकसान नहीं है।

यदि वेद में विशिष्टान्वयपरता के औत्सर्गिक होने के कारण वधसाधनता बोधक श्रुति से विशेषणीभूत मरणसाधनता भी श्येनयाग का प्रत्याय्यित होता है, तब भी श्येनानुकूल कृति का मरणसाधनत्व अप्रामाणिक ही है क्योंकि क्रियाजनक कृति का क्रियाजन्य कार्यजनकता का नियम अप्रामाणिक है।

अभिप्राय यह है कि यदि कोई कहे कि वेद में उत्सर्गतः (नियम पूर्वक–कोई विशेष नियम न रहने पर) विशिष्टान्वयपरता होती है (विशेषण और विशेष्य दोनों के साथ ही अन्वय होता है) तो इस कारण वधसाधनता बोधकश्रुति से वधविशेषणीभूत मरणसाधनता भी श्येन में प्रतिपादित होती है। वध का अर्थ 'मरणावच्छिन्नव्यापार' है मरणावच्छिन्नव्यापार का साधनत्व यदि श्येन याग में वेद द्वारा बोधित है तो इसमें विशेषणीभूत मरण का साधनत्व भी श्येन याग में वेद द्वारा बोधित होता है। यही विशिष्टान्वय है। यदि ऐसा मान लें तो यह तो ठीक है कि श्येनयाग मरण के प्रति कारण है किन्तु श्येनयागानुकूलकृति भी उस मरण के प्रति कारण है यह कहाँ से आया? श्येनयागानुकूल कृति मरण के प्रति कारण नहीं ही है। 'जो कार्य जिस क्रिया से जन्य होता है वह उस क्रिया के प्रति कारणीभूत कृति से भी जन्य होता है' इस नियम की तो प्रामाणिकता ही नहीं है । यदि यह नियम प्रामाणिक होता तब तो इस नियम के आधार पर श्येन यागानुकूलकृति की कारणता श्येनयागजन्यमरण में आप सिद्ध कर सकते हैं। किन्तु यह नियम ही तो अप्रामाणिक है।

अथान्योद्देशेन नाराचक्षेपकर्तुर्विशिष्टविषयककृतिमत्त्वघटितविशिष्ट-कर्तृताविरहेऽपि यथार्धवधजन्यपापप्रायश्चित्तं तथा श्येनकर्तुर्विशिष्टाकर्तृत्वात् पापार्धस्यावश्यकत्वाद् बलवदनिष्टाननुबन्धित्वबाधो दुर्वार एवेति चेत् ? न– अकामकृतेप्यर्धप्रायश्चित्तस्मरणेन मरणावच्छिन्नव्यापारस्य विषयता-मनन्तर्भाव्य विशिष्टजनककृतिमत्त्वसम्बन्धेन न्यूनपापे स्वतन्त्र-हेतुत्वकल्पनात्। तद्बलेन विशिष्टकर्तुर्हिंसाजन्यपापानुत्पत्तेः।

यदि कहो कि अन्योद्देशेन नाराचक्षेपकर्ता की विशिष्टविषयककृतिमत्त्वघटित विशिष्टकर्तृता न रहने पर भी (अन्योद्देशेन नाराचक्षेपकर्ता की विशिष्टकर्तृता कैसे नहीं है यह पिछले पृष्ठों में प्रतिपादित है) जैसे अर्धवधजन्यपाप का प्रायश्चित्त होता है उसी प्रकार श्येन कर्ता की भी विशिष्टकर्तृता न होने के कारण (पूर्णवधजन्यपाप न होने पर भी) अर्धवधजन्य पाप का प्रायश्चित्त आवश्यक है, इस प्रकार श्येनयाग में (अनिष्ट साधनत्व ही होने के कारण)

बलवदनिष्टाननुबन्धित्व का बाध दुर्वार ही होगा। अर्थात् विध्यर्थ इष्टसाधनत्व का अन्वय श्येन विधि में करना सम्भव नहीं हो पायेगा । श्येनयाग में अनिष्टसाधनत्व ही मौजूद है, अतः इष्टसाधनत्व रूप विध्यर्थ का अन्वय कैसे होगा?

तो ऐसा नहीं है क्योंकि अकामकृति (बगैर कामना के कृत) होने पर भी आधे प्रायश्चित्त का स्मरण किया गया है, इसलिए मरणावच्छिन्नव्यापार की विषयता का अन्तर्भाव किये बिना ही फलविशिष्टव्यापारजनककृतिमत्त्व सम्बन्ध से न्यूनपाप में स्वतन्त्र हेतुता की कल्पना करते हैं और उसी के बल से विशिष्टाकर्ता श्येनकर्ता को पापजन्यफल की उत्पत्ति नहीं होती है।

आशय यह है प्रतिपादित रीति से मरणावच्छिन्नव्यापारनिरूपित विशिष्टकर्तृत्व जहाँ पर होगा उसी के लिए सम्पूर्ण प्रायश्चित्तविधान है। बग़ैर कामना के कृत होने पर जो अर्ध प्रायश्चित्त का विधान है वह किस आधार पर है? क्या मरणावच्छिन्नव्यापारकर्तृत्वविशिष्ट, विशिष्टाकर्तृत्व के आधार पर है? तो ऐसा नहीं मरणावच्छिन्नव्यापार का अन्तर्भाव करके यह अर्धप्रायश्चित्तविधान नहीं है। तो कैसे है ? मरणविशिष्टव्यापारजनककृतिमत्त्वसम्बन्ध से मरणविशिष्टव्यापार न्यूनपाप के प्रति अलग से कारण है। अनजाने में नाराचक्षेप से ब्राह्मणमरण होने पर भी ब्राह्मणमरणानुकूल व्यापारजनककृतिमत्त्व नाराचक्षेपकर्ता में है । अतः उसके लिए अर्धपाप का विधान है। श्येनयागकर्ता में शत्रुमरणानुकूलव्यापार (खड्गाभिघातादि) जनककृतिमत्त्व नहीं है। क्योंकि खड्गाभिघाताद्यात्मकव्यापार जनक कृति तो खड्गाभिघात करने वाले में रहेगी न कि श्येन याग कर्ता में । अतः विशिष्टजनककृतिमत्त्व शत्रुमरणानुकूल व्यापार श्येन यागकर्ता में न होने से उसके लिए प्रायश्चित्तस्मरण नहीं है। उसको हिंसाजन्य पापार्ध की भी उत्पत्ति नहीं होती है।

न च लाघवेन मरणोपलक्षितव्यापारजनकत्वमेव प्रत्यासत्तिमध्ये निवेश्यतामिति वाच्यम्; श्रुत्यर्थबाधापादकलाघवस्याप्रयोजकत्वात्। वेदस्थले विशिष्टान्वयस्यौत्सर्गिकत्वेऽपि श्येनस्य मरणजनकत्वे विध्यर्थबाधप्रसङ्गेन मरणं प्रति श्येनस्यान्यथासिद्धताया एवोपगन्तव्यतया तस्य जनकतागर्भ हिनस्त्यर्थतावच्छेदकरूपशून्यताया अपि सूपपादत्वात् ।

यदि कहो कि मरणोपलक्षितव्यापारजनकत्व का ही लाघव होने के कारण प्रत्यासत्ति के बीच में निवेश करना चाहिए। अर्थात् विशिष्टजनककृतिमत्त्व सम्बन्ध से मरणा वच्छिन्नव्यापार की कारणता न्यूनपाप के प्रति स्वीकारने की अपेक्षा मरणोपलक्षितव्यापार की जनकत्व सम्बन्ध से न्यूनपाप के प्रति कारणता स्वीकारने में लाघव है, इसलिए मरणोपलक्षित व्यापारजनकत्व का ही प्रत्यासत्ति के अन्तर्गत निवेश करना चाहिए।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि श्रुत्यर्थबाधापादक लाघव अप्रयोजक होता है। श्येनयाग के भी मरणोपलक्षित व्यापार रूप हो जाने के कारण श्येन भी न्यूनपापजनक होने लगेगा जबकि अनजाने किये हुए वध में जैसे अर्धपापजनकत्व है वैसे श्येन में नहीं है। इस तरह श्रुत्यर्थ श्येनविध्यर्थ का बाध होने लगेगा। इसकारण विशिष्टजनककृतिमत्त्वसम्बन्ध से

ही मरणावच्छिन्नव्यापार की न्यूनपाप के प्रति स्वतन्त्र हेतुता कल्पित करनी चाहिए। वेदस्थल में विशिष्टान्वय के औत्सर्गिक होने पर भी श्येन के मरणजनक होने पर (विशिष्टान्वय होने की स्थिति में व्यापार रूप विशेष्य के प्रति और विशेषणांश मरण के प्रति श्येन की कारणता होगी, इसलिए श्येन मरणजनक होगा) विध्यर्थबाधप्रसङ्ग होने के कारण (श्येन में इष्ट साधनत्व का बोध होने के कारण) मरण के प्रति श्येन की अन्यथा सिद्धता ही स्वीकार्य होने के कारण उसका प्रयोजकत्व ही बन सकेगा जैसा कि पूर्व में पृ. 566 पर स्पष्ट किया गया है। इस प्रकार श्येन याग की जनकतागर्भ हिंसार्थतावच्छेदकरूप शून्यता भी सूपपाद है। (इस विषय में भी पूर्व में पृष्ठ 566 पर ही स्पष्टतः विवेचन किया गया है)

न च यदि खड्गाभिघातजनकादृष्टव्यवहितस्य श्येनस्य मरणेऽन्यथासिद्धत्वं तदा हननकर्तृव्यापारोऽपि तत्रान्यथासिद्धः स्यात् यश्च मरणेऽव्यवहितसाधनं तत्र तद्धेतुः कृतिरेवान्यथासिद्धेति मरणकारण-व्यापारकारणकृतिमत्त्वं न कस्यापि हेतुः स्यादिति वाच्यम्; तण्डुल-विक्लित्यादिरूपफलव्यवहितस्यापि तुषादिप्रक्षेपस्य तत्करणदशायां 'पचति' इत्यादिव्यवहारानुरोधेन यथाऽनन्यथासिद्धत्वं तथा खड्गप्रक्षेपा-दिकरणदशायां 'हन्ति' इति व्यपदेशानुरोधेन तत्र व्यवहितस्यापि मरणेऽनन्यथा सिद्धत्वमवश्याभ्युपेयमिति सामञ्जस्यात् ।

यदि कहो- यदि खड्गाभिघात जनक अदृष्ट से व्यवहित श्येन का मरण में अन्यथासिद्धत्व है (अदृष्ट से व्यवहित होने के कारण मरण के प्रति श्येन कारण नहीं होता है अन्यथासिद्ध होता है) तब तो हननकर्ता का व्यापार (कृतिरूपव्यापार) भी मरण में अन्यथासिद्ध हो जायेगा, जो व्यापार मरण में अव्यवहित साधन (विना किसी के व्यवधान के कारण) है, वहाँ पर (उस मरण स्थल में) वही व्यापार ही उस मरण के प्रति कारण होता है, कृति तो अन्यथासिद्ध ही होगी, इस तरह मरणकारणव्यापारकारणकृतिमत्त्व तो किसी का भी हेतु नहीं हो सकेगा। क्योंकि जैसे श्येनप्रयोज्य मरण के प्रति श्येन अदृष्ट से व्यवहित हो के कारण अन्यथासिद्ध हो जाता है कारण नहीं रहता है, उसी प्रकार हननकर्ता का कृति रूप व्यापार भी मरण के प्रति खड्गाभिघात से व्यवहित होने से अन्यथा सिद्ध हो जायेगा कारण नहीं हो सकेगा।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि तण्डुलविक्लिति आदि रूप फल से व्यवहित भी तुषादिप्रक्षेप (भूसी झोंकने) का जैसे भूसी झोंकने के काल में '**पचति**' इस व्यवहार के अनुरोध से अन्यथासिद्धत्व नहीं होता है, उसी प्रकार से खड्गप्रक्षेपादि करने की दशा में '**हन्ति**' इस व्यपदेश के अनुरोध से मरणस्थल में व्यवहित भी खड्ग प्रक्षेपादि का मरण में अनन्यथासिद्धत्व अवश्य ही स्वीकार्य है । इसलिए सामञ्जस्य बन जाता है।

अभिप्राय यह है कि भूसी झोंकने के समय '**पचति**' इस प्रकार का प्रयोग हुआ करता है। यहाँ पर शाब्दबोध होगा '**पाकानुकूलकृतिमान्**' 'पाकानुकूल कृतिमान् है'।

पाक का अभिप्राय है तण्डुलविक्लित्यनुकूलव्यापार। किन्तु तुषप्रक्षेपात्मकव्यापार तण्डुलविक्लिति के अनुकूल नहीं है क्योंकि तण्डुलविक्लिति तुषप्रक्षेप से अव्यवहित नहीं है। तथापि तण्डुल विक्लिति के प्रति तुषादिप्रक्षेप का अन्यथासिद्धत्व नहीं स्वीकारा जाता है, तुषादिप्रक्षेप का तण्डुलविक्लिति के प्रति कारणत्व (अनुकूलत्व) ही स्वीकारा जाता है। उसी प्रकार खड्गप्रक्षेपानुकूलकृति की दशा में या खड्गप्रक्षेप करने की दशा में '**हन्ति**' इस प्रकार के व्यपदेश के अनुरोध से व्यवहित भी खड्ग प्रक्षेप का या खड्गप्रक्षेपानुकूल कृति का मरण में अनन्यथासिद्धत्व अवश्य स्वीकार्य है। कारणत्व ही स्वीकार्य है अन्यथासिद्धत्व नहीं। इसी से सब कुछ समञ्जस होता है।

तण्डुलक्रयणदशायां 'पचति' इत्याद्यभाववत् खड्गादिनिर्माणदशायां 'हन्ति' इत्यव्यवहारात् तद्व्यापारो मरणेऽन्यथासिद्धतया न हिंसा।

व्याघ्रमरणोद्देशेन कृतो यन्त्रार्पणादिर्यथा तत्र दैवाद् गवादिमरणेऽपि न हिंसारूपस्तथा न व्याघ्रादिहिंसारूपोऽपि–तत्करणदशायां 'हन्ति' इत्यप्रयोगात्। अतथात्वेऽपि तन्मरणोद्देश्यकादृष्टाद्वारकतन्मरणप्रयोजक कृतिजन्यव्यापारस्यापि हिंसावत् पापजनकत्वादुक्तस्थले गोवधाभिसन्धाने गोवधप्रायश्चित्ताचरणमित्यवधेयम्।

तण्डुलक्रयण दशा में (चावल खरीदते समय) '**पचति**' इस प्रयोग के अभाव की तरह (जैसे चावल खरीदने के समय 'पकाता है' ऐसा प्रयोग नहीं होता है उसी तरह) खड्गादि निर्माण दशा में '**हन्ति**' 'मारता है' ऐसा व्यवहार नहीं होने के कारण खड्गादि निर्माणात्मक व्यापार अन्यथासिद्ध होने के कारण हिंसा रूप नहीं होता है। मरण के प्रति अन्यथासिद्ध होने के कारण खड्गादिनिर्माणात्मक व्यापार हिंसा नहीं होता है क्योंकि उस व्यापार में मरणानुकूलत्व नहीं है।

व्याघ्रमरण के उद्देश से किये हुए (बनाए हुए) यंत्र का अर्पणादि रूप व्यापार जैसे उसमें गो आदि का मरण हो जाने पर हिंसा रूप नहीं होता है, उसी प्रकार व्याघ्रादिहिंसारूप भी नहीं होता है क्योंकि उसको करने की दशा में (उक्त यन्त्र का अर्पण करने = लगाने की दशा में) '**हन्ति**' ऐसा प्रयोग नहीं होता है। उक्त यन्त्र के अर्पणादि रूप व्यापार के हिंसा (मरणानुकूलव्यापार) रूप न होने पर भी हिंसा की तरह तन्मरणोद्देश्यक अदृष्टा द्वारक तन्मरणप्रयोजककृतिजन्यव्यापार के भी पापजनक होने के कारण उक्तस्थल में गोवध का अभिसन्धान होने पर गोवध के प्रायश्चित्त का आचरण किया जाता है। यह समझ लेना चाहिए।

अभिप्राय यह है कि जैसे तन्मरणोद्देश्यक अदृष्टाद्वारक तन्मरणानुकूल कृतिजन्य व्यापार, जो कि हिंसा है, पापजनक होता है, उसी प्रकार तन्मरणोद्देश्यक अदृष्टाद्वारक तन्मरणप्रयोजककृतिजन्यव्यापार भी पापजनक हुआ करता है (यद्यपि तन्मरणोद्देश्यक, अदृष्टाद्वारक तन्मरणप्रयोजककृतिजन्यव्यापार हिंसा नहीं है क्योंकि मरणानुकूलव्यापार ही हिंसा है मरणप्रयोजकव्यापार हिंसा नहीं है) इसीलिए व्याघ्रादिमरणोद्देशेन बनाये गये यन्त्र

का यदि गोवध करने के लिए अभिसन्धान कर लिया जाये, गाय का वध करने के लिए उस यन्त्र को लगाया जाये और गाय का वध हो जाये तो गोवध का प्रायश्चित्त करना पड़ता है। क्योंकि वह व्यापार गोमरणोद्देश्यक अदृष्टाद्वारक गोमरणप्रयोजककृति जन्य होता है, अतः हिंसा न होने पर भी वह पापजनक होता है।

एवञ्च 'चैत्रः पचति' इत्यादौ विषयताघटितकर्तृत्वबोधनिर्वाहाय यथा कृतौ पाकादेरुपधायकत्वविषयित्वोभयसम्बन्धेनान्वयः, विषयितायाः सम्बन्धत्वेऽप्युपधायकत्वनिवेश आवश्यकः—पाकाद्यनिष्पत्तिस्थले 'पचति-पश्यति' इत्यादिप्रयोगस्य प्रामाण्यवारकत्वात्, तथा 'चैत्रेण पच्यते' इत्यादावपि तृतीयार्थकृतेर्जन्यत्वविषयत्वोभयसम्बन्धेनान्वयः बोध्यः।

कृतिजन्यत्वस्य तृतीयार्थत्वे जन्यत्वसम्बन्धमध्य एव स्वनिरूपकविषयत्वं प्रवेशनीयम्। कृतिविषयत्वमेव वा तृतीयार्थः, स्वनिरूपकजन्यत्वं विषयतायाः सम्बन्धमध्येऽन्तर्भावनीयम्।

इस प्रकार '**चैत्रः पचति**' 'चैत्र पकाता है' इत्यादि स्थलों में विषयताघटितकर्तृत्व बोधनिर्वाह के लिए जैसे पाक का उपधायकत्व और विषयित्व दोनों ही सम्बन्धों से कृति में अन्वय होता है, विषयिता की सम्बर्न्धता होने पर भी उपधायकत्व निवेश आवश्यक हुआ करता है क्योंकि वह पाकादि की अनिष्पत्ति के स्थल में '**पचति-पश्यति**' इत्यादि प्रयोगों के प्रामाण्य का वारक होता है। इसी तरह '**चैत्रेण पच्यते**' इत्यादि स्थलों में भी तृतीयार्थ कृति का जन्यत्व और विषयत्व इन दोनों ही सम्बन्धों से पाकादि में अन्वय समझना चाहिए।

अभिप्राय यह है कि इस प्रकार से यह निर्धारित हुआ कि मुख्यक्रियाकर्तृत्व केवल क्रियानुकूलकृतिमात्र नहीं है (जैसा कि पृ.555-556 पर उपपादित है) बल्कि तत्क्रियाविषयक तत्क्रियानुकूलकृति ही तत्क्रियाकर्तृत्व है। इसस्थिति में कर्तृत्व का बोध तत्क्रियाविषयता से घटित ही होना चाहिए। इसके लिए जैसे कर्त्राख्यातस्थल '**चैत्रः पचति**' इत्यादि स्थलों में कृति में पाक का उपधायकत्व और विषयित्व दोनों ही सम्बन्धों से अन्वय आवश्यक हुआ करता है। केवल उपधायकत्व सम्बन्ध से अन्वय करने में समस्या यह है कि '**इदं मया भूतं न तु कृतम्**' 'यह मुझसे हो गया मेरे द्वारा किया नहीं गया' ऐसा व्यपदेश बाधित हो जायेगा क्योंकि कृति हो जाने पर कृति में क्रियानुकूलत्व तो है ही, अतः कर्तृत्व ही है और यहाँ पर कर्तृत्वाभाव बोधित हो रहा है। केवल विषयित्व सम्बन्ध से कृति में क्रिया का अन्वय करने पर जहाँ पर पाकहेतु प्रयास किया जा रहा है पाकविषयक कृति हो रही है किन्तु पाक उत्पन्न नहीं हो पा रहा है। वहाँ पर पाकानुकूलकृति नहीं होने पर भी पाकविषयककृति होने के कारण '**पचति**' व्यवहार की आपत्ति आयेगी। जो कि प्रयोग प्रामाणिक नहीं है। इसलिए उपधायकत्व और विषयित्व दोनों ही सम्बन्धों से पाक का कृति में अन्वय स्वीकारा जाता है। इस तरह '**चैत्रः पचति**' से '**उपधायकत्वविषयित्वोभयसम्बन्धेन पाकविशिष्टकृतिमान् चैत्रः**' 'उपधायकत्व विषयित्व दोनों ही सम्बन्धों से

पाक विशिष्ट कृतिवाला चैत्र है' ऐसा बोध होता है। उसी प्रकार **'चैत्रेण पच्यते'** इत्यादि स्थलों में भी पाक आदि में तृतीयार्थ कृति का जन्यत्व और विषयत्व दोनों ही सम्बन्धों से अन्वय समझना चाहिए। इस प्रकार इस वाक्य से **'जन्यत्वविषयत्वोभयसम्बन्धेन चैत्रनिष्ठकृतिविशिष्टः पाकः** 'जन्यत्व विषयत्व दोनों ही सम्बन्धों से चैत्रनिष्ठकृति से विशिष्ट पाक है' ऐसा बोध होता है।

कृतिजन्यत्व की तृतीयार्थता होने पर जन्यत्व सम्बन्ध के मध्य में ही स्वनिरूपक विषयत्व का प्रवेश करना चाहिए। अथवा कृतिविषयत्व ही तृतीया का अर्थ है और स्वनिरूपकजन्यत्व का विषयता के सम्बन्ध के मध्य में अन्तर्भाव कर दिया जाये ।

अभिप्राय यह है कि कृति को तृतीया का अर्थ माने पर उपर्युक्त रीति से कृति का जन्यत्व और विषयत्व सम्बन्ध से पाक में अन्वय करना पड़ेगा ।इसमें सम्बन्धों के वृत्त्यनियामक होने के कारण वृत्त्यनियामक सम्बन्ध का अभावीयप्रतियोगितावच्छेदकत्व नहीं स्वीकारे जाने के पक्ष में **'चैत्रेण पच्यते न तु मैत्रेण'** से शाब्दबोध अनुपपन्न होगा क्योंकि यहाँ पर पाक में मैत्रकृति का उक्त दोनों सम्बन्धों से अभाव भासित होना चाहिए जो कि अनुपपन्न होगा। अतः कृतिजन्यत्व को तृतीया का अर्थ मानने का पक्ष आता है। इस पक्ष में जन्यत्व का जो पाक में सम्बन्ध भासता है उसी के मध्य में स्वनिरूपकविषयत्व भी प्रविष्ट कर देना चाहिए। आशय यह कि 'कृतिजन्यता का पाक में आश्रयत्व और स्वनिरूपकविषयत्व दोनों ही सम्बन्धों से अन्वय करना चाहिए' इस प्रकार **'चैत्रेण पच्यते'** से इस पक्ष के अनुसार **'आश्रयत्वस्वनिरूपकविषयत्वोभयसम्बन्धेन चैत्रवृत्तिकृतिजन्यत्वविशिष्टः पाकः'** 'आश्रयत्व स्वनिरूपकविषयत्व दोनों सम्बन्धों से चैत्रवृत्तिकृतिजन्यत्व से विशिष्ट पाक है' ऐसा शाब्दबोध होता है।

अथवा कृतिविषयत्व को ही तृतीया का अर्थ मान लें और स्वनिरूपकजन्यत्व का विषयतासम्बन्ध में अन्तर्भाव कर लें। इस पक्ष में उक्त वाक्य से **'आश्रयत्वस्वनिरूपक जन्यत्वोभयसम्बंन्धेन चैत्रवृत्तिकृतिविषयत्वविशिष्टः पाकः'** 'आश्रयत्व स्वनिरूपक जन्यत्व उभय सम्बन्ध से चैत्रवृत्तिकृति के विषयत्व से विशिष्ट पाक है' ऐसा शाब्दबोध होता है।

'काष्ठेन पचति' इत्यादौ करणत्वं तृतीयार्थः, तच्च व्यापारवत् कारणत्वम्, व्यापारे कर्तृव्यापाराधीनत्वं निवेशनीयम्, अन्यथा कर्तुरपि करणतापत्त्या 'चैत्रश्चैत्रेण पचति' 'काष्ठं चैत्रेण पचति' इत्यादि प्रयोगापत्तेः।

न च कर्तुश्चेष्टादिरूपव्यापारस्य तदीयकृत्यादिरूपव्यापाराधीनतया तद्विशेषणदानेऽपि कर्तुः करणत्वं दुर्वारमेवेति वाच्यम्; स्वभिन्नत्वेन कर्तुर्विशेषणीयत्वात् ।

'काष्ठेन पचति' इत्यादि स्थलों में तृतीया का अर्थ करणत्व है और वह करणत्व व्यापारवत्कारणत्व है। व्यापार में कर्तृव्यापाराधीनत्व का निवेश करना चाहिए अन्यथा कर्ता की भी करणता की आपत्ति आने से (कर्ता भी क्रिया के प्रति कारण और व्यापारवत् होता

है, इसलिए साधारणतया व्यापारवत् कारण को करण कहने पर कर्ता भी करण कहलाने लगेगा इस कारण) **'चैत्रश्चैत्रेण पचति' 'काष्ठं चैत्रेण पचति'** इत्यादि प्रयोगों की आपत्ति आयेगी। कर्तृव्यापाराधीनत्व का निवेश जब व्यापार में कर देते हैं तो चूँकि करण का व्यापार ही कर्ता के व्यापार के अधीन होता है इसलिए कर्तृव्यापाराधीनव्यापारवत् कारण करण ही (काष्ठादि ही) होगा चैत्रादि नहीं । अतः उपर्युक्त प्रयोग की आपत्ति नहीं है।

यदि कहो कि कर्ता के चेष्टादिरूप व्यापार के कर्ता के ही कृत्यादि रूप व्यापार के अधीन होने के कारण कर्तृव्यापाराधीनत्व विशेषण देने पर भी कर्ता का करणत्व दुर्वार ही होगा क्योंकि चैत्र के ही कृतिरूप व्यापार के अधीन चैत्र का हस्तप्रयोगादि व्यापार हैं। अतः चैत्र व्यापार (कृति) अधीन हस्तसंचालनादि व्यापारवत् और पाकादिक्रिया का कारण चैत्र भी हो जायेगा और पुनः कर्ता की करणता दुर्वार हो जायेगी। तो ऐसा नहीं कहना चाहिए। क्योंकि स्वभिन्नत्व कर्ता का विशेषण देना चाहिए। इस तरह स्वभिन्नकर्तृव्यापाराधीन व्यापारवत् कारण को करण कहा जायेगा। चैत्र स्वभिन्न कर्ता के व्यापार के अधीन व्यापार वाला नहीं है, अतः उसकी करणता वारित हो जाती है।

यत्रैकैव पाकादिक्रिया चैत्रेण काष्ठादिना मैत्रेण तुषादिप्रक्षेपेण निष्पाद्यते तत्र 'चैत्रस्तुषैर्मैत्रः काष्ठैः पचति' इति प्रसङ्गः समभिव्याहृतकर्तृव्यापाराधीनत्वस्य तत्तत्करणव्यापारे भानमुपगम्य वारणीयः।

जहाँ पर एक ही पाकादि क्रिया चैत्र के द्वारा काष्ठादि से और मैत्र के द्वारा तुषादि प्रक्षेप से निष्पादित हो रही है वहाँ पर **'चैत्रस्तुषैर्मैत्रः काष्ठैः पचति'** 'चैत्र तुष से और मैत्र काष्ठ से पकाता है' ऐसे प्रयोग की आपत्ति समभिव्याहृतकर्तृव्यापाराधीनत्व का तत्तत्करणव्यापार में भान स्वीकार करके वारित करनी चाहिए।

अभिप्राय यह है कि जहाँ पर एक ही पाकक्रिया चैत्र द्वारा काष्ठादि से और मैत्र द्वारा तुषादि प्रक्षेप से सम्पादित की जा रही है। वहाँ पर **'चैत्रस्तुषैर्मैत्रः काष्ठैः पचति'** प्रयोग की आपत्ति है क्योंकि पाक में तुष और काष्ठ दोनों में रहने वाली करणता से निरूपकत्व विद्यमान है और जब एक ही पाक क्रिया दोनों में रहने वाली करणता की निरूपक है तो इस वाक्य से जायमान बोध का किसी भी अंश में बाध नहीं होगा। इससे – **'तुषनिष्ठकरणतानिरूपकः काष्ठनिष्ठकरणतानिरूपकश्च यः पाकः तदनुकूलकृतिमान् चैत्रः मैत्रश्च'** 'तुषनिष्ठकरणतानिरूपक और काष्ठनिष्ठकरणतानिरूपक जो पाक तदनुकूलकृति मान् चैत्र और मैत्र है' ऐसा शाब्दबोध होगा। इसमें कहीं पर कोई भी अंश बाधित नहीं है। अतः इस वाक्य के प्रयोग की आपत्ति होगी। इस आपत्ति का वारण समभिव्याहृत कर्तृव्यापाराधीनत्व का भान तत्तत्करण व्यापार में स्वीकारने से हो जाता है क्योंकि यहाँ पर तुष से समभिव्याहृत कर्ता चैत्र के व्यापाराधीनत्व का भान तुषव्यापार में और काष्ठ से समभिव्याहृत कर्ता मैत्र के व्यापाराधीनत्व का भान काष्ठव्यापार में बाधित है। अतः शाब्दबोध बाधित होने से ऐसा प्रयोग नहीं हुआ करता है।

न च समभिव्याहृतकर्त्रन्तर्भावेण तृतीयार्थत्वे कर्त्रसमभिव्याहृतस्थले

करणे तृतीया अप्रयोगापत्तिरिति वाच्यम्; तत्रापि 'हेतौ' इति सूत्रेण हेतुता मात्रार्थकतृतीयासम्भवात्, 'धनेन कुलम्' 'विद्यया यशः' इत्यादिवत् । न हि तत्र करणे तृतीया क्रियायोगाभावात् ।

यदि कहो कि समभिव्याहृतकर्ता का अन्तर्भाव करके तृतीया का अर्थ स्वीकारने पर कर्ता के असमभिव्याहारस्थल में करणत्वार्थक तृतीया के अप्रयोग की आपत्ति होगी क्योंकि तृतीयार्थ तो करणत्व ही है और करणव्यापार में समभिव्याहृत कर्तृव्यापाराधीनत्व का भान आप स्वीकार रहे हैं। यदि समभिव्याहृत कर्ता है ही नहीं तो समभिव्याहृत कर्तृव्यापाराधीनत्व कैसे करण व्यापार में भासित हो सकेगा? अतः करणे तृतीया नहीं हो सकेगी, करण अर्थ में होने वाली तृतीया नहीं हो सकेगी।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि वहाँ पर भी (करणे तृतीया न होने पर भी) **'हेतौ' पा0 सू0 2/3/23** के द्वारा हेतुतामात्रार्थक तृतीया सम्भव है **'धनेन कुलम्'** धन से कुल है' **'विद्यया यशः'** विद्या से यश है' इत्यादि की तरह। (जैसे इन स्थलों में हेत्वर्थक तृतीया होती है, उसी प्रकार समभिव्याहृत कर्ता होने पर भी हेत्वर्थक तृतीया हो सकती है) उक्त स्थलों में करणे तृतीया नहीं है क्योंकि क्रियायोग ही नहीं है। क्रिया का योग होने पर ही करणे तृतीया हो सकती है। **धनेन कुलम्** इत्यादि स्थलों में क्रिया न होने से हेत्वर्थक ही तृतीया है। उसी प्रकार यहाँ भी हो जायेगा।

न चैवमुक्तस्थले 'चैत्रस्तुषेण पचति' इति प्रयोगस्य ''हेतौ'' इति सूत्रबलादापत्ताविष्टापत्तिं विनोत्तराभावात् समभिव्याहृतकर्त्रन्तर्भावस्य करणे स्वतन्त्रतृतीयानुशासनस्यैव वा वैयर्थ्यमितिवाच्यम्; उक्तस्थले पाके तुषहेतुकत्वाभावबाधेऽपि 'चैत्रस्तुषेण न पचति किंतु दारुणैव' इति प्रयोगोपपत्तये समभिव्याहृतकर्त्रन्तर्भावेण तृतीयायाः शक्तिकल्पनाया आवश्यकत्वात्, तद्ग्राहकतयैव करणे तृतीयानुशासनस्यावश्यकत्वात् । 'शरैः शाततिपत्रोऽयम्' इत्यादौ तृतीयायाः कारकविभक्तित्वे एव तदर्थान्वितार्थक शाततादिपदेन समासस्य साधुतानिर्वाहाच्च।

यदि कहो कि इस प्रकार उक्तस्थल में (जहाँ पर चैत्र के द्वारा एक ही पाकक्रिया काष्ठ से और मैत्र के द्वारा तुष से सम्पादित हो रही है वहाँ पर) **'हेतौ'** इस सूत्र के बल से **'चैत्रस्तुषेण पचति'** इस प्रयोग की आपत्ति में इष्टापत्ति के विना उत्तर न होने के कारण समभिव्याहृतकर्त्रन्तर्भाव का अथवा करण अर्थ में स्वतन्त्र तृतीया अनुशासन का वैयर्थ्य होगा। अभिप्राय यह है कि जहाँ पर एक ही पाकक्रिया चैत्र के द्वारा काष्ठ से और मैत्रद्वारा तुष से सम्पादित की जा रही है वहाँ पर **'चैत्रस्तुषेण पचति'** प्रयोग नहीं होता है, इस प्रयोग की आपत्ति का वारण करने के लिए ग्रन्थकार ने अभी बताया कि तत्तत्करण व्यापार में चूँकि समभिव्याहृत कर्तृव्यापाराधीनत्व भासित होता है, इस स्थल में समभिव्याहृत कर्ता चैत्र व्यापाराधीनत्व तुषव्यापार में भासना आवश्यक होगा, वह बाधित है । अतः ऐसे प्रयोग की आपत्ति नहीं है। किन्तु हेत्वर्थक तृतीया करने पर तो इस प्रयोग की आपत्ति आयेगी और

उस आपत्ति में इष्टापत्ति के विना दूसरा उत्तर नहीं हो सकता है। क्योंकि जब आप कर्ता का असमभिव्याहार रहने पर हेत्वर्थक तृतीया मानते हैं तो कर्ता का समभिव्याहार स्थल में हेत्वर्थक तृतीया क्यों नहीं होगी? हेत्वर्थक तृतीया का बाधक यहाँ पर कुछ भी नहीं है। तथा यदि हेत्वर्थक तृतीया कर लेते हैं तो समभिव्याहृत कर्ता का अन्तर्भाव करना व्यर्थ होगा अथवा करण अर्थ में स्वतन्त्र तृतीया विधान व्यर्थ होगा। क्योंकि जहाँ पर करणे तृतीया नहीं होगी करणव्यापार में समभिव्याहृत कर्तृव्यापाराधीनत्व का बाध होने के कारण, वहाँ भी हेत्वर्थक तृतीया हो ही जायेगी तो करणे तृतीया का क्या प्रयोजन है?

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि उक्तस्थल में पाक में तुषहेतुकत्वाभाव का बाध होने पर भी '**चैत्रस्तुषेण न पचति किन्तु दारुणैव**' 'चैत्र तुष से नहीं पकाता है किन्तु दारु से ही पकाता है' इस प्रयोग की उपपत्ति के लिए समभिव्याहृत कर्ता के अन्तर्भाव से तृतीया की शक्तिकल्पना आवश्यक होने के कारण तद्ग्राहक होने के कारण ही करणे तृतीया अनुशासन आवश्यक होता है। तथा '**शरैः शातितपत्रोयम्**' इत्यादि स्थलों में तृतीया का कारक विभक्तित्व होने पर ही तृतीया के अर्थ से अन्वित शातित आदिपद से समास की साधुता का निर्वाह होता है।

आशय यह है कि जहाँ पर चैत्र के द्वारा काष्ठ से और मैत्र द्वारा तुष से एक ही पाकक्रिया हो रही है, उस स्थल में पाक में तुषहेतुकत्व ही है तुषहेतुकत्वाभाव का बाध है। तथा तुषहेतुकत्वाभाव का बाध होने पर भी '**चैत्रस्तुषेण न पचति किंतु दारुणैव**' यह प्रयोग होता है। करणे तृतीया अनुशासन न होने की स्थिति में यहाँ पर पाक में तुषहेतु कत्वाभाव ही बोधित होना आवश्यक होगा, किन्तु पाक में तो तुषहेतुकत्वाभाव का बाध है। अतः यह प्रयोग अनुपपन्न होगा। इस प्रयोग की उपपत्ति के लिए समभिव्याहृत कर्ता के अन्तर्भाव से तृतीया की शक्तिकल्पना आवश्यक है, करणे तृतीया होने पर करण व्यापार में समभिव्याहृत कर्तृव्यापाराधीनत्व भी भासता है, तुषव्यापार में समभिव्याहृतकर्तृचैत्र व्यापाराधीनत्व न होने के कारण तुष के पाक हेतु होने पर भी उक्त प्रयोग उपपन्न होता है कारणत्व में कर्तन्तर्भाव न होने पर या करणार्थक तृतीयानुशासन न होने पर तो तुष के भी पाक हेतु होने के कारण '**चैत्रस्तुषेण पचति**' प्रयोग ही होता उपर्युक्त नञ्घटित प्रयोग नहीं होता। '**शरैः शातितपत्रोऽयम्**' इत्यादि स्थलोंमें करणार्थक तृतीया न होने पर शरपदोत्तर हेतु तृतीया के अर्थ से अन्वित शातित आदि पद से पत्र पद के समास की साधुता का निर्वाह नहीं हो सकता है। भाव यह है— समासाघटकपदसापेक्षत्व जिस में आता है वह असमर्थ होता है और समर्थ पदों का ही समास हुआ करता है। समासाघटकपदसापेक्षत्व का अर्थ तदर्थान्वितस्वार्थपरत्व है। स्वार्थ से स्वीयवृत्तिग्रहविशेष्य का ग्रहण होता है।[1] जब शरपदोत्तर तृतीया हेतु अर्थ में होती है तो उस तृतीया के अर्थ हेतु से अन्वित शातित पदार्थ का बोधकत्व शातित पद में आता है। अतः समासाघटकपदसापेक्षत्व शातित पद में आता है। इसलिए शातित पद का पत्र पद के साथ समास अनुपपन्न होता है। जब शरपदोत्तर करणे तृतीया होती है तो तृतीयार्थ शातितपदार्थ में नहीं अन्वित होता है बल्कि शातित पदार्थतावच्छेदक शातन में करण तृतीयार्थ अन्वित होता है। इसलिए शातित पद में समासाघटकपदसापेक्षत्व नहीं आता है, अतः समास उपपन्न होता है। हेतुविभक्ति के अकारक विभक्ति होने से उसके अर्थ का अन्वय वृत्त्येकदेश

---

1. यह प्रसङ्ग प्रथमा कारक में सूपपादित है।

शातन में असम्भव है। इसलिए करणार्थक तृतीयानुशासन आवश्यक है।

न च तृतीयायाः समभिव्याहृतकर्त्रन्तर्भावेण करणत्वार्थत्वे तत्र समभिव्याहृतकर्त्रभावादकारकविभक्तित्वं करणे तृतीयानुशासनेऽपि दुर्वारमेवेति वाच्यम्; एतदनुरोधेन तत्र कर्तुरध्याहरणीयत्वात् ।

वस्तुतः समभिव्याहृतकर्तृव्यापाराधीनत्वे व्यापारवत्कारणत्वे च तृतीयायाः शक्तिद्वयम्। कर्त्रसमभिव्याहारस्थले व्यापारवत्कारणत्वमात्रं प्रतीयते, कर्तृसमभिव्याहारस्थले च व्यापारे तद्व्यापाराधीनत्वमपीति सामञ्जस्यम् ।

यदि कहो कि तृतीया का समभिव्याहृतकर्ता के अन्तर्भाव से करणत्व अर्थ करने पर (होने पर) वहाँ ('**शरैः शातितपत्रोऽयम्**' यहाँ पर) समभिव्याहृत कर्ता न होने से अकारकविभक्तित्व करण में तृतीया अनुशासन होने पर भी दुर्वार ही होगा अर्थात् करण तृतीया अनुशासन होने पर भी करण तृतीया तो वहीं पर हो सकेगी जहाँ पर कि कर्ता का समभिव्याहार होगा क्योंकि करणव्यापार में समभिव्याहृत कर्तृव्यापाराधीनत्व भासित होता है, ऐसा आप कह रहे हैं तो जब कर्ता का समभिव्याहार नहीं होगा तो करण तृतीया नहीं हो सकेगी। **शरैः शातितपत्रोऽयम्** यहाँ पर कर्ता का समभिव्याहार न होने से करण तृतीया उपपन्न नहीं होगी, हेतुतृतीया ही हो सकेगी।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि इसी के अनुरोध से वहाँ कर्ता का अध्याहार करना चाहिए । कर्ता का अध्याहार करने पर तो करणार्थक तृतीया होने में कोई अनुपपत्ति नहीं है।

वस्तुतः समभिव्याहृत कर्तृव्यापाराधीनत्व में और व्यापारवत्कारणत्व में तृतीया की अलग-अलग दो शक्तियाँ हैं। कर्ता के असमभिव्याहारस्थल में करणे तृतीया से व्यापारवत्कारणत्व मात्र प्रतीत होता है और कर्ता के समभिव्याहारस्थल में व्यापार में कर्तृव्यापाराधीनत्व भी प्रतीत होता है। इसलिए सामञ्जस्य हो जाता है। समास आदि में कोई आपत्ति नहीं आती है, उक्त स्थल में तृतीया से व्यापारवत्कारणत्व मात्र की प्रतीति होती है।

एवं हेत्वनुशिष्टतृतीयायाः "अकर्तर्यृणे" इत्यनेन बाधनात् करणत्वविवक्षायां 'धनवता ऋणेन बद्धोऽयम्' इत्यत्र तृतीयाया उपपत्तये करणे तृतीयानुशासनस्यावश्यकता । कारणत्वञ्च फलोपधानतारूपमेव करणताघटकम्, अन्यथा कुठारादिकरणकच्छिदादौ दात्रादेः स्वरूपयोग्यतया करणत्वापत्तेः।

इसी प्रकार हेत्वनुशिष्ट तृतीया का '**अकर्तर्यृणे**' पा0 सू0 2/3/24 के द्वारा बाधन हो जाने से करणत्वविवक्षा में '**धनवता ऋणेन बद्धोऽयम्**' 'धनवान् के द्वारा ऋण से यह बँधा है' यहाँ पर तृतीया की उपपत्ति के लिए करणे तृतीया अनुशासन की आवश्यकता है। अभिप्राय यह है कि '**धनवता ऋणेन बद्धोऽयम्**' यहाँ पर ऋणपद से '**हेतौ**' सूत्र से तृतीया नहीं हो सकती है क्योंकि उस सूत्र से प्राप्त तृतीया का अपवाद करके '**अकर्तर्यृणे**' सूत्र से ऋण के द्वारा पञ्चमी हो जायेगी (क्योंकि इस सूत्र के द्वारा ऐसे ऋण के द्वारा पञ्चमी का विधान किया जाता है जिसकी कर्तृसंज्ञा न हुई हो यहाँ पर ऋण की कर्तृसंज्ञा तो हुई नहीं है, अतः उससे पञ्चमी का विधान इस सूत्र के द्वारा हो जायेगा) किन्तु

उपर्युक्त प्रयोग में तृतीया होती है वह तृतीया किस सूत्र से होगी? उक्त तृतीया का उपपादन पञ्चमीविधायक सूत्र का करण तृतीया से बाध होकर ही हो सकता है। अतः करण अर्थ में तृतीया अनुशासन आवश्यक है।

यहाँ पर करणताघटक कारणत्व फलोपधानतारूप ही यहाँ पर विवक्षित है अन्यथा (फलोपधानतारूप कारणता से घटित करणत्व विवक्षित न होने पर) कुठारादिकरणकच्छिदादि में दात्र आदि के भी स्वरूपयोग्य होने के कारण करणत्व की आपत्ति आयेगी।

लिङ्गज्ञानस्यानुमितिकरणतामते 'धूमेन वह्निमनुमिनोमि' इत्यादौ धूमादिपदं तज्ज्ञानपरम्, व्याप्तिविशिष्टहेतुज्ञानस्य व्यापारस्तद्विशिष्ट वैशिष्ट्यावगाही परामर्शः सचात्ममनोयोगादिरूपानुमातृपुरुषव्यापाराधीन इति तस्य निरुक्तकरणत्वमबाधितमेव। धूमादिलिङ्गकवह्न्यनुमितौ यत्र लिङ्गान्तराद् घटादिभानं तत्र 'धूमेन घटमनुमिनोमि' इति न प्रयोगः—अन्वयितावच्छेदक-तद्विधेयकानुमितित्वावच्छेदेनैवान्वयितावच्छेदकधूमादिविषयकज्ञान-त्वावच्छिन्नत्वेन भासमानस्य करणत्वस्य निरूपकत्वभानोपगमात्। निरूपकत्वं तु करणतामात्रस्य तृतीयार्थतावादिनां प्राचां मते संसर्गः, नव्यमते तु करणता निरूपकत्वस्यैव नञर्थाभावे प्रतियोगित्वेनान्वयानुरोधात् तावत्पर्यन्तस्य तृतीयार्थतया प्रकार एवेत्यन्यदेतत्।

लिङ्गज्ञान की अनुमितिकरणता के मत में[1] **'धूमेन वह्निमनुमिनोमि'** 'धूम से वह्नि की अनुमिति कर रहा हूँ' इत्यादिस्थलों में धूम आदि पद धूमादिज्ञान (धूमादि विषयक ज्ञान) परक हैं, व्याप्तिविशिष्टहेतुज्ञान का व्यापार तद्विशिष्टवैशिष्ट्य (व्याप्तिज्ञानविशिष्ट हेतु वैशिष्ट्य) का अवगाही परामर्श है और वह परामर्शात्मक व्यापार आत्ममनोयोग आदिरूप अनुमाता पुरुष के व्यापार के अधीन है, इसलिए उसका समभिव्याहृत कर्तृव्यापाराधीन व्यापारवत्त्व रूप करणत्व अबाधित ही है। धूमादि लिङ्गक वह्न्यनुमिति में जहाँ पर लिङ्गान्तर से घटादि का भान होता है वहाँ पर **'धूमेन घटमनुमिनोमि'** 'धूम से घट की अनुमिति कर रहा हूँ' ऐसा प्रयोग नहीं हुआ करता है क्योंकि अन्वयितावच्छेदक तद्विधेयक अनुमितित्वावच्छेदेन ही अन्वयितावच्छेदक धूमादिविषयकज्ञानत्वावच्छिन्नत्वेन भासमान करणत्व के निरूपकत्व का भान स्वीकारा जाता है। निरूपकत्व करणतामात्रतृतीयार्थतावादी प्राचीनों के मत में संसर्ग है, नवीनों के मत में तो करणतानिरूपकत्व का ही नञर्थ अभाव में प्रतियोगितया अन्वय के अनुरोध से तावत्पर्यन्त की तृतीयार्थता होने से प्रकार ही होता है, यह अलग बात है।

---

1. कुछ लोग व्याप्तिविशिष्टलिङ्गज्ञान की अनुमिति करणता मानते हैं और कुछ लोग व्याप्तिविशिष्टत्वेन ज्ञायमान लिङ्ग की करणता मानते हैं। कारिकावलीकार ने लिङ्ग की करणता का खण्डन किया है और कहा है-

व्यापारस्तु परामर्शः करणं व्याप्तिधीर्भवेत् ।।
अनुमाया ज्ञायमानं लिङ्गन्तु करणं नहि ।
अनागतादिलिङ्गेन न स्यादनुमितिस्तदा ।। कारिकावली 66-67

यहाँ पर '**धूमेम वह्निमनुमिनोमि**' इत्यादि स्थलों में धूमादि पदोत्तर तृतीया करणे तृतीया है यह स्वीकार किया जा रहा है। करणे तृतीया होने की स्थिति में चूँकि धूम वह्न्यनुमिति का करण नहीं हुआ करता है इसलिए अन्वयबोध कैसे उपपन्न होगा? इसका समाधान यह दिया जा रहा है कि धूमपद यहाँ धूमज्ञान परक है अर्थात् धूमपद की मुख्यार्थबाधमूलक लक्षणाशक्ति से धूमज्ञान की उपस्थिति यहाँ पर हुआ करती है। चूँकि व्याप्तिविशिष्ट हेतुज्ञान अनुमिति का करण हुआ करता है, इसलिए धूम पद से धूम ज्ञानोपस्थिति होने पर तृतीया का करणत्व अर्थ सङ्गत होने में कोई समस्या नहीं है। व्यापारवत्कारण की ही करणता होने पर भी व्याप्तिविशिष्ट हेतु वैशिष्ट्यावगाही परामर्श रूपव्यापारवत्कारणत्व व्याप्तिविशिष्टधूमज्ञान का निर्विवाद है। परामर्शात्मक व्यापार के आत्ममनः संयोगात्मक कर्तृव्यापाराधीन होने के कारण करण व्यापार में कर्तृव्यापारा धीनत्व भी अबाधित है। यहाँ पर प्राचीनों के मत से करणत्व ही तृतीयार्थ है और उसका निरूपकत्वसम्बन्ध से वह्न्याद्यनुमिति में अन्वय होता है। नवीनों के मत में करणतानिरूपकत्व ही तृतीया का अर्थ है क्योंकि निरूपकत्व को संसर्ग मानने पर उसके वृत्त्यनियामक सम्बन्ध होने के कारण उस सम्बन्ध से अवच्छिन्न प्रतियोगिता ही अप्रसिद्ध होने के कारण '**धूमेन वह्निमनुमिनोमि न घटेन**' 'धूम से वह्नि की अनुमिति कर रहा हूँ घट से नहीं' इत्यादि स्थलों में शाब्दबोध अनुपपन्न होगा। इस प्रकार प्राचीनमत में निरूपकत्व सम्बन्ध से धूमज्ञाननिष्ठकरणता अनुमिति में अन्वित होगी और नव्य मत में धूमज्ञाननिष्ठकरणतानिरूपकत्व आश्रयत्व सम्बन्ध से अनुमिति में अन्वित होगा । इस प्रकार प्राच्य और नव्य मत में यह सैद्धान्तिक भेद है। किन्तु धूमहेतु से वह्न्यनुमिति होने की स्थिति में जहाँ पर लिङ्गान्तर से (दूसरे लिङ्ग=हेतु से) अनुमिति में घटादिभान होता है वहाँ पर '**धूमेन घटमनुमिनोमि**' 'धूम से घट की अनुमिति कर रहा हूँ ऐसा प्रयोग नहीं होता है, यद्यपि घटानुमिति के' वह्न्यनुमिति रूप होने के कारण (वह्न्यनुमिति में ही हेत्वन्तरवशात् घट का भी भान होने के कारण) घटानुमिति में धूमज्ञाननिष्ठकरणतानिरूपकत्व विद्यमान ही है। तथापि तद्विधेयकानुमित्वावच्छेदेन ही अन्वयितावच्छेदक धूमादिविषयकज्ञानत्वावच्छिन्नत्वेन भासमान करणत्व के निरूपकत्व का भान स्वीकारा जाता है, अतः '**धूमेन घटमनुमिनोमि**' ऐसा प्रयोग नहीं होता है। घटविधेयकानुमितित्वावच्छेदेन धूमज्ञाननिष्ठधूमविषयकज्ञानत्वावच्छिन्न करणता का निरूपकत्व नहीं है, वह्निविधेयकानुमितित्वावच्छेदेन ही है। इस कारण उक्त प्रयोग बाधितार्थक होने से नहीं होता है।

परे तु लिङ्गज्ञानस्य करणत्वेऽपि 'धूमेन वह्निमनुमिनोमि' इत्यादौ धूमादिपदं मुख्यार्थपरमेव ''हेतौ'' इति सूत्रेण तत्र तृतीयाहेतुत्वस्य कारणतावच्छेदकसाधारणप्रयोजकत्वरूपस्य तत्र विवक्षितत्वात् । जनक ज्ञानविषयधूमादेश्चानुमितिकारणतावच्छेदकतया प्रयोजकत्वमक्षतमेव । उक्त समूहालम्बनस्थलेऽतिप्रसङ्गश्च वह्निविधेयकानुमितित्वावच्छेदेन प्रयोजकता निरूपकत्वभानाभ्युपगमेन वारणीयः।

अन्य लोग तो कहते हैं कि—लिङ्गज्ञान के कारण होने पर भी '**धूमेन वह्निमनुमिनोमि**' इत्यादिस्थलों पर धूमादि पद मुख्यार्थ परक ही हैं (धूमादि पद धूमादिज्ञान में लाक्षणिक नहीं हैं) '**हेतौ**' पा०सू० 2/3/23 से वहाँ पर (धूमआदि पदों से) तृतीया होती है (अर्थात् धूमादिपद से वहाँ पर करणे तृतीया नहीं होती है) उक्त सूत्र घटक हेतुपद से बोध्य हेतु का हेतुत्व प्रयोजकत्व रूप अपेक्षित है विवक्षित है और प्रयोजकत्व जनक जनकतावच्छेदक साधारण होता है। कारण में भी प्रयोजकत्व रहता है और कारणतावच्छेदक में भी । वह्न्य नुमितिजनक व्याप्तिविशिष्टहेतुज्ञान के विषय धूमादि के कारणतावच्छेदक होने के कारण धूमादि का अनुमितिप्रयोजकत्व अक्षत ही है। (कारणीभूत व्याप्तिविशिष्ट धूमविषयक ज्ञान में विशेषण होने के कारण धूम का कारणतावच्छेदकत्व होता है)

उक्त समूहालम्बनस्थल, जहाँ पर कि धूमलिङ्गक वह्न्यनुमिति में ही हेत्वन्तरवशात् घट का भान हो रहा है, में अतिप्रसङ्ग '**धूमेन घटमनुमिमोमि**' ऐसे प्रयोग का प्रसङ्ग वह्निविधेयकानुमितित्वावच्छेदेन धूमनिष्ठ प्रयोजकतानिरूपकत्व का भान स्वीकार कर वारित करना चाहिए। अभिप्राय यह है कि इस पक्ष में उक्तस्थल में '**धूमेन घटमनुमिनोमि**' प्रयोग क्यों नहीं होता है? इसका कारण यह है कि धूमनिष्ठप्रयोजकतानिरूपकत्व वह्निविधेयकानुमितित्वावच्छेदेन ही है, घट्विधेयकानुमितित्वावच्छेदेन नहीं है। ऐसा प्रयोग करने पर घटविधेयकानुमितित्वावच्छेदेन धूमनिष्ठ प्रयोजकतानिरूपकत्व भासता है जो कि बाधित है, अतः ऐसा प्रयोग नहीं होता है।

वस्तुतो जनकादिनिष्ठप्रयोजकतानिरूपकत्वं कार्यस्येव कार्यतावच्छेदकस्याप्यक्षतं प्रतीतिसाक्षिकञ्च, तथाचानुमितिविशेषणतत्तद्विधेयकत्वरूपसुबन्तार्थ एव तृतीयार्थान्वय उपगम्यते। समूहालम्बनानुमितिनिष्ठघटादिविधेयकत्वस्य धूमाद्यप्रयोज्यतया नोक्तातिप्रसङ्गः। 'धूमेन वह्निमनुमिनोमि न घटेन' इत्यादावनुमितौ घटादिप्रयोज्यत्वाभावो नान्वेति, अपितु नञर्थाभावप्रतियोग्यन्वयिनि वह्न्यादिविधेयकत्व एव। अतो यत्र धूमादिलिङ्गकवह्न्याद्यनुमितौ घटादिरूपलिङ्गाधीनं द्रव्यत्वादिभानं तत्र 'धूमेन वह्निमनुमिनोमि न घटेन' इति प्रयोगोपपत्तिः-समूहालम्बनरूपतादृशानुमितौ घटादिरूपलिङ्गप्रयोज्यत्वाभावस्यासत्त्वेऽपि वह्न्यादिविधेयकत्वे तदबाधात् । न ह्यनुमितावपि द्रव्यत्वादिविधेयकत्वावच्छिन्नस्य घटादिलिङ्गप्रयोज्यत्वस्य वह्न्यादिविधेयकत्वावच्छेदेनाभावो बाधित इति सम्भवति प्रयोज्यताया व्याप्यवृत्तित्वात् ।

वस्तुतः जनकादिनिष्ठप्रयोजकता का निरूपकत्व कार्य की तरह कार्यतावच्छेदक का भी हुआ करता है (कार्यतावच्छेदक में भी प्रयोजकतानिरूपकत्व अक्षत है) और प्रतीतिसाक्षिक है। इस प्रकार अनुमितिविशेषणीभूत तत्तद्विधेयकत्व रूप सुबन्तार्थ में ही तृतीयार्थ का अन्वय स्वीकार किया जाता है। अभिप्राय यह है कि अनुमितिस्थल में '**धूमेन वह्निमनुमिनोमि**' इत्यादि स्थलों में **वह्निम्** का अर्थ वह्निविधेयकत्व ही हुआ करता है क्योंकि अनुमित्यर्थक धातु का योग होने पर द्वितीया का अर्थ विधेयत्व या विधेयकत्व ही

होता है।[1] इस प्रकार अनुमितिविशेषणीभूत वह्निविधेयकत्व रूप सुबन्तार्थ में ही तृतीयार्थ प्रयोजकतानिरूपकत्व का अन्वय होता है। समूहालम्बनात्मक अनुमिति में विद्यमान जो घटादिविधेयकत्व है उसके धूमादि से अप्रयोज्य होने के कारण उक्त अतिप्रसङ्ग नहीं होता है। उक्तातिप्रसङ्ग का आशय है- जहाँ पर धूमलिङ्गक वह्न्यनुमिति में ही घट भी हेत्वन्तरवशात् भासित हो रहा है, घटविधेयकत्व भी हेत्वन्तरवशात् अनुमिति में आ रहा है उस अनुमिति की स्थिति में **'धूमेन घटमनुमिनोमि'** इस प्रयोग का प्रसङ्ग, उस अनुमिति में वह्निविधेयकत्व भी है और घटविधेयकत्व भी है किन्तु वह्निविधेयकत्व में धूमनिष्ठ प्रयोजकतानिरूपकत्व बोधित होता है जो कि बाधित है। अतः उक्त प्रयोग नहीं हुआ करता है।

'धूमेन वह्निमनुमिनोमि न तु घटेन' 'धूम से वह्नि की अनुमिति कर रहा हूँ घट से नहीं' इत्यादि स्थलों में अनुमिति में घटादिप्रयोज्यत्वाभाव अन्वित नहीं होता है, अपितु नञर्थ अभाव के प्रतियोगी में अन्वित होने वाले वह्न्यादिविधेयकत्व में ही अन्वित होता है (नञर्थ अभाव के प्रतियोगी अनुमिति में विशेषणीभूत वह्न्यादिविधेयकत्व में ही घटादिप्रयोज्यत्वाभाव = घटादिनिष्ठप्रयोजकतानिरूपकत्वाभाव अन्वित होता है) इस कारण जहाँ पर धूमादिलिङ्गक वह्न्यनुमिति में ही घटादिरूप लिङ्ग के अधीन द्रव्यत्वादि का भान हुआ करता है, वहाँ पर **'धूमेन वह्निमनुमिनोमि न तु घटेन'** इस प्रयोग की उपपत्ति होती है। समूहालम्बन रूप तादृशानुमिति वह्निविधेयक द्रव्यत्वविधेयक अनुमिति में घटादिरूप-लिङ्गप्रयोज्यत्व का अभाव न रहने पर भी वह्न्यादिविधेयकत्व में घटादिरूपलिङ्गप्रयोज्यत्वाभाव का बाध नहीं है। अनुमिति में भी द्रव्यत्वादिविधेयकत्वावच्छेदेन घटादिलिङ्गप्रयोज्यत्व के रहने पर भी वह्न्यादिविधेयकत्वावच्छेदेन घटादिलिङ्गप्रयोज्यत्व का अभाव बाधित नहीं है ऐसा सम्भव नहीं है क्योंकि प्रयोज्यता व्याप्यवृत्ति होती है।

अभिप्राय यह है कि **'धूमेन वह्निमनुमिनोमि न तु घटेन'** यहाँ पर वस्तुतः प्रतीक उठाकर सिद्धान्ती यह कह रहा है कि यहाँ पर वह्निविधेयकत्व में ही घटनिष्ठ प्रयोजकतानिरूपकत्वाभाव बोधित होता है (घटप्रयोज्यत्वाभाव बोधित होता है) अनुमिति में घटनिष्ठप्रयोजकत्वनिरूपकत्वाभाव नहीं बोधित होता है। क्योंकि अनुमिति में तो घटनिष्ठ-प्रयोजकतानिरूपकत्व (घट प्रयोज्यत्व) ही विद्यमान है। अनुमिति के घट हेतुक द्रव्यत्वविधेयक होने के कारण अनुमिति में तो घट प्रयोज्यत्वाभाव है ही नहीं। परेतु प्रतीक के द्वारा जिनका मत उठाया गया था, उनका मानना है कि चूँकि उक्त वाक्य से वह्निविधेयकत्वावच्छेदेन घटादिलिङ्गप्रयोज्यत्व का अभाव भासमान है, द्रव्यत्वादिविधेयकत्वावच्छेददेन घटादिप्रयोज्यत्व के रहने पर भी वह्निविधेयकत्वावच्छेदेन घटादि प्रयोज्यत्वाभाव भासित होने में तो कोई आपत्ति नहीं है। तो इस पर गदाधर का कहना है कि अनुमिति में जो प्रयोज्यता आती है वह प्रयोज्यता व्याप्यवृत्ति है क्योंकि सम्बन्ध और सम्बन्धी दोनों के व्याप्यवृत्ति होने पर सम्बन्धी की अव्याप्यवृत्तिता नहीं हो सकती है, सम्बन्ध है यहाँ पर प्रयोज्यत्व का स्वरूपसम्बन्ध वह तो व्याप्यवृत्ति है, जब प्रयोज्यत्व का सम्बन्ध व्याप्य वृत्ति है तो प्रयोज्यत्व अनुमिति में अव्याप्यवृत्ति कैसे हो

1. अनुमित्यर्थक धातुयोगे विधेयत्वं विधेयित्वं वा द्वितीयार्थः। द्वितीया कारक द्वितीयखण्ड

सकता है। प्रयोज्यत्व स्वतः भी अव्याप्यवृत्ति नहीं है। यह कैसे सम्भव है कि द्रव्यत्वविधेयकत्वावच्छेदेन अनुमिति में घटप्रयोज्यत्व रहे और वह्निविधेयकत्वावच्छेदेन घटप्रयोज्यत्व न रहे। इस कारण परेतु प्रतीक के अनुसार उठाया गया मत खण्डित हो जाता है। यह मानना असङ्गत है कि वह्निविधेयकत्वावच्छेदेन अनुमिति में घटप्रयोज्यत्वाभाव भासता है।

एतेन– अनुमितौ धूमादिलिङ्गज्ञानकरणकत्वं तृतीयया प्रत्याय्यते करण एव तृतीया तत्रेति मतं प्रत्युक्तम्-उक्तस्थलेऽनुमितौ नञर्थान्वययोग्यताया अनुपपत्तेः। वह्न्यादिविधेयकत्वे धूमादिज्ञानरूपकरणजन्यतावच्छेदकत्वतदभावौ तृतीयान्ततत्समभिव्याहृतनञ्भ्याम् प्रत्याय्येत इत्यपि न सत्– कारकविभक्त्यर्थस्य क्रियातिरिक्तेऽनन्वयात् ।

इसी से- 'अनुमिति में धूमादिलिङ्गज्ञानकरणकत्व तृतीया से प्रत्याय्यित होता है करण में ही तृतीया है' यह मत खण्डित हो जाता है क्योंकि उक्तस्थल में अनुमिति में नञर्थ के अन्वययोग्यता की अनुपपत्ति है। अभिप्राय यह है कि जो लोग उक्त स्थलों में करणार्थक तृतीया मानते है और धूमादि पदों को धूमादि ज्ञान में लाक्षणिक मानकर अन्वयबोध का सम्पादन करते हैं, उनके मतानुसार उक्तस्थल में- जहाँ पर कि धूमलिङ्गक और घटलिङ्गक समूहालम्बनात्मक वह्निविधेयक, द्रव्यविधेयक अनुमिति हो रही है वहाँ पर **'धूमेन वह्निमनुमिनोमि न तु घटेन'** इस प्रयोग से शाब्दबोध की अनुपपत्ति होगी क्योंकि अनुमिति में यहाँ पर घटज्ञानकरणकत्वाभाव और धूमज्ञानकरणकत्व का प्रत्यायन होना चाहिए किन्तु अनुमिति में धूमज्ञानकरणकत्व के समान ही घटज्ञान करणकत्व भी विद्यमान है। इस प्रकार अनुमिति में नञर्थान्वययोग्यता ही नहीं है। उक्त वाक्यजन्य शाब्दबोध बाधितार्थक होने के कारण नहीं हो सकेगा। अतः यह मत खण्डित हो जाता है।

वह्न्यादिविधेयकत्व में धूमादिज्ञानरूपकरणजन्यतावच्छेदकत्व और उसका अभाव उक्तस्थलों में तृतीयान्त से समभिव्याहृत नञ् के द्वारा प्रत्याय्यित होता है यह भी ठीक नहीं है क्योंकि कारकविभक्ति के अर्थ का क्रियातिरिक्त में अन्वय नहीं हुआ करता है।

अभिप्राय यह है कि यदि कहो कि तृतीया तो यहाँ पर करणे तृतीया ही है किन्तु अनुमिति में धूमादिलिङ्गज्ञानकरणकत्व नहीं प्रत्याय्यित होता है, अपितु वह्न्यादिविधेयकत्व में धूमादिज्ञानरूपकरणजन्यतावच्छेदकत्व बोधित होता है, नञ् समभिव्याहारस्थल में धूमादिज्ञानरूपकरणजन्यतावच्छेदकत्वाभाव वह्न्यादिविधेयकत्व में बोधित होता है। वह तो बाधित नहीं होने से बोधित ही हो सकता है, तो ऐसा भी नहीं कह सकते क्योंकि करणे तृतीया कारक विभक्ति है और कारकविभक्ति के अर्थ का क्रिया से अतिरिक्त में अन्वय नहीं हुआ करता है। वह्निविधेयकत्व तो क्रियातिरिक्त ही है अतः तृतीयार्थान्वय सम्भव नहीं है। इसलिए यहा पर करण तृतीया नहीं हैं अपितु हेतु तृतीया ही है, यही स्वीकारना बेहतर जान पड़ता है।

न चोक्तस्थले वह्न्यादिविधेयकत्वावच्छेदेन घटादिरूपलिङ्गज्ञानजन्यतावदनुमितिमत्त्वाभावः मुख्यविशेष्यो नञा प्रत्याय्यते तादृशानुमितिर्घटादौ

वह्न्यादिलिङ्गत्वभ्रमदशायां प्रसिद्धेति वाच्यम्; 'धूमेन वह्नेरनुमानमिदं न घटेन' इत्यादावनुमितिमत्त्वाद्यभावबोधानुपपत्तेरिति प्राहुः।

यदि कहो कि करण तृतीया होने पर भी उक्त स्थल में **'धूमेन वह्निमनुमिनोमि न तु घटेन'** इस प्रयोग स्थल में वह्न्यादिविधेयकत्वावच्छेदेन घटादिरूपलिङ्गज्ञानजन्यतावदनुमितिमत्त्वाभाव ही नञ् के द्वारा पुरुषनिष्ठ होकर प्रत्याय्यित होता है और वैसी अनुमिति घटादि में वह्न्यादिलिङ्गकत्व का भ्रम होने की स्थिति में प्रसिद्ध ही है। अर्थात् उक्त वाक्य से वह्न्यादिविधेयकत्वावच्छेदेन घटादिरूपलिङ्गज्ञानजन्यता जिस अनुमिति में है, पुरुष में तादृशानुमितिमत्त्वाभाव नञ् के द्वारा प्रत्याय्यित होता है। चूँकि उक्तस्थलीय पुरुषनिष्ठ अनुमिति में वह्न्यादिविधेयकत्वावच्छेदेन घटादिरूपलिङ्गज्ञानजन्यता नहीं है, द्रव्यत्व-विधेयकत्वावच्छेदेन ही घटादिरूपलिङ्गज्ञानजन्यता है, और घट में वह्निलिङ्गकत्व भ्रम होने की स्थिति में होने वाली वह्न्यनुमिति में वह्निविधेयकत्वावच्छेदेन घटरूप लिङ्ग ज्ञान जन्यता है। इसलिए वह्निविधेयकत्वावच्छेदेन घटादिरूपलिङ्गज्ञानजन्यतावदनुमिति प्रसिद्ध है और उसी अनुमिति का अभाव इस नञ् घटित वाक्य के द्वारा पुरुष में बोधित होता है।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि **'धूमेन वह्नेरनुमानमिदं न घटेन'** 'धूम से यह वह्नि का अनुमान है घट से नहीं' इत्यादि स्थलों में पुरुष में अनुमितिमत्त्वाद्यभाव बोध की अनुपपत्ति है। अभिप्राय यह है कि जहाँ पर पुरुष की प्रतीति ही नहीं होती है, पुरुष की उपस्थिति ही नहीं होती है वहाँ पर पुरुष में उपर्युक्तानुमितिमत्त्वाद्यभाव कैसे बोधित किया जा सकता है? **'धूमेन वह्नेरनुमानमिदं न घटेन'** इस स्थल में तो पुरुष उपस्थित ही नहीं है, अनुमितिमुख्यविशेष्यक शाब्दबोध होता है, भाव में ल्युट् प्रत्यय यहाँ पर अनु उपसर्गक मा धातु से किया गया है, अनुमिति मुख्यविशेष्यक शाब्दबोध होने की स्थिति में अनुमितिमत्त्वाभाव कैसे और किसमें बोधित होगा? इस तरह यह पक्ष भी उचित नहीं प्रतीत होता है। इसलिए यही सिद्धान्तित होता है कि करणे तृतीया उपर्युक्त प्रयोगों में नहीं हो सकती है। **'धूमेन वह्नेरनुमानमिदं न घटेन'** यहाँ पर षष्ठी से विधेयकत्व की उपस्थिति होती है। इसलिए धूमलिङ्गक वह्निविधेयक अनुमिति की उपस्थिति में यहाँ पर कोई परेशानी नहीं है।

यहाँ पर प्राहुः का विगत पृष्ठों में आये हुए 'परेतु' से अन्वय हुआ करता है।

'पर्वतो धूमेन वह्निमान्' इत्यादौ क्रियायोगाभावात् हेतुतृतीयैव तत्र, ज्ञापकज्ञानविषयत्वरूपं हेतुत्वं ज्ञानज्ञाप्यत्वरूपं वा हेतुमत्त्वं तृतीयार्थः। हेतु-शब्दो यद्यपि कारणपर्यायो न तु ज्ञापकपर्यायस्तथापि "हेतौ" इति सूत्रस्थ-हेतुपदं न समभिव्याहृतनिरूपितहेतुतामात्रपरमपितु समभिव्याहृततज्ज्ञाना-न्यतरनिरूपितहेतुतापरमेवेति समभिव्याहृतवह्न्यादिज्ञानहेतुज्ञानविषय धूमादिपदादपि तृतीया तत्सूत्रेणानुशिष्यते। गुणहेतौ पञ्चम्या विकल्पेन विधायकसूत्रान्तरमप्यन्यतरनिरूपितहेतुताविषयकमेव। अतः 'जाड्याद्बद्धो जाड्येन वा' इत्यत्र जाड्यस्य हेतुतावद् 'धूमाद्वह्निमान् धूमेन वा' इत्यादौ धूमादेवह्न्यादिज्ञानहेतुता प्रतीयते। हेतुत्वञ्च पूर्वोक्त प्रयोजकत्वमेव। गुणपदं

च न चतुर्विंशतिपरम् धूमादिहेतौ तत्त्वासम्भवात्।

'पर्वतो धूमेन वह्निमान्' 'पर्वत धूम से वह्निमान् है' इत्यादि स्थलों में क्रिया का योग न होने के कारण हेतु तृतीया ही है। अर्थात् **'धूमेन वह्निमनुमिनोमि'** इत्यादि स्थलों में यदि किसी तरह करण तृतीया का उपपादन कर भी लिया जाये तो भी **'पर्वतो धूमेन वह्निमान्'** इत्यादि प्रयोगों में क्रिया का योग न होने के कारण करण तृतीया का उपपादन कथमपि शक्य नहीं है, इसलिए वहाँ पर हेतु तृतीया ही हो सकती है। वहाँ पर ज्ञापकज्ञान विषयत्वरूप हेतुत्व या ज्ञानज्ञाप्यत्व रूप हेतुमत्त्व तृतीया का अर्थ है । यहाँ पर ज्ञापकज्ञानविषयत्व रूप हेतुत्व को प्राचीनों के मत से तृतीया का अर्थ मानना है और उसका निरूपकत्व सम्बन्ध से वह्नि में अन्वय स्वीकारना है। ज्ञानज्ञाप्यत्व को नवीनों के अनुसार हेत्वर्थक तृतीया का अर्थ मानना है, इसका वह्नि में अन्वय आश्रयत्व सम्बन्ध से होना है। इस प्रकार **'पर्वतो वह्निमान् धूमेन'** से प्राचीनों के अनुसार **'धूमनिष्ठज्ञापकज्ञान विषयतानिरूपक-वह्निमदभिन्नः पर्वतः'** 'धूमनिष्ठज्ञापक ज्ञान विषयतानिरूपकवह्निमदभिन्न पर्वत है' ऐसा शाब्दबोध होगा और नवीनों के अनुसार **'धूमविषयकज्ञानज्ञाप्यत्वाश्रयवह्निमदभिन्नः पर्वतः'** 'धूमविषयकज्ञानज्ञाप्यत्वाश्रयवह्निमदभिन्न पर्वत है' ऐसा शाब्दबोध होता है।

हेतुशब्द यद्यपि कारण का पर्यायवाची है, ज्ञापक का पर्याय नहीं है तथापि **'हेतौ'** इस सूत्र में स्थित हेतुपद समभिव्याहृतनिरूपित हेतुतामात्रपरक नहीं है अपितु समभिव्याहृत-तज्ज्ञानान्यतरनिरूपित हेतुतापरक ही है इसलिए समभिव्याहृतवह्न्यादि ज्ञान हेतु ज्ञानविषय धूमादि पद से भी तृतीया उक्त सूत्र से अनुशिष्ट होती है। अभिप्राय यह है कि हेतु पद कारण का पर्याय हुआ करता है ज्ञापक का पर्याय नहीं होता है। इसकारण यदि धूम में वह्नि की कारणता हो तब तो ऐसा प्रयोग होना चाहिए, धूम में वह्नि की ज्ञापकता होने के कारण ऐसा प्रयोग नहीं होना चाहिए। तथापि यहाँ पर हेतुता समभिव्याहृततज्ज्ञानान्यतरनिरूपित अपेक्षित है। समभिव्याहृत वह्नि आदि से निरूपित हेतुता हो या वह्निविषयक ज्ञान से निरूपित हेतुता हो दोनों ही स्थितियों में, दोनों ही हेतुताओं को बोधित करने के लिए धूमादि पदों से तृतीया **'हेतौ'** पा0 सू0 2/3/23 से विहित होती है। इस कारण धूम में वह्नि की कारणता न होने पर भी वह्निज्ञान निरूपित कारणता होने के कारण उक्त सूत्र से धूम पद से तृतीया हो जाती है।

गुण हेतु में पञ्चमी का विकल्प से विधान करने वाला सूत्रान्तर **'विभाषा गुणेऽस्त्रियाम्'** पा0 सू0 2/3/25 भी अन्यतर (समभिव्याहृततज्ज्ञानान्यतर) निरूपित हेतुताविषयक ही है। इस कारण **'जाड्याद्बद्धो जाड्येन वा'** 'जाड्य से बँधा या जाड्य के कारण बँधा' यहाँ पर जाड्य की हेतुता की तरह ही **'धूमाद्वह्निमान् धूमेन वा'** 'धूम से वह्निमान् है या धूम के कारण वह्निमान् है' इत्यादि स्थलों में धूमादि का वह्न्यादिज्ञान हेतुत्व प्रतीत होता है। जाड्य का बन्धहेतुत्व जैसे प्रतीत होता है, उसी प्रकार धूम का भी वह्निज्ञान हेतुत्व प्रतीत होता है। यहाँ पर बोध्य हेतुत्व पूर्वोक्त प्रयोजकत्व ही है, जनक जनकतावच्छेदक साधारण प्रयोजकत्व ही यहाँ पर हेतुत्व से अभिप्रेत है। गुण पद यहाँ पर चतुर्विंशति गुण परक नहीं है क्योंकि धूम हेतु में चतुर्विंशति गुणान्तर्गतत्व असम्भव है। इसलिए गुण पद के

चतुर्विंशति गुण परक होने पर तो धूम का गुणहेतुत्व ही सम्भव नहीं हो सकेगा।

न च तत्र धूमादिपदं तज्ज्ञानपरमेवेति तादृशगुणत्वमेव वह्न्यादिहेतोरिति वाच्यम्; तत्र धूमादिपदस्य ज्ञानलाक्षणिकत्वेऽपि 'अज्ञानाद्बद्धः' इत्यादाव-भावरूपबन्धादिहेतोस्तथात्वासम्भवात् ।

यदि कहो कि वहाँ पर '**धूमेन वह्निमान् धूमाद्वा**' यहाँ पर धूमादिपद धूमादिज्ञानपरक ही हैं इसलिए चतुर्विंशति गुण परक गुण पद के सूत्रघटक होने पर भी धूमादिज्ञान के चतुर्विंशतिगुणान्तर्गत होने के कारण वह्न्यादि हेतु का तादृशगुणत्व वैशेषिक शास्त्र प्रतिपादित गुणत्व है ही, तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि उक्त स्थल में धूमादिपद का ज्ञान लाक्षणिकत्व होने पर भी (धूमादि पदों के धूमादिज्ञान में लाक्षणिक होने पर भी) '**अज्ञानाद्बद्धः**' 'अज्ञान से बँधा है' इत्यादि स्थलों में अभावरूप बन्ध आदि हेतु का तथात्व असम्भव है। इस प्रयोग से अज्ञान का बन्धहेतुत्व बोधित होता है, अज्ञान तो ज्ञानाभाव ही है, ज्ञान के चतुर्विंशति गुणान्तर्गत होने पर भी ज्ञानाभाव तो चतुर्विंशतिगुणान्तर्गत नहीं ही है। इसलिए सूत्र में गुण पद के वैशेषिकोक्त चतुर्विंशति गुण परक होने पर अज्ञान का तो गुण हेतुत्व नहीं सम्भव हो सकता है।

तो फिर सूत्रघटक गुणपद किं परक है?

नापिधर्ममात्रपरम्– गगनादेरपि कालिकसम्बन्धेन धर्मतयाऽव्य-वर्तकत्वात्, समवायादिना धर्मत्वञ्चाभावाद्यसङ्ग्राहकम् ।

नापि द्रव्याश्रितत्वम्-'सत्तावान् गुणत्वात्' इत्यादौ पञ्चम्यन्तस्या-लाक्षणिकत्वपक्षे पञ्चम्यनुपपत्तेः।

किन्तु कार्यस्य ज्ञाप्यस्य वाश्रये आश्रितत्वम्, जाड्यादेः स्व प्रयोज्यबन्धाश्रये धूमादेश्च स्वज्ञाप्यवह्न्याद्याश्रये आश्रितत्वाद् गुणत्वम् हेतौ तद्विशेषणप्रयोजनञ्च 'पितुः पाण्डित्येन पुत्र आहूतः' 'धूमस्य स्वस्मिन् सत्त्वेन पर्वतो वह्निमान्' इत्यादौ पञ्चमीवारणम् ।

गुणपद धर्ममात्रपरक भी नहीं है क्योंकि गगन आदि के भी कालिक सम्बन्ध से धर्म होने के कारण गुणपद व्यावर्तक नहीं हो सकेगा। सभी पदार्थों के कालिक सम्बन्ध से वृत्तिमान् होने के कारण वृत्तिमत्त्व रूप धर्मत्व और धर्मत्व रूप गुणत्व सभी पदार्थों में रहेगा, इस प्रकार गुण पद किसी की भी व्यावृत्ति नहीं कर सकेगा, इस स्थिति में गुणविशेषण व्यर्थ होगा क्योंकि व्यावृत्ति करना ही विशेषण का प्रयोजन होता है। '**धनेन कुलम्**' इत्यादि स्थलों में धन रूप विशेषण से अन्य की व्यावृत्ति अपेक्षित हुआ करती है, किन्तु गुण पद के धर्म परक होने पर व्यावृत्ति सम्भव नहीं है। अतः गुणपद धर्ममात्रपर नहीं हो सकता है। समवाय सम्बन्ध से धर्मत्व वृत्तिमत्त्व तो अभावादि का असङ्ग्राहक है। समवायसम्बन्ध से धर्मत्व उन्हीं में आयेगा जो समवायसम्बन्ध से वृत्तिमान् होगा। अभाव तो समवायसम्बन्ध से वृत्तिमान् ही नहीं है। अतः समवाय सम्बन्ध से धर्मत्व को भी गुणत्व नहीं कह सकते है।

द्रव्याश्रितत्व भी गुणपद का अर्थ यहाँ पर नहीं है क्योंकि **'सत्तावान् गुणत्वात्'** 'गुणत्व के कारण सत्तावान् है' इत्यादि स्थलों में पञ्चम्यन्त के अलाक्षणिक होने के पक्ष में (गुणत्व के गुणत्वज्ञान में लाक्षणिक न मानने की स्थिति में) गुणत्वपद से पञ्चमी की अनुपपत्ति होगी। यहाँ पर गुणत्व तो गुणवृत्ति है द्रव्यवृत्ति तो है नहीं । अतः गुणत्वपद से पञ्चमी नहीं हो सकती है। गुणत्व के गुणत्वज्ञान में लाक्षणिक होने पर तो उसका गुणत्व बन सकता है क्योंकि गुणत्वज्ञान तो आत्मारूप द्रव्य में वृत्ति है। इसलिए गुणत्व के लाक्षणिकत्व पक्ष में आपत्ति नहीं है। अलाक्षणिकत्व पक्ष में ही आपत्ति विद्यमान है।

किन्तु कार्य के या ज्ञाप्य के आश्रय में आश्रितत्व ही गुणत्व है । जाड्य के स्वप्रयोज्यबन्ध के आश्रय में आश्रित रहने के कारण जाड्यादि का गुणत्व होता है और धूमादि के स्वज्ञाप्यवह्नि आदि के आश्रय पर्वतादि में आश्रित होने के कारण धूमादि का गुणत्व होता है। हेतु में गुण हेतु देने का प्रयोजन है **'पितुः पाण्डित्येन पुत्र आहूतः'** 'पिता के पाण्डित्य से पुत्र बुलाया गया' **'धूमस्य स्वस्मिन् सत्त्वेन पर्वतो वह्निमान्'** 'धूम के अपने आप में रहने के कारण पर्वत वह्निमान् है' इत्यादि स्थलों में पाण्डित्य और धूम आदि पदों से पञ्चमी का वारण। चूँकि इन स्थलों में पाण्डित्य स्वप्रयोज्य आह्वान (बुलावे) के आश्रय पुत्र में आश्रित नहीं है, धूम स्वज्ञाप्य वह्नि के आश्रय पर्वत में आश्रित नहीं है स्व में ही आश्रित है। अतः पाण्डित्य और धूम से पञ्चमी नहीं होती है बल्कि तृतीया ही होती है।

ज्ञापकत्वं च तज्ज्ञानजनकप्रमाविषयत्वम्, ज्ञाप्यत्वमपि प्रमाजन्यज्ञानविषयत्वम् । अतो वह्न्यादेर्व्याप्यताभ्रमेण धूमादिज्ञापकत्वसत्त्वेऽपि 'वह्निना वह्नेर्वा धूमवानयम्' इत्यादयो न प्रयोगाः । प्रमात्वं च यावद्भ्रमभिन्नत्वरूपं विवक्षणीयं तेन 'धूमव्याप्यो वह्निः' इत्यादिज्ञानस्य वह्नित्वाद्यंशे प्रमात्वमादाय नोक्तातिप्रसङ्गः। द्रव्यत्वादेः प्रमेयत्वावच्छिन्नवह्न्यादिज्ञापकत्वेऽपि विशिष्टद्रव्यत्वत्वादिना वह्नित्वाद्यवच्छिन्नज्ञापकत्वेऽपि च 'पर्वतोवह्निमान् द्रव्यत्वाद् द्रव्यत्वेन वा' इत्यादिर्न प्रयोगः– अन्वयितावच्छेदकवह्नित्वद्रव्यत्वत्वादिना ज्ञाप्यज्ञापकभावस्य तृतीयादिना बोधनात् तत्र तेन रूपेण ज्ञाप्यज्ञापकभावविरहात्।

ज्ञापकत्व का अर्थ तज्ज्ञानजनकप्रमाविषयत्व है तथा ज्ञाप्यत्व भी प्रमाजन्यज्ञान विषयत्व है। अर्थात् वह्नि आदि विषयक ज्ञान को उत्पन्न करने वाली जो प्रमा उसका विषयत्व ही ज्ञापकत्व है और प्रमा से उत्पन्न ज्ञान का विषयत्व ज्ञाप्यत्व है। इस कारण वह्नि आदि की धूमादिव्याप्यता के भ्रम से धूमादिज्ञापकत्व रहने पर भी **'वह्निना वह्नेर्वा धूमवानयम्'** 'वह्नि के कारण या वह्नि से यह धूमवाला है' ऐसा प्रयोग नहीं होता है। अर्थात् यदि भ्रम हो जाये कि 'वह्नि धूम का व्याप्य है' तो उस स्थिति में वह्नि में धूमव्याप्यता का भ्रम होने की स्थिति में वह्नि धूम का ज्ञापक होता है किन्तु धूमविषयकज्ञान को उत्पन्न करने वाली प्रमा का विषयत्व वह्नि में नहीं है, धूमविषयकज्ञानजनकभ्रमविषयत्व ही है।

इसलिए ऐसे प्रयोग नहीं होते हैं।

यहाँ पर प्रमात्व यावद्भ्रमभिन्नत्व रूप अपेक्षित है, विवक्षणीय है। अतः **'धूमव्याप्यो वह्निः'** इत्यादि ज्ञान का वह्नित्व अंश प्रमात्व लेकर वह्नि में धूमज्ञानजनक प्रमाविषयत्व रूप ज्ञापकत्व का उक्त प्रसङ्ग नहीं है। भाव यह है कि यह ज्ञान भी सम्पूर्णांश में भ्रम नहीं है वह्नि में धूमव्याप्यत्वांश में भ्रम है और वह्नित्व अंश में प्रमा है। इस प्रकार धूमज्ञानजनक यह ज्ञान है और वह्नित्व अंश में प्रमा होने से धूमज्ञानजनक प्रमाविषयत्व वह्नि में आ जाता है। इस कारण **'वह्निना वह्नेर्वा धूमवानयम्'** प्रयोग होना चाहिए, यह आपत्ति है। प्रमात्व के यावद्भ्रमभिन्नत्वरूप होने से उक्त ज्ञान के यावद्भ्रमभिन्न न होने से कोई आपत्ति नहीं है।

द्रव्यत्व आदि के प्रमेयत्वावच्छिन्न वह्नि आदि का ज्ञापक होने पर भी और विशिष्ट द्रव्यत्वत्वादि रूप से द्रव्यत्वादि के वह्नित्वाद्यवच्छिन्न का ज्ञापक होने पर भी **'पर्वतो वह्निमान् द्रव्यत्वाद् द्रव्यत्वेन वा'** 'पर्वत द्रव्यत्व से या द्रव्यत्व के कारण वह्निवाला है' ऐसा प्रयोग नहीं होता है क्योंकि अन्वयितावच्छेदकवह्नित्वद्रव्यत्वत्वादि रूप से ज्ञाप्य ज्ञापकभाव तृतीया आदि से बोधित होता है और वहाँ पर अन्वयितावच्छेदक वह्नित्व द्रव्यत्वत्वादि रूप से ज्ञाप्यज्ञापकभाव नहीं है। कहने का भाव यह है कि **'पर्वतो वह्निमान् द्रव्यत्वाद् द्रव्यत्वेन वा'** इत्यादि प्रयोगों में वह्नि में द्रव्यत्व का अन्वय होता है, बीच में आता है ज्ञापकज्ञानविषयत्व रूप तृतीयार्थ या ज्ञानज्ञाप्यत्वरूप तृतीयार्थ। इस प्रकार अन्वयितावच्छेदक वह्नित्व और द्रव्यत्वत्व हुए। वह्नि और द्रव्यत्व का यदि वह्नित्वेन और द्रव्यत्वत्वेन ज्ञाप्यज्ञापकभाव बोधित हो रहा होगा, तभी उक्त प्रयोग सम्भव होगा। यदि वह्नित्वेन और द्रव्यत्वत्वेन ज्ञाप्यज्ञापकभाव नहीं बोधित हो रहा होगा, तो उक्त प्रयोग सम्भव नहीं होगा। यद्यपि द्रव्यत्वादि प्रमेयत्वावच्छिन्न वह्नि का ज्ञापक है, प्रमेय का ज्ञापक है और वह्नि भी प्रमेय है। इस प्रकार द्रव्यत्व में वह्निज्ञान (प्रमेयत्वेन वह्निज्ञान) जनक प्रमा विषयत्व है। तथापि वह्नित्वेन वह्निज्ञानजनकप्रमाविषयत्व न होने के कारण उक्त प्रयोग नहीं होता है। इसी प्रकार द्रव्यत्व में धूमविशिष्टपर्वतवृत्तित्वविशिष्ट द्रव्यत्वत्वेन रूपेण वह्निज्ञान जनकत्व विद्यमान है तथापि उक्त प्रयोग नहीं होता है क्योंकि द्रव्यत्वत्वेन रूपेण द्रव्यत्व का यहाँ पर वह्निज्ञानजनक प्रमा का विषयत्व नहीं है बल्कि धूमवत् पर्वत वृत्तित्व विशिष्ट द्रव्यत्वत्वेन है।

एवं ज्ञाप्यवह्न्यादिमत्त्वान्वयितावच्छेदकपर्वतत्वावच्छिन्नांशे ज्ञापकत्वं ज्ञाप्यत्वं वा प्रतीयत इत्यपि नियमस्तेन 'पर्वतो वह्निमान् महानसत्वात् तेन वा' इत्यादयो न प्रयोगः।

इसी प्रकार ज्ञाप्य वह्न्यादिमत्त्वान्वयितावच्छेदकपर्वतत्वावच्छिन्नांश में ज्ञापकत्व या ज्ञाप्यत्व प्रतीत होता है यह भी नियम है, इस कारण **'पर्वतो वह्निमान् महानसत्वात्, महानसत्वेन वा'** 'पर्वत वह्निवाला है महानसत्व से या महानसत्व के कारण, इत्यादि प्रयोग नहीं होता है।

अभिप्राय यह है कि ज्ञाप्य वह्निमत्त्व है, ज्ञाप्य वह्निमत्त्व में पर्वतत्वावच्छिन्नत्व

भासित होता है। तो केवल वह्निमत्त्व में ज्ञाप्यत्व नहीं है बल्कि पर्वतत्वावच्छिन्न अंश में भी या तो ज्ञाप्यत्व भासता है या तो ज्ञापकत्व भासता है अर्थात् या तो वह्निमत्व की ज्ञाप्यता आती है, धूमज्ञान से ज्ञाप्यता आती है। उसमें वह्निमत्त्व में ही धूमज्ञानज्ञाप्यत्व नहीं भासता है बल्कि पर्वतत्वावच्छिन्नवह्निमत्त्व में धूमज्ञानज्ञाप्यत्व भासता है। अथवा धूमज्ञान मात्र में वह्निज्ञापकत्व नहीं भासता है अपितु पर्वतत्वावच्छिन्नत्व जो धूमवत्त्व में है उसमें भी वह्निज्ञापकत्व भासता है। वह्निव्याप्तिविशिष्ट व पर्वतत्वावच्छिन्न धूम में वह्नि ज्ञापकत्व भासता है। अतः **'पर्वतो वह्निमान महानसत्वात्, महानसत्वेन वा'** ऐसा प्रयोग नहीं होता है क्योंकि महानसत्व ज्ञान में यद्यपि वह्निज्ञापकत्व है किन्तु पर्वतत्वावच्छिन्न वह्निमत्त्वज्ञापकत्व नहीं है और न तो पर्वतत्वावच्छिन्न महानसत्व ज्ञान का वह्निज्ञापकत्व है। क्योंकि महानसत्व महानस में ही वह्निमत्त्व का ज्ञापक होता है पर्वत में नहीं और महानसत्वविशिष्ट वह्निमत्त्व में ही महानसत्वज्ञाप्यत्व है न कि पर्वतत्वावच्छिन्न वह्नि में। अतः उक्त प्रयोग नहीं होते है।

अत्रेदमवधेयम्–'पर्वतो वह्निमान् धूमान्न द्रव्यत्वान्न महानसत्वात्' इत्यादौ नञा वह्न्यादौ द्रव्यत्वमहानसत्वादिज्ञानज्ञाप्यत्वाभावबोधने बाधः, तत्र प्रमेयत्वादिना द्रव्यत्वादिज्ञानज्ञाप्यत्वस्य महानसादौ महानसत्वादि ज्ञान-ज्ञाप्यत्वस्य च सत्त्वात्। वह्नित्वादिनाद्रव्यत्वादिज्ञाप्यत्वस्य पर्वतादौ महानसत्वादिज्ञाप्यत्वस्य चाप्रसिद्ध्या नाभावप्रत्यायनसम्भव इति ज्ञान प्रयोज्यत्वं ज्ञानजन्यतावच्छेदकत्वरूपं समभिव्याहृतपर्वतादिविशेष्यता निरूपितं विधेयत्वञ्च विशकलितं पञ्चम्यर्थः विशिष्टलाभोऽन्वयबलात्। एवञ्चोक्तस्थले नञा विधेयतायां द्रव्यत्वमहानसत्वादिज्ञानप्रयोज्यत्वाभावः प्रत्याय्यते, तत्प्रयोज्यत्वञ्च प्रमेयत्वाद्यवच्छिन्नविधेयतायां प्रसिद्धम्।

यहाँ पर यह ध्यान रखना चाहिए- **'पर्वतो वह्निमान् धूमान्न द्रव्यत्वान्नापि महानसत्वात्'** 'पर्वत वह्निवाला है धूम से, न द्रव्यत्व से और न ही महानसत्व से' इत्यादि स्थलों में नञ् के द्वारा वह्न्यादि में द्रव्यत्व, महानसत्वादिज्ञानज्ञाप्यत्वाभाव बोधन करने में बाध है क्योंकि वह्नि में प्रमेयत्वादि रूप से द्रव्यत्वादिज्ञानज्ञाप्यत्व और महानस आदि स्थल लेकर महानसत्वादिज्ञानज्ञाप्यत्व विद्यमान है। अभिप्राय यह है कि इस जैसे स्थल में वह्नि आदि में द्रव्यत्व और महानसत्वादि ज्ञानज्ञाप्यत्व का अभाव बोधित होता है यदि ऐसा माना जाये तो इसका तो वह्नि में बाध है क्योंकि द्रव्यत्व प्रमेय का ज्ञापक होता है, वह्नि भी प्रमेय है, अतः प्रमेयत्वेन रूपेण वह्नि में द्रव्यत्वादिज्ञानज्ञाप्यत्व विद्यमान है। इसी प्रकार महानसत्व भी महानस में वह्नि का ज्ञापक होता है । अतः वह्नि में महानसत्वज्ञान ज्ञाप्यत्व भी विद्यमान है । इस कारण वह्नि में द्रव्यत्वज्ञानज्ञाप्यत्व और महान सत्वज्ञानज्ञाप्यत्व का अभाव यदि बोधित करना चाहें तो वह बाधित होने से सम्भव नहीं है।

वह्नित्वादिना द्रव्यत्वादिज्ञाप्यत्व और पर्वतादि में महानसत्वादिज्ञाप्यत्व की तो अप्रसिद्धि

होने के कारण अभाव के द्वारा प्रत्यायन सम्भव नहीं है इसलिए ज्ञान जन्यतावच्छेदकत्वरूप ज्ञानप्रयोज्यत्व और समभिव्याहृत पर्वतादिविशेष्यतानिरूपितविधेयत्व ये दोनों अलग-अलग ही पञ्चमी के अर्थ है। इस प्रकार उक्त स्थल में नञ् के द्वारा विधेयता में द्रव्यत्वमहानसत्वादि-ज्ञानप्रयोज्यत्वाभाव ही प्रत्याय्यित होता है और महानसत्वद्रव्यत्वादिज्ञान प्रयोज्यत्व प्रमेयत्वमहान-सत्वादि से अवच्छिन्न विधेयता में प्रसिद्ध है।

अभिप्राय यह है कि उपर्युक्त बाध की आपत्ति दूर करने के लिए यदि आप कहें कि **'पर्वतो वह्निमान् धूमान्न द्रव्यत्वान्नापि महानसत्वात्'** इस स्थल में वह्नि में द्रव्यत्व ज्ञानज्ञाप्यत्व का अभाव और महानसत्वज्ञानज्ञाप्यत्व का अभाव नहीं बोधित होता है अपितु वह्नित्वेन द्रव्यत्वादिज्ञानज्ञाप्यत्व का अभाव बोधित होता है और पर्वत में महान सत्वादिज्ञानज्ञाप्यत्व का अभाव बोधित होता है अर्थात् द्रव्यत्वादिज्ञाननिरूपित वह्नित्वेन ज्ञाप्यत्व का अभाव वह्नि में बोधित होता है और महानसत्वादिज्ञान निरूपित पर्वत में वृत्तित्वविशष्टत्वेन ज्ञाप्यत्व का अभाव वह्नि में बोधित होता है। तो यह भी नहीं कहं सकते हैं क्योंकि ऐसी स्थिति में आवश्यक होगा कि 'द्रव्यत्वादिज्ञाननिरूपित वह्नित्वेन ज्ञाप्यत्व' और 'महानसत्वादिज्ञाननिरूपित पर्वतवृत्तित्वविशिष्टत्वेन ज्ञाप्यत्व' प्रसिद्ध हो, तभी उसका अभाव वह्नि में बोधित किया जा सकता है। किन्तु यह तो प्रसिद्ध ही नहीं है। अतः अभाव का प्रत्यायन भी नहीं किया जा सकता है। इस कारण ज्ञानप्रयोज्यत्व और समभिव्याहृत पर्वतादिविशेष्यतानिरूपित-विधेयत्व इन दोनों में पञ्चमी की खण्डशक्ति स्वीकारी जाती है। ज्ञानप्रयोज्यसमभिव्या-हृतपर्वतादिविशेष्यतानिरूपितविधेयत्व के उक्तस्थलों में अप्रसिद्ध होने पर भी क्रमशः (खण्डशः) ज्ञानप्रयोज्यत्व और समभिव्याहृतपर्वतविशेष्यतानिरूपित विधेयत्व प्रसिद्ध ही हैं। ज्ञानप्रयोज्यत्व का अर्थ यहाँ पर ज्ञानजन्यतावच्छेदकत्व है, ज्ञानजन्या अनुमिति और अनुमिति की अवच्छेदका उक्त विधेयता होती है।

विशिष्ट का लाभ अन्वय के बल से हुआ करता है। इस प्रकार उक्तस्थल में नञ् के द्वारा विधेयता में द्रव्यत्व महानसत्वादिज्ञानप्रयोज्यत्वाभाव ही बोधित होता है। द्रव्यत्व-ज्ञानप्रयोज्यत्व प्रमेयत्वावच्छिन्नविधेयता में और महानसत्वज्ञानप्रयोज्यत्व महानस विशेष्यता निरूपित वह्नित्वावच्छिन्न विधेयता में प्रसिद्ध है। इसलिए शाब्दबोध में कोई अनुपपत्ति नहीं होती है।

इस प्रकार **'पर्वतो वह्निमान् धूमात् न तु द्रव्यत्वात्'** से **'धूमज्ञानप्रयोज्या (जन्यतावच्छेदकीभूता) अथ च द्रव्यत्वज्ञानप्रयोज्यत्वाभाववती (जन्यतान-वच्छेदिका) या पर्वतनिष्ठविशेष्यतानिरूपितविधेयता तदाश्रयवह्निमदभिन्नः पर्वतः'** 'धूमज्ञान प्रयोज्य और द्रव्यत्वज्ञानाप्रयोज्य जो पर्वतनिष्ठविशेष्यतानिरूपित विधेयता तदाश्रयवह्निमत् से अभिन्न पर्वत है' ऐसा शाब्दबोध होता है।

न चैवम् 'पर्वतो वह्निमान् न धूमात्' इत्यादेरपि प्रसङ्गः— धूमत्वा द्यवच्छिन्नविषयकज्ञानाप्रयोज्यतत्तद्वह्नित्वाद्यवच्छिन्नविधेयताया वह्न्यादाव-बाधितत्वादिति वाच्यम्; पर्वतादिविशेष्यतानिरूपितवह्नित्वाद्यवच्छिन्न

विधेयतात्वावच्छेदेन विधेयतायां नञाऽभावान्वयबोधोपगमात्।

यदि कहो कि इस प्रकार तो 'पर्वतो वह्निमान् न धूमात्' इत्यादि प्रयोगों का भी प्रसङ्ग होगा क्योंकि धूमत्वाद्यवच्छिन्नविषयकज्ञान से अप्रयोज्य तत्तद्वह्नित्वाद्यवच्छिन्न विधेयता वह्नि आदि में अबाधित है। अभिप्राय यह है कि आपके अनुसार यहाँ पर 'समभिव्याहृत पर्वतादिविशेष्यतानिरूपित विधेयता में धूमादिज्ञानप्रयोज्यता का अभाव बोधित होगा' और ऐसा बोधन अबाधित है क्योंकि तत्तद्वह्नित्वावच्छिन्न विधेयताएँ तो तत्तद्वह्नि के भेद से अनन्त होंगी और समस्त विधेयताओं में तो धूमज्ञानप्रयोज्यत्व रहेगा नहीं, इसं प्रकार धूमत्वावच्छिन्नविषयकज्ञानप्रयोज्य पर्वतविशेष्यतानिरूपित तद्वह्नित्वावच्छिन्नविधेयताश्रय वह्नि के बोधन के अभिप्राय से उक्त वाक्यप्रयोग होना चाहिए क्योंकि इसमें तो कहीं पर बाध है नहीं?

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि पर्वतादिविशेष्यतानिरूपितवह्नित्वाद्यवच्छिन्नविधेयतात्वावच्छेदेन विधेयता में नञ् के द्वारा धूमादिज्ञानप्रयोज्यत्व का अभाव बोधित होता है ऐसा स्वीकारते है। तत्तद्वह्नित्वावच्छिन्नविधेयतात्वावच्छेदेन विधेयता में धूमादिज्ञानप्रयोज्यत्व का अभाव नहीं बोधित होता है। चूँकि पर्वतविशेष्यतानिरूपित वह्नित्वावच्छिन्नविधेयतात्वावच्छेदेन धूमज्ञानप्रयोज्यत्व का अभाव नहीं है अपितु उक्तानु मितिस्थलीय तद्विधेयता में धूमज्ञान - प्रयोज्यत्व ही है। अतः पर्वतविशेष्यतानिरूपितवह्नित्वावच्छिन्नविधेयतात्वावच्छेदेन धूमज्ञान-प्रयोज्यत्वाभाव का बाध है। अतः यह बोधित नहीं किया जा सकता है और तत्तद्वह्नित्वावच्छिन्नविधेयता में उक्त प्रयोज्यत्व का अभावबोधन स्वीकारा नहीं जाता।

यत्र वह्नित्वावच्छिन्नविधेयतात्वमन्वयितावच्छेदकं तत्रैव तदवच्छेदेनेतरान्वयः सम्भवति, अत्र च वह्नित्वावच्छिन्नाविशेषितं विधेयतात्वमेव तथेति कथं तदवच्छेदेनाभावान्वय इति तु न शङ्क्यम्–पञ्चम्याद्यर्थ विधेयताया वह्न्यादौ वह्नित्वावच्छेदेनान्वयोपगमात् तदवच्छेदेन तदन्वये चावच्छेदकतद्रूपस्य तद्विशेषणांशे धर्मिपारतन्त्र्येण प्रकारत्वात्। प्रकृते स्वरूप-सम्बन्धरूपवह्नित्वाद्यवच्छिन्नत्वेन सहितस्य विधेयतात्वस्यैवान्व-यितावच्छेदकत्वात्।

जहाँ पर वह्नित्वावच्छिन्नविधेयतात्व अन्वयितावच्छेदक होता है वहीं पर वह्नित्वावच्छिन्नविधेयतात्वावच्छेदेन इतर का अन्वय सम्भव होता है, यहाँ पर तो वह्नित्वावच्छिन्नत्व से अविशेषित विधेयतात्व ही अन्वयितावच्छेदक है, फिर कैसे वह्नित्वावच्छिन्नविधेयतात्वावच्छेदेन धूमादिज्ञान प्रयोज्यत्व का अभाव अन्वित होगा? ऐसी आशङ्का तो नहीं करनी चाहिए क्योंकि पञ्चम्याद्यर्थ विधेयता का वह्नि आदि में वह्नित्वाद्यवच्छेदेन ही अन्वय स्वीकारा जाता है इस कारण वह्नित्वावच्छेदेन विधेयता का अन्वय करने पर अवच्छेदकीभूत तद्रूप तद्विशेषणांश में धर्मिपारतन्त्र्येण प्रकार होता है। प्रकृत स्थल में स्वरूपसम्बन्धरूप वह्नित्वा-द्यवच्छिन्नत्व से सहित विधेयतात्व का ही अन्वयितावच्छेदकत्व होता है।

यहाँ पर प्रश्न और समाधान के माध्यम से एक आशङ्का समाहित कर रहे हैं।

आशङ्का है कि जहाँ पर वह्नित्वावच्छिन्नविधेयतात्व अन्वयितावच्छेदक होगा वहीं पर वह्नित्वावच्छिन्नविधेयतात्वावच्छेदेन धूमादिज्ञानप्रयोज्यत्व का अभाव अन्वित हो सकता हैं। किन्तु यहाँ पर तो वह्नित्वावच्छिन्नविधेयतात्व अन्वयितावच्छेदक ही नहीं है क्योंकि पञ्चमी की विशकलित शक्ति ज्ञानप्रयोज्यत्व और समभिव्याहृत पर्वतादिविशेष्यता निरूपित विधेयता में स्वीकारी गयी है। नञ् के न रहने पर यदवच्छेदेन यद्वत्ता प्रतीत होती है, नञ् के रहने पर तदवच्छेदेन ही तदभाववत्ता प्रतीत होती है। यह तो ख़ुद गदाधर ही सिद्धान्तित कर चुके हैं। (द्रष्टव्य— प्रथमाकारक अभेदसंसर्गताप्रकारताविवाद) तो चूँकि नञ् के न रहने पर धूमादिज्ञानप्रयोज्यत्ववत्ता का भान पर्वतविशेष्यतानिरूपितविधेयता में होता है, अतः पर्वतविशेष्यता निरूपितविधेयतात्वावच्छेदेन ही धूमादिज्ञानप्रयोज्यत्वाभाव का भान हो सकता है। अन्वयितावच्छेदक यहाँ पर पर्वतविशेष्यतानिरूपितविधेयतात्व ही है न कि पर्वतविशेष्यतानिरूपित वह्नित्वावच्छिन्नविधेयतात्व । इसलिए पर्वतविशेष्यतानिरूपित विधेयतात्वावच्छेदेन ही धूमादिज्ञान-प्रयोज्यत्व का अभाव बोधित किया जा सकता है। पर्वतविशेष्यतानिरूपितवह्नित्वावच्छिन्न विधेयतात्वावच्छेदेन धूमादिज्ञानप्रयोज्यत्व का अभाव नहीं बोधित किया जा सकता है। तो आप कैसे कह रहे हैं कि वह्नित्वावच्छिन्नविधेयतात्वावच्छेदेन धूमादिज्ञानप्रयोज्यत्व का अभाव बोधित होता है?

इसका समाधान यह है कि पञ्चमी की अर्थभूता विधेयता का वह्नि आदि में वह्नित्वाद्यवच्छेदेन ही अन्वय स्वीकारा जाता है । इसलिए विधेयतात्वावच्छेदेन धूमादिज्ञानप्रयोज्यत्व का अन्वय करने पर विधेयता का अवच्छेदकीभूत वह्नित्व विधेयता के विशेषणांश में धर्मि पारतन्त्र्येण प्रकार होता है। भाव यह है कि धर्मी हुआ विधेयत्व, जिसमें कि धूमज्ञान प्रयोज्यत्व का अन्वय करना है। चूँकि विधेयता का वह्नित्वावच्छेदेन अन्वय होता है इसलिए विधेयतात्व जैसे धर्मितावच्छेदक होता है उसी प्रकार वह्नित्व भी होता है । क्योंकि विधेयतात्व का स्वरूपतः भान नहीं हो सकता है, वह्नित्वावच्छिन्नविधेयतात्वेन ही हो सकता है। इस प्रकार धर्मी विधेयता के पारतन्त्र्य से वह्नित्व विधेयतात्व के साथ-साथ भासता है। प्रकृतस्थल में स्वरूपसम्बन्धात्मक वह्नित्वाद्यवच्छिन्नत्व से सहित विधेयतात्व ही अन्वयितावच्छेदक होता है। अतः उपर्युक्त कथन असङ्गत है कि वह्नित्वावच्छिन्नविधेयतात्व अन्वयितावच्छेदक नहीं हो सकता है।

विमर्श–यहाँ पर विधेयता में वह्नित्वावच्छिन्नत्व स्वरूपसम्बन्ध रूप विवक्षणीय होने का प्रयोजन यह है कि अनतिरिक्तवृत्तित्व रूप वह्नित्वावच्छिन्नत्व विधेयता में सम्भव नहीं है, अतः उसकी विवक्षा नहीं कर सकते हैं।

वह्न्यादिपदमेव तदवच्छिन्नविधेयताशालिज्ञानपरं तदुत्तरमतुबादिप्रत्ययो विशेष्यतारूपसम्बन्धपर इति प्राचीनमते तु वह्नित्वाद्यवच्छिन्न विधेयतात्वस्यान्वयितावच्छेदकत्वमविवादमेव।

वह्नि आदि पद ही तदवच्छिन्न (वह्नित्वावच्छिन्न) विधेयताशालिज्ञानपरक हैं और

उनके बाद आनेवाला मतुप् आदि प्रत्यय विशेष्यतारूपसम्बन्धपरक है, इस प्रचीन मत में तो वह्नित्वाद्यवच्छिन्न विधेयतात्व का अन्वयितावच्छेदकत्व निर्विवाद ही है।

इस मत में चूँकि वह्नि पद से वह्नित्वावच्छिन्नविधेयताशालिज्ञान की उपस्थिति होती है, अतः विधेयता के वह्नित्वावच्छिन्नत्वेन विशेषित ही उपस्थित होने के कारण वह्नित्वावच्छिन्नविधेयतात्व के अन्वयितावच्छेदक होने में कोई भी सन्देह नहीं है। इस प्रकार इस मत में **'पर्वतो वह्निमान् धूमात्'** इस वाक्य से **'धूमज्ञानप्रयोज्य वह्नित्वावच्छिन्न-विधेयताशालिज्ञानीयविशेष्यताश्रयः पर्वतः'** 'धूमज्ञान प्रयोज्यवह्नित्वावच्छिन्नविधेयंता-शालिज्ञानीयविशेष्यता वाला पर्वत है' ऐसा बोध होता है।

विधेयतायास्तत्तत्सम्बन्धावच्छिन्नविधेयतात्वेन पञ्चम्याद्यर्थत्वं स्वीकरणीयं तेन 'अयं जानाति आत्मत्वान् न द्रव्यत्वात्' इत्यादौ विषयता सम्बन्धावच्छिन्नायां प्रकृतविशेष्यतानिरूपितज्ञानविधेयतायां द्रव्यत्वा-दिरूपलिङ्गज्ञानप्रयोज्यत्वसत्त्वेऽपि नावच्छेदकावच्छेदेनाभावान्वयायोग्य-त्वम्- सम्बन्धविशेषावच्छिन्नविधेयतात्वरूपान्वयितावच्छेदकावच्छे-देनाभाववत्त्वबोधात् ।

विधेयता को तत्तत्सम्बन्धावच्छिन्नविधेयतात्वेन पञ्चमी का अर्थ स्वीकारना चाहिए इस कारण **'अयं जानाति आत्मत्वान्नद्रव्यत्वात्'** इत्यादि स्थलों में विषयतासम्बन्धावच्छिन्ना प्रकृतविशेष्यतानिरूपितविधेयता में द्रव्यत्वादिरूपलिङ्गज्ञानप्रयोज्यत्व रहने पर भी अवच्छेदकावच्छेदेन अभावान्वय की अयोग्यता नहीं है क्योंकि सम्बन्धविशेष से अवच्छिन्न विधेयतात्वरूप अन्वयितावच्छेदक के अवच्छेदेन अभाववत्त्व-बोध होता है।

अभिप्राय यह है कि यदि सामान्यतया विधेयता को पञ्चम्यर्थ मानें तो **'अयं जानाति आत्मत्वान् न द्रव्यत्वात्'** 'यह जानता है आत्मत्व के कारण न कि द्रव्यत्व के कारण' यहाँ पर शाब्दबोध की अयोग्यता होगी क्योंकि यहाँ पर समभिव्याहृत इदं पदार्थ विशेष्यतानिरूपित ज्ञानत्वावच्छिन्नविधेयतात्वावच्छेदेन आत्मत्वज्ञानप्रयोज्यत्व और द्रव्यत्व ज्ञानप्रयोज्यत्व का भान होना चाहिए। किन्तु इदंपदार्थविशेष्यतानिरूपित ज्ञानत्वावच्छिन्न (समवायसम्बन्धावच्छिन्न) विधेयतात्वावच्छेदेन आत्मत्वज्ञानप्रयोज्यत्व जिस प्रकार से है, उसी प्रकार इदंपदार्थविशेष्यतानिरूपित ज्ञानत्वावच्छिन्न (विषयता सम्बन्धावच्छिन्न) विधेयतात्वावच्छेदेन द्रव्यत्वज्ञान प्रयोज्यत्व भी विद्यमान है क्योंकि समवाय सम्बन्ध से ज्ञान का अनुमापक हेतु जैसे आत्मत्व होता है वैसे ही विषयता सम्बन्ध से ज्ञान का अनुमापक हेतु द्रव्यत्व होता है। तो ऐसी स्थिति में इदंपदार्थनिष्ठविशेष्यतानिरूपित ज्ञानत्वावच्छिन्न विधेयतात्वावच्छेदेन आत्मत्वज्ञान प्रयोज्यत्व भी है और द्रव्यत्वज्ञानप्रयोज्यत्व भी है। अतः द्रव्यत्वज्ञानाप्रयोज्यत्व का भान नहीं हो सकेगा ।

इसलिए सम्बन्धविशेष को अन्तर्भूत करके विधेयता को पञ्चमी आदि का अर्थ मानना चाहिए। ऐसी स्थिति में यहाँ पर पञ्चमी का अर्थ हुआ समवायसम्बन्धावच्छिन्नविधेयता। इदंपदार्थनिष्ठविशेष्यतानिरूपित समवायसम्बन्धावच्छिन्न ज्ञानत्वावच्छिन्नविधेयतात्वावच्छेदेन

अब आत्मत्वज्ञानप्रयोज्यत्व और द्रव्यत्वज्ञानाप्रयोज्यत्व भासित होना चाहिए और इसमें कोई आपत्ति नहीं है क्योंकि समवायसम्बन्धावच्छिन्न ज्ञानत्वावच्छिन्नविधेयता आत्मत्वज्ञान से ही प्रयोज्य होती है द्रव्यत्वज्ञान से प्रयोज्य नहीं होती है।

एवं ज्ञानप्रयोज्यत्वप्रविष्टं ज्ञानमपि तत्तत्सम्बन्धावच्छिन्नप्रकारकत्व विशेषितमर्थः, तेन समवायेन हेतुत्वपरस्य 'अयं वह्निमान् तद्रूपान्न तु धूमात्' इति प्रयोगस्य नायोग्यता—वह्निविधेयतायां संयोगेन धूमप्रकारकज्ञानप्रयोज्यत्व सत्त्वेऽपि समवायसम्बन्धावच्छिन्नतत्प्रकारताशालिज्ञानप्रयोज्यतात्वरूपा-न्वयितावच्छेदकावच्छिन्नाभावस्याबाधात्। सम्बन्धविशेषघटित धर्मस्यान्वयिता-वच्छेदकत्वनियामकं तु तात्पर्यमेव। वह्न्यादिविधेयताया व्याप्त्यादिघटकाभावादि-ज्ञानप्रयोज्यत्वसत्त्वेऽपि 'पर्वतो वह्निमानभावात्' इत्यादिर्न प्रयोगः-मुख्यविशेष्यतानिरूपितप्रकारताया एव निवेशनीयत्वादिति दिक्।

इसी प्रकार ज्ञानप्रयोज्यत्वप्रविष्ट ज्ञान भी तत्तत्सम्बन्धावच्छिन्नप्रकारकत्व से विशेषित ही पञ्चम्यर्थघटक होता है। इस कारण समवायसम्बन्ध से हेतुत्वपरक **'अयं वह्निमान् तद्रूपान्नतु धूमात्'** 'यह वह्निमान् है तद्रूप के कारण धूम के कारण नहीं' इस प्रयोग की अयोग्यता नहीं होती है क्योंकि वह्निविधेयता में संयोगेन धूमप्रकारकज्ञान प्रयोज्यत्व रहने पर भी समवायसम्बन्धावच्छिन्न तत्प्रकारताशालि (धूमप्रकारताशालि) ज्ञानप्रयोज्यतात्वरूपान्वयिता-वच्छेदकावच्छिन्नाभाव का बाध नहीं होता है । सम्बन्धविशेष से घटित धर्म के अन्वयितावच्छेदकत्व का नियामक तो तात्पर्य ही है। वह्न्यादिविधेयता का व्याप्त्यादिघटक अभावादिज्ञानप्रयोज्यत्व रहने पर भी **'पर्वतो वह्निमानभावात्'** इत्यादि प्रयोग नहीं होते हैं क्योंकि मुख्यविशेष्यतानिरूपित प्रकारता का ही निवेश करना चाहिए।

यहाँ पर उपर्युक्त परिष्कारों में कुछ और परिष्कार करना चाह रहे हैं। तथा इसीलिए दोष दिखा रहे हैं। कहना है कि **'अयं वह्निमान् तद्रूपान्नतु धूमात्'** 'यह वह्निमान् है तद्रूप के कारण धूम के कारण नहीं' ऐसा प्रयोग होता है किन्तु उपर्युक्त परिष्कारों के अनुसार तो इस प्रयोग की अयोग्यता होने लगेगी। इसलिए यह प्रयोग सम्भव नहीं हो सकेगा। अयोग्यता कैसे है? तद्रूप भी संयोग सम्बन्ध से ही वह्नि को सिद्ध करता है और धूम भी संयोग सम्बन्ध से ही वह्नि को सिद्ध करता है। ऐसी परिस्थिति में इस वाक्य से जन्य शाब्द बोध में इदंपदार्थविशेष्यतानिरूपितवह्नित्वावच्छिन्नसंयोगसम्बन्धावच्छिन्नविधेयतात्वावच्छेदेन तद्रूपज्ञानप्रयोज्यत्व और धूमज्ञानप्रयोज्यत्व भासित होना चाहिए। किन्तु इदंपदार्थनिष्ठ विशेष्यतानिरूपितवह्नित्वावच्छिन्न संयोगसम्बन्धावच्छिन्न विधेयता में जैसे तद्रूपज्ञान प्रयोज्यत्व है, वैसे ही धूमज्ञानप्रयोज्यत्व भी है। क्योंकि तद्रूप और धूम दोनों संयोग सम्बन्ध से वह्निमत्ता के अनुमापक हैं। इस कारण धूमज्ञानाप्रयोज्यत्व के भान की अयोग्यता है। उक्त विधेयता में धूमज्ञानाप्रयोज्यत्व का भान नहीं सम्भव है क्योंकि वह तो बाधित ही है। इसका वारण करने के लिए ग्रन्थकार का कहना है कि ज्ञानप्रयोज्यत्वान्तर्गत ज्ञान का अर्थ तत्तत्सम्बन्धावच्छिन्नप्रकारकज्ञान है। यहाँ पर तद्रूपज्ञान से समवायसम्बन्धावच्छिन्न तद्रूपप्रकारक

ज्ञान को लेना है इस तरह समवायसम्बन्धावच्छिन्नतद्रूपप्रकारकज्ञान प्रयोज्यत्व और समवाय-सम्बन्धावच्छिन्नधूमप्रकारकज्ञानाप्रयोज्यत्व यहाँ पर उक्त विधेयता में भासित होना चाहिए। जो कि अयोग्य नहीं है क्योंकि संयोगसम्बन्धावच्छिन्न वह्नित्वावच्छिन्नविधेयता संयोगसम्बन्धा-वच्छिन्नधूमप्रकारताशालिज्ञान **'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतः'** ज्ञान से प्रयोज्य होती है, समवायसम्बन्धावच्छिन्न धूमप्रकारताशालि ज्ञान से प्रयोज्य नहीं होती है और यहाँ पर उक्त विधेयतात्वावच्छेदेन (संयोगसम्बन्धावच्छिन्नवह्नित्वावच्छिन्न विधेयता में) समवायसम्बन्धावच्छिन्न धूमप्रकारताशालिज्ञाना प्रयोज्यत्व ही भासता है।

किन्तु इसमें यह प्रश्न उठ सकता है कि सम्बन्धविशेष से घटित धर्म का अन्वयितावच्छेदकतया भान का नियामक कौन होगा? यहाँ पर समवायसम्बन्धावच्छिन्न तद्रूपप्रकारताशालिज्ञानप्रयोज्यत्व समभिव्याहृतपदार्थविशेष्यतानिरूपितविधेयता में भासेगा, **'पर्वतो वह्निमान् धूमात्'** यहाँ पर संयोगसम्बन्धावच्छिन्नधूमप्रकारताशालिज्ञानप्रयोज्यत्व उक्त विधेयता में भासेगा। इस प्रकार अलग-अलग जगहों पर अन्वयितावच्छेदक तत्तत्सम्बन्धों से घटित भास रहा है, प्रथम में अन्वयितावच्छेदक समवाय सम्बन्ध से घटित है, दूसरे में संयोग सम्बन्ध से घटित है। तो इस प्रकार से सम्बन्ध विशेष से घटित धर्म का अन्वयितावच्छेदकतया भान का नियामंक कौन होगा? इसका समाधान यह देते हैं कि तात्पर्य ही इसका नियामक होता है। इसमें उदाहरण के रूप में अनेकार्थक शब्दों को देख सकते हैं उन स्थलों में जैसे तात्पर्य ही किसी एक अर्थ के भान का नियामक होता है वैसे ही इस स्थल में भी जानना चाहिए।

अब यहाँ पर प्रश्न यह उठता है कि **'पर्वतो वह्निमान् अभावात्'** ऐसा प्रयोग क्यों नहीं होता है? होना चाहिए, क्योंकि यहाँ पर पर्वतनिष्ठविशेष्यतानिरूपित संयोग सम्बन्धावच्छिन्न वह्नित्वावच्छिन्नविधेयतात्वावच्छेदेन (उक्तविधेयता में) अभावज्ञानप्रयोज्यत्व भासेगा और यह अबाधित है। कैसे? धूमज्ञान तो केवल उक्त विधेयता का प्रयोजक होता नहीं है बल्कि वह्निव्याप्तिविशिष्टधूमज्ञान (वह्निव्याप्तिविशिष्टधूमप्रकारकज्ञान) उक्त विधेयता का प्रयोजक होता है। व्याप्ति चाहे **'साध्याभाववदवृत्तित्वम्'** 'साध्याभावाधिकरण निरूपितवृत्तित्वाभाव' रूप ली जाये या **'हेतुसमानाधिकरणाभावप्रतियोगितान वच्छेदकावच्छिन्नसामानाधिकरण्यम्'** 'हेतुसमानाधिकरणाभावप्रतितयोगितानवच्छेदका-वच्छिन्नसामानाधिकरण्य' रूप ली जाये दोनों ही स्थितियों में अभाव व्याप्ति के अन्तर्गत आता है। इसलिए यह निश्चित बात है कि अभावज्ञान उक्त वह्नित्वावच्छिन्नसंयोग सम्बन्धावच्छिन्नविधेयता का प्रयोजक होगा। ऐसी स्थिति में अभावज्ञानप्रयोज्यत्व उक्त विधेयता में अबाधित ही है।

तो इसका समाधान यह है कि मुख्यविशेष्यतानिरूपित प्रकारता का ही यहाँ पर निवेश किया गया है अर्थात् यदि मुख्यविशेष्यता निरूपित स्वरूपादिसम्बन्धावच्छिन्न अभाव प्रकारताशालिज्ञानप्रयोज्यत्व उक्त विधेयता में हो तभी **पर्वतो वह्निमान् अभावात्'** प्रयोग हो सकता है और यह तो बाधित है। अभाव तो व्याप्त्यन्तर्गतत्वेन प्रविष्ट होता है मुख्य विशेष्यतानिरूपितभावप्रकारताशालिज्ञान से प्रयोज्यत्व तो उक्त विधेयता में बाधित है। अतः

उक्त प्रयोग नहीं होता है।

'केन हेतुना'. 'कस्मै हेतवे' इत्यादौ विभक्तिभिर्हेतुताविशिष्टे हेतुता बोधयितुमशक्या–पौनरुक्त्यादिति तु न शङ्क्यम्—हेतुशब्दस्य स्वरूपयोग्यपरत्वात्, विभक्तेः फलोपधानपरत्वात्,'दण्डवान् रक्तदण्डवान्' इतिवत् कार्यविशेषानुपरक्तहेतुताविशिष्टे कार्यविशेषोपरक्तहेतुताबोधेऽनाकाङ्क्षताविरहाच्च।

न चान्वयबोधसम्भवेऽपि हेतुशब्दप्रयोगवैयर्थ्यम्फलोपधायकतालाभे स्वरूपयोग्यताया अर्थाल्लाभसम्भवादितिवाच्यम्; विभक्तेरन्यार्थताया अप्यन्यत्र दृष्टत्वाद् हेतुतापरत्वनिश्चयार्थं तत्प्रयोगात् ।

'केन हेतुना' किस कारण सें **'कस्मै हेतवे'** 'किस कारण के लिए' इत्यादि स्थलों में हेतुताविशिष्ट में विभक्ति के द्वारा हेतुता बोधित करना अशक्य है क्योंकि पौनरुक्त्य हो जायेगा, ऐसी शङ्का तो नहीं करना चाहिए। आशय यह है कि प्रश्न हो सकता है कि **'केन हेतुना'** यहाँ पर हेतु पद से भी हेतुताविशिष्ट की ही उपस्थिति होती है और तदुत्तर तृतीया से भी हेतुता की ही उपस्थिति होती है। ऐसी स्थिति में यही आपतित होता है कि हेतुताविशिष्ट में तृतीया के द्वारा हेतुता का बोधन किया जा रहा है, किन्तु यह तो शक्य नहीं है क्योंकि ऐसी स्थिति में पुनरुक्ति होगी। तो ऐसी शङ्का नहीं करनी चाहिए क्योंकि हेतुशब्द स्वरूपयोग्यपरक है और विभक्ति फलोपधानपरक है। **'दण्डवान् रक्तदण्डवान्'** की तरह कार्यविशेष से अनुपरक्त हेतुताविशिष्ट में कार्यविशेषोपरक्त हेतुताबोध होने में अनाकाङ्क्षता नहीं है । समाधान यह दे रहे हैं कि हेतुता दो प्रकार की होती है एक तो स्वरूपयोग्यता और दूसरी फलोपधानता । हेतु पद के द्वारा स्वरूपयोग्यतारूपा हेतुता बोधित होती है और हेतुपदोत्तर तृतीया के द्वारा फलोपधानता रूपा हेतुता बोधित होती है। स्वरूपयोग्यता में कार्य विशेष का उपराग नहीं होता है फलोपधानता में होता है क्योंकि फल कार्यविशेष ही तो होता है। इस प्रकार जैसे **दण्डवान् रक्तदण्डवान्** यहाँ पर रक्तत्वादि से अविशिष्ट दण्डवत् में रक्तत्वविशिष्टदण्डवत् का अभेद भासता है। इसमें कोई अनाकाङ्क्षता या पुनरुक्ति नहीं होती है उसी प्रकार यहाँ पर भी स्वरूपयोग्य में फलोपधानता बोधित होने में कोई पुनरुक्ति नहीं है।

यदि कहो कि उक्त रीति से अन्वयबोध सम्भव होने पर भी हेतु शब्द के प्रयोग का वैयर्थ्य है क्योंकि फलोपधायकता का लाभ होने पर स्वरूपयोग्यता तो अपने-आप ही अर्थात् लब्ध हो जाती है। तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि विभक्ति की अन्यार्थकता भी अन्यत्र देखी गयी है इसलिए हेतुतापरक ही है वह विभक्ति, यह निश्चय कराने के लिए ही वह प्रयोग किया गया है। तृतीया तो करणत्व आदि अर्थों में भी होती है। यदि हेतु शब्द नहीं रहता तो यह तो ज्ञात ही नहीं होता कि हेत्वर्थक तृतीया यहाँ पर है। इसीलिए हेतुशब्द का प्रयोग किया गया है।

सहार्थयोगेऽपि साहित्यप्रतियोगिवाचकपदात् तृतीया 'पुत्रेण सहागतः'

इत्यादौ। अथ यदि सहशब्दार्थः समभिव्याहृतपदोपस्थाप्यक्रियासमानकालीन क्रियान्वयित्वम्, तदन्वयित्वञ्च समभिव्याहृतक्रियाबोधकपदेन क्रियायाः यादृशः सम्बन्धः साहित्यान्वयिनि प्रत्याय्यते तादृशतत्सम्बन्ध एव। सच पुत्रेण इत्यादौ कर्तृत्वम्, 'दध्ना सहौदनो भुज्यते' इत्यादौ कर्मत्वादिः। तृतीयार्थोऽपि स एव सम्बन्धः तथा च पुत्रकर्तृकागमनसमानकालीनागमन कर्तृत्वदधिकर्मकभोजनसमानकालीनभोजनकर्मत्वादिकं पुरुषौदनादौ प्रतीयत इत्युच्येत? तदा सहशब्देनैव तत्तक्रियाकर्तृत्वबोधने क्रियापदवैयर्थ्यम्- द्विधाक्रियाभानस्यानुपयुक्तत्वात्, क्रियान्वयिनि क्रियान्वयबोधस्योद्देश्यता- वच्छेदकविधेययोरभेदेन निराकाङ्क्षतासम्भवाच्च।

सहार्थ योग होने पर भी साहित्य प्रतियोगि वाचक पद से तृतीया होती है **'पुत्रेण सहागतः'** 'पुत्र के साथ आया' इत्यादि स्थलों में।

इसमें विचार्य है कि सहशब्द का अर्थ क्या होता है?

यदि सहशब्द का अर्थ समभिव्याहृतपदोपस्थाप्यक्रियासमानकालीनक्रियान्वयित्व है। तथा समभिव्याहृतक्रियाबोधक पद से क्रिया का जैसा सम्बन्ध साहित्यान्वयी में प्रत्याय्यित होता है क्रिया का वैसा सम्बन्ध ही क्रियान्वयित्व है **'पुत्रेण सहागतः'** यहाँ पर कर्तृत्व ही क्रियान्वयित्व है ।**'दध्ना सहौदनो भुज्यते'** इत्यादि स्थलों में कर्मत्व आदि ही तादृश- सम्बन्धरूप क्रियान्वयित्व है। देखें— **पुत्रेण सहागतः** यहाँ पर समभिव्याहृत पद आगत पद से उपस्थाप्य क्रिया आगमन क्रिया, उसकी समानकालीन क्रिया पुरुषकर्तृक आगमन क्रिया का कर्तृत्वरूप अन्वयित्व पुरुष में है। यही पुत्र का साहित्य है। इसी प्रकार **'दध्ना सहौदनो भुज्यते'** 'दही के साथ ओदन खाया जा रहा है' यहाँ पर समभिव्याहृत पद भुज्यते पद से उपस्थाप्य क्रिया भोजनक्रिया (दधिकर्मकभोजन् क्रिया) समानकालीनक्रिया (ओदनकर्मकभोजनक्रिया) उसका कर्मत्व रूप अन्वयित्व ओदन में है। तृतीयार्थ भी वही सम्बन्ध (क्रिया का वैसा ही सम्बन्ध) है, इस प्रकार पुत्रकर्तृक आगमन के समानकालीन आगमन का कर्तृत्व और दधिकर्मकभोजनसमानकालीन भोजनकर्मत्व आदि ही वहाँ-वहाँ पुरुष, ओदन आदि में क्रमशः प्रतीत होता है।

ऐसा कहते हैं तो सहशब्द से ही तत्तत्क्रियाकर्तृत्व बोधन होने के कारण क्रियापद का वैयर्थ्य है। क्योंकि पुरुष में सहशब्द के द्वारा ही आगमनकर्तृत्व बोधित हो जा रहा है, ओदन में सह शब्द के द्वारा ही भोजनकर्मत्व बोधित हो जा रहा है। इस कारण **'आगतः'** **'भुज्यते'** इन क्रिया पदों का वैयर्थ्य होगा दो बार क्रिया का भान तो अनुपयुक्त है और क्रियान्वयी में ही क्रियान्वयबोध करने पर उद्देश्यतावच्छेदक और विधेय की एकता हो जाने के कारण निराकाङ्क्ष होने के कारण क्रियान्वयी में क्रिया का अन्वयबोध असम्भव भी है। आशय यह है कि यदि क्रिया पद से क्रमशः पुत्रकर्तृकागमनसमानकालीनागमन कर्तृत्व और दधिकर्मकभोजनसमानकालीनभोजनकर्मत्व के आश्रय पुरुष और ओदन आदि में आगमनकर्तृत्व व भोजनकर्मत्व का बोध कराना चाहो तो पहली बात तो यह कि दुबारा क्रिया का भान व्यर्थ

है। दूसरी बात यह कि यहाँ पर उद्देश्यतावच्छेदक और विधेय का ऐक्य है क्योंकि तादृशागमनकर्तृत्वाश्रय पुरुष में आगमनकर्तृत्व का और तादृशभोजनकर्मत्वाश्रय ओदन में भोजनकर्मत्व का अन्वयबोध स्वीकार रहे हैं। उद्देश्यतावच्छेदक भी आगमनकर्तृत्व और विधेय भीं वही है। उद्देश्यतावच्छेदक भी भोजनकर्मत्व और विधेय भी भोजनकर्मत्व ही है। इसलिए निराकाङ्क्ष होने से शाब्दबोध सम्भव नहीं है।

न च तत्तत्क्रियासमानकालीनत्वमात्रं सहार्थः तस्य च क्रियापदोपस्थाप्यक्रियायामेवान्वय इति क्रियापदसहितसहशब्दादेवोक्तविशिष्टार्थलाभ इति वाच्यम्; एवं सति 'पुत्रेण सहागतः' इत्यादौ सहशब्दार्थस्य क्रियापदार्थान्वयित्वेनान्यसापेक्षतया तेन सह पुत्रशब्दस्य समासासम्भवेन 'सपुत्रः' इत्यादिप्रयोगानुपपत्तिः, न ह्यत्र समासे सहार्थस्य प्राधान्यं येनान्यसापेक्षत्वेऽपि समासो भवेत् किन्तु बहुव्रीहित्वादन्यपदार्थप्राधान्यमेव।

यदि कहो कि तत्तत्क्रियासमानकालीनत्व मात्र सह का अर्थ है और उसका क्रियापद से उपस्थाप्य क्रिया में ही अन्वय होता है, इस प्रकार क्रियापदसहित सहशब्द से ही उक्त विशिष्ट अर्थ का लाभ होगा। विशिष्ट अर्थ से यहाँ पर समभिव्याहृतपदोपस्थाप्य क्रियासमान कालीनक्रियान्वयित्व अपेक्षित है। चूँकि सहशब्द से क्रियासमानकालीनत्वमात्र उपस्थित होगा इसलिए शेष अंश की उपस्थिति निश्चित रूप से क्रिया पद से ही होगी । इस तरह क्रियापदसहित सहशब्द से ही यह उपर्युक्त विशिष्ट अर्थ उपलब्ध होगा। इस प्रकार उपर्युक्त रीति (विगतपृष्ठोपदर्शित रीति) से क्रिया पद का वैयर्थ्य नहीं होगा।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि ऐसा होने पर **'पुत्रेण सहागतः'** इत्यादि स्थलों में सहशब्द का अर्थ क्रियापदार्थान्वयी होने के कारण सापेक्ष होगा, सापेक्ष होने के कारण उसके साथ शब्दपुत्र का समास असम्भव होने के कारण **'सपुत्रः'** इत्यादि प्रयोगों की अनुपपत्ति होगी। इस स्थल में समास में सहपदार्थ का प्राधान्य तो है नहीं कि अन्यसापेक्ष होने पर भी समास सम्भव हो बल्कि बहुव्रीहिसमास[1] होने के कारण अन्य पदार्थ का ही प्राधान्य है।

आशय यह है कि यदि आप सहशब्द का अर्थ तत्तत्क्रियासमानकालीनत्व मात्र मानते हैं तो ऐसी स्थिति में उसका क्रियापद से उपस्थाप्य क्रिया में अन्वय होगा। इसका अर्थ यह निकला कि सहपद क्रिया पदसापेक्ष होगा क्रियापद की अपेक्षा करेगा। सहशब्द का पुत्र के साथ समास करके **'सपुत्रः'** की सिद्धि की जाती है। समास समर्थ पदों का ही होता और पदों की सामर्थ्य 'समासाघटकपदसापेक्षत्वाभाव' ही है। यहाँ पर पुत्र और सह पदों का समास हो रहा है। किन्तु सह पद समासाघटकीभूत क्रियापद सापेक्ष ही है इस प्रकार सह में सामर्थ्य ही नहीं है। सामर्थ्य न रहने पर समास भी नहीं सम्भव होगा। समास असाधु हो जायेगा।

यहाँ पर यह अपवाद है कि समस्यमान पदों में जिस पद के अर्थ की प्रधानता हो

---

1. यहाँ पर 'तेन सहेति तुल्ययोगे' पा०सू० 2/2/28 से समास होता है।

वह पद यदि किसी अन्य पद की अपेक्षा भी कर रहा हो तो भी उस पद में असामर्थ्य नहीं आता है। किन्तु सह पद का अर्थ तो यहाँ पर समास में प्रधान है नहीं क्योंकि बहुव्रीहि समास होने के कारण यहाँ पर समासाघटकपदार्थ पुरुष प्रधान है। इसलिए सहपद में समाससामर्थ्य नहीं ही आयेगा। समास असाधु ही हो जायेगा।

इति चेत्?

न, समभिव्याहृतपदोपस्थाप्यक्रियाकाल एव सहशब्दार्थः। तस्य क्रियान्वयिनि नामार्थ एवान्वयः। तादृशकालविशिष्टे नामार्थे क्रियान्वये च क्रियायामपि तादृशकालावच्छिन्नत्वं भासते–उद्देश्यतावच्छेदकावच्छेदेन विधेयान्वयस्य व्युत्पत्तिसिद्धत्वात् । अतः क्रियाद्वयसमानकालीनत्वलाभ इति सामञ्जस्यात् ।

इस प्रकार कहा जाये तो?

ठीक नहीं है। समभिव्याहृतपदोपस्थाप्यक्रिया का काल ही सहशब्द का अर्थ है और उसका क्रिया में अन्वित होने वाले नामार्थ में ही अन्वय होता है। उस काल से विशिष्ट नामार्थ में क्रिया का अन्वय करने पर क्रिया में भी तादृशकालावच्छिन्नत्व भासता है क्योंकि उद्देश्यतावच्छेदकावच्छेदेन विधेयान्वय ही व्युत्पत्तिसिद्ध है। इस प्रकार दोनों क्रियाओं में समान कालीनत्व का लाभ अर्थतः हो जाने से सामञ्जस्य होता है ।

अभिप्राय यह है कि क्रिया में जो नामार्थ अन्वित होता है, उसी नामार्थ में सहशब्दार्थ 'समभिव्याहृतपदोपस्थाप्य क्रिया काल' अन्वित होता है। इस प्रकार समभिव्याहृत, पदोपस्थाप्य क्रियाकालविशिष्ट नामार्थ (पुरुष) में आगमन क्रिया का अन्वय होता है। इस स्थिति में विधेय हुई क्रिया, उद्देश्य समभिव्याहृत पदोपस्थाप्य क्रियाकालविशिष्ट पुरुष और उद्देश्यतावच्छेदक हुआ समभिव्याहृत पदोपस्थाप्यक्रियाकाल तथा पुरुषत्व क्योंकि पुरुष में ये दोनों विशेषण है। उद्देश्यतावच्छेदकावच्छेदेन विधेय का अन्वय होने के कारण क्रिया में समभिव्याहृतपदोपस्थाप्य क्रिया काल से अवच्छिन्नत्व भासित होता है। इस प्रकार पुत्र और पुरुष कर्तृक आगमन क्रियाद्वय में समानकालीनत्व का लाभ हो जाता है।

अथवाऽऽगमनसमानकालीनागमनादिकमेव सहशब्दार्थः, तस्य कर्तृत्वादिसम्बन्धेन पुरुषादावन्वयः तादृशसम्बन्धेन तद्विशिष्टे च 'आगच्छति' इत्यादिपदोपस्थाप्याऽऽगमनकर्तृत्वादीनामन्वये न व्युत्पत्तिविरोधः—विधेयस्योद्देश्यतावच्छेदकप्रकाराभेदविरहात् ।

अथवा आगमन समानकालीन आगमनादि ही सह शब्द का अर्थ है उसका कर्तृत्व आदि सम्बन्धों से पुरुष आदि में अन्वय होता है। तथा कर्तृत्वादिसम्बन्ध से आगमन समानकालीन आगमन से विशिष्ट में 'आगतः' 'आगच्छति' इत्यादिपदोपस्थाप्य आगमन कर्तृत्वादि का अन्वय करने में व्युत्पत्ति विरोध नहीं है क्योंकि विधेय का उद्देश्यतावच्छेदक से अभेद नहीं है।

आगमन समानकालीन आगमन को सह शब्द का अर्थ मानने पर सहशब्दार्थ आगमनसमानकालीन आगमन का कर्तृत्व सम्बन्ध से पुरुष आदि में अन्वय होता है। क्रियापद से आगमनकर्तृत्व (आगमनानुकूलकृति) की उपस्थिति होती है। कर्तृत्वसम्बन्ध से आगमनसमानकालीनागमनविशिष्ट पुरुष में आगमन कर्तृत्व का अन्वय होता है। इस तरह विधेय आगमनकर्तृत्व हुआ और उद्देश्य आगमनसमानकालीन आगमन से विशिष्ट पुरुष। इसलिए उद्देश्यतावच्छेदक आगमनसमानकालीन आगमन और पुरुषत्व हुआ। स्पष्ट ही विधेय आगमनकर्तृत्व और आगमनसमानकालीन आगमन रूप उद्देश्यतावच्छेदक में भेद है। अतः शाब्दबोध में कोई असंगति नहीं है।

न च सहशब्दार्थान्वयबलादेव तत्क्रियाकर्तृत्वस्य पुरुषादौ लाभे प्रकारतयापि क्रियापदेन तत्प्रतिपादनमफलामिति तत्प्रयोगो व्यर्थ इति वाच्यम्; समभिव्याहृतपदेन तत्तत्क्रियाया अनुपस्थापने सहशब्देनापि तत्तत्क्रियाघटित साहित्यस्य शक्यस्य बोधनं न सम्भवतीति क्रियापदप्रयोगस्यावश्यकत्वात्। सहशब्दार्थक्रियायाः कर्तृत्वादिसम्बन्धेन नामार्थेऽन्वयश्च न व्युत्पत्तिविरुद्धः सहशब्दस्याधातुत्वात् निपातत्वाच्च ।

यदि पूछो कि सहशब्द के अर्थ आगमनसमानकालीन आगमन का ही कर्तृत्व सम्बन्ध से अन्वय के बल से ही पुरुष आदि में तत्क्रियाकर्तृत्व का लाभ जब हो जा रहा है तो प्रकारतया भी आगमनक्रियाकर्तृत्व का प्रतिपादन क्रियापद से करना निष्फल ही है, इस कारण क्रियापद का प्रयोग तो व्यर्थ ही है। आशय यह है कि क्रिया पद के द्वारा जो अर्थ बोधित हो रहा है वह क्रियापद के न रहने पर भी लब्ध है, बोध्य है। जैसे कि सहशब्द का अर्थ यहाँ पर क्रियासमानकालीनक्रिया (आगमनादिसमानकालीन आगमनादि) ही है उसका कर्तृत्वसम्बन्ध से जब आप पुरुष में अन्वय कर रहे हैं तो यहाँ पर आगमन कर्तृत्व तो पुरुष का अर्थतः लब्ध ही हो गया। उसी पुरुष में क्रियापदोपस्थाप्य आगमन कर्तृत्व का अन्वय करके किसी अलब्ध अर्थ का बोधन नहीं किया जा रहा है, अतः क्रियापद का प्रयोग व्यर्थ ही है।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि समभिव्याहृत पद से तत्तत्क्रिया का उपस्थापन न होने पर सहशब्द से भी सहशब्द के शक्य तत्तत्क्रियाघटित साहित्य का बोधन सम्भव नहीं है, इस कारण क्रिया पद प्रयोग आवश्यक है। अर्थात् यद्यपि क्रिया पद के द्वारा किसी अनन्यलभ्य अर्थ का यहाँ पर प्रतिपादन नहीं किया जाता है । सहशब्द से जो अर्थ बोधित हो चुका है कर्तृत्वसम्बन्ध से आगमनसमानकालीनागमन का वैशिष्ट्य पुरुष में बोधित हो चुका है, वही अर्थ प्रकारतया आगमनकर्तृत्व पुरुष में क्रियापद से बोधित होता है। तथापि क्रिया पद का वैयर्थ्य नहीं है क्योंकि समभिव्याहृत क्रियापद से तत्तत्क्रिया का उपस्थापन न होने पर सहशब्द से भी तत्क्रियाघटितसाहित्य का बोधन सम्भव नहीं है। इसलिए क्रिया पद प्रयोग की सार्थकता होती है।

सहशब्दार्थ क्रिया का कर्तृत्व सम्बन्ध से नामार्थ में अन्वय तो व्युत्पत्ति विरुद्ध नहीं

है क्योंकि सहशब्द धातु नहीं है निपात है। निपातातिरिक्त नामार्थों का भेदान्वय व्युत्पत्ति विरुद्ध होता है और निपातातिरिक्तनामार्थ व धात्वर्थ का भेदान्वय व्युत्पत्तिविरुद्ध होता है। सहशब्द धातु नहीं है निपात है । अतः उसके अर्थ का कर्तृत्त्वादि भेद सम्बन्धों से अन्वयबोध करने में कोई आपत्ति या बाध नहीं है।

न च ''प्रासोष्ट शत्रुघ्नमुदारचेष्टमेका सुमित्रा सह लक्ष्मणेन'' इत्यादौ शत्रुघ्नप्रसवलक्ष्मणप्रसवयोः समानकालीनत्वाभावात् क्रिया द्वयसमान-कालीनतायाः सहशब्दार्थासम्भव इति वाच्यम्; तत्रापि स्थूल कालघटित-समानकालीनत्वसम्भवात् ।

यदि कहो कि **'प्रासोष्ट शत्रुघ्नमुदारचेष्टमेका सुमित्रा सह लक्ष्मणेन'** 'एक ही सुमित्रा ने लक्ष्मण के साथ उदारचेष्ट शत्रुघ्न को जना' इत्यादि स्थलों में शत्रुघ्न और लक्ष्मण के प्रसवों के समानकालीन नहीं होने के कारण क्रियाद्वयसमानकालीनता का सहशब्दार्थत्व असम्भव है। अर्थात् चूँकि एक ही काल में शत्रुघ्न और लक्ष्मण का प्रसव नहीं हो सकता है उसमें पूर्वापरभाव अवश्य होगा। किन्तु यहाँ पर सहशब्द के द्वारा प्रसवसमानकालीन प्रसव रूप अर्थ ही उपस्थित होगा। जो कि बाधित है। बाधित होने से क्रियासमानकालीन क्रिया को सहशब्द का अर्थ मानना सम्भव नहीं है।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए। वहाँ पर भी स्थूलकालघटित समानकालीनत्व प्रसवद्वय में सम्भव है। इसलिए क्रियासमानकालीन क्रिया को सहशब्द का अर्थ मानने में कोई समस्या नहीं है।

न च कालत्वेनैव कालस्य तदर्थान्तर्भावे पुत्रागमनपूर्वमागन्तरि 'आगतोऽयं न पुत्रेण सह' इति प्रयोगानुपपत्तिः—पुत्रागमनाधिकरणस्थूल कालवृत्त्यागमनकर्तृत्वसत्त्वेनान्वयितावच्छेदकरूपावच्छिन्नप्रतियोगिताक-साहित्याभावबाधादिति वाच्यम्; तत्र क्षणत्वेनैव कालस्य सहशब्दार्थेऽन्त-र्भावनीयत्वात् ।

यदि कहो कि कालत्वेन ही काल का सहशब्द के अर्थ में अन्तर्भाव करने पर पुत्रागमन के पूर्व में ही आने वाले के प्रति **'आगतोऽयं न पुत्रेण सह'** 'यह आया लेकिन पुत्र के साथ नहीं' इस प्रयोग की अनुपपत्ति होगी। क्योंकि पुत्रागमनाधिकरणीभूत स्थूल कालवृत्ति आगमन का कर्तृत्व उस पुरुष में है ही । इस कारण अन्वयितावच्छेदकरूपावच्छिन्न प्रतियोगिताक साहित्याभाव का बाध होगा। अभिप्राय यह है कि जैसे प्रसवद्वय की समान कालीनता वस्तुतः न होने पर भी काल से स्थूल काल का परिग्रह करते हुए आपने वहाँ पर प्रसवद्वय की समानकालीनता का उपपादन किया। उसी प्रकार से समानकालीनता अन्यस्थलों में भी वहाँ पर भी उपपादित की जा सकती है जहाँ पर कि दोनों ही क्रियाओं में वस्तुतः पूर्वापरभाव विद्यमान है। जैसे कि पिता पूर्व में आया है और पुत्र बाद में। किन्तु आ दोनो ही चुके हैं । वहाँ पर 'यह पुत्र के साथ नहीं आया' ऐसा प्रयोग होता है। किन्तु स्थूल काल को लेकर आगमनद्वय में समानकालीनत्व ही विद्यमान है। इस तरह पुत्रागमन

समानकालीन आगमन क्रिया का कर्तृत्व ही पुरुष में है। साहित्य ही पुरुष में विद्यमान है पुत्रागमन समानकालीन आगमनक्रियाकर्तृत्व रूप साहित्य का अभाव पुरुष में नहीं है। अतः साहित्याभाव– बोधक उपर्युक्त प्रयोग नहीं हो सकेगा।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि वहाँ पर उक्त प्रयोग की स्थिति में क्षणत्वेन ही काल का सहशब्द के अर्थ में अन्तर्भाव करना होता है। भाव यह है कि काल का किस रूप से अन्तर्भाव साहित्यान्तर्गत करना है यह ज्ञात होता है तात्पर्य के द्वारा। यहाँ पर क्षणत्वेन काल का सहशब्दार्थ में अन्तर्भाव करना है और चूँकि एक ही क्षण में दोनों आगमन क्रियाएँ नहीं हैं, अतः पुत्रागमनसमानकालीन क्रिया कर्तृत्व रूप साहित्य पुरुष में नहीं है। अतः उक्त प्रयोग होता है।

एवं यत्रैककालेऽपि विभिन्नस्थले भुञ्जानमधिकृत्य 'न सह भुङ्क्ते' इति प्रयुज्यते तत्रैकशालारूपभोजनाधारोऽपि सहशब्दार्थेऽन्तर्भावनीयः। अत एव "आलापाद् गात्रसंस्पर्शान्निश्वासात् सहभोजनात्" इत्यादिना पतित भोजनसमानकालीनभोजनमात्रस्य पापजनकत्वं न बोध्यते– एकपङ्क्तेरपि विवक्षणात्।

एवम्–"याजनं योनिसम्बन्धं स्वाध्यायं सहभोजनम्'।
सद्यः पतति कुर्वाणः पतितेन न संशयः॥"

इत्यादावेकदैकपात्रभोजनस्यैव सद्यःपातहेतुत्वं प्रतीयते तत्र तादृशार्थस्यैव सहशब्देन विवक्षणात्।

इसी प्रकार जहाँ पर एक काल में भी विभिन्नस्थलों में खाने वाले को विषय करके **'न सह भुङ्क्ते'** 'साथ नहीं खाता है' ऐसा प्रयोग होता है, वहाँ पर एकशालारूप भोजनाधार भी सहशब्द के अर्थ में अन्तर्भावनीय है। अर्थात् जब दो व्यक्ति दो अलग-अलग जगहों पर एक ही समय भोजन कर भी रहे हों, तो भी उस समय 'साथ नहीं खा रहे हैं' ऐसा प्रयोग होता है। किन्तु भोजनसमानकालीन भोजन कर्तृत्व ही भोक्ता में विद्यमान है अतः अर्थ का बाध होगा। इसलिए सहशब्द के अर्थ में भोजनाधार का भी निवेश करना चाहिए, इस तरह वहाँ पर भोजनसमानाधिकरणक समानकालीन भोजन कर्तृत्व भोजनकर्ता में रहने पर ही **'सह भुङ्क्ते'** प्रयोग हुआ करता है। चूँकि विभिन्न स्थल में समानकालीन भोजन हो रहा है, अतः भोजनसमानाधिकरणक समानकालीन भोजनकर्तृत्व रूप साहित्य न होने के कारण **'न सह भुङ्क्ते'** प्रयोग हुआ करता है।

इसीलिए ही **'आलापाद् गात्रसंस्पर्शान्निःश्वासात् सहभोजनात्'** 'आलाप से, शरीर स्पर्श से, निःश्वास से और सहभोजन से, इत्यादि वाक्यों से पतित भोजन समान कालीन भोजन मात्र का पापजनकत्व नहीं बोधित होता है एक पंक्ति भी विवक्षणीय है। अभिप्राय यह है कि सामान्यतः भोजनसमानकालीनभोजनकर्तृत्व ही यदि साहित्य हो सहशब्दार्थ हो, तो पतितव्यक्ति अपने घर में खा रहा है अन्य कोई उसी समय अपने घर में भोजन कर रहा है, तो उस स्थिति में पतितभोजनसमानकालीनभोजनकर्तृत्व आने के

कारण अपने घर में भी भोजन कर रहा व्यक्ति पापभागी होने लगेगा। इसलिए एक पङ्क्ति भी विवक्षित है। अर्थात् एक पङ्क्त्यधिकरणकपतितभोजनसमानकालीन भोजनकर्तृत्व ही पापजनक होता है। अलग-अलग जगहों पर भोजन करने की स्थिति में तो ऐसा भोजन कर्तृत्व न होने से पाप भी नहीं उत्पन्न होगा।

इसी प्रकार **'याजनं योनिसम्बन्धं .....पतितेन न संशयः''** 'पतित के साथ याजन, योनिसम्बन्ध, स्वाध्याय और भोजन करता हुआ व्यक्ति शीघ्र ही पतित हो जाता है' इत्यादि स्थलों में एकपात्रभोजन का ही सद्यःपातहेतुत्व प्रतीत होता है । वहाँ सहशब्द से वैसा ही अर्थ विवक्षित है।

अथ नामार्थस्य सहार्थविशेष्यतयाऽन्वयोपगमे 'पुत्रेण सह नागच्छ-त्ययम्' इत्यादौ सहशब्दार्थपुत्रसाहित्याभाव एव पुरुषांशे नञा बोध्यत इत्युपगन्तव्यं तच्च नोपपद्यते, तथासत्याख्यातार्थोद्देश्यतावच्छेदकतयैव नञर्थभानस्योपगन्तव्यतया प्रसज्यप्रतिषेधस्थले निषेधस्य प्राधान्येन भान-नियमव्याघातात् । एवमनागच्छन्तमपि पुरुषमधिकृत्य तथा प्रयोगात् तत्राऽयोग्यताप्रसङ्गाच्च।

एतेन तत्र पर्युदासनञ्वत् क्रियायोगपरित्याग इत्युक्तावपि न प्रतीकारः।

किन्तु नामार्थ का सहार्थ विशेष्यतया अन्वय स्वीकारने पर, जैसा कि अभी स्वीकार रहे हैं, **'पुत्रेण सह नागच्छत्ययम्'** 'पुत्र के साथ यह नहीं आता है या नहीं आ रहा है' इत्यादि स्थलों में सह शब्दार्थ पुत्र साहित्य का अभाव ही नञ् के द्वारा पुरुष अंश में बोधित होता है ऐसा स्वीकारना पड़ेगा। तथा वह उपपन्न नहीं है। क्योंकि ऐसा होने पर आख्यातार्थोद्देश्यतावच्छेदकतया ही नञर्थ भान स्वीकार्य होने के कारण प्रसज्यप्रतिषेध स्थल में निषेध का प्राधान्येन भाननियम का व्याघात होता है। इसी प्रकार न आते हुए पुरुष के लिए भी वैसा प्रयोग होता है किन्तु उसकी अयोग्यता हो जायेगी । अभिप्राय यह है कि प्रसज्यप्रतिषेधस्थल में नञर्थ का प्राधान्येन भान होता है। ऐसा नियम है। किन्तु जैसा आपने प्रतिपादन किया है उसके अनुसार **'पुत्रेण सह नागच्छत्ययम्'** 'पुत्र के साथ यह नहीं आ रहा है' इत्यादि स्थलों में पुत्रसाहित्य का अभाव (नञर्थ) पुरुष में अन्वित होगा और पुरुष में आगमनक्रियाकर्तृत्व अन्वित होगा । आख्यातार्थ है क्रियाकर्तृत्व, आख्यातार्थोद्देश्य हुआ पुत्रागमनसमानकालीनागमनाभावविशिष्ट पुरुष और उद्देश्यतावच्छेदक हुआ पुत्रागमनसमान-कालीनागमन का अभाव । उद्देश्यतावच्छेदक तो प्रधान होता नहीं है विधेय का प्राधान्य होता है। इस प्रकार नञर्थ अप्रधान हो रहा है। इस रीति से निषेध का प्रसज्यप्रतिषेधस्थल में प्राधान्येन भान होता है ऐसा जो नियम है, उस नियम का व्याघात हो जायेगा। दूसरी बात यह है कि इस स्थिति में (ऐसा शाब्दबोध स्वीकारने पर) न आते हुए पुरुष के लिए जो **'पुत्रेण सह नागच्छति अयम्'** प्रयोग होता है वह नहीं हो सकेगा क्योंकि आपके कथनानुसार यहाँ पर पुत्रसाहित्याभाव विशिष्ट पुरुष में आगमनक्रियाकर्तृत्व का अन्वय होगा

किन्तु पुरुष में आगमन क्रिया कर्तृत्व तो है नहीं क्योंकि वह आ नहीं रहा है। इसलिए बाध होगा और इस रीति से अयोग्यता होने के कारण शाब्द बोध नहीं सम्भव होगा।

इस दोष के कारण (न आते हुए पुरुष के लिए प्रयुक्त **'पुत्रेण सह नागच्छति अयम्'** वाक्य से शाब्दबोधासम्भव होने के कारण) पर्युदासनञ् की तरह प्रसज्य प्रतिषेध में भी क्रियायोग का परिहार कर दिया जाता है ऐसा कहने पर भी निस्तार नहीं है क्योंकि यह दोष फिर भी वारणीय नहीं होगा।

विमर्श–इस विवेचन में यह ध्येय है कि **'पुत्रेण सह नागच्छत्ययम्'** ऐसा प्रयोग तीन परिस्थितियों में होता है (1) पुत्र नहीं आ रहा है केवल पुरुष आ रहा है। (2) पुत्र आ रहा है पिता (पुरुष) नहीं आ रहा है। (3) पुत्र और पिता दोनों नहीं आ रहे हैं । प्रथम स्थल तो पर्युदासनञ् है क्योंकि क्रिया के साथ नञ् का योग नहीं हो रहा है। तृतीय स्थल और द्वितीय स्थल प्रसज्यप्रतिषेधनञ् के उदाहरण हैं। यहाँ पर नञ् का क्रिया के साथ अन्वय होना चाहिए। उपर्युक्त दोष तृतीयस्थल के लिए दिखाया गया है।

न च तत्रागमनाभावकाल एव पुरुषान्वयी सहशब्दार्थः, तथा च पुत्रागमनाभावकालावच्छिन्नपुरुषे वर्तमानकालावच्छिन्नागमनकर्तृत्वाभावः प्रतीयत इति न काचिदनुपपत्तिरिति वाच्यम् ; यत्रास्य पुत्र आयाति नत्वयं तत्रापि तादृशप्रयोगात् तत्र च पुत्रागमनकालावच्छिन्नस्यागमनकर्तृत्वाभावस्य सत्त्वेऽपि पुत्रागमनाभावकालावच्छिन्नपुरुषे वर्तमानकालावच्छिन्नागमन कर्तृत्वाभावस्यासत्त्वेनायोग्यतापातात् ।

यदि उपर्युक्त दोषवारण के लिए कहो कि वहाँ पर आगमनाभाव काल ही पुरुषान्वयी सह शब्द का अर्थ है, इस तरह पुत्रागमनाभावकालावच्छिन्न पुरुष में वर्तमान कालावच्छिन्नागमनकर्तृत्वाभाव प्रतीत होता है इसलिए कोई अनुपपत्ति नहीं है। अभिप्राय यह है कि पुत्र नहीं आ रहा है केवल पुरुष आ रहा है' वह तो पर्युदासनञ् है उसके लिए तो कोई विवाद नहीं है। वहाँ पर उक्त प्रयोग **'पुत्रेण सह नागच्छति'** होने पर पुत्रासाहित्याभावविशिष्ट में आगमनकर्तृत्व का अन्वय होता है। यह अबाधित है। यहाँ पर सह शब्द का अर्थ आगमनसमानकालीन आगमन है और अभाव से विशिष्ट पुरुष में आगमनकर्तृत्व अन्वित होता है। किन्तु जहाँ पर 'पुत्र भी नहीं आ रहा है और पिता भी नहीं आ रहा है' वहाँ पर जब इस तरह का प्रयोग किया जाता है, तो वहाँ पर सह शब्द का अर्थ 'आगमनसमानकालीन आगमन' नहीं होता है अपितु 'आगमनाभाव काल' ही सहशब्द का अर्थ होता है। इस प्रकार पुत्रागमनाभावकालविशिष्ट पुरुष में वर्तमानकालिकागमन कर्तृत्व का अभाव प्रतीत होता है। इस प्रकार नञ् के अर्थ अभाव का प्रधानतया ही भान हो रहा है क्योंकि पुरुष में उक्ताभाव (वर्तमानकालावच्छिन्नआगमनकर्तृत्व के अभाव) का विधेयतया भान हो रहा है। इसलिए कोई अनुपत्ति नहीं है।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि जहाँ पर उसका पुत्र आ रहा है वह खुद नहीं

आ रहा है' वहाँ पर भी वैसा प्रयोग 'पुत्रेण सह नागच्छत्यम्' प्रयोग होता है । तथा वहाँ पर पुत्रागमनकालावच्छिन्न आगमन कर्तृत्वाभाव के रहने पर भी पुत्रागमनाभावकालावच्छिन्न पुरुष में वर्तमानकालावच्छिन्न आगमनकर्तृत्वाभाव न रहने के कारण अयोग्यता आयेगी।

अभिप्राय यह है कि 'जहाँ पुत्र आ कहा है और पिता नहीं आ रहा है' वहाँ पर पुत्रागमन काल में पुरुष (पिता) का आगमन कर्तृत्व न होने पर भी उक्त प्रयोग नहीं हो सकेगा क्योंकि यहाँ पर पिता में न तो 'पुत्रागमनसमानकालीन आगमन' रूप साहित्य है और न तो 'पुत्रागमनाभावकाल से अवच्छिन्नत्व' रूप साहित्य ही है। इन दोनों में से किसी भी तरह से साहित्य का प्रत्यायन सम्भव न होने के कारण दोनों ही तरह का साहित्य पुरुष में बाधित होने के कारण अयोग्यता होगी

मैवम्–सहशब्दार्थस्तत्क्रियाकालः क्वचित् तत्क्रियान्वयिनि प्रथमान्तपदार्थेऽन्वेति क्वचिच्च समभिव्याहृतक्रियायाम्। 'सपुत्र आगच्छति' "इत्यस्य पुत्रेण सहागच्छति यः' इति विग्रहात् प्रथमान्तान्यपदार्थ एव पुत्रागमनकालान्वयो न तु क्रियायामिति न समासानुपपत्तिः, न वाऽन्यपदार्थ पुरुषालाभः।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि सहशब्द का अर्थ तत्क्रियाकाल है वह कहीं पर तत्क्रिया से अन्वयी प्रथमान्त पदार्थ में अन्वित होता है और कहीं पर समभिव्याहृत क्रिया में अन्वित होता है। 'सपुत्र आगच्छति' इसका 'पुत्रेण सह आगच्छति यः' 'पुत्र के साथ आता है जो, इस प्रकार विग्रह होने के कारण प्रथमान्त अन्यपदार्थ में ही पुत्रागमनकाल का अन्वय होता है क्रिया में नहीं। इसलिए समास की अनुपपत्ति नहीं है और न तो अन्यपदार्थ पुरुष का अलाभ ही है।

यहाँ पर गदाधर ने सिद्धान्तित किया कि सहशब्दार्थ तत्क्रियाकाल का कहीं पर तत्क्रिया से अन्ययी प्रथमान्त में अन्वय होता है और कहीं पर समभिव्याहृत क्रिया में अन्वय होता है। जैसे कि 'पुत्रेण सहागतः' 'पुत्र के साथ आया' यहाँ पर सहार्थ तत्क्रियाकाल का आगमनक्रिया से अन्वयी प्रथमान्त पुरुष में अन्वय होता है। पुरुष आ रहा है किन्तु अकेले ही आ रहा है उसस्थिति में जब प्रयोग होता है कि 'पुत्रेण सह नागच्छत्ययम्' तो इस प्रयोग के द्वारा सहार्थ तत्क्रियाकालाभाव से विशिष्ट पुरुष का आगमन बोधित होता है। यहाँ पर भी प्रथमान्त पुरुष में ही तत्क्रियाकाल रूप सहार्थ का अभाव बोधित होता है। किन्तु 'जब पुरुष नहीं आ रहा होता है किन्तु पुत्र आ रहा होता है' उस स्थिति में ऐसा वाक्य प्रयोग करने पर सहार्थ तत्क्रियाकाल से विशिष्ट समभिव्याहृत क्रिया कर्तृत्व का अभाव पुरुष में अन्वित होता है। इसलिए तत्क्रियाकालविशिष्ट समभिव्याहृतागमनादिक्रियाकर्तृत्वाभाव का पुरुष में बोध होता है। पुत्रागमनक्रियाकालिक आगमनक्रियाकर्तृत्वाभाव का पुरुष में बोध होता है। जब पुत्र और पुरुष दोनों ही नहीं आ रहे होंगे तब ऐसा ही बोध होता है। 'सपुत्र आगच्छति' इसका 'पुत्र के साथ आता है जो' इस प्रकार विग्रह होने के कारण प्रथमान्त अन्य पदार्थ में ही पुरुष में ही पुत्रागमन काल का अन्वय होता है क्रिया में नहीं,

इसलिए समासाघटक पद निरपेक्ष होने के कारण समास उपपन्न होता है और अन्यपदार्थ पुरुष का भी लाभ हो जाता है।

न चैवं समासलभ्यस्य पुत्रागमनकालावच्छिन्नस्य पुंसो विग्रह-वाक्येनापि प्रतिपादनाद् बहुव्रीहिमात्रस्यैव नित्यसमासत्वमिति भज्येतेति वाच्यम्; बहुव्रीहिमात्रस्य तथात्वानियमात् । प्रथमान्तानुपस्थाप्यान्यपदार्थ बोधकबहुव्रीरेव तत्त्वाभ्युपगमात् । अत्र चान्यपदार्थस्य पुरुषस्य प्रथमान्तो-पस्थाप्यत्वात् ।

यदि कहो कि इस प्रकार से तो समास से लभ्य जो पुत्रागमनकालावच्छिन्न पुरुष है उसी का विग्रहवाक्य से भी प्रतिपादन होने के कारण 'बहुव्रीहिमात्र का ही नित्य समासत्व है' यह नियम खण्डित हो जायेगा। समासलभ्य अर्थ का विग्रहवाक्य से लाभ न हो पाने की स्थिति में ही नित्यसमासता बन सकेगी। यहाँ पर तो समासलभ्य अर्थ विग्रह वाक्य से भी लब्ध हो रहा है, इसलिए बहुव्रीहिमात्र की नित्यसमासता का नियम खण्डित हो जाता है।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि बहुव्रीहि मात्र की नित्यसमासता होने का नियम ही नहीं है। प्रथमान्त से अनुपस्थाप्य अन्य पदार्थ की बोधक बहुव्रीहि की ही नित्यसमासता का नियम स्वीकारा जाता है। यहाँ पर तो अन्यपदार्थ पुरुष प्रथमान्तपदोपस्थाप्य है । अर्थात् यदि सभी बहुव्रीहि समासों की नित्य समासता का नियम हो तभी तो आप कह सकते हैं कि उक्त नियम खण्डित हो रहा है। सभी बहुव्रीहि समासों की नित्यसमासता का नियम ही तो नहीं है। प्रथमान्त से अनुपस्थाप्य अन्यपदार्थ बोधक बहुव्रीहि समास ही नित्य समास है वहाँ पर विग्रहवाक्य से समासलभ्य अर्थ नहीं बोधित हो सकता है जैसे **'प्राप्तमुदकं यम् सः प्राप्तोदको ग्रामः'** 'प्राप्त हो गया है उदक जिसे उसे प्राप्तोदक कहते हैं' यहाँ पर समस्त प्राप्तोदक शब्द से जो अर्थ बोधित होता है वह अर्थ उसके विग्रह से नहीं बोधित होता है। यह बहुव्रीहिसमास विग्रहवाक्य में द्वितीयान्त यत् पद से उपस्थाप्य अन्यपदार्थ का बोधक है, अतः यह नित्य समास है। सपुत्रः यह नित्य समास नहीं है क्योंकि बहुव्रीहि समास के स्थल में विग्रह करने पर अन्यपदार्थ की उपस्थिति प्रथमान्तोपस्थाप्य होती है।

न च प्रथमार्थे बहुव्रीहिरेवासाधुस्तदुक्तम्-"प्रथमार्थे न भवति वृष्टे देवे गत इति" इतिवाच्यम्; "अनेकमन्यपदार्थे" इति सूत्रानुशिष्टबहुव्रीहावेव तन्नियमात्, अत्र च सूत्रान्तरेणैव समासविधानात् । एतदर्थमेव तत्सूत्र प्रणयनात्। 'पुत्रेण सहनागच्छति' इत्यादौ च क्रियायामेव तादृशसहार्थान्वय इतिपुत्रागमनकालीनागमनकर्तृत्वाद्यभावः प्रथमान्तार्थे प्रतीयत इति सर्वं सुस्थम् । तथापि 'सपुत्रो नागच्छति' इत्यादौ पूर्वोक्तदिशानुपपत्तिर्द्रष्टव्या।

भारमनुद्वहन्तं पुत्रमनुद्वहन्त्यामपि गर्दभ्यां 'सहैव दशभिः पुत्रैः' इत्यादौ 'वर्तमाना' इत्यध्याहाराद्वर्तमानत्वक्रियामादायैव साहित्यबोध इति वदन्ति।

यदि कोई कहे कि प्रथमा अर्थ में बहुव्रीहि ही असाधु होती है, इसीलिए कहा गया है- "प्रथमा अर्थ में नहीं होता है जैसे वृष्टे देवे गतः इत्यादि स्थलों में' इसलिए यहाँ पर **'सपुत्रः'** में भी प्रथमा अर्थ में बहुव्रीहि समास नहीं हो सकता है।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि **'अनेकमन्यपदार्थे' पा0सू0 2/2/24** इस सूत्र से अनुशिष्ट बहुव्रीहि में ही वैसा नियम है। यहाँ पर तो सूत्रान्तर से ही **'तेन सहेति तुल्ययोगे' पा.सू. 2/3/28** के द्वारा समास का विधान किया गया है। इसीलिए ही उस सूत्र का प्रणयन किया गया है। **'पुत्रेण सह नागच्छति'** इत्यादि स्थलों में तो क्रिया में ही सहार्थ का अन्वय होता है इसलिए पुत्रागमनकालीनागमनकर्तृत्वाद्यभाव ही प्रथमान्त में प्रतीत होता है। इसलिए सब कुछ सुस्थ है । तथापि **'सपुत्रो नागच्छति'** इत्यादि स्थलों में समास की अनुपपत्ति पूर्वोपदर्शित रीति से देखनी चाहिए। क्रिया में सहार्थ का अन्वय करने पर भी समासाघटकपदसापेक्षत्व रूप असमर्थपदत्व सहपद में आयेगा और नञर्थ अभाव में सहार्थ का अन्वय करने पर भी समासाघटकपदसापेक्षत्व रूप असमर्थपदत्व सह पद में आयेगा। इसलिए पुत्रपद के साथ उसका समास असङ्गत हो जायेगा।

भार को न ढोते हुए पुत्र को न ढोती हुई गर्दभी में **'सहैव दशभिः पुत्रैः भारं वहति गर्दभी'** 'अपने दशपुत्रों के साथ ही गर्दभी भार ढोती है' इत्यादि प्रयोगस्थलों में **'वर्तमाना'** इसका अध्याहार कर के वर्तमानत्व क्रिया को लेकर ही साहित्य बोध होता है ऐसा कहते हैं। अभिप्राय यह है कि **'सहैव दशभिः पुत्रैः भारं वहति गर्दभी'** यह प्रयोग उस समय किया जाये जबकि गर्दभी के साथ गर्दभपुत्रों के द्वारा भी भारवहन किया जा रहा हो तो उस स्थिति में सहशब्दार्थ वहनक्रियाकाल हो जायेगा इस प्रकार 'पुत्रकर्तृकवहन समान कालीनवहनकर्तृत्व' रूप साहित्य गर्दभी का बोधित होगा। यदि भार के साथ-साथ गर्दभी पुत्रों को भी ढो रही है तो भार में पुत्रों का 'पुत्रकर्मकवहनसमानकालीनवहनकर्मत्व' रूप साहित्य बोधित होगा। किन्तु यदि गर्दभी पुत्रों का भी वहन नहीं कर रही है और पुत्र भी गर्दभी के साथ वहन नहीं कर रहे हैं तो यदि उस स्थिति में प्रयोग किया जाये तो वर्तमान क्रिया का अध्याहार करके वर्तमानत्व क्रिया को लेकर ही गर्दभी में पुत्रों का साहित्य बोधित होता है ।

विमर्श–ऊपर **'सपुत्रो नागच्छति'** की असाधुता के बारे में स्पष्ट किया गया है इस प्रयोग की साधुता एक ही स्थिति में हो सकती है, जबकि पुत्र और पुरुष दोनों ही नहीं आ रहे हों और यह प्रयोग किया जाये । ऐसी स्थिति में पुत्रागमनाभावकाल को ही साहित्य मान कर पुरुष में अन्वय कर लेंगे तथा सहार्थ साहित्य से (पुत्रागमनाभावकाल से) विशिष्ट पुरुष में आगमन कर्तृत्वाभाव का अन्वयबोध हो जायेगा। **'पुत्रेण सह नागच्छति'** यह प्रयोग तीन स्थितियों में होता है। ऐसा पूर्व में पृ. 602 पर प्रतिपादित किया गया है। तीनों ही स्थितियों में सहार्थ का आगमन क्रिया में अन्वय किया जा सकता है। किन्तु इसमें एक समस्या है वह यह कि नञ् के न रहने पर जहाँ पर जिस सम्बन्ध से यद्वत्ता प्रतीत होती है

नञ् के रहने पर वहाँ पर उसी सम्बन्ध से तदभाववत्ता प्रतीत होती है। इस नियम का व्याघात होगा। इसीलिए हमने व्याख्या में विगत पृष्ठ में तीनों ही स्थितियों में अलग-अलग रीति (दो रीति) अपनायी है। एक जगह पर सहार्थ का अभाव पुरुष में अन्वित किया है और अन्यत्र सहार्थ विशिष्टक्रियाकर्तृत्व का अभाव पुरुष में अन्वित करके शाब्दबोधोप पादन किया है।

''इत्थंभूतलक्षणे'' इत्यनेन लक्षणवाचिपदाद् तृतीयानुशिष्यते। लक्षणत्वञ्च व्यावर्तकत्वम्, तच्चविशेष्यतावच्छेदकसमानाधिकरण भावाप्रतियोगित्वम्, तदाश्रयश्च धर्मो द्विविधः विशेषणमुपलक्षणञ्च। विद्यमानं सद् व्यावर्तकं विशेषणम् पुरुषादौ वर्तमानकालावच्छेदेन विद्यमानो दण्डादि। अविद्यमानं सद् व्यावर्तकमुपलक्षणम्– तापसादेः कालान्तरीणजटादिकम्। विशेषणस्य सम्बन्धो मतुबादिभिः प्रत्याय्यते-अस्तीत्यर्थे विहितानां वर्तमान सम्बन्धार्थकत्वात्, अतः 'जटाभिस्तापसः' इत्यादावविद्यमानजटादेः सम्बन्धविवक्षायां मतुबाद्यनवकाशात् तृतीयैव। तृतीयया चाविद्यमानत्वस्येव विद्यमानत्वस्यापि प्रत्यायनाद् विशेषणवाचिपदादपि तृतीया यथा- 'ज्ञायमानत्वेन लिङ्गम् कारणम्' इत्यादौ।

'इत्थम्भूतलक्षणे' पा० सू० 2/3/21के द्वारा लक्षणवाचक पद से तृतीया अनुशिष्ट होती है। लक्षणत्व व्यावर्तकत्व है (व्यावर्तन करने वाले को लक्षण कहा जाता है) और वह व्यावर्तकत्व विशेष्यतावच्छेदकसमानाधिकरणाभावाप्रतियोगित्व है। (जैसे गोव्यावर्तकत्व सास्ना=गलकम्बल में है, और विशेष्यतावच्छेदक गोत्व समानाधिकरण अभाव का अप्रति योगित्वं सास्ना में है क्योंकि गोत्व के अधिकरण में गोमात्र में किसी भी गोव्यक्ति में सास्ना का अभाव नहीं है, सास्ना सभी गो व्यक्तियों में विद्यमान है, इसलिए गो का लक्षण सास्ना होती है) विशेष्यतावच्छेदकसमानाधिकरणाभावाप्रतियोगित्व का आश्रय धर्म दो प्रकार का होता है विशेषण और उपलक्षण। विद्यमान रहता हुआ जो व्यावर्तक हो उसे विशेषण कहते हैं जैसे पुरुष आदि में वर्तमानकालावच्छेदेन विद्यमान दण्डादि। (पुरुष में अभी दण्ड है और उसके लिए प्रयोग कर सकते हैं 'जिसने दण्ड ले रखा है वह मोहन है' इत्यादि, सुननेवाला दण्डविशिष्ट को मोहन समझ लेगा। इस प्रकार यहाँ पर दण्ड विद्यमान रहता हुआ मोहन को सबसे अलग बता रहा है) अविद्यमान होता हुआ जो व्यावर्तक होता है उसे उपलक्षण कहते हैं[1] जैसे तापसादि का कालान्तरीण जटादिक । विशेषण का सम्बन्ध मतुप् आदि से बोधित होता है क्योंकि अस्ति इत्यादि अर्थो में विहित मतुप् आदि वर्तमानसम्बन्धार्थक होते हैं। (मतुप् प्रत्यय का **'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्' पा॰ सू॰ 5/2/94** से

---

1. उपलक्षण को बताने के लिए एक बहुत प्रचलित उदाहरण दिया जाता है कि कोई व्यक्ति गाँव में पहुँच कर देवदत्त का घर पूँछता है। बताने वाले ने बताया कि जिस घर पर कौआ बैठा है वही देवदत्त का घर है। उस व्यक्ति के उस घर तक पहुँचने तक कौआ दूसरे घर पर भले ही बैठ गया हो देवदत्त के घर

विधान किया जाता है) इसलिए 'जटाभिस्तापसः' 'जटाओं से तापस है' इत्यादि स्थलों में अविद्यमान जटादि के सम्बन्ध की विवक्षा में मतुप् आदि का अवकाश न होने के कारण तृतीया ही होती है।

तृतीया के द्वारा अविद्यमानत्व की तरह विद्यमानत्व का भी प्रत्यायन होने के कारण विशेषणवाचक पद से भी तृतीया होती है, जैसे 'ज्ञायमानत्वेन लिङ्गं करणम्' इत्यादिस्थलों में । लिङ्ग में ज्ञायमानत्व विद्यमान है और उसकी विद्यमानता का यहाँ पर तदुत्तर तृतीया से प्रत्यायन किया जाता है। इसलिए ज्ञानमानत्व के विशेषणवाची होने पर भी ज्ञायमानत्व से तृतीया होती है।

अथ तत्र ज्ञायमानत्वादिवैशिष्ट्यं तृतीयया लिङ्गादौ न प्रत्याय्यतेऽपि तु पदार्थैकदेशे करणत्वादावेव तदवच्छिन्नत्वमिति चेत् ? सा विशेषणतृतीयैव– अनुशासनान्तराभानात् ।

वस्तुतो लिङ्गादौ ज्ञायमानत्वादिवैशिष्ट्यबोधनेऽपि सम्बन्धविधया करणत्वज्ञायमानत्वाद्योरवच्छेद्यावच्छेदकभावभानसम्भवादेकदेशान्वय स्वीकारोऽनुचितः।

यदि कोई कहे कि यहाँ पर ज्ञायमानत्व का वैशिष्ट्य लिङ्गादि में तृतीया के द्वारा नहीं प्रत्याय्यित होता है अपितु पदार्थैकदेश करणत्व आदि में ज्ञायमानत्व का अवच्छिन्नत्व प्रत्याय्यित होता है, तो भी वह तृतीया विशेषणतृतीया ही है क्योंकि तृतीया विधान के लिए कोई दूसरा अनुशासन तो है नहीं।

वस्तुतः तो लिङ्गादि में ज्ञायमानत्व का वैशिष्ट्य तृतीया के द्वारा बोधित होने पर भी सम्बन्धविधया ज्ञायमानत्व और करणत्व का अवच्छेदकावच्छेद्यभाव भासित होना सम्भव है इसलिए एकदेशान्वयबोध स्वीकारना अनुचित है।

अभिप्राय यह है कि लिङ्ग में ज्ञायमानत्व का वैशिष्ट्य बोधित होता है तृतीया के द्वारा, तो फलितार्थ यह हुआ कि ज्ञायमानत्वविशिष्ट लिङ्ग में करणपदोपस्थाप्य करणत्व का अन्वय होगा। विधेय में उद्देश्यतावच्छेदकावच्छिन्नत्व तो नियम पूर्वक भासता है इसलिए उद्देश्यतावच्छेदकीभूत ज्ञायमानत्व से अवच्छिन्नत्व करणत्व में संसर्गविधया भासित हो जायेगा। तो जब ज्ञायमानत्व का अवच्छिन्नत्व करणत्व में संसर्गविधया इस रीति से भी भासित हो सकता है तो करणपदार्थैकदेश करणत्व में ज्ञायमानत्व का अवच्छिन्नत्व भासित कराने के लिए पदार्थैकदेश में तृतीयार्थान्वय क्यों स्वीकारा जाये।

न च सम्बन्धविधया करणत्व एकदेशेऽवच्छिन्नत्वभानेप्येकदेशान्वय ध्रौव्यमितिवाच्यम्; करणाभेदरूपे करणत्वे करणस्य सम्बन्धविधया भासमाने

पर भले ही न बैठा हो किन्तु देवदत्त के घर का व्यावर्तन कौआ कर ही देता है। सबसे अलग करके देवदत्तगृह को बता ही देता है। यहाँ पर कौआ उपलक्षण है क्योंकि अविद्यमान रहता हुआ व्यावर्तक हो रहा है।

ज्ञायमानत्वावच्छिन्नत्वस्यावच्छेदकतया भानोपगमेनैकदेशान्वयं विनाप्य-वच्छेद्यावच्छेदकभावभानात् ।

यदि कहो कि करणत्वरूप एकदेश में सम्बन्धविधया भी ज्ञायमानत्व का अवच्छिन्नत्व भान स्वीकारने पर भी एकदेशान्वय का ध्रौव्य है, एकदेशान्वय तो फिर भी स्वीकारना ही पड़ा; तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि करण का जो करणाभेदरूपी करणत्व है उसमें ज्ञायमानत्वावच्छिन्नत्व का अवच्छेदकतया भान स्वीकार करते हैं, इसलिए एकदेशान्वय के बिना भी अवच्छेद्यावच्छेदकभाव का भान हो सकता है।

यहाँ पर आशय यह है कि आकाङ्क्षा बल से विधेय सम्बन्ध में उद्देश्यतावच्छेदकावच्छिन्नत्व भासता है। इसलिए करणत्व का जो संसर्ग है उसमें उद्देश्यतावच्छेदकीभूत ज्ञायमानत्व का अवच्छिन्नत्व भासता है। इस प्रकार यहाँ पर एकदेशान्वय नहीं स्वीकारना पड़ रहा है, करणत्व का जो सम्बन्ध भास रहा है वही सम्बन्ध ज्ञायमानत्व से अवच्छिन्नत्वेन भास रहा है। इसलिए एकदेशान्वय का तो कोई प्रसङ्ग ही नहीं है।

अथ 'दण्डवानयमासीद् दण्डी गतवान्' इत्यादौ दण्डस्यातीततया विशेषणत्वासम्भवात् मतुबाद्यनुपपत्तिरिति चेत्? न, प्रकृतशब्दप्रयोगाधिकरण कालावच्छिन्नस्येव विधेयान्तरसमभिव्याहारस्थले तदधिकरणकालावच्छिन्न-सम्बन्धस्यापि मतुबादिना प्रत्यायनात् तत्रातीतकालिकसत्त्वादिरूप-विधेयाधिकरणकालावच्छिन्नसम्बन्धस्यैव मतुबाद्यर्थत्वात् ।

अविद्यमानोऽपि दण्डादिर्धमान्तरसम्बन्धसमानकालीनतया धर्मान्त-रान्वयिनि विशेषणम्, तत्प्रकारेण भासमाने धर्मान्तरान्वयबोधो विशिष्ट-वैशिष्ट्यमित्युच्यते, नत्वसावन्वयिन्युपलक्षणम्, न वा तादृशान्वयबोधस्त-दुपलक्षितान्वयबोध इत्युच्यते।

यदि प्रश्न करो कि 'दण्डवान् अयमासीद्' 'दण्डी गतवान्' 'यह दण्डवान् था' 'दण्डी गया' इत्यादिस्थलों में दंण्ड के अतीत होने के कारण विशेषणत्व असम्भव होने के कारण मतुप् आदि की अनुपपत्ति होगी? प्रश्न का अभिप्राय यह है कि अभी आपने बंताया कि 'अस्ति इत्यादि अर्थों में विहित प्रत्ययों का वर्तमान सम्बन्ध अर्थ होता है' **'अस्तीत्यर्थे विहितानां वर्तमानसम्बन्धार्थकत्वात्'** पृ. 606 ऐसी स्थिति में जहाँ पर दण्डादि अतीत हो चुके हैं वहाँ पर मतुप् प्रत्यय कैसे हो सकेगा? मतुप् तो अस्त्यर्थक प्रत्यय है। ऐसी स्थिति में 'दण्डवानयमासीद्' 'दण्डी गतवान्' इत्यादि स्थलों में मतुप् कैसे होगा क्योंकि यहाँ पर तो दण्डादि अतीत होने के कारण अविद्यमान है और उस अविद्यमान दण्डादि का वर्तमानसम्बन्ध बोधित करना असम्भव है।

तो ऐसा नहीं है प्रकृतशब्दप्रयोग के अधिकरणीभूत काल से अवच्छिन्न सम्बन्ध का जैसे मतुप् आदि से प्रत्यायन होता है उसी प्रकार विधेयान्तर का समभिव्याहार होने के स्थल में विधेयान्तराधिकरण काल से अवच्छिन्न सम्बन्ध का भी मतुप् आदि से प्रत्यायन होने के कारण वहाँ पर अतीतकालिकसत्त्व रूप विधेयान्तर के अधिकरण अतीत काल से अवच्छिन्न

सम्बन्ध ही मतुप् आदि का अर्थ होता है।

अर्थात् जैसे वर्तमान काल (शब्दप्रयोगाधिकरण काल) का सम्बन्ध मतुप् आदि का अर्थ होता है, उसी प्रकार विधेयान्तरसमभिव्याहारस्थल में विधेयान्तराधिकरणकाल का सम्बन्ध भी मतुप् का अर्थ होता है। जैसे '**अयं धनवान्**' कहने से इदम्पदार्थ में धन का वर्तमानकालिक सम्बन्ध मतुप् का अर्थ होता है, किन्तु '**अयं धनवानासीत्**' '**अयं दण्डवानासीत्**' कहने पर धन दण्डादि का वर्तमान कालिकसम्बन्ध मतुप् का अर्थ नहीं होता है। बल्कि विधेयान्तर जो अतीतकालिकसत्त्व उसके अधिकरणकाल का सम्बन्ध मतुप् का अर्थ होता है इस प्रकार अतीतकालिकसत्त्वाधिकरण काल का सम्बन्ध ही यहाँ पर मतुप् से बोधित होता है।

अविद्यमान भी दण्डादि धर्मान्तर अतीतकालिकसत्त्व का समान कालीन होने के कारण धर्मान्तर अतीतकालिक सत्त्व के अन्वयी इदम्पदार्थ में विशेषण ही होता है क्योंकि दण्ड प्रकारेण (दण्ड को प्रकार बनाकर) भासमान दण्डी में ही अतीतकालिक-सत्त्व रूप धर्मान्तरान्वय होकर बोध होता है। इसलिए यह विशिष्टवैशिष्ट्यबोध है, विशिष्ट में दण्डविशिष्ट में वैशिष्ट्य अतीतकालिकसत्त्ववैशिष्ट्य का बोध है। इस प्रकार यह विशिष्ट वैशिष्ट्यबोध है। सार रूप में विशेषण और उपलक्षण के विषय में यहाँ पर गदाधर यह सिद्धान्तित कर रहे हैं कि **जिस धर्म को प्रकार बनाकर भास रहे धर्मी में धर्मान्तर का अन्वयबोध होता है, वह धर्म विशेषण होता है और जिस धर्म को प्रकार बनाये बिना भासित हो रहे धर्मी में धर्मान्तर का अन्वयबोध होता है, वह धर्म उपलक्षण होता है।**

इस प्रकार चूँकि दण्ड को प्रकार बनाकर भास रहे धर्मी दण्डवान् में धर्मान्तर अतीतकालिकसत्त्व का अन्वय बोध हो रहा है, अतः दण्ड विशेषण ही है उपलक्षण नहीं और उक्त बोध विशिष्टवैशिष्ट्यबोध ही है उपलक्षितान्वयबोध नहीं है।

क्वचिद्विधेयान्तरसमानकालीनमपि विशेषणं तदनन्वयितया तदन्वयिन्युपलक्षणमुच्यते–यथा 'रूपवान् रसवान्' इत्यादौ रूपादिकं रसान्वयिनि, 'सास्नावान् गोपदवाच्यः' इत्यादौ सास्नादिकं गोपदवाच्ये। क्वचिद्धर्मिसम्बद्धधर्मान्तरसम्बन्ध्यपि धर्मो धर्मान्तरसम्बन्धितानवच्छेदकतया धर्मान्तरसम्बन्धिन्युपलक्षणम्। अतः 'दण्डपुरुषौ' इत्यादि समूहालम्बनबोधो दण्डाद्युपलक्षितपुरुषादिविषयको न तु विशिष्टविषयक इत्युच्यते।

कहीं पर विधेयान्तर का समानकालीन भी विशेषण तदनन्वयी होने के कारण तदन्वयी में उपलक्षण होता है, उपलक्षण कहा जाता है जैसे-'**रूपवान् रसवान्**' इत्यादि स्थलों में रूपादि रसान्वयी में उपलक्षण होते हैं '**सास्नावान् गोपदवाच्यः**' इत्यादि स्थलों में सास्नादिक गो आदि पद से वाच्य में उपलक्षण होते हैं। भाव यहाँ पर यह है कि विधेयान्तर समभिव्याहारस्थल में विधेयान्तरसमानकालीनसत्त्व जिसमें आयेगा वह विशेषण

ही होगा, यह ज़रूरी नहीं है। कहीं पर विधेयान्तरसमानकालीनसत्त्व आने पर भी विशेषण को विशेषण नहीं उपलक्षण ही कहा जाता है। इसका कारण यही है कि तत्प्रकारेण भासमान धर्मी में विधेयान्तर का अन्वय नहीं होता है। जैसे कि **'रूपवान् रसवान् घटः'** यहाँ पर घट में ही रूप और रस दोनों का अन्वय हो रहा है किन्तु चूँकि रूपप्रकारेण भासमान घट में रस का अन्वय नहीं हो रहा है, इसलिए रसान्वयी में रूप विशेषण नहीं होता है उपलक्षण ही होता है। यद्यपि रूप में विधेयान्तररससमानकालीनत्व है, विधेयान्तर रसाधिकरणकालवृत्तित्व है तथापि रूप विशेषण नहीं होता है। इसी प्रकार **'सास्नावान् गोपदवाच्यो गौः'** यहाँ पर भी चूँकि सास्ना को प्रकार बनाकर भासमान गौ व्यक्ति में गोपदवाच्यत्व का अन्वय नहीं होता है इसलिए सास्ना गोपदवाच्यत्वान्वयी में विशेषण नहीं होती है, उपलक्षण ही होती है।

कहीं पर धर्मिसम्बद्धधर्मान्तरसम्बन्धी भी धर्म धर्मान्तरसम्बन्धिता का अनवच्छेदक होने के कारण धर्मान्तरसम्बन्धी में उपलक्षण होता है, इसलिए **'दण्डपुरुषौ'** इत्यादि समूहालम्बनबोध दण्डाद्युपलक्षित पुरुषादिविषयक होता है विशिष्टविषयक नहीं होता है ऐसा कहा जाता है। **'दण्डपुरुषौ'** इस समूहालम्बनात्मकबोधस्थल में धर्मी पुरुष में सम्बद्ध धर्मान्तर वर्तमानकालिकसत्त्वादिक से सम्बन्धी भी धर्म दण्ड (क्योंकि दण्ड में भी वर्तमानकालिक-सत्त्व है) धर्मान्तर वर्तमानकालिकंसत्त्व का सम्बन्धितावच्छेदक नहीं होता है क्योंकि दण्डप्रकारेण भासमान पुरुष में विधेयान्तर वर्तमानकालिकसत्त्व का अन्वय नहीं किया जाता है और वर्तमानकालिकसत्त्व का पुरुष में जो सम्बन्ध है उसमें दण्डावच्छिन्नत्व नहीं भासता है। इस कारण दण्ड यहाँ पर उपलक्षण ही है विशेषण नहीं दण्डादि से उपलक्षित पुरुषादिविषयक ही बोध होता है, दण्डविशिष्टपुरुषविषयक नहीं।

विशेष्यसम्बद्धासम्बन्ध्यपि तत्सम्बन्धितावच्छेदकतया तद्वति विशेषणम्। अत एव संज्ञाविशिष्टसंज्ञ्यादिज्ञाने संज्ञादेर्विषयत्वमनङ्गीकुर्वतां प्राभाकराणां प्राचीननैयायिकानाञ्च मते तटस्थज्ञानविषयतयैव विषयता वच्छेदकत्वात् संज्ञादेः प्रकारस्य ज्ञानविषयविशेषणत्वम् । अत एव द्वित्वनाशकालीनायां 'द्वे द्रव्ये' इति बुद्धौ न द्वित्वविषयकत्वमपि तु द्वित्वविशिष्ट विषयकत्वमेव–द्वित्वरूपविशेषणधीजन्यत्वादित्याचार्याः।

विशेष्यसम्बद्ध में असम्बन्धी भी तत्सम्बन्धितावच्छेदक (विधेयान्तर सम्बन्धावच्छेदक होने के कारण विधेयान्तरवत् में विशेषण होता है। अर्थात् विधेयान्तर में न रहने वाला भी विधेयान्तरसम्बन्धितावच्छेदक होने के कराण विधेयान्तरान्वयी में विशेषण हुआ करता है। इसीलिए संज्ञाविशिष्ट संज्ञी के ज्ञान में संज्ञा आदि विषयत्व न स्वीकारने वाले प्राभाकरों और प्राचीननैयायिकों के मत में तटस्थज्ञानविषयता के ही विषयतावच्छेदक होने के कारण संज्ञा आदि प्रकार का ज्ञानविषयविशेषणत्व होता है। अर्थात् विशेष्यसम्बद्ध में असम्बन्धित धर्म के भी विधेयान्तरसम्बन्धितावच्छेदक होने के कारण विधेयान्तरान्वयी में विशेषण होने

के कारण संज्ञाविशिष्ट संज्ञी के ज्ञान में जो संज्ञा की विषयता नहीं स्वीकारते हैं ऐसे प्राभाकरों और प्राचीन नैयायिकों के मत में संज्ञादि प्रकार का ज्ञानविषय में विशेषणत्व होता है। यहाँ पर संज्ञाविशिष्टिसंज्ञीज्ञान **'घटपदवाच्यो घटः'** 'घट पद से वाच्य घट है' ऐसा होता है। इसमें घट अंश तो प्रत्यक्ष है किन्तु घटपदवाच्यत्वांश प्रत्यक्ष नहीं हो सकता है यहाँ पर विशेष्य घट में सम्बद्ध घटत्व में घटपद संज्ञा का सम्बन्ध नहीं है। इस प्रकार घटत्व की असम्बन्धी भी संज्ञा घटसम्बद्धघटत्वसम्बन्धितावच्छेदक होने के कारण घटत्वान्वयी में विशेषण बनती है। संज्ञा और घट एक ज्ञानविषय नहीं हैं क्योंकि संज्ञाविशिष्ट संज्ञी ज्ञान में संज्ञादि का विषयत्व प्राभाकर और प्राचीननैयायिक नहीं स्वीकारते हैं। किन्तु तटस्थ ज्ञानविषयता से ही संज्ञा के विषयतावच्छेदक होने के कारण संज्ञारूप प्रकार ज्ञानविषय विशेषण होता है।

इसीलिए "द्वित्वनाशकालीन **'द्वे द्रव्ये'** 'दो द्रव्य हैं' इस बुद्धि में द्वित्वविषयकत्व नहीं है अपितु द्वित्वविशिष्टद्रव्यविषयकत्व ही है द्वित्वरूपविशेषण ज्ञान से जन्य होने के कारण" ऐसा आचार्य कहते हैं।

द्वित्व अपेक्षा बुद्धिजन्य है और अपेक्षा बुद्धिनाश से उसका नाश होता है। जब द्वित्व का नाश हो गया है उस समय होने वाली **'द्वे द्रव्ये'** इस बुद्धि में द्वित्वविषयकत्व नहीं हो सकता है क्योंकि द्वित्वविषयक प्रत्यक्ष तो तभी हो सकता है यदि द्वित्व रहे, नष्ट विषयकप्रत्यक्ष न्यायमत में सम्भव नहीं है। इस कारण द्वित्वनाशकाल में द्वित्वविषयक प्रत्यक्ष नहीं सम्भव है। वह जो बुद्धि होती है वह द्वित्वविशिष्टविषयक बुद्धि है। क्योंकि द्वित्वरूप विशेषण के ज्ञान से जन्य है। इस प्रकार विशेष्यभूत द्रव्य सम्बद्ध वर्तमानकालिक सत्त्व से असम्बन्धी भी (क्योंकि द्वित्व वर्तमानकाल में नष्ट हो चुका है) द्वित्व वर्तमान कालिकसत्त्वसम्बन्धिता का अवच्छेदक होने के कारण द्रव्य में विशेषण बनता है।

एवमप्रतियोगित्वाविशेषेऽपि घटसामान्याभावादिप्रतियोगिनि घटत्वादिकं विशेषणं नीलादिकमुपलक्षणमित्युच्यते।

इसी प्रकार अप्रतियोगित्व का अविशेष होने पर भी घटसामान्याभावादि प्रतियोगि में घटत्वादि विशेषण और नीलादि उपलक्षण हैं ऐसा कहा जाता है।

यहाँ पर कहना यह है कि घट सामान्याभाव का प्रतियोगी घट होता है । उस घट में घटत्व भी है और नीलादि भी। किन्तु घटसामान्याभाव प्रतियोगी घट में घटत्व तो विशेषण है नीलादि उपलक्षण । घटत्व और नीलादि में घटसामान्याभाव का अप्रतियोगित्व समान रूप से विद्यमान है। ऐसा नहीं है कि अभाव में घटत्व प्रतियोगि हो रहा हो और नील न हो रहा हो। दोनों समान हैं इस दृष्टि से। किन्तु घटत्व प्रतियोगिता का अवच्छेदक होने के कारण विशेषण होता हैं और नील ऐसा नहीं है, अतः विशेषण नहीं होता है।

क्वचिच्च विद्यमानमप्यतद्व्यावृत्तिन्यूनाधिकवृत्तितया तत्र न विशेषणमित्युच्यते किन्तूपलक्षणं यथा विद्यमानापि जटा तापसे उपलक्षणं न तूपलक्ष्यतावच्छेदकशमादिवद्विशेषणम्, इत्यलमप्रस्तुतपरिभाषाविचार बाहुल्येन ।

कहीं पर तो अतद्व्यावृत्ति होने के कारण न्यूनाधिकवृत्ति होने के कारण वहाँ पर

विशेषण नहीं कहा जाता है अपितु उपलक्षण कहा जाता है जैसे कि विद्यमान भी जटा तापस में उपलक्षण है न कि उपलक्ष्यतावच्छेदक शमदम आदि की तरह विशेषण, तो इतना ही बहुत है अप्रस्तुत विचार की बहुलता।

यहाँ पर गदाधर का अभिप्राय यह है कि सामान्यतया जो अविद्यमान होता हुआ व्यावर्तक होता है उसे उपलक्षण कहा जाता है किन्तु कहीं पर विद्यमान भी धर्म जो कि व्यावर्तक नहीं होता है, न्यूनाधिकवृत्ति होता है। उसे भी उपलक्षण कहा जाता है विशेषण नहीं जैसे कि तापस में विद्यमान भी जटा उपलक्षण ही कही जाती है विशेषण नहीं क्योंकि जटा तापस की अतद् (तापसभिन्न) से व्यावृत्ति नहीं कराती है। तापसभिन्न भी जटाधारी होता है, तापस भी जटाधारी नहीं होता है। इसलिए जटा के द्वारा तापसभिन्न का व्यावर्तन करना सम्भव नहीं है। जटा न्यूनाधिकवृत्ति भी है तापस में भी जटा नहीं है और तापसभिन्न में भी जटा है। इसलिए जटा विशेषण नहीं है उपलक्षण ही है।उपलक्ष्यतावच्छेदक शमदमादि विशेषण होते हैं क्योंकि शमदमादि तापसभिन्न के व्यावर्तक होते हैं, शमदमादि न रहने पर तो तापसत्व की अनुपपत्ति ही होगी। शमदमादि सम्पन्न होने पर ही व्यक्ति तापस कहा जाता है उसके न रहने पर तापस नहीं कहा जाता है। अतः शमदमादि विशेषण होते हैं।

क्वचिदविशेषणस्यापि सम्बन्धो मत्वर्थीयेन बोध्यते 'घटोऽयं विनाशी' इत्यादिप्रयोगदर्शनादिति दीधितिकृतः, तदसत्- आवश्यकार्थधातूत्तरणिनि प्रत्ययेनापि तत्र विनाशिपदव्युत्पत्तेः।

–इति तृतीया–

कहीं पर अविशेषण का भी सम्बन्ध मत्वर्थीय प्रत्यय के द्वारा बोधित होता है क्योंकि **'घटोऽयं विनाशी'** 'यह घट विनाशी है' ऐसा प्रयोग देखा जाता है ऐसा दीधितिकार कहते हैं। वह ग़लत है क्योंकि धातूत्तर आवश्यकार्थ णिनि प्रत्यय से भी विनाशिपद की व्युत्पत्ति हो सकती है।

'घटोऽयं विनाशी' यहाँ पर विनाशी पद मत्वर्थीय णिनि प्रत्यय करके सिद्ध हुआ है ऐसा दीधितिकार मानते हैं। किन्तु मत्वर्थीयप्रत्यय के द्वारा तो विशेषण का ही सम्बन्ध प्रत्याय्यित होता है और यहाँ समस्या यह है कि विनाश घट का विशेषण हो नहीं सकता है क्योंकि घट में विनाश अविद्यमान है और विद्यमान ही विशेषण हो सकता है।इस लिए दीधितिकार कहते हैं कि कहीं पर अविशेषण का भी सम्बन्ध मत्वर्थीय प्रत्यय से बोधित होता है। इस तरह विनाश के घट का विशेषण न होने पर भी विनाश का सम्बन्ध मत्वर्थीय णिनि प्रत्यय से बोधित हो सकता है।

इस पर गदाधर का कहना है कि दीधितिकार का कथन ग़लत है क्योंकि विनाशी पद में मत्वर्थीय णिनि प्रत्यय ही नहीं है अपितु **'आवश्यकाधर्मण्ययोर्णिनिः'** पा॰ सू॰ 3/3/170 द्वारा आवश्यकार्थक णिनि प्रत्यय है। इसलिए कहीं पर भी अविशेषण का सम्बन्ध मत्वर्थीय से नहीं प्रतिपादित होता है। यही युक्तिसङ्गत है।

इस प्रकार श्रीमद्गदाधरभट्टाचार्यविरचित व्युत्पत्तिवाद की श्री सच्चिदानन्द मिश्र विरचित सुनन्दाव्याख्या में तृतीया कारक सम्पूर्ण हुआ।

–अथ चतुर्थी–

'ब्राह्मणाय गां ददाति' इत्यादौ सम्प्रदानचतुर्थ्यां ब्राह्मणादिसम्प्रदानकत्वं दानादौ बोध्यते। सम्प्रदानत्वञ्च मुख्यभाक्तसाधारणं क्रियाकर्मसम्बन्धितया कर्त्रभिप्रेतत्वम्, क्रियाकर्मत्वं क्रियाजन्यफलशालित्वम्। तद्वता सम्बन्धश्च तन्निष्ठफलभागित्वमेव, तथा च क्रियाजन्यफलभागितया कर्तुरिच्छाविषयत्वं पर्यवसन्नम्। "कर्मणा यमभिप्रैति" इति सूत्रस्याप्ययमेवार्थः- 'कर्मणा यमभिप्रैति' इत्यस्य 'कर्मणा यमभिसम्बद्धुमिच्छति' इतिशाब्दिकैर्विवरणात्। उक्तस्थले त्यागरूपक्रियाजन्यगोनिष्ठस्वत्वभागितया दातुरिच्छाविषयो ब्राह्मण इति तस्य सम्प्रदानत्वम्।

'ब्राह्मणाय गां ददति' 'ब्राह्मण को गाय दे रहा है' इत्यादि स्थलों में सम्प्रदान चतुर्थी के द्वारा दानादि में ब्राह्मणादिसम्प्रदानकत्व बोधित होता है। सम्प्रदानत्व मुख्यभाक्त साधारण क्रियाकर्मसम्बन्धितया कर्त्रभिप्रेतत्व है। क्रियाकर्मत्व क्रियाजन्यफलशालित्व रूप है। क्रियाकर्मत्ववात् से सम्बन्ध तन्निष्ठफलभागित्व ही है। इस प्रकार क्रियाजन्यफलभागितया कर्ता की इच्छा का विषयत्व ही सम्प्रदानत्व है यह पर्यवसन्न हुआ। 'कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्' पा० सू० 1/4/32 इस सूत्र का भी यही अर्थ है 'कर्मणा यमभिप्रैति' इस अंश का 'कर्मणा यमभिसम्बद्धुमिच्छति' 'कर्म के द्वारा जिसको अभिसम्बद्ध करना चाहता है' यही शाब्दिकों के द्वारा विवरण करने के कारण इसी अर्थ की पुष्टि होती है। उक्त स्थल में 'ब्राह्मणाय गां ददाति' यहाँ पर त्यागरूपक्रियाजन्य गोनिष्ठस्वत्व भागितया दाता की इच्छा का विषय ब्राह्मण है, इसलिए ब्राह्मण की सम्प्रदानता है।

यहाँ पर गदाधर सम्प्रदानत्व क्या चीज़ है जो कि चतुर्थी से बोधित होता है। इसे स्पष्ट रीति से बतला रहे हैं। कहना है कि सम्प्रदान अर्थ में चतुर्थी के द्वारा दान आदि में ब्राह्मणादिसम्प्रदानकत्व बोधित होता है। दान ब्राह्मणसम्प्रदानक बोधित होता है। तथा मुख्य और लाक्षणिक दोनों ही सम्प्रदानत्व क्रियाकर्मसम्बन्धितया कर्ता के द्वारा अभिप्रेतत्व है। क्रियाकर्मसम्बन्धितया कर्त्रभिप्रेतत्व में तीन अंश हैं (1) क्रियाकर्मत्व (2) क्रिया कर्म का सम्बन्ध (3) कर्त्रभिप्रेतत्व। इसमें क्रियाकर्मत्व क्रियाजन्यफलशालित्व है, क्रिया कर्म का सम्बन्ध है क्रियाकर्मनिष्ठफलभागित्व और कर्त्रभिप्रेतत्व का अर्थ है कर्ता की इच्छा का विषयत्व। इस प्रकार क्रियाजन्यफलशालिनिष्ठफलभागित्वेन कर्ता की इच्छा का विषयत्व ही सम्प्रदानत्व है। 'ब्राह्मणाय गां ददाति' यहाँ पर त्यागरूप दानक्रिया से जन्य गोनिष्ठ फल (स्वत्व) भागितया कर्ता की इच्छा का विषय ब्राह्मण होता है। अतः ब्राह्मण की सम्प्रदानता होती है। इस अर्थ में वैयाकरणों की भी सम्मति है।

अथ निरुक्तस्य सम्प्रदानत्वस्य कर्मत्वाविशेषः– "कर्तुरीप्सित" इति सूत्रेण कर्तुः क्रियया व्याप्तुमिष्टस्य कर्मसंज्ञाविधानात्, क्रियया व्याप्तुमिष्टत्वमपि हि क्रियाजन्यफलभागितयेच्छाविषयत्वमेव।

पूर्व ग्रन्थ से गदाधर ने यहव्यवस्थापित किया कि **क्रियाजन्यफलभागितया कर्ता की इच्छा का विषयत्व ही सम्प्रदानत्व है।** इस पर आशङ्का उठा रहे हैं-

इस प्रकार तो निरुक्त सम्प्रदानत्व का कर्मत्व से अविशेष होगा (सम्प्रदानत्व और कर्मत्व एक जैसे हो जायेंगे दोनों में भेद या अन्तर नहीं होगा) क्योंकि **'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' पा0सू0 1/4/49** सूत्र के द्वारा कर्ता की क्रिया से व्याप्त करने के लिए इष्ट की ही कर्मसंज्ञा का विधान किया गया है। तथा क्रिया से व्याप्त करने के लिए इष्टत्व क्रियाजन्यफलभागितया इच्छाविषयत्व ही है।

अभिप्राय यह है कि यदि सम्प्रदानत्व का अर्थ आप क्रियाजन्यफलभागितया इच्छाविषयत्व करियेगा, जैसा कि आप कर रहे हैं। तो समस्या यह है कि कर्मत्व और सम्प्रदानत्व में कोई अन्तर ही नहीं रह जायेगा क्योंकि **'कर्तुरीप्सिततमं कर्म'** के द्वारा क्रियाजन्यफलभागितया इच्छाविषयत्व कर्मत्व है ऐसा प्रतिपादित किया गया है। कर्तुरीप्सिततमत्व क्रियाजन्यफलभागितया कर्ता की इच्छा का विषयत्व ही है। जैसे कि **'चैत्रः ग्रामं गच्छति'** 'चैत्र गाँव जाता है' यहाँ पर गमनजन्यसंयोगभागितया चैत्र की इच्छा का विषयत्व ग्राम में है। अतः ग्राम की कर्मता होती है किन्तु आप द्वारा प्रदर्शित रीति से सम्प्रदानत्व को परिभाषित करने पर ग्राम की सम्प्रदानता भी होने लगेगी

न च 'तथायुक्तं चानीप्सितम्'' इत्यनेन क्रियाजन्यफलभागितयाऽनभिप्रेतस्यापि क्रियाजन्यफलाश्रयस्य कर्मसंज्ञाविधानात् कर्मत्वं क्रियाजन्यफलशालित्वमेव न त्विच्छागर्भम्, सम्प्रदानत्वं त्विच्छागर्भमतो भेद इति वाच्यम्; कर्मत्वस्येच्छयाऽघटितत्वे सूत्रभेदवैयर्थ्यापत्तेः।

यदि कहो कि **'तथायुक्तं चानीप्सितम्' पा0 सू0 1/4/50** के द्वारा क्रियाजन्यफलभागितया अनभिप्रेत भी क्रियाजन्यफलाश्रय की कर्म संज्ञा का विधान होने के कारण कर्मत्व क्रियाजन्यफलशालित्व ही है, न कि इच्छागर्भ (क्रियाजन्यफल भागितया कर्ता की इच्छा का विषयत्व) कर्मत्व है। तथा सम्प्रदानत्व तो इच्छागर्भ है इसलिए भेद हो जायेगा। अर्थात् चूँकि क्रियाजन्यफलभागितया अनभिप्रेत की भी कर्मसंज्ञा का विधान किया गया है और वह कर्म संज्ञा का विधान क्रियाजन्यफलाश्रय की कर्मसंज्ञा का हेतु है। इसलिए कर्मत्व को क्रियाजन्यफलाश्रयत्व रूप मानेंगे और सम्प्रदानत्व क्रियाजन्यफलभागितया इच्छाविषयत्व रूप मानेंगे, इस प्रकार कर्मत्व और सम्प्रदानत्व में अन्तर बन जायेगा, दोनों का अविशेष नहीं होगा ।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि कर्मत्व यदि इच्छा से घटित नहीं होगा तब तो सूत्रभेदवैयर्थ्य की आपत्ति होगी, दो सूत्र कर्मसंज्ञाविधानार्थ निर्मित करना व्यर्थ होगा क्योंकि केवल क्रियाजन्यफलाश्रय की कर्म संज्ञा करना अभिप्रेत होने पर तो केवल **'तथायुक्तं चानीप्सितम्'** सूत्र से ही काम चल जायेगा।

न च फलाश्रयत्वेनानभिप्रेतस्यापि कर्मत्वे तत्साधारणक्रियाजन्यफलाश्रयतयेष्टस्यापि ग्रामादेः कर्मत्वोपपत्ताविच्छाघटिततत्सूत्रवैयर्थ्य

दुर्वारमेवेतिवाच्यम्; इच्छाघटितस्य निरुक्तरूपस्य यत्र बाधस्तत्र कर्मप्रत्ययेन तादृशमपि रूपं बोध्यते इत्येतत्प्रतिपादनाय सूत्र द्वयप्रणयनात् । अत एव यत्रौदनस्य गलाधःसंयोगेच्छया यो व्यापारस्ततो विषादेरपि गलाधस्संयोगस्तत्र विषादौ क्रियाजन्यफलशालित्वाभावबाधेऽपि तेन रूपेणेच्छाविषयत्वाभावो बाधितस्तत्र 'विषमनेन न भुज्यते' इति प्रयोगोपपत्तिः, इच्छाघटितकर्मत्व-तात्पर्येण च 'दैवाद्विषं भुज्यते' इति प्रयोगस्य चोपपत्तिः।

यदि कहो कि फलाश्रयत्वेन अनभिप्रेत की भी कर्मता होने पर फलाश्रयत्व रूप कर्मत्वसाधारण क्रियाजन्यफलाश्रयतया इष्टं भी ग्रामादि की कर्मता की उपपत्ति होने पर इच्छा से घटित सूत्र का वैयर्थ्य तो दुर्वार ही होगा।

अभिप्राय यह है कि **'कर्तुरीप्सिततमं कर्म'** सूत्र का सार्थक्य तभी हो सकता है जबकि क्रियाजन्यफलाश्रयत्वेन अभिप्रेत की ही कर्मसंज्ञा हो, क्रियाजन्यफलाश्रयत्वेन अनभिप्रेत की कर्म संज्ञा न हो । किन्तु क्रियाजन्यफलाश्रयत्वेन जो अभिप्रेत नहीं भी है, उसकी भी **'तथायुक्तं चानीप्सितम्'** सूत्र से कर्मसंज्ञा हो ही जा रही है । फिर क्रियाजन्यफलाश्रयत्व को ही कर्मत्व मानना उचित लगता है तथा इस प्रकार इच्छाघटित **'कर्तुरीप्सिततमं कर्म'** सूत्र की व्यर्थता तो होगी ही।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि इच्छाघटित निरुक्तरूप का (क्रियाजन्यफलाश्रयत्वेन इच्छाविषयत्व का) जहाँ पर बाध है। वहाँ पर कर्म प्रत्यय के द्वारा क्रियाजन्यफलाश्रयत्व रूप कर्मत्व भी होता है इसका प्रतिपादन करने के लिए उक्त दोनों सूत्रें का प्रणयन किया गया है। अर्थात् मुख्यकर्मत्व तो क्रियाजन्यफलाश्रयत्वेन इच्छाविषयत्व ही है, किन्तु जहाँ पर इसका बाध होता है वहाँ पर क्रियाजन्यफलाश्रयत्व रूप कर्मत्व भी बोधित होता है। इसी कारण जहाँ पर ओदन के गलाधःसंयोग की इच्छा से जो व्यापार हुआ उसी व्यापार से विषादि का भी गलाधःसंयोग हुआ। वहाँ पर क्रियाजन्यफलाश्रयत्वाभाव का बाध होने पर भी क्रियाजन्यफलशालित्वेन इच्छाविषयत्व का अभाव अबाधित है, अतः **'विषमनेन न भुज्यते'** 'इस व्यक्ति के द्वारा विष नहीं खाया जा रहा है' इस प्रयोग की उपपत्ति होती है। तथा इच्छादि से अघटित कर्मत्वादि के तात्पर्य से **'दैवाद्विषं भुज्यते'** 'दैववशात् विष इसके द्वारा खाया जा रहा है' इस प्रयोग की उपपत्ति होती है।

यहाँ पर उत्तरपक्षी का आशय यह है कि जब व्यक्ति खा तो रहा है ओदन, किन्तु ओदन के साथ-साथ विष भी है वह भी मुखगत हो रहा है। वहाँ पर **'विषमनेन न भुज्यते'** और **'दैवाद्विषं भुज्यते'** दोनों ही प्रयोग होता है। यदि केवल क्रियाजन्यफलाश्रयत्व रूप ही कर्मत्व है तो क्रियाजन्यफलाश्रयत्व रूप कर्मत्व तो विष में है ही। अतः विष में कर्मत्वाभाव बोधित करने वाला **'विषमनेन न भुज्यते'** प्रयोग नहीं होना चाहिए। कर्मत्वाभाव (क्रियाजन्यफलाश्रयत्वाभाव) का तो विष में बाध है । अतः कर्मत्वाभावविषयक शाब्दबोध नहीं उपपन्न होता है। इसलिए क्रियाजन्यफलाश्रयत्वेन कर्त्रभिप्रेतत्व (कर्ता की इच्छा के विषयत्व) को भी कर्मत्व मानो। चूँकि विष में क्रियाजन्यफलाश्रयतया कर्ता की

इच्छा का विषयत्व नहीं है, अतः विष में क्रियाजन्यफलाश्रयतया इच्छाविषयत्व रूप कर्मत्त्व का अभाव अबाधित होने के कारण बोधित हो सकता है। इसलिए **'विषमनेन न भुज्यते'** प्रयोग भी उपपन्न होता है। क्रियाजन्यफलाश्रयत्व रूप कर्मत्व के अभिप्राय से **'दैवाद्विषं भुज्यते'** प्रयोग उपपन्न होता है। इस प्रकार दोनों ही सूत्रों का सार्थक्य होता है।

दोनों सूत्रों का उपर्युक्त रीति से सार्थक्योपपादन सम्भव होने पर सम्प्रदानत्व और कर्मत्व के अविशेषता की आपत्ति पुनः दुर्निवार रूप में उपस्थित होती है।

न च धात्वर्थतावच्छेदकफलशालित्वेनोद्देश्यत्वं कर्मत्वं तदनवच्छेदक-फलशालित्वेनोद्देश्यत्वं सम्प्रदानत्वमिति विशेषः, स्वस्वत्वध्वंसावच्छिन्नत्याग एव ददात्यर्थो न तु परस्वत्वरूपफलावच्छिन्नोऽपीति वाच्यम्; उपेक्षाया अपि ददातेर्मुख्यार्थतापत्तेः।

यदि कहो धात्वर्थतावच्छेदकफलशालित्वेन उद्देश्यत्व कर्मत्व है और धात्वर्थतानवच्छेदक फलशालित्वेन उद्देश्यत्व सम्प्रदानत्व है, यही दोनों में विशेष है। दा धातु का अर्थ स्वस्वत्वध्वंसावच्छिन्नत्याग ही है न कि पर स्वत्वरूपफलावच्छिन्न भी। यहाँ पर पूर्वपक्षी यह उपपादित करना चाह रहा है कि क्रियाजन्य फलभागितया इच्छाविषयत्व ही कर्मत्व भी है और सम्प्रदानत्व भी यही है। किन्तु इन दोनों में अन्तर इस कारण होता है कि क्रियाजन्यधात्वर्थतावच्छेदकीभूतफलशालित्वेन इच्छाविषयत्व कर्मत्व है और क्रियाजन्य-धात्वर्थतानवच्छेदकफलशालित्वेन इच्छाविषयत्व सम्प्रदानत्व है। इस तरह दोनों में अन्तर सम्भव है। लेकिन इस प्रकार दोनों का अन्तर उपपादित करना सम्भव होने पर भी **'चैत्रः ब्राह्मणाय गां ददाति'** यहाँ पर क्या ब्राह्मण की भी कर्मता नहीं आपन्न होगी? क्योंकि दा धातु का अर्थ है 'स्वस्वत्वध्वंसपूर्वक परस्वत्वानुकूलत्याग' इसमें धात्वर्थतावच्छेदकीभूत परस्वत्वशालित्वेन उद्देश्यत्व (इच्छाविषयत्व) ब्राह्मण में विद्यमान है। इसका समाधान करने के लिए पूर्वपक्षी कह रहा है कि दा धातु का अर्थ मात्र 'स्वस्वत्वध्वंसानुकूल त्याग' है इस कारण धात्वर्थतावच्छेदक स्वस्वत्वध्वंस ही है और तच्छालित्वेन इच्छाविषयत्व गो में ही है। अतः गो की ही कर्मता होगी, ब्राह्मण की नहीं । परस्वत्व तो धात्वर्थतावच्छेदक ही नहीं है। इसलिए परस्वत्वरूपधात्वर्थतानवच्छेदकफलशालित्वेन इच्छाविषयत्व ब्राह्मण में होने के कारण ब्राह्मण की सम्प्रदानता ही होगी।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि इस प्रकार तो उपेक्षा भी दा धातु का मुख्यार्थ होने लगेगी। भाव यह है कि यदि दा धातु का अर्थ स्वस्वत्वध्वंसानुकूलत्याग है तो उपेक्षा भी स्वस्वत्त्वध्वंसानुकूलत्याग ही तो है। इस प्रकार उपेक्षा और दान दोनों में अभेद आपन्न होने लगेगा। उपेक्षा और दान तो अलग-अलग क्रियाएँ हैं। अतः दान के अर्थ में परस्वत्व को भी प्रविष्ट होना चाहिए।

मैवम्– फलाश्रयतयेष्टत्वमेव हि कर्मत्वम्, फलसम्बन्धितयेष्टत्वं सम्प्रदानत्वम् । ब्राह्मणादिश्च न त्यागजन्यस्वत्वाश्रयतया दातुरिष्टः, अपितु तन्निरूपकतयैवातो न तस्य कर्मता।

तो ऐसा नहीं है क्योंकि फलाश्रयतया इष्टत्व कर्मत्व है और फलसम्बन्धितया इष्टत्व सम्प्रदानत्व है। ब्राह्मणादि त्यागजन्य स्वत्व् के आश्रय के रूप में दाता को इष्ट नहीं हैं अपितु त्यागजन्यस्वत्वनिरूपकतया ही इष्ट हैं, अतः उनकी कर्मता नहीं हुआ करती है।

आशय यह है कि क्रियाजन्यफलाश्रयतया कर्ता की इच्छा का जो विषय होगा उसे कर्म कहेंगे और क्रियाजन्यफलसम्बन्धितया कर्ता की इच्छा का जो विषय होगा उसे सम्प्रदान कहेंगे। **'चैत्रः ब्राह्मणाय गां ददाति'** यहाँ पर दान क्रिया से जन्य फल है पर स्वत्व (ब्राह्मणस्वत्व) उसके आश्रय के रूप में कर्ता चैत्र की इच्छा का विषयत्व गाय में ही है क्योंकि चैत्र दान क्रिया के द्वारा यही चाह रहा है कि गाय में ब्राह्मणस्वत्व उत्पन्न हो और गाय उस स्वत्व की आश्रय हो। इसलिए गाय कर्म है। उस क्रिया से जन्य परस्वत्व रूप फलसम्बन्धितया चैत्र की इच्छा का विषय ब्राह्मण है क्योंकि चैत्र की इच्छा यही है कि गो में दान क्रिया से उत्पन्न स्वत्व का निरूपकत्व रूप सम्बन्धित्व ब्राह्मण में रहे। इसलिए ब्राह्मण की सम्प्रदानता और गाय की कर्मता होती है।

न चाश्रयत्वमपि सम्बन्धविशेष इति गवादेरपि सम्प्रदानत्वं दुर्वारम्, आश्रयत्वेनाभिप्रायस्थले कर्मसंज्ञाया बाधादन्य एव हि सम्बन्धः सम्प्रदानताघटक इति यद्युच्येत? तदा 'वृक्षायोदकमासिञ्चति' 'पत्ये शेते' इत्यादौ सेकजन्यजलसंयोगशयनजन्यप्रीत्याद्याश्रयतयाभिप्रेतस्य वृक्षपत्यादेः सम्प्रदानतानुपपत्तिरिति वाच्यम्; धात्वर्थतावच्छेदकफलाश्रयत्वभिन्नफलसम्बन्धस्य सम्प्रदानत्वशरीरे निवेशेन सामञ्जस्यात्। 'वृक्षायोदकमासिञ्चति' इत्यादौ द्रवद्रव्यक्रियानुकूलव्यापारो धात्वर्थः, सम्प्रदानतानिर्वाहकसंयोगश्च न तादृशधात्वर्थतावच्छेदक इति तदाश्रयत्वं निरुक्ताश्रयताभिन्नमेवेति तत्प्रकारकाभिप्रायविषयवृक्षादेः सम्प्रदानतानिर्वाहात्।

यहाँ पर कोई कह सकता है कि आश्रयत्व भी तो सम्बन्धविशेष ही है इसलिए गो आदि की भी सम्प्रदानता दुर्वार होगी (क्योंकि आश्रयत्व के भी सम्बन्धविशेष होने के कारण क्रियाजन्यफलाश्रयतया इष्टत्व भी क्रिया जन्यफलसम्बन्धितया इष्टत्व ही है) इस पर यदि इस तरह कहें कि—क्रियाजन्यफलाश्रयत्वेन इष्टत्व के क्रियाजन्यफलसम्बन्धित्वेन इष्टत्व रूप होने पर भी आश्रयत्वेन अभिप्रायस्थल में चूँकि कर्म संज्ञा के द्वारा सम्प्रदान संज्ञा का बाध हो जाता है[1] इसलिए आश्रयत्वातिरिक्तसम्बन्ध ही सम्प्रदानताघटक होते हैं? तो **'वृक्षायोदकमासिञ्चति'** 'वृक्ष को जल सींच रहा है' **'पत्ये शेते'** 'पति के लिए सोती है' इत्यादि स्थलों में सेकजन्य जलसंयोग व शयनजन्य प्रीत्याद्याश्रयतया अभिप्रेत वृक्ष, पति आदि के सम्प्रदानत्व की अनुपपत्ति होगी।

---

1. यह सम्भव भी है क्योंकि 'आकडारादेका संज्ञा' पा० सू०1/4/1 के द्वारा यह निर्धारित किया गया है उक्त सूत्र तक एक ही संज्ञा होगी और दो संज्ञाओं की प्राप्ति होने पर जो निरवकाश या पर होगी वही संज्ञा होगी। यहाँ पर निरवकाश कर्म संज्ञा ही होगी क्योंकि क्रिया जन्यफल सम्बन्धितया इष्ट की सम्प्रदान संज्ञा करें तो क्रिया जन्य फलाश्रयतया इष्ट की भी सम्प्रदान संज्ञा हो जायेगी कर्मसंज्ञा निरवकाश हो जायेगी।

इस **न च** प्रतीक से उठाये गये प्रश्न का भाव यह है कि आश्रयत्व के भी सम्बन्ध विशेष ही होने के कारण जिसमें क्रियाजन्यफलाश्रयतया इष्टत्व रहेगा, उसमें क्रियाजन्य-फलसम्बन्धितया इष्टत्व भी रहेगा । इस कारण जो कर्म है उसकी सम्प्रदानता होगी, यह आपत्ति है। इस आपत्ति का निराकरण यदि यह कहकर देने का प्रयास किया जाये कि कर्मसंज्ञा के द्वारा सम्प्रदान संज्ञा का बाध हो जाता है इसलिए जिसमें क्रियाजन्यफलाश्रयतया इष्टत्व रहेगा उसकी कर्मसंज्ञा ही होगी संप्रदान संज्ञा नहीं। जिसमें क्रियाजन्यफलाश्रयतया इष्टत्व रहेगा उसमें कर्मत्व ही रहेगा सम्प्रदानत्व नहीं। इस प्रकार कर्म की सम्प्रदानता की आपत्ति तो नहीं होगी। किन्तु दूसरी समस्या आयेगी, **'वृक्षायोदकमासिञ्चति'** यहाँ पर सेकक्रियाजन्यजलसंयोगात्मकफलाश्रयत्वेन इष्टत्व ही वृक्ष में है। अतः वृक्ष की कर्मता ही होगी सम्प्रदानता नहीं। इसी प्रकार **'पत्ये शेते'** यहाँ पर शयनक्रियाजन्यप्रीत्यात्मकफलाश्रयत्वेन इष्टत्व ही पति में है, अतः पति की कर्मता ही होगी सम्प्रदानता नहीं। किन्तु इन स्थलों में वृक्ष,पति आदि की सम्प्रदानता ही होती है।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि धात्वर्थतावच्छेदकीभूत फल के आश्रयत्व से भिन्न फलसम्बन्ध का ही सम्प्रदानताशरीर में निवेश कर देने से सामञ्जस्य बन जाता है। इसका आशय यह है कि धात्वर्थतावच्छेदकीभूत फल के आश्रयत्व के अलावा जो क्रिया जन्यफल का सम्बन्ध है वही सम्प्रदानता के शरीर में प्रविष्ट है। **'ब्राह्मणाय गां ददाति'** यहाँ पर धात्वर्थतावच्छेदकीभूतस्वत्वाश्रयत्व रूप फल सम्बन्ध गो में है और स्वत्वाश्रयत्व से अतिरिक्त सम्बन्ध स्वत्वनिरूपकत्व रूप फलसम्बन्ध ब्राह्मण में है । अतः गो की कर्मता और ब्राह्मण की सम्प्रदानता होती है।

'वृक्षायोदकमासिञ्चति' यहाँ पर धातु का अर्थ है 'द्रवद्रव्यक्रियानुकूलव्यापार' सम्प्रदानता निर्वाहक संयोग रूप फल तो यहाँ पर धात्वर्थतावच्छेदक ही नहीं है, अतः सेक क्रियाजन्यजलसंयोगात्मक फल का आश्रयत्व धात्वर्थतावच्छेदकफलाश्रयत्व से भिन्न फलसम्बन्ध ही है। इस कारण तत्प्रकारक अभिप्रायविषय वृक्ष आदि की सम्प्रदानता का निर्वाह हो जाता है।

न च 'पत्ये शेते' इत्यादौ धात्वर्थतावच्छेदकफलाप्रसिद्ध्या तदनुपपत्तिः; भेदप्रतियोगिप्रविष्टे धात्वर्थतावच्छेदके फलत्वानिवेशेन प्रसिद्धिसम्भवात् ।

यदि कहो कि **'पत्ये शेते'** इत्यादि स्थलों में धात्वर्थतावच्छेदकफल की ही अप्रसिद्धि होने के कारण धात्वर्थतावच्छेदकफलाश्रयत्व से भिन्न फलसम्बन्ध भी अप्रसिद्ध होगा इसलिए धात्वर्थतावच्छेदकफलाश्रयत्वभिन्न फलसम्बन्धरूप सम्प्रदानत्व की अनुपपत्ति होगी। तो ऐसा नहीं है क्योंकि भेदप्रतियोगी में धात्वर्थतावच्छेदक में फलत्वानिवेश से प्रसिद्धि सम्भव है। धात्वर्थतावच्छेदकाश्रयत्वभिन्न फल सम्बन्ध को ही सम्प्रदानत्व मानते हैं हम, धात्वर्थतावच्छेदकीभूत फल की अप्रसिद्धि होने पर भी शयनरूप धात्वर्थ और शयनत्व रूप धात्वर्थतावच्छेदक तो प्रसिद्ध ही है। इस कारण शयनक्रियाजन्य प्रीतिरूप

फलाश्रयत्व धात्वर्थतावच्छेदकाश्रयत्व से भिन्न है। प्रीति का आश्रयत्व धात्वर्थतावच्छेदकाश्रयत्व तो है नहीं। इस कारण धात्वर्थतावच्छेदकाश्रयत्व से भिन्न फलसम्बन्ध पति में है और उसकी सम्प्रदानता होती है।

विमर्श- यहाँ पर **धात्वर्थतावच्छेदकफलाश्रयत्वभिन्न फलसम्बन्ध** की सम्प्रदानता की विवक्षा करने पर या **धात्वर्थतावच्छेदकाश्रयत्वभिन्न फलसम्बन्ध** की सम्प्रदानता विवक्षित होने की स्थिति में यह भ्रम हो सकता है कि धात्वर्थतावच्छेदक का भेद फल में अन्वित होता है । ऐसा ही भ्रम आदर्शव्याख्याकार को भी हुआ है, किन्तु यह उचित नहीं है क्योंकि ऐसी स्थिति में अर्थ होगा 'धात्वर्थतावच्छेदक से भिन्न फल का सम्बन्ध ही सम्प्रदानत्व है' तथा इस अर्थ में '**ब्राह्मणाय गां ददाति**' इस स्थल में ब्राह्मण की सम्प्रदानता नहीं हो सकेगी क्योंकि ब्राह्मण में जिस फल (स्वत्व) का निरूपकत्वात्मक सम्बन्ध विवक्षाविषय है, वह स्वत्वात्मक फल धात्वर्थतावच्छेदकीभूत ही है। दा धातु का अर्थ 'स्वस्वत्वध्वंसपूर्वकपरस्वत्वानुकूल त्याग' ही है। इसमें परस्वत्व जो कि धात्वर्थतावच्छेदक है उसका निरूपकत्व रूप सम्बन्ध होने के कारण ही ब्राह्मण की सम्प्रदानता होती है। इसलिए धात्वर्थतावच्छेदकाश्रयत्व का भेद फलसम्बन्ध में अन्वित होता है। इस प्रकार ब्राह्मण की सम्प्रदानता हो जाती है क्योंकि धात्वर्थतावच्छेदक (स्वत्व) का आश्रयत्व रूप फलसम्बन्ध तो गो में है, ब्राह्मण में तो उससे भिन्न ही निरूपकत्व सम्बन्ध है। अतः सम्प्रदानता उपपन्न होती है। क्रियाजन्य फल के धात्वर्थतावच्छेदक से भिन्न होने पर भी धात्वर्थतावच्छेदकफलाश्रयत्व से भिन्न फलसम्बन्ध उपपन्न होता है और धात्वर्थतावच्छेदकाश्रय से फलसम्बन्धी के भिन्न होने पर भी ऐसा फलसम्बन्ध रूप सम्प्रदानत्व उपपन्न होता है।

एवञ्च 'ब्राह्मणाय गां ददाति' इत्यादौ ब्राह्मणनिरूपितत्वेनेच्छाविषयगोनिष्ठस्वत्वजनकत्यागकर्त्तेति बोधः। निरूपितत्वेन कर्तुरिच्छाविषयत्वं द्वितीयान्तार्थगोवृत्तित्वान्वयिधात्वर्थतावच्छेदकस्वत्वान्वयि चतुर्थ्यर्थः, स्वत्वजनकत्यागश्च ददात्यर्थः।

तथा इस प्रकार '**चैत्रः ब्राह्मणाय गां ददाति**' इत्यादिस्थलों में '**ब्राह्मणनिरूपित्वेन इच्छाविषयगोनिष्ठस्वत्वजनकत्यागकर्ता चैत्रः**' 'ब्राह्मणनिरूपितत्वेन इच्छाविषय गोनिष्ठस्वत्वजनकत्यागकर्ता चैत्र' ऐसा शाब्दबोध होता है। यहाँ पर 'निरूपितत्वेन कर्ता की इच्छा का विषयत्व' रूप चतुर्थी का अर्थ द्वितीयान्तार्थ 'गोवृत्तित्व' से अन्वयी धात्वर्थतावच्छेदक स्वत्व से अन्वित होता है। स्वत्वजनकत्याग दा धातु का अर्थ है।

यहाँ पर गदाधर ने वाक्य घटक पदों द्वारा किससे किसकी उपस्थिति होती है यह स्पष्ट करते हुए शाब्दबोधाकार प्रदर्शित किया है। '**ब्राह्मणाय गां ददाति**' घटक पदों को अलग करें तो स्थिति बनती है— ब्राह्मण + चतुर्थी, गो + द्वितीया, दा + आख्यात। यहाँ पर दा धातु से 'स्वत्वजनकत्याग' उपस्थित होता है । चतुर्थी से निरूपितत्वेन कर्ता की इच्छा का विषयत्व उपस्थित होता है। द्वितीया से वृत्तित्व उपस्थित हुआ। आख्यात से कर्ता की उपस्थिति हुई। इस प्रकार **ब्राह्मणाय** से ब्राह्मणनिरूपितत्वेन कर्ता की इच्छा का

विषयत्व, गां से गोवृत्तित्व ददाति से स्वत्वजनकत्यागकर्ता की उपस्थिति हुई। स्वत्व में गोवृत्तित्व का और ब्राह्मणनिरूपितत्वेन इच्छाविषयत्व का (दोनों का ही) अन्वय होता है। इस प्रकार '**ब्राह्मणनिरूपित्वेन इच्छाविषयत्वाश्रयगोवृत्तित्वाश्रयस्वत्वजनक त्यागकर्ता**' ऐसा बोध होता है।

अत्र केचित्– ददातियोगे धात्वर्थतावच्छेदकस्वत्वनिरूपकत्वमेव सम्प्रदानत्वं तदेव मुख्यं तथा च तत्र निरूपितत्वमात्रं चतुर्थ्यर्थो धात्वर्थतावच्छेदक स्वत्वेऽन्वेति, अत एव "श्राद्धस्य पित्रपेक्षया यागत्वमेव दानत्वं तु ब्राह्मणापेक्षया" इति शूलपाणिः। तत्र त्यज्यमानेऽन्ने पितृणां स्वत्वानुत्पत्त्या सम्प्रदानत्वासम्भवात् । स्वत्वभागित्वेनोद्देश्यत्वं यदि सम्प्रदानत्वं स्यात्तदा पितृणामपि तथात्वाक्षतेः पित्रपेक्षयापि दानत्वं स्यात्, नहि श्राद्धे पितृणां स्वत्वभागित्वेन नोद्देश्यत्वम् "पितरेतत्तेऽन्नं स्वधा" इत्यादि श्राद्धरूपत्यागाभिलापस्वधार्थे त्यागे चतुर्थ्याः स्वत्वभागित्वेन पित्रादेरुद्देश्यत्वबोधकत्वात् । स्वत्वभागित्वेनोद्देश्यभूतस्यापि पित्रादेः स्वीकाराभावान्न स्वत्वम्, ब्राह्मणानां तत्रानुद्देश्यत्वेऽपि स्वत्वं प्रतिपत्तितो जायते। अनुद्देश्यत्वेपि च सम्प्रदानत्वमुपपादितमेव। पितृणामिव ब्राह्मणानामपि च स्वत्वभागित्वेनोद्देश्यत्वमप्यविरुद्धम्।

यहाँ पर कुछ और लोग— दा धातु का योग होने पर धात्वर्थतावच्छेदक स्वत्वनिरूपकत्व ही सम्प्रदानत्व है और वही मुख्यसम्प्रदानत्व है, इस प्रकार वहाँ पर निरूपितत्वमात्र ही चतुर्थी का अर्थ है[1] और वह निरूपितत्व धात्वर्थतावच्छेदकीभूतस्वत्व में अन्वित होता है। (इस मत में '**ब्राह्मणाय गां ददाति**' से '**ब्राह्मणनिरूपित गोवृत्तिस्वत्व जनकत्यागकर्ता**' 'ब्राह्मणनिरूपित स्वत्वजनक त्यागकर्ता' ऐसा बोध होता है) इसी कारण '**श्राद्धस्य पित्रपेक्षया यागत्वमेव दानत्वं तु ब्राह्मणापेक्षया**' 'श्राद्ध का पितरों की अपेक्षा से यागत्व ही है और दानत्व तो ब्राह्मणों की अपेक्षा से होता है' ऐसा शूलपाणि का कथन है क्योंकि वहाँ पर (श्राद्ध में) त्यज्यमान अन्न में पितरों के स्वत्व की उत्पत्ति न होने के कारण पितरों का सम्प्रदानत्व असम्भव है। (इसलिए पितरों की अपेक्षा से श्राद्ध का दानत्व नहीं सम्भव है) यदि स्वत्वभागित्वेन उद्देश्यत्व सम्प्रदानत्व हो तो पितरों के भी तथात्व की अक्षति होने के कारण पित्रपेक्षया भी श्राद्ध का दानत्व हो जाता। श्राद्ध में पितरों का स्वत्वभागितया उद्देश्यत्व नहीं है ऐसा नहीं अर्थात् पितरों का भी श्राद्ध में स्वत्वभागितया उद्देश्यत्व होता ही है। क्योंकि '**पितः एतत्तेन्नं स्वधा**' 'पितरा यह तुम्हारे लिए अन्न है स्वधा' इत्यादि श्राद्धरूपत्यागाभिलापस्वधा के अर्थ में त्याग में चतुर्थी का स्वत्वभागित्वेन पित्रादि का उद्देश्यत्वबोधकत्व है। स्वत्वभागित्वेन उद्देश्यभूत भी पितर आदि के द्वारा स्वीकाराभाव होने के कारण पितर आदि का स्वत्व नहीं उत्पन्न होता है। तथा ब्राह्मणों का

1. जगदीशतर्कालङ्कार भी निरूपितत्व मात्र को चतुर्थी का अर्थ मानते हैं। शब्दशक्तिप्रकाशिका में कहा है कि 'ब्राह्मणाय दानं धनस्य' इत्यादौ.....स्वत्वे ब्राह्मणादेः प्रतियोगित्वं निरूपितत्वं वा चतुर्थ्या बोध्यते इति तदेव सम्प्रदानत्वम्' पृ. 306

उसमें उद्देश्यत्व न होने पर भी ब्राह्मणों के द्वारा प्रतिपत्ति (स्वीकृति) होने के कारण ब्राह्मण आदि का स्वत्व उत्पन्न हो जाता है। अनुद्देश्य होने पर भी सम्प्रदानत्व उपपादित ही है। पितरों की तरह ब्रह्मणों का भी स्वत्वभागित्वेन उद्देश्यत्व भी अविरुद्ध है।

अत्र केचित् के द्वारा जो मत उठाया जा रहा है, उसके द्वारा पूर्वोपस्थापित सिद्धान्त पर आपत्ति उठायी जा रही है। पूर्वोपस्थापित सिद्धान्त है कि क्रियाजन्य फलभागितया कर्ता की इच्छा का विषयत्वरूप ही सम्प्रदानत्व है। दा धातु का योग होने की स्थिति में दानजन्यस्वत्वभागत्वेन उद्देश्यत्व रूप स्वत्वभागितया कर्ता की इच्छा का विषयत्व ही सम्प्रदानत्व है। श्राद्ध पितरों की अपेक्षा से याग है और ब्राह्मणों की अपेक्षा से दान है। इसलिए पितरों का मुख्य सम्प्रदानत्व नहीं होना चाचहिए, ब्राह्मणों का ही मुख्य सम्प्रदानत्व होना चाहिए। किन्तु स्वत्वभागित्वेन उद्देश्यत्व तो पितरों में है ही। अतः पितरों का भी मुख्य सम्प्रदानत्व होने लगेगा। **'पितः! एतत्तेन्नं स्वधा'** के द्वारा पितरों का भी स्वत्वभागित्वेन उद्देश्यत्व बोधित होता है। इसके अतिरिक्त दूसरा दोष यह है कि स्वत्वभागित्वेन उद्देश्यत्व तो ब्राह्मण में नहीं है। अतः उसकी सम्प्रदानता नहीं होगी इसलिए स्वत्वभागित्वेन उद्देश्यत्व को सम्प्रदानत्व व चतुर्थी का अर्थ मानना उचित नहीं है। किन्तु धात्वर्थतावच्छेदकस्वत्वनिरूपकत्व ही सम्प्रदानत्व है और निरूपितत्व मात्र चतुर्थी का अर्थ है। यह स्वीकारना ही उचित है। चूँकि पितरों के द्वारा स्वीकार न करने के कारण पितरों का स्वत्व उस अन्न में नहीं उत्पन्न होता है। इसलिए अन्ननिष्ठस्वत्व (जो कि धात्वर्थतावच्छेदक है) का निरूपकत्व पितरों में नहीं जाता है। इसलिए पितरों का धात्वर्थतावच्छेदक स्वत्वनिरूपकत्व रूप सम्प्रदानत्व उपपन्न नहीं होता है। ब्राह्मणों का यद्यपि स्वत्वभागित्वेन उद्देश्यत्व नहीं है। तथापि ब्रह्मणों के द्वारा उस अन्न का स्वीकरण होने के कारण ब्राह्मणों का स्वत्व उस अन्य में उत्पन्न हो जाता है। इसलिए धात्वर्थतावच्छेदकीभूतस्वत्वनिरूपकत्व रूप सम्प्रदानत्व ब्राह्मणों का उपपन्न होता है। श्राद्ध में पितरों के उद्देश्य से त्यक्त धन ब्राह्मण को दे दिया जाता है। इसलिए ब्राह्मण का स्वत्वभागित्वेन उद्देश्यत्व तो नहीं है । किन्तु ब्राह्मण के द्वारा उस अन्न का स्वीकार होने के कारण ब्राह्मण का स्वत्व उत्पन्न हो जाता है और उस स्वत्व का निरूपकत्व ब्राह्मण में होने के कारण ब्राह्मण की सम्प्रदानता बन जाती है। यदि ब्राह्मण में भी स्वत्वभागित्वेन उद्देश्यत्व हो तो भी कोई अन्तर नहीं पड़ता है क्योंकि ब्राह्मण का सम्प्रदानत्व होता है और पितरों का नहीं। जबकि दोनों में ही स्वत्वभागित्वेन उद्देश्यत्व विद्यमान है। इसके लिए आपके कारण बताना होगा । वह तभी हो सकता है, यदि स्वत्वभागित्वेन उद्देश्यत्व को सम्प्रदानत्व न मानकर धात्वर्थतावच्छेदकस्वत्वनिरूपकत्व को ही सम्प्रदानत्व माना जाये। इस प्रकार निरूपकत्व ही सम्प्रदानत्व है, ब्राह्मण में उसके रहने के कारण ब्राह्मण की सम्प्रदानता होती है और पितरों में न रहने के कारण पितरों की सम्प्रदानता नहीं होती है।

धात्वर्थतानच्छेदकफलभागितया यत्र सम्प्रदानत्वं 'वृक्षायोदकं सिञ्चति' 'पत्ये शेते' उत्यादौ तत्रोद्देश्यत्वांशनिवेश आवश्यकः—यत्रान्योद्देशेन क्षिप्तजलस्य दैवाद् वृक्षसंयोगोऽन्योद्देशेन शयनादितश्च पत्यादेः फलसम्बन्ध-

स्तत्र तथाप्रयोगविरहात् । अत एव तत्र चतुर्थ्यर्थः स्वनिष्ठतया कर्त्रभिप्रेततत्फलं प्रति जनकत्वं तच्च सेकादिक्रियायामन्वेति, भाक्तं च तत्र सम्प्रदानत्वम्- उद्देश्यत्वागर्भसम्प्रदानत्व एव लाघवाच्छक्तेः, इतरत्र लक्षणाया अभ्युपगमात् । 'पितृभ्यो दद्यात्' इत्यादावनिर्धारितकर्तृकसम्प्रदाने चतुर्थी तत्त्वं च तत्र त्यागजन्यस्वत्वभागितयोद्देश्यत्वमेव।

धात्वर्थतानवच्छेदकफलभागितया जहाँ पर सम्प्रदानत्व होता है जैसे **'वृक्षायोदकं सिञ्चति' 'पत्ये शेते'** इत्यादिस्थलों में; वहाँ पर सम्प्रदानत्व में उद्देश्यत्वांशनिवेश आवश्यक है क्योंकि जहाँ पर अन्योद्देशेन क्षिप्त जल का दैववशात् वृक्षसंयोग होता है अन्य उद्देश्य से किये गये शयन आदि के द्वारा पति आदि को फ़लसम्बन्ध होता है, वहाँ पर वैसा प्रयोग नहीं होता है। इसीलिए वहाँ पर चतुर्थी का अर्थ स्वनिष्ठतया कर्त्रभिप्रेततत्फल के प्रति जनकत्व है और वह सेक आदि क्रिया में अन्वित होता है। उक्तस्थलों में सम्प्रदानत्व भाक्त = लाक्षणिक है। क्योंकि उद्देश्यत्वागर्भ सम्प्रदानत्व में ही लाघवात् चतुर्थी की शक्ति स्वीकारी जाती है और अन्यत्र लक्षणा का ही अभ्युपगम किया जाता है। **'पितृभ्यो दद्यात्'** इत्यादि स्थलों में अनिर्धारितकर्तृक सम्प्रदान में चतुर्थी है और वहाँ पर सम्प्रदानत्व त्यागजन्यस्वत्वभागितया उद्देश्यत्व ही है।

'अत्र केचित्' प्रतीक से उपस्थापित मत में मुख्य सम्प्रदानत्व 'धात्वर्थतावच्छेदक-स्वत्वनिरूपकत्व' है। इस प्रकार **'वृक्षायोदकं सिञ्चति' 'पत्ये शेते'** इत्यादि स्थलों में वृक्ष पति आदि में धात्वर्थतावच्छेदकस्वत्व निरूपकत्व तो है ही नहीं। इसलिए वृक्ष, पति आदि का सम्प्रदानत्व कैसे होगा? इसके उत्तर में समाधान दिया जा रहा है कि यहाँ पर सम्प्रदानत्व भाक्त है। धात्वर्थतावच्छेदकस्वत्वनिरूपकत्वात्मक सम्प्रदानत्व यहाँ पर नहीं है अपितु 'क्रियाजन्यफलशालित्वेन इच्छाविषयत्व' रूप उद्देश्यत्वगर्भ सम्प्रदानत्व यहाँ पर है। यहाँ पर धात्वर्थतानवच्छेदकीभूत फल (जलसंयोग, प्रीति आदि) का आश्रयतया इच्छा विषयत्व वृक्ष, पति आदि में है। अतः उनका भाक्त सम्प्रदानत्व होता है। जहाँ पर जलसंयोग, प्रीत्यादिशालित्वेन वृक्ष, पति आदि का इच्छाविषयत्व नहीं है, किन्तु अन्योद्देशेन क्षिप्त जल का दैववशात् वृक्षसंयोग हो रहा है या अन्योद्देशेन शयन से दैववशात् पति को प्रीति हो रही है। वहाँ पर इसी कारण वृक्ष पति आदि की सम्प्रदानता नहीं होती है और **'वृक्षायोदकं सिञ्चति' 'पत्ये शेते'** आदि प्रयोग नहीं होते हैं।

क्रियाजन्यफलशालित्वेन इच्छाविषयत्व रूप सम्प्रदानत्व लाक्षणिक है और क्रिया जन्य (धात्वर्थतावच्छेदक) फल (स्वत्व) निरूपकत्व शाक्त है। इसमें विनिगमना यही है कि क्रियाजन्यफलशालित्वेन इच्छाविषयत्व में सम्प्रदानचतुर्थी की शक्ति स्वीकारने की अपेक्षा धात्वर्थतावच्छेदकफलनिरूपकत्व में शक्ति कल्पना करने में लाघव है। इच्छाघटित होने के कारण इतर में शक्ति स्वीकारने में गौरव है।

इसी प्रकार **'पितृभ्यो दद्यात्'** 'पितरों को देना चाहिए' इत्यादिस्थलों में अनिर्धारितकर्तृक

सम्प्रदान में चतुर्थी है यह भी लाक्षणिक ही सम्प्रदानत्व है और यह सम्प्रदानत्व 'त्यागजन्य स्वत्व भागितया उद्देश्यत्व' ही है।

अथ यत्र जनान्तरस्य वृक्षादिनिष्ठजलसंयोगादिरिच्छाविषयोऽन्येन च जनेनान्योद्देशेन क्षिप्तजलादेर्वृक्षादिसंयोगस्तत्रापि 'वृक्षायोदकमासिञ्चति जनः' इत्यादिप्रयोगापत्तिः– तत्तद्व्यक्तित्वस्य पदेनानुपस्थानात् तेन रूपेण विशेष्यभूतकर्तृव्यक्तीनामिच्छांशे भानासम्भवादुपस्थितजनत्वावच्छिन्नेच्छा विषयत्वस्य च वृक्षसंयोगादावबाधात्। एवं तदीयकालान्तरीणेच्छामादायाप्यति प्रसङ्गतादवस्थ्यमिति चेत् ? न, वृक्षादिनिष्ठत्वेनेच्छैव हि चतुर्थ्यन्तार्थस्तस्याश्च स्वविषयसंयोगादिजनकत्वस्वजन्यत्वोभयसम्बन्धेन सेकक्रियायामन्वयः, उक्तस्थले च यत्क्रियाव्यक्त्या जलसंयोगादिर्वृक्षादौ जन्यते तत्र कालान्तरीण पुरुषान्तरीणेच्छायाः स्वविषयसंयोगादिजनकत्वसम्बन्धसत्त्वेऽपि स्वजन्यत्वा-भावान्नोभयसम्बन्धेनेच्छावैशिष्ट्यमित्ययोग्यतैवेति वदन्ति।

यदि कोई कहे कि जहाँ पर जनान्तर की इच्छा का विषय वृक्षादिनिष्ठजल संयोगादि हैं और अन्य जन के द्वारा अन्य उद्देश से फेंके गये जल आदि का वृक्षादिसंयोग है वहाँ पर भी **'वृक्षायोदकमासिञ्चति जनः'** ईत्यादि प्रयोग की आपत्ति है क्योंकि तत्तद्व्यक्तित्व का पद से उपस्थान न होने के कारण उस रूप से (तत्तद्व्यक्तित्वेन रूपेण) विशेष्य भूत कर्तृव्यक्तियों का इच्छा अंश में भाने असम्भव होने से उपस्थित जनत्वावच्छिन्नेच्छा विषयत्व का वृक्षसंयोगादि में बाध नहीं है। इसी प्रकार तदीय कालान्तरीण इच्छा को लेकर भी अतिप्रसङ्ग का तादवस्थ्य है।

इस आक्षेप का अभिप्राय यह है कि **'वृक्षायोदकमासिञ्चति जनः'** इस स्थल पर शाब्दबोध कैसा अपेक्षित है? यहाँ पर आपके कथनानुसार वृक्ष का सम्प्रदानत्व जनत्वावच्छिन्न इच्छा विषयत्व रूप ही है। तथा इस प्रकार का वृक्ष का सम्प्रदानत्व उस स्थिति में भी है ही जबकि जनान्तर की इच्छा का विषय वृक्षादिनिष्ठ जलसंयोगादि है और अन्यजन के द्वारा क्षिप्त जल का वृक्ष के साथ संयोग हो रहा है। क्योंकि तत्तद्व्यक्तित्वेन जन की पद से उपस्थिति तो होती नहीं है, इस कारण तत्तद्व्यक्तित्वेन रूपेण कर्तृव्यक्तियों का इच्छा अंश में भान असम्भव है और उपस्थित जनत्वावच्छिन्न इच्छाविषयत्व तो वृक्षसंयोग आदि में है ही। तो जब ऐसी स्थिति में भी वृक्ष का भवदुक्त सम्प्रदानत्व बोधित किया जा सकता है तो तादृशसम्प्रदानत्वबोधनाभिप्राय से **'वृक्षायोदकमासिञ्चति जनः'** ऐसा प्रयोग होना ही चाहिए। इसी प्रकार जिस व्यक्ति के द्वारा क्षिप्त जल का वृक्षसंयोग हो रहा है उसी व्यक्ति की कालान्तरीण इच्छा का विषयत्व भी वृक्षसंयोग में है ही, अतः उस स्थिति में भी **'वृक्षायोदकमासिञ्चति जनः'** ऐसे प्रयोग की आपत्ति है।

तो ऐसा नहीं है क्योंकि वृक्षादिनिष्ठत्वेन इच्छा ही चतुर्थ्यन्त का अर्थ है और उसका स्वविषयसंयोगादिजनकत्व स्वजन्यत्व उभयसम्बन्ध से सेकक्रिया में अन्वय होता है। उक्त स्थल में जिस क्रिया व्यक्ति से वृक्षादि में जलसंयोगादि उत्पन्न होते हैं, उस क्रिया में

कालान्तरीण पुरुषान्तरीण इच्छा का स्वविषयसंयोगादिजनकत्व सम्बन्ध रहने पर भी स्वजन्यत्वाभाव होने के कारण उक्त उभय सम्बन्ध से वैशिष्ट्य नहीं ही है अतः अयोग्यता ही है, ऐसा कहते हैं।

उपर्युक्त आक्षेप का यह समाधान दिया जा रहा है कि उक्त स्थल में चतुर्थी का अर्थ इच्छा ही है, वृक्षादिनिष्ठत्वेन इच्छा ही है। इच्छा वृक्ष में विषयतासम्बन्ध से वृत्ति है। इस प्रकार चतुर्थ्यन्त **वृक्षाय** से वृक्षनिष्ठ इच्छा की उपस्थिति होती है और चतुर्थ्यन्तार्थ वृक्षनिष्ठेच्छा का सेकादिक्रिया में स्वविषयसंयोगादिजनकत्व स्वजन्यत्व उभय सम्बन्ध से अन्वय होता है। इस कारण जहाँ पर जिस व्यक्ति की जल के वृक्षादिसंयोग की इच्छा हैं और व्यक्ति के द्वारा फेंके गये जल का वृक्ष के साथ संयोग हो रहा है वहीं पर **'वृक्षायोदकमासिञ्चति जनः'** प्रयोग होता है। क्योंकि वृक्षनिष्ठेच्छा (चतुर्थ्यन्तार्थ) का उक्त उभय सम्बन्ध से सेकक्रिया में वैशिष्ट्य विद्यमान है। स्व माने वृक्षनिष्ठेच्छा, उसका विषय जो वृक्षसंयोग, तज्जनकत्व सेकक्रिया में है और सेकक्रिया में उक्त वृक्षनिष्ठेच्छा से जन्यत्व भी है। इसलिए वहाँ पर ऐसा प्रयोग होता है। किन्तु जहाँ पर वृक्षसंयोगेच्छा कालान्तरीण या पुरुषान्तरीण है। वहाँ पर ऐसा प्रयोग नहीं होता है क्योंकि उक्त दोनों ही स्थितियों में विषयतासम्बन्ध से वृक्षनिष्ठ इच्छा का उक्तोभय सम्बन्ध से वैशिष्ट्य सेकक्रिया में नहीं है, प्रथम सम्बन्ध से इच्छा का वैशिष्ट्य है क्योंकि स्व (वृक्षनिष्ठेच्छा) विषय संयोग (वृक्षसंयोग) जनकत्व तो सेक क्रिया में है। किन्तु द्वितीय सम्बन्ध से इच्छा का वैशिष्ट्य सेकक्रिया में नहीं है क्योंकि इच्छा से जन्य सेकक्रिया नहीं है। पुरुषान्तरीण, कालान्तरीण इच्छा से जन्यत्व सेकक्रिया में नहीं होने से उक्तोभय सम्बन्ध से सेकक्रिया इच्छा से विशिष्ट नहीं होती है। इस प्रकार यदि पुरुषान्तरीण, कालान्तरीण इच्छा के आधार पर **'वृक्षायोदकमासिञ्चति जनः'** प्रयोग किया जाये तो शाब्दबोध से वृक्षनिष्ठेच्छा का उक्तोभय सम्बन्ध से सेकक्रिया में वैशिष्ट्य बोधित होगा जो कि बाधित है। अतः योग्यता न होने के कारण शाब्दबोध असम्भव है।

यहाँ पर विगत पृष्ठों में **अत्र केचित्** प्रतीक से जिनका मत उठाया था उसका प्रतिपादन इति वदन्ति से किया । अब **अत्रेदं बोध्यम्** प्रतीक से इस मत को दूषित करेंगे। इस मत का मुख्य प्रतिपादन है कि दानार्थक धातु का योग होने पर धात्वर्थतावच्छेदक-स्वत्वनिरूपकत्व ही मुख्य सम्प्रदानत्व है और निरूपितत्व मात्र चतुर्थी का अर्थ है **'वृक्षायोदकमासिञ्चति जनः'** इत्यादिस्थलों में गौण सम्प्रदानत्व है।

अत्रेदं बोध्यम्–उद्देश्यत्वागर्भस्यैव त्यागजन्यस्वत्वभागित्वस्य ददातिसम्प्रदानतारूपत्वे चैत्रमात्रोद्देशेन यद्दत्तं तत्र तादृशदानेन "दम्पत्योर्मध्यगं धनम्" इत्यतस्तत्पत्न्या अपि स्वत्वस्य प्रामाणिकतया सम्प्रदानत्वेन 'चैत्र पत्न्यै दत्तम्' इति व्यवहारापत्तेः।

यहाँ पर यह समझ लेना चाहिए—उद्देश्यत्वाघटित त्यागजन्यस्वत्वभागित्व की दा

धातु की सम्प्रदानतारूप होने पर चैत्रमात्रोद्देशेन जो दिया गया वहाँ पर वैसे दान से **'दम्पत्योर्मध्यगं धनम्'** 'धन दम्पति के मध्य गत होता है = धन पर पति पत्नी का समान अधिकार होता है' इस प्रमाण से चैत्रपत्नी का स्वत्व भी प्रामाणिक होने के कारण चैत्र पत्नी की भी सम्प्रदानता होने के कारण **'चैत्रपत्न्यै दत्तम्'** 'चैत्रपत्नी को दिया' ऐसा व्यवहार होने लगेगा।

अभी **अत्र केचित्** से लेकर **इति वदन्ति** तक से जो मत प्रतिपादित किया गया उसको गदाधर खण्डित कर रहे हैं कि दानार्थक धातु का योग होने पर यदि धात्वर्थतावच्छेदकीभूतस्वत्वनिरूपकत्व ही मुख्य सम्प्रदानत्व है और निरूपितत्व मात्र ही चतुर्थी का अर्थ हो, तो यदि किसी ने दिया तो चैत्र को है चैत्र पत्नी को नहीं, वहाँ पर भी **'चैत्रपत्न्यै दत्तम्'** प्रयोग होना चाहिए। क्योंकि धन पर पतिपत्नी दोनों का ही स्वत्व हुआ करता है। इसलिए चैत्र को दान दिया गया हो तो जैसे दान दी गयी वस्तुनिष्ठस्वत्व का निरूपकत्व चैत्र में है, वैसे ही चैत्रपत्नी में भी है क्योंकि उक्त वस्तु का स्वामित्व तो पतिपत्नी दोनों (चैत्र व चैत्रपत्नी दोनों) का है। इस प्रकार धात्वर्थतावच्छेदकीभूत स्वत्वनिरूपकत्वात्मक सम्प्रदानत्व चैत्र और चैत्रपत्नी दोनों में ही विद्यमान है। तथा इस कारण **'चैत्राय दत्तम्'** 'चैत्र को दिया' प्रयोग जैसे होता है वैसे ही **'चैत्रपत्न्यै दत्तम्'** प्रयोग भी होना चाहिए। धात्वर्थतावच्छेदकीभूतस्वत्व में चैत्रपत्नीनिरूपितत्व का बाध तो है नहीं कि यह प्रयोग असाधु हो। इसलिए दानार्थक धातु का योग होने पर धात्वर्थतावच्छेदकीभूतस्वत्वनिरूपकत्व सम्प्रदानत्व नहीं है। अपितु जैसा पूर्व में बताया गया है उसके अनुरूप फलसम्बन्धितया इष्टत्व ही सम्प्रदानत्व है।

न च पत्युः स्वत्वमेव पत्नीस्वत्वं जनयति न तु तत्सामग्रीति वाच्यम्; स्वत्ववति स्वत्वान्तरानुत्पत्तेः, तथा च सर्वत्रैवोद्देश्यत्वान्तर्भावः। भवतु च 'पितृभ्यो दद्यात्' इत्यत्रापि मुख्यमेव सम्प्रदानत्वं चतुर्थ्यर्थः।

यदि कहो कि पति का स्वत्व ही पत्नी का स्वत्व उत्पन्न करता है, पतिस्वत्वोत्पादक सामग्री नहीं अर्थात् चूँकि दान से पति का ही स्वत्व उत्पन्न होता है पत्नी का नहीं इसलिए धात्वर्थतावच्छेदकीभूतस्वत्वनिरूपकत्व रूप सम्प्रदानत्व पति चैत्र का ही होता है चैत्र पत्नी का नहीं। फलतः **'चैत्रपत्न्यै दत्तम्'** प्रयोग की आपत्ति नहीं होती है। पत्नी का स्वत्व तो पतिस्वत्व से उत्पन्न होता है।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि स्वत्ववत् वस्तु में दूसरा स्वत्व नहीं उत्पन्न होता है । अभिप्राय यह है कि एक ही वस्तु में दो स्वत्वों की उत्पत्ति नहीं हो सकती है, बग़ैर पूर्वस्वत्व का नाश हुए। इसकारण पतिस्वत्व से पत्नी का स्वत्वान्तर नहीं उत्पन्न होता है। एक ही स्वत्व होता है जिसके कि पति और पत्नी दोनों निरूपक होते हैं। इस प्रकार सर्वत्र ही दानार्थक धातुप्रयोगस्थल में और दानार्थक से अतिरिक्तस्थल में उद्देश्यत्व का सम्प्रदानत्व के शरीर में अन्तर्भाव होता है। मुख्यसम्प्रदानत्व और भाक्त सम्प्रदानत्व दोनों ही सम्प्रदानत्वों में उद्देश्यत्व का अन्तर्भाव तो होता ही है।

यदि कहो कि इस प्रकार का उद्देश्यत्वगर्भ सम्प्रदानत्व तो 'पितृभ्यो दद्यात्' इत्यादि स्थलों में पितरों का भी है, तो ठीक है, पितृभ्यो दद्यात् इत्यादि स्थलों में भी मुख्यसम्प्रदानत्व ही चतुर्थी का अर्थ होवे[1]।

अस्तु वा स्वस्वत्वेच्छाधीनतत्कत्वमेव मुख्यं दानक्रियासम्प्रदानत्वं पितृस्वत्वाप्रसिद्ध्या न तेषां सम्प्रदात्वम् । चतुर्थ्यर्थो धात्वर्थतावच्छेदक-स्वत्वान्वयि निरूपितत्वम् । स्वत्वस्य च स्वस्वत्वध्वंसेच्छारूपे त्यागे स्वजनकत्वस्वेच्छाधीनत्वोभयं सम्बन्धः। तल्लाभश्च विशिष्टस्य धातुशक्यता मते शक्तित एव तदन्तर्भावेनैव शक्त्युपगमात् । फलव्यापारयोः पृथग् धात्वर्थतामत आकाङ्क्षाबलादेव तादृशसम्बन्धलाभः। 'पितृभ्यो दद्यात्' इत्यत्र च धात्वर्थान्तर्गतस्वत्वे चतुर्थ्या पित्राद्यन्वयी निरूपितत्वरूपो मुख्योऽर्थो बाधितत्वान्न प्रत्याय्यते, अपितु निरूपितत्वेनेच्छाविषयत्वरूपो लक्ष्यार्थ एव, ददातिस्तु तत्र मुख्य एव-श्राद्धस्यापि ब्राह्मणापेक्षया दानत्वात्। "श्राद्धे ब्राह्मणस्य सम्प्रदानतानिर्वाहायास्ति चोद्देश्यतापि ब्राह्मणस्य" इत्यादिकम-भिदधानस्य शूलपाणेरपि सम्प्रदानत्वशरीर उद्देश्यत्वांशापरित्यागे निर्भरोऽव-गम्यते "कर्मणा यमभिप्रैति" इति प्रणयतो महर्षेः पाणिनेरपि सम्मतोऽय मर्थः।

अथवा स्वस्वत्वेच्छाधीन स्वत्व निरूपकत्व ही मुख्य दानक्रियासम्प्रदानत्व है। पितृस्वत्व की अप्रसिद्धि होने के कारण पितरों का सम्प्रदानत्व नहीं होता है (मुख्य सम्प्रदानत्व नहीं होता है) चतुर्थी का अर्थ निरूपितत्व है जो कि धात्वर्थतावच्छेदकीभूत स्वत्व से अन्वित होता है। स्वत्व का स्वस्वत्वध्वंसेच्छा रूप त्याग में स्वजनकत्व और स्वेच्छाधीनत्व उभय सम्बन्ध हैं। उक्त दोनों सम्बन्धों का लाभ विशिष्ट की धातुशक्यतामत में शक्ति से ही होता है क्योंकि उक्तोभय सम्बन्धान्तर्भाव से ही शक्ति का उपगम है। फल और व्यापार में धातु की पृथक् शक्ति स्वीकारने के मत में आकाङ्क्षा के बल से ही उभय सम्बन्ध का लाभ होता है। (इस पक्ष में उक्तोभय सम्बन्ध आकाङ्क्षाभास्य होते हैं) **'पितृभ्यो दद्यात्'** यहाँ पर तो धात्वर्थान्तर्गत स्वत्व में चतुर्थी का पितृ में अन्वयी निरूपित्व रूप अर्थ बाधित होने के कारण नहीं प्रत्याय्यित होता है अपितु निरूपितत्वेन इच्छाविषयत्व रूप लक्ष्यार्थ ही प्रत्याय्यित होता है। दाधातु तो वहाँ मुख्यार्थक ही है क्योंकि श्राद्ध का भी ब्राह्मण की अपेक्षा दानत्व ही है। **'श्राद्धे ब्राह्मणस्य सम्प्रदानतानिर्वाहायास्ति चोद्देश्यतापि ब्राह्मणस्य'** 'श्राद्ध में ब्राह्मण की सम्प्रदानता का निर्वाह करने के लिए ब्राह्मण की उद्देश्यता भी है' इत्यादि कहने वाले शूलपाणि का भी उद्देश्यत्वांश का सम्प्रदानताशरीर में परित्याग न करने में निर्भर अवगत होता है। **'कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्'** पा॰ सू॰ 1/4/32 का प्रणयन करने वाले पाणिनि का भी सम्मत यह अर्थ है।

---

1. इस कल्प में श्राद्ध का पितरों की अपेक्षा भी दानत्व होगा और ब्राह्मणों की अपेक्षा भी दानत्व होगा क्योंकि पित्रोद्देश्यक त्याग है ही और ब्राह्मणोद्देश्यक भी त्याग है। इस प्रकार शूलपाणि के कथन 'श्राद्धस्य पित्रपेक्षया यागत्वमेव दानत्वं तु ब्राह्मणापेक्षया' से विरोध होगा। सम्भवतः गदाधर इसीलिए 'अस्तु वा' प्रतीक से पक्षान्तर को सिद्धान्तित कर रहे हैं।

यहाँ पर गदाधर सम्प्रदानत्व का नया अर्थ बता रहे हैं। सम्प्रदानत्व का अर्थ है स्वस्वत्वेच्छाधीनस्वत्वनिरूपकत्व । यहाँ पर स्व पद से कर्ता को लेना है और उसका इच्छा में अन्वय करना है। जैसे '**चैत्रः ब्राह्मणाय धनं ददाति**' यहाँ पर चैत्र की जो स्वत्वेच्छा = ब्राह्मणस्वत्वेच्छा '**ब्राह्मणस्वत्वं जायताम्**' 'ब्राह्मणस्वत्व उत्पन्न होवे' ऐसी इच्छा, इस इच्छा के अधीन धननिष्ठ स्वत्व का निरूपकत्व ब्राह्मण में है, यही ब्राह्मण की सम्प्रदानता है। '**पितृभ्यो दद्यात्**' यहाँ पर कर्ता की जो पितृस्वत्वेच्छा उसके अधीन स्वत्व अप्रसिद्ध है क्योंकि पितरों के द्वारा स्वीकार न होने से पितरों का स्वत्व नहीं उत्पन्न होता है। इस प्रकार कर्ता की पितृस्वत्वेच्छा के अधीन स्वत्व का निरूपकत्व पितरों में न होने के कारण पितरों की सम्प्रदानता नहीं होती है।

चतुर्थी का अर्थ इस मत में निरूपितत्व मात्र है तथा वह धात्वर्थतावच्छेदकीभूत स्वत्व में अन्वित होता है। यहाँ पर प्रसङ्गतः दा धातु का अर्थ बता रहे हैं कि दाधातु का अर्थ स्वत्वविशिष्ट स्वस्वत्वध्वंसेच्छा है। स्वत्व से इच्छा को स्वजनकत्व और स्वेच्छाधीनत्व उभय सम्बन्ध से विशिष्ट बनाना है। इसमें इन दोनों सम्बन्धों के भान के विषय में दो मत है। जो फल विशिष्ट व्यापार में धातु की शक्ति मानते हैं, उनके अनुसार उक्तोभयसम्बन्धों का शक्ति से भान होगा, इस प्रकार उनका प्रकारतया भान होगा। जो फल और व्यापार में धातु की पृथक् शक्ति मानते हैं, उनके अनुसार उक्तोभयसम्बन्ध का संसर्ग विधया भान होगा। उक्तोभयसम्बन्ध में संसर्गताख्याविषयता आयेगी। आकाङ्क्षावशात् (संसर्गमर्यादा से) उक्तोभय सम्बन्ध का भान होगा। इस प्रकार '**चैत्रः ब्राह्मणाय धनं ददाति**' से '**ब्राह्मणनिरूपितधननिष्ठस्वत्वविशिष्टस्वस्वत्वध्वंसेच्छाश्रयश्चैत्रः**' 'ब्राह्मणनिरूपित धननिष्ठ स्वस्वत्वध्वं से विशिष्ट स्वस्वत्वध्वंसेच्छा का आश्रय चैत्र है' ऐसा शाब्दबोध होगा। वैशिष्ट्य अंश का संसर्गतया भान स्वीकारने पर उक्त अंश में संसर्गताख्या और शक्ति के आधार पर भान स्वीकारने पर उक्त अंश में प्रकारताख्या विषयता आयेगी। '**पितृभ्यो दद्यात्**' यहाँ पर चूँकि पितरों का स्वत्व उत्पन्न नहीं होता है, इस कारण दी गयी वस्तु में विद्यमान स्वत्व में पितृनिरूपितत्वरूप चतुर्थ्यन्तार्थ का अन्वय बाधित है। इसलिए चतुर्थी की स्वनिरूपित्वेन इच्छाविषयत्व में लक्षणा हो जाती है तथा स्वस्वत्वध्वंसेच्छा रूप त्याग में पितृनिरूपितत्व का अन्वय न होकर पितृनिरूपितत्वेन इच्छाविषयत्व का अन्वय होकर शाब्दबोध होता है। इस प्रकार यहाँ पर '**पितृनिरूपितत्वेनेच्छाविषयस्वत्वविशिष्ट स्वस्वत्वध्वंसेच्छा इष्टसाधनम्**' 'पितृनिरूपितत्वेन इच्छाविषय स्वत्वविशिष्टस्वस्वत्ध्वध्वंसेच्छा इष्ट साधन है' ऐसा शाब्दबोध होता हैं । दा धातु लाक्षणिक नहीं है क्योंकि दा धातु से स्वत्व विशिष्ट स्वस्वत्वध्वंसेच्छा रूप अर्थ ही बोधित हो रहा है। धात्वर्थतावच्छेदकीभूत स्वत्व में ब्राह्मणनिरूपितत्व तो अन्वित होता ही है। श्राद्ध भी ब्राह्मण की अपेक्षा दान ही है। उपर्युक्त रीति से सम्प्रदानत्व के शरीर में इच्छा का प्रवेश करना ही पड़ रहा है क्योंकि केवल स्वत्वनिरूपकत्व सम्प्रदानत्व नहीं है अपितु कर्ता की स्वत्वेच्छा (ब्राह्मणादिस्वत्वेच्छा) के अधीन स्वत्व का निरूपकत्व सम्प्रदानत्व है। इसमें शूलपाणि और पाणिनि की भी सम्मति है क्योंकि शूलपाणि ने कहा है कि 'श्राद्ध में ब्राह्मण की सम्प्रदानता का निर्वाह करने

के लिए ब्राह्मण की उद्देश्यता भी है' यदि केवल स्वत्वनिरूपकत्व ही सम्प्रदानत्व होता तो ब्राह्मण की उद्देश्यता न होने पर भी सम्प्रदानता हो सकती थी। पाणिनि ने भी '**कर्मणा यमभिप्रैति**' सूत्र के प्रणयन से यही अर्थ सम्प्रदानता का बताया है।

'शत्रवे भयं ददाति' इत्यादौ जनयतीति भाक्तोऽर्थः, एवञ्चोत्पादक व्यापाररूपे धात्वर्थे भयरूपं कर्म तद्योगितयोद्देश्यत्वाच्छत्र्वादेः सम्प्रदानत्वम्।

'शत्रवे भयं ददाति' 'शत्रु को भय दे रहा है' इत्यादि स्थलों में '**ददाति**' का भाक्त लाक्षणिक अर्थ '**जनयति**' उत्पन्न करना है। इस प्रकार उत्पादक व्यापार रूप धात्वर्थ में भय कर्म है क्योंकि भय उत्पन्न किया जा रहा है और भययोगितया उद्देश्य होने के कारण शत्रु आदि का सम्प्रदानत्व होता है।

'युद्धाय संनह्यते' इत्यादौ संनहनादिक्रियाजन्यफलासम्बधाद् युद्धादेर्न सम्प्रदानतानिर्वाह इति नेयं सम्प्रदानचतुर्थी, अपितु 'एधानाहर्तुं व्रजति' इत्यर्थे 'एधेभ्यो व्रजति' इत्यत्रेव 'युद्धं कर्तुं सोढुं वा संनह्यते' इत्यर्थविवक्षया ''क्रियार्थोपपद'' इत्यादिसूत्रान्तरेण। तस्य च 'स्थानिनोऽश्रूयमाणस्य क्रियार्थोपपदस्य तुमुन्नन्तधातोः कर्मणि = स्वार्थनिष्ठकर्मत्वे विवक्षिते स्वोत्तरं चतुर्थी' इत्यर्थस्तथा चाहरणकरणसहनाद्युद्देश्यकत्वं तादृशचतुर्थ्यर्थ इत्यवधेयम् ।

'युद्धाय संनह्यते' 'युद्ध के लिए तैयार होता है' इत्यादिस्थलों में संनहनादि तैयार होना) क्रिया से जन्य फल का सम्बन्ध युद्ध से न होने के कारण युद्धादि की सम्प्रदानता का निर्वाह नहीं होता है। इसलिए यह सम्प्रदान चतुर्थी नहीं है। अभिप्राय यह है कि धात्वर्थ (क्रिया) जन्य फलसम्बन्धितया इष्टत्व या फलसम्बन्धित्व सम्प्रदानत्व है, यह पूर्व में बताया जा चुका है। **युद्धाय संनह्यते** यहाँ पर संनहन क्रिया से जन्य फल का सम्बन्ध युद्ध से नहीं है, इसलिए यहाँ पर युद्ध की सम्प्रदानता का निर्वाह नहीं हो सकता है। अतः यह सम्प्रदान चतुर्थी नहीं है। **'एधानाहर्तुं याति'** 'एधों को (इंधन) लाने के लिए जाता है' इस अर्थ में **'एधेभ्यो याति'** की तरह **'युद्धं कर्तुं सोढुं वा संनह्यते'** 'युद्ध करने के लिए या सहन करने के लिए तैयार हो रहा है' इस अर्थ की विवक्षा से **'क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः' पा० सू० 2/3/14** इस सुत्रान्तर से चतुर्थी होती है। उस सूत्र का अर्थ है 'स्थानी अश्रूयमाण क्रियार्थोपपद का तुमुन्नन्त धातु का कर्म में = स्वार्थनिष्ठ कर्मत्व विवक्षित होने पर स्वोत्तर चतुर्थी होती है। उक्त स्थलों में तुमुन्नन्त आहर्तुम्, कर्तुम्, सोढुम् आदि ही स्थानी होते हैं जो कि श्रूयमाण नहीं होते हैं। उन तुमुन्नन्तधातुओं के कर्मत्व की विवक्षा एध, युद्ध आदि की होने के कारण एध,युद्ध आदि से चतुर्थी होती है। इस प्रकार आहरण, सहन, करण आदि उद्देश्यकत्व ही उक्तस्थल में चतुर्थी का अर्थ होता है। इस प्रकार **'युद्धाय संनह्यते'** से **'युद्धसहनोद्देश्यकसंनहनानुकूलकृतिमान्'** 'युद्ध सहनोद्देश्यक संनहनानुकूल कृतिमान्' ऐसा शाब्दबोध हुआ करता है। **'एधेभ्यो व्रजति'** से **'एधाहरणोद्देश्यकगमनानुकूल कृतिमान्'** ऐसा शाब्दबोध होता है।

अथ ''यदग्नये च प्रजापतये च सायं जुहोति'' त्यादावग्न्यादेरिव ''सर्वभूतेभ्य उत्सृष्टं मयैतज्जलमूर्जितम्'' इत्यादौ सर्वप्राणिनामिव च 'पशुना रुद्रं यजते' इत्यादावपि त्यागविशेषरूपक्रियायां रुद्रादेरनिराकर्तृसम्प्रदानत्वं दुर्वारमिति तत्रापि चतुर्थी स्यात्

अब प्रश्न होता है कि **'यदग्नये च प्रजापतये च सायं जुहोति'** जो अग्नि के लिए और प्रजापति के लिए शाम को हवन करता है' इत्यादि स्थलों में अग्नि आदि की तरह तथा **'सर्वभूतेभ्य उत्सृष्टं मयैतज्जलमूर्जितम्'** 'मेरे द्वारा यह जल सभी भूतों के लिए उत्सृष्ट है' इत्यादि स्थलों में सर्वप्राणियों (सर्वभूतों) की तरह **'पशुना रुद्रं यजते'** 'पशु से रुद्र को यजता है' इत्यादि स्थलों में भी त्यागविशेष रूप याग क्रिया में रुद्र आदि का अनिराकर्तृसम्प्रदानत्व दुर्वार है, इसलिए रुद्र आदि में भी चतुर्थी होनी चाहिए।

अभिप्राय यह है कि उक्त दोनों प्रयोगों में जैसे उनके उद्देश्य से त्यक्त द्रव्य का ग्रहण अग्नि, प्रजापति, सर्वभूतों के द्वारा नहीं किया जा रहा है किन्तु निराकरण नहीं करने के कारण अग्नि, प्रजापति व सर्वभूतों की सम्प्रदानता होती है, उसी प्रकार **'पशुना रुद्रं यजते'** में भी रुद्र के द्वारा निराकरण नहीं करने के कारण और रुद्रोद्देश्यक त्याग विशेष के ही याग होने के कारण रुद्र की भी सम्प्रदानता होने के कारण रुद्रपद से चतुर्थी होनी चाहिए[1]।

इति चेत् ?

न, गौरवितप्रीतिहेतुक्रिया यज्यर्थस्तदर्थतावच्छेदकफलं प्रीतिस्तदाश्रयतया रुद्रस्य विवक्षितत्वात् कर्मसंज्ञकत्वेन द्वितीयैव न तु चतुर्थी, त्यागात्मकतादृशक्रियायां निरुक्तानिराकर्तृसम्प्रदानत्वे सत्यपि तदविवक्षणात्। प्रीतिभागितयोद्देश्यत्वरूपसम्प्रदानत्वविवक्षायां च 'रुद्राय यजते' इत्यपि प्रयोगः। उभयविवक्षायां परत्वेन कर्मसंज्ञया बाधाद् द्वितीयैव। जुहोत्युत्सृजत्यादेः प्रीतिरूपफलावच्छिन्नत्यागाबोधकतया त्यागरूपक्रियाजन्यप्रीतिभागिनो देवतादेस्तत्कर्मताविरहान्नैव 'प्रजापतिं जुहोति' 'भूतान्युत्सृजति' इत्यादयः प्रयोगाः।

यदि ऐसा कहो तो ठीक नहीं है, क्योंकि गौरवितप्रीतिहेतु क्रिया यज् धातु का अर्थ है, प्रीत्यनुकूलक्रिया यज् धात्वर्थ है और धात्वर्थतावच्छेदकीभूत फल है प्रीति, प्रीति रूपधात्वर्थतावच्छेदकीभूत फल के आश्रय के रूप में रुद्र के विवक्षित होने के कारण रुद्र के कर्मसंज्ञक ही होने के कारण रुद्रपद से द्वितीया ही होती है, चतुर्थी नहीं होती है, त्यागात्मक यज् क्रिया (त्यागविशेष रुपयाग क्रिया) में रुद्र की अनिराकर्तृ सम्प्रदानता होने

---

1. वैयाकरणभूषणसार में वाक्यपदीय के उद्धरण 'अनिराकरणात् कर्तुस्त्यागाङ्गं कर्मणेप्सितम् ।
प्रेरणानुमतिभ्याञ्च लभते सम्प्रदानताम् ।।'
के द्वारा प्रेरण, अनुमति के अलावा अनिराकरण से भी कर्ता के कर्म से ईप्सित त्यागोद्देश्य की सम्प्रदानता प्रतिपादित है। पृ. 218 प्रभादर्पण सहित

पर भी उसके विवक्षित न होने के कारण। प्रीतिभागितया उद्देश्यत्व रूप सम्प्रदानत्व की विवक्षा होने पर तो **'रुद्राय यजते'** यह प्रयोग भी होता ही है। दोनों की विवक्षा होने पर पर होने के कारण (बाद में होने के कारण) कर्म संज्ञा से सम्प्रदान संज्ञा का बाध होने के कारण द्वितीया ही होती है चतुर्थी नहीं। हवन, उत्सर्ग आदि के प्रीति रूप फल से अवच्छिन्न त्याग का बोधक न होने के कारण त्याग रूपक्रिया से जन्य प्रीति भागी भी देवताओं की कर्मता नहीं होने के कारण **'प्रजायति जुहोति' 'भूतान्युत्सृजति'** इत्यादि प्रयोग नहीं होते हैं।

समाधान का आशय यह है कि कारक उक्तनिमित्तों के आधार पर होते हैं तथापि विवक्षा के वश से कारक हुआ करते हैं। इसलिए कहा जाता है कि **विवक्षावशात्कारकाणि भवन्ति,** तो ऐसी स्थिति में- **'पशुना रुद्रं यजते'** और **'रुद्राय यजते'** दोनों ही प्रयोगों की सङ्गति बन जाती है। यज् धातु का अर्थ है गौरवितप्रीत्यनुकूल त्यागविशेषात्मक क्रिया। इस प्रकार गौरवितप्रीति धात्वर्थतावच्छेदकी भूत फल है। जो फलाश्रय होता है उसे कर्म कहते हैं। इसलिए रुद्र की कर्म संज्ञा हो जाती है। त्यागात्मक याग क्रिया में रुद्र की अनिराकर्तृसम्प्रदानता होने पर भी सम्प्रदानता के विवक्षित न होने से द्वितीया ही होती है और यदि प्रीतिभागितया उद्देश्यत्व की विवक्षा हो तो रुद्र की सम्प्रदानता होने से रुद्र पद से चतुर्थी हो जाती है। इस प्रकार **'रुद्राय यजते'** प्रयोग भी होता है। यदि रुद्र की कर्मता और सम्प्रदानता दोनों ही विवक्षित हो तो पर कर्मसंज्ञा से सम्प्रदान संज्ञा का बाध हो जाता है। अतः द्वितीया ही होती है। हवन और उत्सर्ग आदि चूँकि प्रीत्यादि रूप फल से अवच्छिन्न त्याग के बोधक नहीं होते हैं त्यागमात्र के बोधक होते हैं । अतः देवता आदि की सम्प्रदानता ही होती है।

विमर्श–वस्तुतः **'रुद्राय यजते'** और **'पशुना रुद्रं यजते'** के बारे में यह जान लेना चाहिए। **'कर्मणः करणसंज्ञा सम्प्रदानस्य च कर्मसंज्ञा'** इस वार्तिक से विशेष रूप से पशु की करण संज्ञा और रुद्र की कर्म संज्ञा होकर **'पशुना रुद्रं यजते'** की सिद्धि हो सकती है और **'रुद्रमनुकूलयितुं यजते'** इस अर्थ में **'क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः'** पा॰सू॰ 2/3/14 के द्वारा रुद्रपद से चतुर्थी हो कर **'रुद्राय यजते'** की सिद्धि हो सकती है। इस प्रकार गदाधर का कथन इस अंश में उचित जान पड़ता है कि गौरवितप्रीतिरूप फलानुकूल त्यागात्मकक्रिया ही यज् धातु का अर्थ है और धात्वर्थतावच्छेदकीभूतगौरवितप्रीत्याश्रयतया रुद्र की कर्मता होती है। तथा जब यज् धात्वर्थ प्रीतिरूपफल से अवच्छिन्न त्याग नहीं है बल्कि त्याग विशेष ही यज्धात्वर्थ है। तो धात्वर्थतावच्छेदकीभूत प्रीति रूप फलम्बन्धितया इष्टत्व रूप सम्प्रदानत्व रुद्र का सम्पन्न होता है। किन्तु यदि प्रीति रूप फलावच्छिन्न त्याग यज् धात्वर्थ है, तो प्रीतिभागितया उद्देश्य होने पर रुद्र की सम्प्रदानता कैसे प्राप्त होगी? क्योंकि प्रीतिभागितया उद्देश्यत्व प्रीत्याश्रयतया इष्टत्व रूप कर्मत्व ही है । यह बात कुछ समझ में नहीं आती है। मुझे तो यही उचित लगता है कि यज् धातु का अर्थ यदि त्यागमात्र हो फलविशेषानवच्छिन्न त्याग हो तब तो रुद्र की सम्प्रदानता होगी अन्यथा कर्मता होगी। अथवा **'क्रियार्थोपपदस्य'** सूत्र के द्वारा चतुर्थी होगी।

'रजकस्य वस्त्रं ददाति' इत्यत्र ददातिर्न त्यागार्थकोऽपितु परायत्ती करणार्थको गौणः । तदायतीकरणञ्च प्रकृते तत्कर्तृकनिर्णेजनेच्छाप्रकाश को व्यापारः, तदेकदेशे कर्तृत्वे रजकस्य सम्बन्धविवक्षायां शैषिकी षष्ठी।

'रजकस्य वस्त्रं ददाति' 'धोबी को वस्त्र देता है' यहाँ पर दा धातु त्यागार्थक नहीं है' अपितु परायत्तीकरणार्थक गौण है, परायत्तीकरण अर्थ में गौण है। प्रकृत स्थल में परायत्तीकरण तत् (रजक) कर्तृक निर्णेजनेच्छाप्रकाशक व्यापारविशेष ही है। उस परायत्ती करण के एकदेश कर्तृत्व में रजक के सम्बन्ध की विवक्षा होने से शेष अर्थ में होने वाली षष्ठी रजक पद से होती है।

यहाँ पर गदाधर यह प्रतिपादित कर रहे हैं कि जब दा धातु त्यागार्थक होती है तब तो दानोद्देश्य की सम्प्रदान संज्ञा होगी, किन्तु जब दा धातु त्यागार्थक नहीं होगी तब दानोद्देश्य की सम्प्रदान संज्ञा नहीं होगी। इसीलिए यद्यपि दिया तो वस्त्र रजक को जा रहा है, किन्तु रजक की सम्प्रदान संज्ञा नहीं होती है क्योंकि दा धातु यहाँ पर त्यागार्थक नहीं है, धुलने के बाद वस्त्र वापस ले लिया जायेगा।

वैयाकरणों में कुछेक लोग रजक पद से चतुर्थी ही इष्ट मानते हैं और 'रजकाय वस्त्रं ददाति' प्रयोग ही सही मानते हैं। वैयाकरणभूषणसार में कहा गया है—'रजकाय वस्त्रं ददाति' इत्यपि 'खण्डिकोपाध्यायः शिष्याय चपेटां ददाति' इति भाष्योदा हरणादिष्टमेव' (वैयाकरण भूषणसार दर्पण प्रभासहित पृ. 216)

वस्तुतः उक्त प्रयोग में चपेटा पद चपेटाजन्यप्रहार में लाक्षणिक है जो कि देने के बाद वापस नहीं लिया जाता है। इसलिए 'शिष्याय चपेटां ददाति' की तरह रजक की सम्प्रदानता नहीं ही होती है-ऐसा हमारा मत है

'हन्तुः पृष्ठं ददाति' इत्यत्र तत्कर्तृकताडनानुमतिप्रकाशको व्यापारः एव ददात्यर्थः, तदैकदेशे कर्तृत्वे हन्तुः सम्बन्धविवक्षायां षष्ठी । एवं 'संवाहकस्य चरणं ददाति' इत्यादावूहनीयम् ।

'हन्तुः पृष्ठं ददाति' 'मारने वाले को पीठ देता है' इत्यादिस्थलों में तत्कर्तृक ताडनानुमति प्रकाशक व्यापार ही दा धातु का अर्थ है उस दा धातु के अर्थ तत्कर्तृकताडनानुमति प्रकाशक व्यापार के एकदेश कर्तृत्व में हन्ता के सम्बन्ध की विवक्षा में हन्ता से षष्ठी होती है। इसी प्रकार 'संवाहकस्य चरणं ददाति' 'संवाहक (दबाने वाले) को चरण देता है' इत्यादि स्थलों में भी समझना चाहिए। यहाँ पर तत्कर्तृक संवाहनानुमति प्रकाशकव्यापार दा धातु का अर्थ है और उसके एकदेश कर्तृत्व में संवाहक का सम्बन्ध विवक्षित होने के कारण संवाहक पद से षष्ठी होती है।

'नारदाय रोचते कलहः' इत्यादौ "रुच्यर्थानाम्" इत्यनुशासनेन प्रीतिजनकतारूपरुच्यर्थघटकप्रीतिभागिनः सम्प्रदानसंज्ञा विहिता, तत्र चतुर्थ्यर्थ आश्रितत्वं प्रीतावन्वेति तादृशक्रियाश्रयतया प्रीतिजनककलहादेः कर्तृता।

'नारदाय रोचते कलहः' 'नारद को कलह अच्छा लगता है' इत्यादि स्थलों में

'रुच्यर्थानां प्रीयमाणः' पा0 सू0 1/4/33 इस अनुशासन से प्रीतिजनकतारूप रुच् धात्वर्थ घटकप्रीतिभागी की सम्प्रदान संज्ञा विहित है। यहाँ पर चतुर्थी का अर्थ आश्रितत्व है और वह आश्रितत्व प्रीति में अन्वित होता है और प्रीतिजनक क्रियाश्रय होने के कारण कलह की कर्तृता होती है। इस प्रकार यहाँ पर 'नारदाश्रितप्रीतिजनकक्रियाश्रयः कलहः' 'नारदाश्रितप्रीतिजनकी भूत क्रिया का आश्रय कलह है' ऐसा शाब्दबोध होता है।

'पुष्पेभ्यः स्पृहयति' इत्यत्र स्पृहाविषय पुष्पस्य ''स्पृहेरीप्सितः' इत्यनेन सम्प्रदानत्वाच्चतुर्थी तदर्थो विषयित्वं तस्येच्छारूपक्रियायामन्वयः।

'पुष्पेभ्यः स्पृहयति' 'पुष्पों के लिए स्पृहा करता है' यहाँ पर स्पृहाविषयीभूत पुष्प की 'स्पृहेरीप्सितः' पा॰सू॰ 1/4/36 के द्वारा सम्प्रदानता होने के कारंण चतुर्थी होती है। चतुर्थी का अर्थ विषयित्व है तथा उसके अर्थ विषयित्व का इच्छा रूप क्रिया में अन्वय होता है। स्पृहा भी इच्छा विशेष ही है। इस प्रकार 'पुष्पनिरूपितविषयिता-श्रयेच्छाविशेषवान्' 'पुष्पनिरूपित विषयिताश्रयइच्छा विशेषाश्रय है' ऐसा बोध होता है।

'पुत्राय क्रुध्यति' इत्यत्र ''क्रुधद्रुह'' इत्यादिसूत्रेण कर्मणः सम्प्रदान संज्ञा तत्रापि चतुर्थ्यर्थो विषयित्वं कोपेऽन्वेति, क्रोधस्य द्वेषविशेषात्मकतया भक्तिश्रद्धादिवज्ज्ञानविशेषरूपत्वेन वा सविषयकत्वात्। एवं 'शत्रवे द्रुह्यति' इत्यादावपि तेनैव सम्प्रदानत्वम् द्रोहोऽपचिकीर्षा अहितेच्छेति यावत् अहितभागितया येच्छाविषयता तन्निरूपकत्वं चतुर्थ्यर्थ इच्छान्वयी, अहितान्वय्याधेयत्वं वा, अतः 'कर्मणा' इति सूत्रस्याविषयः। ईर्ष्या = अक्षान्तिः परोत्कर्षासहिष्णुता परोत्कर्षगोचरो द्वेष इति यावत् तद्विषयस्य परस्य तेनैव सम्प्रदानता। असूया = गुणिनि दोषाविष्करणं तद्विषयस्याप्यनेन सम्प्रदानता विषयताविशेषस्तत्र चतुर्थ्यर्थः।

'पुत्राय क्रुध्यति' यहाँ पर 'क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः' पा॰ सू॰ 1/4/37 के द्वारा क्रोध कर्म की सम्प्रदान संज्ञा होती है, वहाँ पर भी चतुर्थी का अर्थ विषयित्व है और उसका कोप में अन्वय होता है। द्वेषविशेषात्मक होने के कारण अथवा भक्ति, श्रद्धा आदि की तरह ज्ञानविशेष रूप होने के कारण क्रोध का सविषयकत्व होता है। भाव यह है कि क्रोध द्वेषविशेषात्मक है अथवा ज्ञानविशेषात्मक, जैसे कि भक्ति, श्रद्धा आदि ज्ञानविशेषात्मक होते हैं। द्वेष भी सविषयक होता है और ज्ञान भी सविषयक, अतः दोनों ही पक्षों में क्रोध का सविषयकत्व उपपन्न होता है। इसी प्रकार 'शत्रवे द्रुह्यति' शत्रु से द्रोह करता है' इत्यादि स्थलों में शत्रु की सम्प्रदानता उसी सूत्र से होती है, द्रोह का अर्थ अपचिकीर्षा (अपकार करने की इच्छा) है, अहितेच्छा है। अहितभागितया जो इच्छा विषयता उसका निरूपकत्व ही चतुर्थी का अर्थ है जो कि इच्छा से अन्वित होता है। अथवा अहित से अन्वयी आधेयत्व यहाँ पर चतुर्थी का अर्थ है। इस कारण यह 'कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्' सूत्र का विषय नहीं है। ईर्ष्या का अर्थ अक्षान्ति है जो कि परोत्कर्ष की असहिष्णुता या परोत्कर्षविषयक द्वेष है। तद्विषयीभूत पर की –शत्रु आदि की

इसी सूत्र से ही सम्प्रदानता होतीहै। असूया का अर्थ गुणी में दोषाविष्करण है, तद्विषय की भी इसी सूत्र से सम्प्रदानता होती है और विषयताविशेष चतुर्थी का अर्थ है।

यहाँ पर उपर्युक्त रीति से 'पुत्राय क्रुध्यति' से 'पुत्रनिरूपितविषयिताश्रय क्रोधवान्' शाब्दबोध होता है। 'शत्रवे द्रुह्यति' यहाँ पर दो पक्ष गदाधर ने उपस्थित किये हैं (1) अहितभागितया इच्छा विषयता का निरूपकत्व चतुर्थी का अर्थ है। इस पक्ष में 'शत्रुनिष्ठा या अहितभागितया इच्छाविषयता तन्निरूपकत्वाश्रयद्रोहवान्' 'शत्रुनिष्ठ जो अहितभागितयाइच्छाविषयता तन्निरूपकत्वाश्रय द्रोहवाला है' ऐसा शाब्दबोध होता है। किन्तु इसमें यह समस्या है कि शत्रु की सम्प्रदानता तो यहाँ पर 'कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्' सूत्र से ही हो सकती हैं क्योंकि कर्म से द्रोह से (द्रोह इच्छा विषयत्व से) शत्रु को ही अभिसम्बद्ध करना चाह रहा है, इसलिए शत्रु की सम्प्रदानता इसी सूत्र से हो सकती है। फिर 'क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः' सूत्र में द्रुह का परिगणन व्यर्थ हो जायेगा। इस कारण गदाधर इस अर्थ के अलावा दूसरा अर्थ सुझाते हैं कि चतुर्थी का अर्थ आधेयत्व है और उसका धात्वर्थैकदेश अहित में अन्वय होगा। इस मत में धात्वर्थ अहित विषयक इच्छा है। इस प्रकार 'शत्रुवृत्ति अहितविषयकेच्छाश्रयः' ऐसा शाब्दबोध होता है।

'विप्राय शतं धारयति' इत्यादौ "धारेरुत्तमर्णः" इत्यनेन धनिकविप्रादेः सम्प्रदानता।

'विप्राय शतं धारयति' 'विप्र का सौ रुपये धारण करता है' इत्यादि स्थलों में 'धारेरुत्तमर्णः' पा०सू० 1/4/35 के द्वारा धनिकविप्र आदि की सम्प्रदानता होती है।

अथ कोऽयं धार्यर्थः? न तावद् द्रव्यान्तरदानमङ्गीकृत्य परदत्तद्रव्यादानम् तथा सत्यादानात् परतः 'धारयति' इति प्रयोगानुपपत्तेः— आदानस्यावर्तमानत्वात्। न चेष्टापत्तिः—'आविशोधनं तथाप्रयोगात्। नापि तादृशादानध्वंसः— अधमर्णस्य तदकर्तृत्वात्। न चादानमिच्छाविशेषस्तद्वतः पुंसस्तदाश्रयतया तत्कर्तृत्ववत् तद्ध्वंसाश्रयतया तत्कर्तृत्वमप्यक्षतमिति वाच्यम्; एवमप्यादानध्वंसस्य परिशोधनोत्तरमपि सत्त्वेन तदानीमपि 'धारयति' इति प्रयोगापत्तेः।

किन्तु प्रश्न उठता है कि धारि धातु का अर्थ क्या है? द्रव्यान्तर दान को स्वीकार कर परदत्तद्रव्य का आदान तो धारि धातु का अर्थ नहीं है'क्योंकि धारिधातु का अर्थ यह होने पर आदान के बाद 'धारयति' इस प्रयोग की अनुपपत्ति होगी क्योंकि आदान तो अवर्तमान है। आदान क्रियारूप होने के कारण सद्योविनाशी है, इस कारण आदानानन्तर तुरन्त ही नष्ट हो जायेगा, इसलिए आदान के बाद 'धारयति' प्रयोग नहीं हो सकेगा। यदि कहो कि ठीक है आदानानन्तर आदान के नष्ट हो जाने के कारण वैसा प्रयोग न होना हमें इष्ट ही है तो नहीं कह सकते क्योंकि आदानानन्तर ऋणविशोधनपर्यन्त 'धारयति' प्रयोग हुआ करता है।

1. भवानन्द सिद्धान्तवागीश ने इसे ही धारि धातु का अर्थ माना है 'पुनर्दानमङ्गीकृत्य द्रव्यग्रहणं धारणम्' सटीककारकचक्रम् पृ. 136

यदि कहो द्रव्यान्तरदान को स्वीकार कर परदत्तद्रव्य के आदान का ध्वंस ही धारि धातु का अर्थ है वह तो द्रव्यादान के अनन्तर रहता ही है, इसलिए उक्त प्रयोग उपपन्न होगा तो ऐसा नहीं कह सकते क्योंकि द्रव्यादानध्वंसरूप धार्यर्थ का कर्ता तो द्रव्यादानकर्ता नहीं ही होगा क्योंकि आदानध्वंस अपने आप होता है द्रव्यादाता उसमें कुछ नहीं करता है। इसकारण धार्यर्थकर्तृत्व बोधित कराने के लिए **धारयति** प्रयोग नहीं हो सकेगा।

यदि कहो कि आदान तो इच्छाविशेष ही है, इस कारण आदानात्मक इच्छाविशेष वाले पुरुष के इच्छाविशेषाश्रय होने के कारण इच्छाविशेष कर्तृत्ववत् तद्ध्वंसाश्रयतया तद्ध्वंस कर्तृत्व भी अक्षत है। इस प्रश्न का आशय यह है कि इच्छा, ज्ञान आदि का कर्तृत्व इच्छा, ज्ञान आदि का आश्रयत्व ही होता है। आदान भी चूँकि इच्छाविशेष ही है, अतः आदानकर्तृत्व भी आदानाश्रयत्व ही है। इस प्रकार जैसे आदानाश्रयत्वरूप लाक्षणिक आदानकर्तृत्व पुरुष का सम्पन्न होता है और उसी के आधार पर आदातृत्व व्यवहार (प्रयोग) होता है। उसी प्रकार आदानध्वंसाश्रयत्व ही आदानध्वंसकर्तृत्व है। भले ही पुरुष आदानध्वंस को न करने वाला हो किन्तु आदानध्वंस का आश्रय होने के कारण आदानध्वंसकर्तृत्व सम्पन्न हो जायेगा और उसे ही आधार बनाकर (उसे ही बोधित करने के लिए) **धारयति** प्रयोग उपपन्न हो जायेगा।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि पुरुष में आदानध्वंसाश्रयत्व ही यदि पुरुष का धार्यर्थकर्तृत्व है तो आदानध्वंस तो परिशोधन (ऋण चुकाने) के उपरान्त भी रहेगा, इस कारण ऋण चुकाने के बाद भी **धारयति** प्रयोग की आपत्ति होगी। चूँकि इस प्रयोग से आदानध्वंसाश्रयत्व ही पुरुष में बोधित होता है और ऋण चुकाने के उपरान्त भी पुरुष में आदानध्वंसाश्रयत्व विद्यमान है। इसलिए ऋण चुकाने के उपरान्त भी ऐसा प्रयोग होने की पाली आ जायेगी।

न च परिशोधनप्रागभावविशिष्टो निरुक्तादानध्वंसस्तथा—ऋणीकृत द्रव्यान्तरपरिशोधनप्रागभावदशायां परिशुद्धमृणमादाय 'धारयति' इति प्रयोगापत्तेः।

यदि कहो कि परिशोधनप्रागभावविशिष्टनिरुक्तादानध्वंस ही धार्यर्थ है। इस पक्ष में ऋण चुकाने के बाद **धारयति** प्रयोग की आपत्ति नहीं है क्योंकि ऋण चुकाने के पूर्व तक ही परिशोधनप्रागभाव रहने के कारण परिशोधनप्रागभावविशिष्टनिरुक्तादानध्वंस का आश्रयत्व रूप धार्यर्थकर्तृत्व पुरुष में रहेगा और परिशोधनोपरान्त निरुक्तादानध्वंस रूप विशेष्यांश के रहने पर भी परिशोधनप्रागभावरूप विशेषणांश न रहने के कारण परिशोधन प्रागभावविशिष्ट निरुक्तादानध्वंसाश्रयत्व रूप धार्यर्थकर्तृत्व सम्भव नहीं होता है।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि द्रव्यान्तरपरिशोधन प्रागभाव दशा में परिशुद्ध ऋण को लेकर **धारयति** इस प्रकार के प्रयोग की आपत्ति आयेगी। यह आक्षेप दिखा रहे हैं कि जहाँ पर इकट्ठा दो द्रव्य ऋण के रूप में लिये गये किन्तु चुकाया गया एक ही ऋण वहाँ पर चुकाये गये ऋण के आधार पर **धारयति** प्रयोग नहीं होता, न चुकाये ऋण के आधार पर प्रयोग होता है। किन्तु इस प्रकार से धार्यर्थ का निर्वचन करने पर चुकाये गये ऋण के आधार पर भी **धारयति** प्रयोग की आपत्ति आयेगी क्योंकि परिशोधन प्रागभाव से विशिष्ट तो परिशोधितऋणादानध्वंस भी है ही।

न च स्वप्रतियोगिनिर्वाहकाङ्गीकारविषयद्रव्यदानप्रागभाव विशिष्टा-दानध्वंसस्तथा- यद् ऋणं परिशोधितं तावद् द्रव्यं च पुनर्गृहीत्वा पुनः परिशोधनीयं तदादाय 'धारयति' इति व्यवहारापत्तेः, उदीच्यपरिशोध-नस्यापि स्वकर्तव्यतया पूर्वाभ्युपगमविषयत्वात् तत्प्रागभागभावस्य पूर्व परिगृहीत-परिशोधनोत्तरमपि सत्त्वात् ।

यदि कहो कि स्वप्रतियोगिनिर्वाहकाङ्गीकारविषयद्रव्यदानप्रागभावविशिष्टादानध्वंस ही धार्यर्थ है। इस पक्ष में ऋणीकृत द्रव्यान्तर परिशोधन प्रागभाव दशा में परिशुद्ध ऋण को लेकर **धारयति** प्रयोग की आपत्ति नहीं है। यहाँ पर स्वप्रतियोगिनिर्वाहक अङ्गीकार विषय द्रव्यदानप्रागभाव से विशिष्ट आदान ध्वंस ही धार्यर्थ बताया जा रहा है। स्व पद से आदान ध्वंस को लेना है, आदानध्वंस का प्रतियोगी है आदान, आदाननिर्वाहक अङ्गीकार है 'मैं इस धन को लौटा दूँगा, इस ऋण को चुका दूँगा' इस प्रकार का अङ्गीकार । इस अङ्गीकार में आदाननिर्वाहकत्व इसीलिए है क्योंकि बग़ैर इस अङ्गीकार के आदान ही सम्भव नहीं है, अधमर्ण के द्वारा उत्तमर्ण से धन प्रप्ति ही सम्भव नहीं है। इस अङ्गीकार का विषय जो द्रव्यदान उसके प्रागभाव से विशिष्ट आदानध्वंस का आश्रयत्व ही धार्यर्थकर्तृत्व है। जहाँ पर एक साथ दो द्रव्य लिये गये हैं, किन्तु एक लौटा दिया गया एक नहीं। तो वहाँ पर जो द्रव्य लौटा दिया गया उस द्रव्य के आदान का ध्वंस स्वप्रतियोगिनिर्वाहकाङ्गीकारविषयद्रव्य दानप्रागभाव से विशिष्ट नहीं है क्योंकि उस द्रव्यादानध्वंस के प्रतियोगिभूत उस द्रव्यादान का निर्वाहक जो अङ्गीकार, उस अङ्गीकार के विषय द्रव्यादान का प्रागभाव तो नहीं है क्योंकि उस अङ्गीकार का विषय द्रव्यदान तो सम्पन्न हो गया है। इस प्रकार स्वप्रतियोगि निर्वाहकाङ्गीकार विषयद्रव्यदान प्रागभावविशिष्टादानध्वंस न होने से परिशोधित ऋण के आधार पर **धारयति** प्रयोग नहीं होता है। जो अपरिशोधित ऋण है उसके आधार पर तो उक्त प्रयोग हुआ ही करता है।

तो यह भी धार्यर्थ नहीं हो सकता है क्योंकि जो ऋण परिशोधित है उतना ही द्रव्य पुनः लेना है और उसे बाद में लौटाना है। मतलब एक बार लिया और लौटा दिया, बाद में फिर लेगा और लौटाएगा। वर्तमान काल में कोई ऋण नहीं है। किन्तु उसे लेकर **धारयति** ऐसे व्यवहार की आपत्ति है। क्योंकि उदीच्य परिशोधन के भी स्वकर्तव्यतया पुर्वाभ्युपगमविषयक होने के कारण उदीच्यपरिशोधनप्रागभाव पूर्वपरिगृहीत परिशोधनोत्तर भी है। इस विषय को इस प्रकार से समझना आसान होगा---

चार स्थितियाँ हैं (1) ऋण ग्रहण

(2) ऋण परिशोधन (ऋण लौटाना)

(3) पुनः ऋण ग्रहण (उतना ही ऋण लेना)

(4) पुनः ऋण का परिशोधन

आपत्ति यहाँ पर स्थिति संख्या 2 और 3 के बीच में दी जा रही है। क्रम संख्या1 के द्वारा लिये गये ऋणादान का ध्वंस उक्त काल में है क्योंकि ध्वंस तो एक बार उत्पन्न होकर हमेशा-हमेशा के लिए रहता है। स्व पद से उस ऋणादानध्वंस को लीजिए उसका

प्रतियोगी जो ऋणादान (मान लीजिए सौ रुपये लिये गये तो सौ रुपये का आदान) उस ऋणादान का निर्वाहक अङ्गीकार हुआ 'मैं सौ रुपये दे दूँगा' ऐसा अङ्गीकार। इस अङ्गीकार का विषय द्रव्यदान हुआ सौ रुपये का द्रव्यदान। यह द्रव्यदान क्रमसंख्या 2 और क्रमसंख्या 4 दोनों में ही है क्योंकि बाद में भी सौ ही रुपये लिये और लौटाये जाने हैं। तो अङ्गीकारविषयीभूत जो बाद में किया जानेवाला परिशोधन, उस परिशोधन का प्रागभाव उक्त क्रम सं0 2 और 3 के बीच में है और उस समय (वहाँ पर) ही आदान ध्वंस भी है। इस प्रकार क्रम सं0 2 और 3. के बीच में धार्यर्थ स्वप्रतियोगिनिर्वाहकाङ्गीकारविषय द्रव्यदान प्रागभावविशिष्ट आदानध्वंस होने के कारण धारयति' प्रयोग होना चाहिए। वस्तुतः तो उस काल में ऐसा प्रयोग नहीं ही हुआ करता है। इस लिए यह भी धार्यर्थ नहीं हो सकता है।

न च स्वप्रतियोग्यादाननिर्वाहकाभ्युयगमविषयीभूतं यद् द्रव्यदानमेकक्षणावच्छिन्नैकाधिकरणवृत्तित्वसम्बन्धेन तद्विशिष्टान्य प्रागभावविशिष्टादानध्वंसस्तथा, उक्तस्थले चोदीच्यपरिशोधनप्रागभावः प्रथमादानप्रयोजकाभ्युपगमविषयप्रथमपरिशोधनविशिष्टः प्रथमपरिशोधन प्रागभावश्च प्रथमपरिशोधनोत्तरं नास्त्येवेति नोक्तातिप्रसङ्ग इति वाच्यम्; एवमपि यस्य ऋणस्य परिशोधनमप्रसिद्धं तदादानपूर्वकालीनस्य 'एतावद् द्रव्यं मया तुभ्यं देयम्' इत्यभ्युपगमस्य तदुत्तमर्णोद्देश्यकत्वेन स्वकर्तृकान्योद्देश्यकतावदद्रव्यदानमेव विषय इत्युपेयम्– तदुत्तमर्णोद्देश्यकतत्कर्तृकतावद्द्रव्यदानस्याप्रसिद्धत्वात् तथाचान्योद्देश्यकतत्कर्तृकतावद् द्रव्यदानोत्तरं तदभ्युपगमविषयद्रव्यदानविशिष्टान्यप्रागभावासत्त्वात् 'धारयति' इति व्यवहारानुपपत्तिरिति चेत् ?

यदि कहो कि स्वप्रतियोग्यादाननिर्वाहक अङ्गीकारविषयीभूत जो द्रव्यदान, एकक्षणावच्छिन्नैकाधिकरणवृत्तित्वसम्बन्ध से उस द्रव्यदान से विशिष्ट से अन्य प्रागभाव से विशिष्ट आदान ध्वंस ही धार्यर्थ है, उक्त स्थल में तो उदीच्य परिशोधन प्रागभाव प्रथमादानप्रयोजकाभ्युपगमविषय प्रथमपरिशोधन से विशिष्ट है और प्रथम परिशोधन प्रागभाव प्रथमपरिशोधनोत्तर नहीं ही है इसलिए उक्ताति प्रसङ्ग नहीं है।

इस पक्ष में उपर्युक्त आपत्ति निवारित हो जाती है, यही प्रमुख लक्ष्य है ग्रन्थकार का। धार्यर्थ को इस पक्ष में कुछ अलग रीति से परिष्कृत किया जा रहा है, कहना है कि स्वप्रतियोगि आदान निर्वाहक अङ्गीकारविषयीभूत द्रव्यदानविशिष्ट से अन्य प्रागभाव से विशिष्ट आदान ध्वंस ही धार्यर्थ है। यहाँ पर द्रव्यदान से विशिष्ट एकक्षणावच्छिन्नैकाधिकरण वृत्तित्व सम्बन्ध से लेना है। स्व पद से आदान ध्वंस को लेना है। विगतपृष्ठ में जो आपत्ति स्थल उदाहृत किया गया था वहाँ पर देखें—उक्त स्थल में परिशोधन प्रागभाव दो हैं प्रथमपरिशोधनप्रागभाव और द्वितीय परिशोनप्रागभाव। क्रमसंख्या दो और तीन के बीच में प्रथम परिशोधन सम्पन्न हो गया है, अतः प्रथमपरिशोधनप्रागभाव नहीं है, द्वितीयपरिशोधन

प्रागभाव ही है। इस कारण यदि परिशोधनप्रागभावविशिष्ट आदानध्वंस रूप धार्यर्थ है, ऐसा कहा जाता है, तो निश्चित रूप से द्वितीयपरिशोधनप्रागभाव से विशिष्ट आदानध्वंस के ही आधार पर ऐसी आपत्ति दी जाती है। इस नवीन परिष्कार के अनुसार देखें स्व = आदानध्वंस, उसका प्रतियोगी आदान, आदाननिर्वाहक अङ्गीकार विषयीभूत द्रव्यदान (विगत पृष्ठोपदर्शित रीति से सौ रुपये का दान) उस दान के अधिकरण में उसी एक क्षणावच्छेदेन द्वितीयपरिशोधन प्रागभाव भी है। इस कारण एकक्षणावच्छिन्न एकाधिकरण वृत्तित्व सम्बन्ध से उस सौ रुपये के दान से विशिष्ट ही द्वितीयपरिशोधनप्रागभाव हो गया, विशिष्टान्य तो प्रथमपरिशोधन प्रागभाव ही हुआ और उस प्रागभाव से विशिष्ट आदानध्वंस तो क्रम सं0 2 और तीन के बीच में है नहीं। इस कारण धार्यर्थ उपर्युक्तादानध्वंस का आश्रयत्व रूप कर्तृत्व न होने के कारण '**धारयति**' प्रयोग की आपत्ति नहीं है।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि इस प्रकार से भी जिस ऋण का परिशोधन अप्रसिद्ध है उस आदान का पूर्व कालीन 'इतना द्रव्य मेरे द्वारा तुम्हे देय है' इस अभ्युपगम का तदुत्तमर्णोद्देश्यकत्वेन स्वकर्तृक अन्योद्देश्यक तावद् द्रव्य दान ही विषय है यह मानना पड़ेगा क्योंकि तदुत्तमर्णोद्देश्यकतत्कर्तृक तावद् दान तो अप्रसिद्ध है। इस प्रकार अन्योद्देश्य कतत्कर्तृकतावद् द्रव्यदानोत्तर तदभ्युपगमविषय द्रव्यदानविशिष्टान्य प्रागभाव न रहने के कारण '**धारयति**' इस व्यवहार की अनुपपत्ति होगी।

उपस्थापित पक्ष में यह आपत्ति प्रदर्शित की जा रही है कि जहाँ पर किसी ने ऋण लेने के उपरान्त कभी वापस किया ही नहीं। वहाँ पर **धारयति** प्रयोग नहीं होना चाहिए (नहीं हो पायेगा) क्यों? क्योंकि आपने धार्यर्थ माना है स्वप्रतियोग्यादाननिर्वाहक अङ्गीकार विषयीभूतद्रव्यदानविशिष्ट से अन्य प्रागभाव से विशिष्ट आदानध्वंस को। वहाँ पर स्वपद से आदानध्वंस को लीजिए, उसके प्रतियोगी आदान के निर्वाहक अङ्गीकार का विषयीभूत द्रव्यदान (उत्तमर्णोद्देश्यक अधमर्णकर्तृकद्रव्यदान) तो प्रसिद्ध ही नहीं है क्योंकि अधमर्ण ने ऋण लेने के उपरान्त ऋण को कभी लौटाया ही नहीं। इस तरह उत्तमर्णोद्देश्यक अधमर्णकर्तृकद्रव्यदान तो किसी भी काल में प्रसिद्ध नहीं है। इसलिए स्वप्रतियोग्या-दाननिर्वाहकाङ्गीकार विषयीभूत द्रव्यदान स्वकर्तृक अन्योद्देश्यक द्रव्यदान ही हो सकता है, उसके बाद उस अङ्गीकारविषयीभूतद्रव्यदान विशिष्ट से अन्य प्रागभाव नहीं ही रहेगा, बल्कि उक्त द्रव्यदानविशिष्ट ही प्रागभाव रहेगा। विशिष्टान्यप्रागभाव विशिष्ट आदानध्वंस रूप धार्यर्थ ही वहाँ पर अप्रसिद्ध होने के कारण, उस धार्यर्थ का कर्तृत्व भी अप्रसिद्ध होने से उस ऋणदाता पुरुष में नहीं रहेगा। इसलिए धार्यर्थकर्तृत्व का बोधन कराने वाले **धारयति** वाक्य का प्रयोग नहीं हो सकेगा। इसलिए इस रीति से भी धार्यर्थ (धारि के अर्थ) का निर्वचन करना सम्भव नहीं है।

अत्राहुः–ऋणग्रहणेनाधमर्णनिष्ठः परिशोधननाश्योऽदृष्टविशेषो जन्यते तेनैवादृष्टेन ऋणमपरिशोध्य मृतस्य नरकादिकमुत्पद्यते तथा च द्रव्यान्तर दानाभ्युपगमपूर्वकपरदत्तद्रव्यादानजन्यादृष्टविशेषवत्त्वमेव धारयतेरर्थः तद्घटकदानान्वयिकर्तृत्वं तत्र चतुर्थ्यर्थः।

यहाँ पर ऐसा कहा है—ऋणग्रहण से अधमर्ण में रहनेवाला परिशोधन से नाश्य अदृष्टविशेष उत्पन्न होता है, उसी अदृष्ट से ऋण का परिशोधन न करके मरे हुए व्यक्ति को नरकादि उत्पन्न होता है। इस प्रकार द्रव्यान्तरदानाभ्युपगमपूर्वक परदत्तद्रव्यादानजन्यादृष्ट विशेषवत्त्व ही धारि धातु का अर्थ है, तद् घटक दान से अन्वयी कर्तृत्व ही चतुर्थी का अर्थ है।

गदाधर अत्राहुः प्रतीक से धारिधातु का अर्थ सिद्धान्त रूप में बतला रहे हैं। कहना है कि ऋण लेने से ऋणादाता में अदृष्टविशेष उत्पन्न होता है जो कि ऋणपरिशोधन से नष्ट होता है। इसी कारण (उसी अदृष्ट के कारण) यदि कोई व्यक्ति बग़ैर ऋण लौटाये मर जाता है, तो उसी अदृष्टविशेष से उस मृत व्यक्ति विशेष को नरक आदि की प्राप्ति हीती है। इस प्रकार धारि का अर्थ 'द्रव्यान्तर दानाभ्युपगमपूर्वक परदत्तद्रव्यादानजन्यादृष्टविशेष' ही है। इस तरह '**विप्राय शतं धारयति देवदत्तः**' यहाँ पर '**द्रव्यान्तरदानाभ्युपगमपूर्वकविप्रकर्तृक दानविषयशतादानजन्यादृष्टविशेषवान् देवदत्तः**' 'द्रव्यान्तरदानाभ्युपगमपूर्वक विप्रकर्तृकदान विषय शतादान जन्यादृष्टविशेषवाला देवदत्त है' ऐसा शाब्दबोध होता है।

न च ऋणापरिशोधनमेव दुरदृष्टजनकम्–उपपातकमध्ये तस्य परिगणनात् न तु ऋणादानम् –तस्य तथात्वे मानाभावादितिवाच्यम्; ऋणादानस्य दुरदृष्ट विशेषजनकत्वेऽपि परिशोधनेन तस्य नाश इति बोधनायापरिशोधनस्य नरकरूपफलोपधानप्रयोजकत्वाभिप्रायेण तस्योपपातकमध्ये परिगणनोपपत्तेः। ऋणमादायापरिशोधकस्य नरकभागितया ऋणादानस्यैव दुरदृष्टसाधनतायाः कल्पनीयत्वात्, गृहीतर्णापरिशोधनापेक्षया लघुत्वात्। अपरिशोधनस्य हेतुत्वे परिशोधनपूर्वकालेऽप्यपरिशोधनसत्त्वेऽपि दुरदृष्टोत्पत्तेरावश्यकतया परिशोधनस्य तन्नाशकताया आवश्यकतयाऽस्माकं तत्कल्पनाधिक्यविरहात्। परिशोधनोत्तरकालं परिशोधनाभावसत्त्वेन तद्बलात्तदुत्तरं दुरदृष्टवारणाय परिशोधनध्वंसस्य प्रतिबन्धकतायाः कल्पनीयतया भवन्मते गौरवाच्च।

यदि कहो कि ऋणापरिशोधन ही दुरदृष्ट का जनक है क्योंकि उसका (ऋणापरिशोधन का) उपपातकों के बीच में परिगणन किया गया है। ऋणादान (ऋणग्रहण) तो दुरदृष्ट का जनक नहीं होता है क्योंकि ऋणग्रहण के दुरदृष्टजनक होने में कोई प्रमाण नहीं है। दुरदृष्ट से यहाँ पर पाप अपेक्षित है। यह जो कहा जा रहा है, उसका अभिप्राय यह है कि चूँकि उपपातकों के बीच में ऋण का न चुकाना ही परिगणित है अतः ऋणपरिशोधन को ही पापजनक मानना चाहिए ऋणग्रहण को पापजनक मानने में कोई प्रमाण नहीं है जैसा कि आप मान रहे हैं।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए ऋणादान के ही दुरदृष्ट (पाप) जनक होने पर भी परिशोधन से उस पाप (ऋणादानजन्य पाप) का नाश हो जाता है यही बोधित कराने के लिए अपरिशोधन के नरक रूपफलोपधानप्रयोजकत्वाभिप्राय से उसका उपपातकों के मध्य में परिगणन उपपन्न होता है। इसका भाव यह है कि यद्यपि उपपातकों में ऋणापरिशोधन

का ही परिगणन किया गया है ऋणादान का नहीं। तथापि उसका आशय इसी में है कि ऋणादान से ही पाप उत्पन्न होता है और परिशोधन से नष्ट हो जाता है। ऋणपरिशोधन न करने पर ऋणादानजन्य पाप नष्ट न होने से उसी पाप के द्वारा नरक की प्राप्ति होती है। अपरिशोधन यद्यपि नरक का कारण नहीं है किन्तु नरक रूप फल के उपधान का प्रयोजक है, उसी अभिप्राय से उसका परिगणन उपपन्न हो जाता है। ऋण लेकर अपरिशोधक के नरकभागी होने के कारण ऋणादान की ही दुरदृष्ट (पाप) साधनता कल्पनीय होती है क्योंकि गृहीत ऋण के अपरिशोधन की अपेक्षा ऋणादान की पापसाधनता की कल्पना करना लघुभूत है। गृहीतऋणापरिशोधन में ऋण, ग्रहणांश और अपरिशोधनांश का प्रवेश है, ऋणादान के ऋणग्रहण रूप होने से अपरिशोधनांश प्रविष्ट नही है इसलिए ऋणग्रहण की साधनता स्वीकारना लघुभूत है। गृहीतर्णापरिशोधन की पापजनकता स्वीकारनी गुरुभूत है। अपरिशोधन को पापजनक मानने पर परिशोधन के पूर्वकाल में भी अपरिशोधन रहने के कारण दुरदृष्टोत्पत्ति आवश्यक होने के कारण परिशोधन के द्वारा उस दुरदृष्ट का नाश आवश्यक होने के कारण हमारे मत में उक्त कल्पना का अधिक्य नहीं है। परिशोधनोत्तर काल में परिशोधनाभाव रहने के कारण उसके बल से तदुत्तर (परिशोधनोत्तर) काल में दुरदृष्टोत्पत्ति का वारण करने के लिए परिशोधन ध्वंस की प्रतिबन्धकता कल्पित करनी होगी। अतः आपके मत में गौरव भी होगा।

यहाँ पर ऋणापरिशोधन को पापजनक न मानकर ऋणादान को ही उस पाप का जनक मानने के लिए गदाधर निम्नलिखित युक्तियाँ दे रहे हैं—

(1) ऋणग्रहण को पाप साधन मानने में लाघव है, गृहीत ऋणापरिशोधन को पापसाधन मानने में गौरव है क्योंकि कारण शरीर में अपरिशोधनांश अधिक प्रविष्ट है।

(2) ऋणादान को पाप जनक मानने पर ऋणपरिशोधन को पापनाशक मानना पड़ता है यह ऋणादान की पापजनकता स्वीकारनेवाले के मत में अधिक कल्पना है। ऋणापरिशोधन को पापजनक मानने वाले के मत में ऐसी अधिक कल्पना नहीं है। ऐसा भी नहीं क्योंकि अपरिशोधन तो ऋणादान के बाद ऋण चुकाने के पूर्व तक है ही (ऋणलेने व लौटाने के बीच में अपरिशोधन है ही) अतः उससे भी पाप उत्पन्न होगा और ऋण चुकादेने पर नरक की प्राप्ति न होने से ऋणपरिशोधन से उस पाप का विनाश होगा। यह भी कल्पित करना पड़ेगा जो कि अधिक कल्पना है। इस प्रकार मेरे मत में ऋणादान से पापोत्पत्ति और ऋणपरिशोधन से उसका विनाश स्वीकार्य है। आपके मत में ऋणापरिशोधन से पापोत्पत्ति और ऋणपरिशोधन से उसका विनाश स्वीकार्य होगा । इस रीति से इस अंश में उभय पक्ष समान है।

(3) परिशोधन के उपरान्त भी अपरिशोधन है क्योंकि अपरिशोधन परिशोधनाभाव रूप है उस समय दुरदृष्टोत्पत्ति क्यों नहीं होती है? इस कारण आपको अपरिशोधन के द्वारा दुरदृष्टोत्पत्ति मानने पर दुरदृष्ट के प्रति परिशोधनध्वंस की प्रतिबन्धकता भी माननी पड़ेगी। यह अतिरिक्त गौरव होगा अपरिशोधन के द्वारा अदृष्टोत्पत्ति स्वीकारने वाले के मत में। अतः ऋणादान से ही पापोत्पत्ति और ऋणपरिशोधन से उसका विनाश मानना चाहिए। उपपातकों में अपरिशोधन का परिगणन अन्य रीति से भी उपपादित किया ही जा सकता है।

न च परिशोधनानुत्तरमरणमेव पापजनकं वाच्यं तथा च नोक्तातिप्रसङ्ग इति वाच्यम्; गृहीतद्रव्यमपरिशोध्य मरणस्थले तद्द्रव्यपरिसोधनाप्रसिद्ध्या तदनुत्तरत्वादिघटितरूपेण हेतुतायाः कल्पयितुमशक्यत्वादित्यलम् ।

यदि कहो कि परिशोधनानुत्तर मरण ही पापजनक है ऐसा कहना चाहिए, इस तरह उपर्युक्त दोषों का और गौरव का प्रसङ्ग नहीं है। अर्थात् यदि परिशोधनानुत्तर मरण को पापजनक मानें, परिशोधन को पापजनक न मानें तो ऋणलेने और लौटाने के बीच के काल में पापोत्पत्ति नहीं होगी और उस पाप का परिसोधन से विनाश भी नहीं स्वीकारना पड़ेगा। परिशोधनध्वंस की पापोत्पत्ति में प्रतिबन्धकता भी नहीं स्वीकारनी पड़ेगी।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि गृहीतद्रव्य परिशोधित किये विना मरण स्थल में तद्द्रव्यपरिशोधन की ही अप्रसिद्धि होने से तदनुत्तरत्वादिघटित रूप से मरण की पाप हेतुता कल्पित करना शक्य नहीं है यह विवेचन पर्याप्त है। भाव यह है कि जहाँ पर व्यक्ति ऋण लेने के बाद विना लौटाये मर गया वहाँ पर पापोत्पत्ति होनी चाहिए किन्तु इस निर्वचन के अनुसार तो वहाँ पर कारण ही नहीं होने के कारण पापोत्पत्ति सम्भव नहीं है। कारण है परिशोधनानुत्तरमरण उक्त स्थल में परिशोधन ही अप्रसिद्ध है, फिर परिशोधनोत्तरमरण या परिशोधनानुत्तर मरण भला किस तरह से प्रसिद्ध हो सकेगा? इस कारण ऋणादान ही पापजनक है और ऋणपरिशोधन से उस पाप का नाश होता है, यही मानना उचित है।

'यूपायं दारु' इत्यादौ न सम्प्रदानचतुर्थी, अपितु तादर्थ्ये सूत्रान्तरेण सा, तादर्थ्यं च स एवार्थः = प्रयोजनं यस्य तत्त्वम् । 'समभिव्याहृतपदार्थे तादर्थ्यविवक्षायां तद्वाचकपदाच्चतुर्थी' इति तत्सूत्रार्थः।

'यूपाप दारु' इत्यादि स्थलों में सम्प्रदान चतुर्थी नहीं है, अपितु तादर्थ्य में सूत्रान्तर से ('तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या' वार्तिक से) चतुर्थी है। तादर्थ्य, वही अर्थ है प्रयोजन है जिसका, तत्त्व ही है। 'समभिव्याहृत पदार्थ में तादर्थ्य की विवक्षा में तादर्थ्यवाचक पद से चतुर्थी होती है' यह उस सूत्र (वार्तिक) का अर्थ है।

(तो इसमें प्रयोजनत्व क्या चीज़ है?)

प्रयोजनं चात्र न जन्यत्वम्- दुःखादेः पापादिजन्यतया 'दुःखाय पापम्' इत्यादिप्रयोगापत्तेः। नापि जनयतयेच्छाविषयत्वम्- स्वर्गादेः पुण्यादिजन्यत्वेनेच्छाविषयत्वात् 'स्वर्गाय पुण्यम्' इत्याद्यापत्तेः। न चेष्टा पत्तिः तथा सति 'पक्तुं व्रजति' इत्यर्थे 'पाकाय व्रजति' इति निर्वाहाय "तुमर्थाच्च भाववचनात्" इति सूत्रप्रणयनवैयर्थ्यात्- पाकादेर्निरुक्त व्रजनाद्यर्थतयैव तद्वाचकपदाच्चतुर्थ्युपपत्तेः। अपितु समभिव्याहृतपदार्थ निष्ठव्यापारेच्छानुकूलेच्छाविषयत्वं तत् प्रयोजनत्वम्, तत्प्रयोजनक-त्वरूपतादर्थ्यञ्च तदिच्छाधीनेच्छाविषयव्यापाराश्रयत्वम् । दारुणो यूपेच्छा धीनेच्छाविषयतक्षणादिरूपव्यापारवत्तया यूपार्थत्वमिति तद्विवक्षया यूपपदाच्चतुर्थी, इच्छाधीनेच्छाविषयव्यापाराश्रयत्वं चतुर्थ्यर्थः, प्रथमेच्छायां

यूपादेः प्रकृत्यर्थस्य विषयतयाऽन्वयः। एवम्-'रन्धनाय स्थाली' इत्यादावूह्यम्, तत्र तादृशव्यापारस्तण्डुलधारणादिः।

और प्रयोजनत्व यहाँ पर जन्यत्व रूप नहीं है क्योंकि यदि प्रयोजनत्व जन्यत्व रूप हो तो दुःखादि के पापादि से जन्य होने के कारण '**दुःखाय पापम्**' 'पाप दुःख के लिए होता है' इत्यादि प्रयोगों की आपत्ति आयेगी। प्रयोजनत्व जन्यतया इच्छाविषयत्व रूप भी नहीं हैं स्वर्गादि के पुण्यादिजन्यत्वेन इच्छाविषय होने के कारण '**स्वर्गाय पुण्यम्**' प्रयोग की आपत्ति आयेगी। दुःख के पापजन्य होने पर भी पापजन्यत्वेन इच्छाविषय न होने के कारण-कोई भी नहीं चाहता कि पाप से भी दुःख उत्पन्न हो इसलिए— '**दुःखाय पापम्**' प्रयोग न हो पाने पर भी '**स्वर्गाय पुण्यम्**' प्रयोग की आपत्ति आयेगी। यदि कहो कि स्वर्ग के पुण्यजन्यत्वेन इच्छा विषय होने के कारण '**स्वर्गाय पुण्यम्**' प्रयोग तो हमें इष्ट ही है तो ऐसा नहीं कह सकते क्योंकि इस प्रकार से '**स्वर्गाय पुण्यम्**' प्रयोग इष्ट होने पर '**पक्तुं व्रजति**' 'पकाने जाता है' इस अर्थ में '**पाकाय व्रजति**' इस प्रयोग का निर्वाह करने के लिए '**तुमर्थाच्च भाववचनात्**' पा॰सू॰ 2/3/15 का प्रणयन व्यर्थ हो जायेगा क्योंकि पाकादि के व्रजनाद्यर्थ होने के कारण ही पाकादिवाचक पद से चतुर्थी की उपपत्ति हो जायेगी। चूँकि पाक व्रजनजन्यत्वेन इच्छाविषय है, अतः पाक का प्रयोजनत्व उपपन्न होने से '**तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या**' इस वार्तिक से ही पाक पद से चतुर्थी उपपन्न हो जायेगी। इसलिए '**तुमर्थाच्च भाववचनात्**' सूत्र व्यर्थ हो जायेगा। इस कारण जन्यतया इच्छाविषयत्व भी प्रयोजनत्व नहीं है। अपितु समभिव्याहृत पदार्थनिष्ठव्यापारेच्छानुकूल इच्छाविषयत्व ही वह प्रयोजनत्व है। तथा तत्प्रयोजकत्व रूप तादर्थ्य तदिच्छाधीनेच्छा विषयव्यापाराश्रयत्व है दारु के यूपेच्छाधीनेच्छाविषयतक्षणादिरूपव्यापारवाला होने के कारण ही यूपार्थता है, इसलिए उसकी विवक्षा होने पर यूपपद से चतुर्थी होती है। इच्छाधीनेच्छाविषयव्याराश्रयत्व चतुर्थी का अर्थ है। प्रथम इच्छा में यूपादि प्रकृत्यर्थ का विषयतया अन्वय होता है। इसी प्रकार '**रन्धनाय स्थाली**' इत्यादि स्थलों में भी समझ लेना चाहिए। वहाँ पर वैसा व्यापार तदिच्छाधीनेच्छाविषयव्यापार तण्डुलधारणादि व्यापार है।

गदाधर ने तादर्थ्य का अर्थ बताया वह ही प्रयोजन है जिसका, तत्त्व ही तादर्थ्य है। प्रयोजनत्व क्या चीज़ है? समभिव्याहृतपदार्थनिष्ठव्यापारेच्छानुकूलेच्छाविषयत्व ही तत्प्रयोजनत्व है । तथा तत्प्रयोजनार्थत्व ही तादर्थ्य है। देखें—यूपाय दारु' यहाँ पर यूप समभिव्याहृत दारु पदार्थनिष्ठ तक्षणादिव्यापार की इच्छा के अनुकूल इच्छा है 'यूप बने' यह इच्छा ('दारु से खम्भा बने' यह इच्छा होने के कारण ही दारु का तक्षण वग़ैरह किया जाता है या किया जाना है) इस इच्छा का विषयत्व यूप में है, यही दारु का यूप में प्रयोजनत्व है। दारु का तादर्थ्य यूपादिप्रयोजनकत्व है, तदिच्छाधीनेच्छाविषयव्यापाराश्रयत्व रूप है । यूपेच्छा है 'यूप बने' यह इच्छा, इस इच्छा के अधीन इच्छा है 'दारु का तक्षणादि किया जाये' यह इच्छा । इच्छा के विषय व्यापार का आश्रयत्व दारु में है, यही दारु का यूपादिप्रयोजनकत्व है। इस प्रकार यहाँ पर चतुर्थी का अर्थ होता है इच्छाधीनेच्छाविषय व्यापाराश्रयत्व । यूप

का प्रथम इच्छा में विषयता सम्बन्ध से अन्वय होगा । इस तरह 'यूपाय दारु' से 'यूपविषयतानिरूपकेच्छाधीनेच्छाविषयतक्षणादि व्यापाराश्रयो दारु' 'यूपविषयता निरूपक इच्छाधीनेच्छाविषय तक्षणादि व्यापार का आश्रय दारु है' ऐसा शाब्दबोध होता है। इसी प्रकार 'रन्धनाय स्थाली' यहाँ पर 'रन्धनविषयतानिरूपकेच्छाधीनेच्छाविषय तण्डुलधारणादिव्यापाराश्रया स्थाली' 'रन्धन विषयतानिरूपक इच्छाधीनेच्छाविषय तण्डुल-धारणादिव्यापार की आश्रय स्थाली है' ऐसा शाब्दबोध होता है।

पुण्यादेः स्वर्गेच्छाधीनेच्छाविषयव्यापारानाश्रयतया न 'स्वर्गाय पुण्यम्' इत्यादिप्रयोगः। व्रजनादेः पाकानुकूलव्यापारानाश्रयतया न 'पाकाय व्रजति' इत्यादावनेन चतुर्थीति 'तुमर्थाच्च' इत्यादिसूत्रम्। तदर्थश्च- 'तुमुन्नन्तयद्धातुना यादृशोऽर्थः प्रत्याय्यते समभिव्याहृतक्रियान्विततदर्थपरात् तद्धातु घटितभावकृदन्ताच्चतुर्थी' इति। 'पक्तुं व्रजति' इत्यत्र तुमुन्नन्तेन व्रजने पाकसमान कर्तृकत्वसहिततदिच्छाधीनेच्छाविषयत्वं बोध्यते ''तुमुन् ण्वुलौ'' इति सूत्रेण समभिव्याहृतक्रियायां प्रकृतक्रियासमानकर्तृकत्वसहिततदिच्छाधीनेच्छा विषयत्वरूपतदर्थकत्वेन विवक्षितायां तुमुन्ण्वुलोर्विधानात् । एतत्सूत्रस्यापि 'स्वर्गाय पुण्यम्' इत्यादिर्न विषयः इति सोऽसाधुरेव।

पुण्यादि के स्वर्गेच्छाधीनेच्छाविषय व्यापार का आश्रय न होने के कारण 'स्वर्गाय पुण्यम्' इत्यादि प्रयोग नहीं होते हैं। व्रजनादि के पाकानुकूलव्यापार का आश्रय न होने के कारण 'पाकाय व्रजति' इत्यादि स्थलों में इससे ('तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या' वार्तिक से) चतुर्थी नहीं होती है इसलिए 'तुमर्थाच्च भाववचनात्' सूत्र है। उक्त सूत्र का अर्थ है— 'तुमुन्नन्त जिस धातु से जैसा अर्थ प्रत्याय्यित होता है समभिव्याहृत क्रियान्वित तदर्थपरक तद्धातुघटित भावकृदन्त से चतुर्थी होती है' 'पक्तुं व्रजति' यहाँ पर तुमुन्नन्त से व्रजन में पाक समानकर्तृकत्वसहित पाकेच्छाधीनेच्छाविषयत्व बोधित होता है, क्योंकि 'तुमुन्ण्वुलौ' पा० सू० 3/3/10 के द्वारा समभिव्याहृत क्रिया प्रकृतक्रिया समानकर्तृकत्वसहित तदिच्छा धीनेच्छाविषयत्व रूप से विवक्षित होने पर तुमुन् और ण्वुल् का विधान किया जाता है। इस प्रकार तुमुन्नन्त पच् धातु के द्वारा पाकसमानकर्तृकत्वसहित पाकेच्छाधीनेच्छाविषयत्व बोधित होता है, अतः समभिव्याहृत व्रजनक्रिया से अन्वित पाकसमानकर्तृकत्वसहित पाकेच्छाधीनेच्छाविषयत्व अर्थ बताने के लिए पच् धातुघटित भावकृदन्त पाक से चतुर्थी होती है और 'पाकाय व्रजति' प्रयोग होता है। इस सूत्र का भी चूँकि 'स्वर्गाय पुण्यम्' इत्यादि विषय नहीं है, इसलिए वह असाधु ही है। 'पाकाय व्रजति' से शाब्दबोध कैसा होगा, यह आगे उपपादित किया जायेगा।

'एधानाहर्तुं व्रजति' इत्यर्थे 'एधेभ्यो व्रजति' इत्यत्रैधस्य न व्रजन-प्रयोजनत्वम् सिद्धतया व्रजनेच्छानुकूलेच्छाया अविषयत्वात्, व्रजनस्य तदनुकूलव्यापारानाश्रयत्वाच्चेति न 'तादर्थ्ये' इति सूत्रस्य प्रवृत्तिर्नापि ''तुमर्थात्'' इत्यादेः–एधपदस्य क्रियारूपभाववचनत्वाभावादिति तत्र

'क्रियार्थोपपदस्य'' इति चतुर्थी, तदर्थश्च-'क्रियार्थोपपदस्तुमुन्नन्तो यो धातुरप्रयुक्तस्य तस्य यत् कर्म = तत्प्रयोगं विना तदर्थकर्मतया यद्विवक्षितं तद्वाचकपदाच्चतुर्थी इति तत्र च 'आहर्तुम्' इति तुमुन्नन्तार्थः समभिव्याहृत क्रियान्वयि स्वार्थकर्मत्वान्वय्याहरणं तादृशार्थकर्मतयैधस्य विवक्षितत्वाच्चतुर्थी, चतुर्थ्या एवार्थः– तत्कर्मकाहरणप्रयोजनकत्वम्।

'एधानाहर्तुं व्रजति' इन्धनों को लाने के लिए जाता है' इस अर्थ में प्रयुक्त **'एधेभ्यो व्रजति'** 'इन्धनों के लिए जाता है' यहाँ पर इन्धन का गमनप्रयोजनत्व नहीं है क्योंकि इन्धन सिद्ध होने के कारण गमनेच्छानुकूल इच्छा का अविषय है और गमन इन्धनानुकूलव्यापार का आनाश्रय है। इस कारण यहाँ पर **''तादर्थ्ये'** इस सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती है और न **'तुमर्थाच्च भाववचनात्'** सूत्र की प्रवृत्ति ही यहाँ पर होती है क्योंकि एधपद क्रियारूप भाववचन (क्रियारूप भाव को बोधित करने वाला) नहीं है। अभिप्राय यह है कि **'एधेभ्यो व्रजति'** यहाँ पर एध पद से **'तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या'** इस सूत्र (वार्तिक) से चतुर्थी इसलिए नहीं हो सकती है क्योंकि एध गमन (व्रजन) का प्रयोजन नहीं है गमनेच्छानुकूलेच्छा का विषय नही है) और गमनानुकूलव्यापार का आश्रय नहीं है **'यूपाय दारु'** में यूप दारु का प्रयोजन है दारु इच्छा (तक्षणादि इच्छा) के अनुकूल इच्छा का विषयत्व यूप में है यही यूप का प्रयोजनत्व है। इसलिए यूप से चतुर्थी होती है। **'एधेभ्यो व्रजति'** यहाँ पर **'तुमर्थाच्च भाववचनात् पा.सू. 2/3/15'** से भी चतुर्थी नहीं हो सकती है। क्योंकि एधपद यदि भाववचन होता क्रियावाचक होता, तब तो एध पद से चतुर्थी हो सकती थी। किन्तु एध पद भाववाचक है नहीं । अतः इस सूत्र से भी चतुर्थी एध पद से नहीं हो सकती है।

इसलिए वहाँ पर **'एधेभ्यो व्रजति'** यहाँ पर एध पद से **'क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः पा. सू. 2/3/14'** इस सूत्र से चतुर्थी होती है। इस सूत्र का अर्थ है क्रियार्थोपपद तुमुन्नन्त जो धातु अप्रयुक्त उस धातु का जो कर्म उसके प्रयोग के विना तदर्थकर्मतया जो विवक्षित हो तद्वाचकपद से चतुर्थी होती है। **'एधेभ्यो व्रजति'** यहाँ पर **आहर्तुम्** यह तुमुन्नन्तार्थ है समभिव्याहृत क्रिया से अन्वयी स्वार्थ कर्मत्व से अन्वयी आहरणसमभिव्याहृतक्रिया व्रजनक्रिया से अन्वयी एधकर्मत्व से अन्वयी आहरण ही तुंमुन्नन्तार्थ है। तुमुन्नन्तार्थ है आहरण और समभिव्याहृत क्रिया व्रजनक्रिया से अन्वयी एध कर्मत्व से अन्वयी आहरण के कर्मतया एध के विवक्षित होने के कारण एध पद से चतुर्थी होती है। चतुर्थी का ही अर्थ है तत्कर्मक आहरण प्रयोजनकत्व।

अभिप्राय यह है कि **'एधानाहर्तुं व्रजति'** इस अर्थ में **एधेभ्यो व्रजति'** प्रयोग हुआ करता है। इसमें एध पद का अर्थ एध, द्वितीया का अर्थ कर्मत्व, तुमुन्नन्त का अर्थ है व्रजन क्रियान्वयी एधकर्मत्वान्वयी आहरण अर्थात् एध कर्मत्व का अन्वय आहरण में होता है और आहरण का अन्वय व्रजनक्रिया में होता है। इस प्रकार **'एधकर्मकाहरण प्रयोजनकव्रजनक्रियाश्रयः'** 'एधकर्मक आहरण प्रयोजनक व्रजनक्रिया का आश्रय है'

ऐसा शाब्दबोध हुआ करता है। आहर्तुं इस तुमुन्नन्त का प्रयोग किये विना तुमुन्नन्त कर्मतया एध विवक्षित है । अतः एध पद से चतुर्थी **'क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः'** पा॰ सू॰ 2/3/14 से होतीी है। तथा चतुर्थी का ही अर्थ होता है तत्कर्मकाहरण प्रयोजनकत्व। इसमें एध का कर्म में अन्वय होता है और प्रयोजनकत्व का व्रजन में अन्वय होता है। इस प्रकार **'एधेभ्यो व्रजति'** से **'एधकर्मकाहरणप्रयोजनकव्रजनक्रियाश्रयः'** शाब्दबोध होता है। इसमें रेखाङ्कित अंश चतुर्थ्यर्थ है।

'पाकाय व्रजति' इत्यादौ 'पाकं कर्तुं' इत्यर्थविवक्षायामनेनैव सूत्रेण चतुर्थ्युपपत्तावपि यदा पाककृतीच्छाधीनेच्छाविषयत्वरूपं पाककर्मककरण-प्रयोजनकत्वं न व्रजनस्य विवक्षितमपि तु पाकेच्छाधीनेच्छाविषयत्वरूपं पाकार्थत्वमेव तत्रापि चतुर्थ्युपपत्तये 'तुमर्थात्' इति सूत्रम् ।

'पाकाय व्रजति' 'पाक के लिए जाता है' इत्यादि स्थलों में **'पाकं कर्तुं'** इस अर्थ की विवक्षा में इसी सूत्र **'क्रियार्थोपपदस्य'** से ही चतुर्थी की उपपत्ति होने पर भी जब पाककृतीच्छाधीन इच्छा विषयत्व रूप पाककर्मक करण प्रयोजनकत्व व्रजन का विवक्षित नहीं है अपितु पाकेच्छाधीनेच्छाविषयत्व रूप पाकार्थकत्व ही विवक्षित है वहाँ पर चतुर्थी की उपपत्ति के लिए **'तुमर्थाच्च भाववचनात्'** पा॰ सू॰ 2/3/15 सूत्र है। अभिप्राय यह है कि **'पाकाय व्रजति'** यह प्रयोग दो अर्थों में होता है व्रजन में पाककृतीच्छाधीनेच्छाविषयत्व-रूप पाककर्मककरणप्रयोजनकत्व विवक्षित होने पर अथवा पाकेच्छाधीनेच्छविषयत्वरूप पाकार्थकत्व विवक्षित होने पर ।**'तुमर्थात्'** सूत्र न होने पर व्रजन में पाककृतीच्छाधीनेच्छा विषयत्वरूप पाककर्मककरणप्रयोजनकत्व विवक्षित होने की स्थिति में तो **'क्रियार्थोपपदस्य'** से चतुर्थी हो जायेगी किन्तु व्रजन में पाकेच्छाधीनेच्छाविषयत्व रूप पाकार्थकत्व विवक्षित होने पर चतुर्थी नहीं हो पायेगी। इसलिए **'तुमर्थत्'** सूत्र है कि उस अर्थ में भी चतुर्थी हो सके।

'अंश्वाय घासः' इत्यादावश्वपदस्याश्वभोजनपरतया तादर्थ्यचतुर्थ्येव 'आह्रियते' इत्यस्याध्याहारेण 'अश्वं भोजयितुमाह्रियते' इत्यर्थविवक्षया "क्रियार्थोपपद" इत्यादिसूत्रेण चतुर्थ्युपपत्त्याऽश्वपदस्य मुख्यार्थपरत्वो-पपादनेऽपि 'अश्वघासः' इत्यत्राश्वपदस्य तद्भोजनपरतायास्तादर्थ्य चतुर्थ्याश्चावश्यकता, अन्यथाऽऽहृतपदसापेक्षतया चतुर्थीसमासानुपपत्तेः।

'अश्वाय घासः' 'अश्व के लिए घास इत्यादिस्थलों में अश्व पद के अश्वभोजन परक होने के कारण तादर्थ्य चतुर्थी ही है। **'आह्रियते'** इसका अध्याहार करने से **'अश्वं भोजयितुमाह्रियते'** 'अश्व को खिलाने के लिए घास लायी जा रही है' इस अर्थ की विवक्षा करके **'क्रियार्थोपपद...'** इत्यादि सूत्र से चतुर्थी की उपपत्ति होने से अश्व पद का मुख्यार्थ परत्वोपपादन होने पर भी (अश्व को अश्व भोजन में लाक्षणिक न मानने पर भी यहाँ पर काम चल सकता है फिर भी) **'अश्वघासः'** यहाँ पर अश्व पद की अश्वभोजन परता और तादर्थ्य चतुर्थी की आवश्यकता है अन्यथा आहृत पद सापेक्ष होने के कारण चुतर्थी समास

की अनुपपत्ति होगी। अभिप्राय यह है कि '**अश्वाय घासः**' यह प्रयोग तो दोनों तरह से सम्भव है चाहे अश्वपद को अश्वभोजन परक मानकार तादर्थ्य चतुर्थी अश्व पद से करो चाहे '**आह्रियते**' इस क्रिया पद का अध्याहार करके '**अश्वं भोजयितुमाह्रियते**' इस अर्थ में '**क्रियार्थोपपदस्य..**' इत्यादिसूत्र से चतुर्थी की उपपत्ति करें और अश्व पद को अश्वार्थक ही मानें। किन्तु '**अश्वघासः**' यह समस्त प्रयोग अश्व पद को अश्वभोजन परक माने बग़ैर और अश्वपद से तादर्थ्य चतुर्थी किये बग़ैर नहीं हो सकता है। क्योंकि क्रियार्थोपपद के अभिप्राय से यदि अश्व से चतुर्थी होगी तो अश्व पद आहृतपद सापेक्ष होगा, इस प्रकार समासाघटकपद-सापेक्ष होने के कारण अश्वपद असमर्थ हो जायेगा। असमर्थ का तो समास होता नहीं है। अतः तादर्थ्य चतुर्थी और अश्वपद को अश्व भोजन में लाक्षणिक मानने पर ही **अश्वघासः** सिद्ध हो सकता है।

न च तथापि समासानुपपत्तिः- 'रन्धनाय स्थाली' इत्यादौ तद्वारणाय "चतुर्थी तदर्थार्थ" इति सूत्रेण चतुर्थीसमासे प्रकृतिविकारभावस्य नियामकत्वानुसरणादिति वाच्यम्; आवासगृहाश्वघासादौ 'चतुर्थी' इति योगविभागेन शाब्दिकैः समासोपपादनात् ।

यदि कहो कि फिर भी समास की अनुपपत्ति है, **अश्वघासः**' यहाँ पर अश्व पद के अश्वभोजन परक और तादर्थ्य चतुर्थी होने पर भी समास नहीं हो सकेगा क्योंकि '**रन्धनाय स्थाली**' 'स्थाली रांधने के लिए है' इत्यादि स्थलों में समास वारण करने के लिए '**चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः**' **पा॰ सू॰ 2/1/36** इस सूत्र के द्वारा चतुर्थी समास में प्रकृति विकृतिभाव के ही नियामकत्व का अनुसरण किया गया है। अभिप्राय यह है कि जैसे '**रन्धनाय स्थाली**' '**अवहननाय उलूखलम्**' इत्यादिस्थलों में इस सूत्र से चतुर्थी समास नहीं हुआ करता है क्योंकि इस सूत्र से तदर्थार्थचतुर्थीसमास प्रकृतिविकृतिभावस्थल में ही होता है। उसी प्रकार '**अश्वाय घासः**' यहाँ पर भी इस सूत्र से समास नहीं हो सकेगा। क्योंकि अश्व पदार्थ अश्वभोजन और घास में प्रकृतिविकृतिभाव नहीं है। तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि '**आवासगृहम्**' '**अश्वघासः**' इत्यादि स्थलों में '**चतुर्थी**' इस प्रकार योगविभाग करके शाब्दिकों के द्वारा समास का उपपादन किया गया है[1]।

नमः स्वस्त्यादिशब्दयोगेऽपि तदर्थविशेषणवाचकपदात् "नमः स्वस्ति" इत्यादिसूत्रेण चतुर्थ्यनुशिष्यते। नमः शब्दार्थस्त्यागो नमस्कारश्च । 'एषोऽर्घ्यः शिवाय नमः' इत्यादौ त्यागार्थको नमःशब्दः, चतुर्थ्या च तत्र प्रकृत्यर्थस्य शिवादेरुद्देश्यत्वं प्रत्याय्यते। त्यागश्च यदि 'शिवस्यायं भवतु' इत्यादिफले-च्छाधीनस्वस्वत्वाभावेच्छारूपस्तदा त्यागोद्देश्यत्वं त्यागजनकेच्छाया स्वत्व-भागितया विषयत्वम् यदि च त्यागरूपेच्छैव स्वस्वत्वाभावमिवान्यदीयत्वेन

1. इस स्थल में सिद्धान्तकौमुदीकार भट्टोजिदीक्षित का कहना है कि 'अश्वघासादयस्तु षष्ठीसमासाः' काशिकाकार ने अपना कोई मत नहीं दिया है। इस प्रकार गदाधर का कथन भट्टोजिदीक्षित से विरुद्ध जान पड़ता है। अतः विचारणीय है।

त्यज्यमानगतं स्वत्वमपि तत्र विषयीकरोति न तु तज्जनकेच्छा तदा स्वत्वभागितया त्यागविषयत्वमेव तदुद्देश्यत्वम् । शिवादेर्विग्रहवत्त्वेऽपि स्वीकाराभावात् तदाकारतया ध्यातमन्त्रस्य त्यागोद्देश्यतामते तदभावाच्च त्यज्यमानोपचारादौ स्वत्वाभावेऽपि तदीयत्वेन तत्तद्द्रव्ये स्वत्वावगाहिनीच्छा विसंवादिरूपैव- द्रव्यनिष्ठेऽन्यदीयस्वत्वे बाधितं शिवादिनिरूपितत्वं शिवादिनिरूपितप्रसिद्धस्वत्वान्तरे वा बाधितं तत्तद् द्रव्यसम्बन्धमवगाहते।

नमः स्वस्ति आदि शब्दों का योग होने पर तदर्थ (नमः स्वस्ति आदि पदार्थ) विशेषणवाचक पदों से **'नमः स्वस्ति स्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च'** पा॰ सू॰ 2/3/16 के द्वारा चतुर्थी का अनुशासन होता है। नमः शब्द का अर्थ त्याग और नमस्कार है। **'एषोऽर्घ्यः शिवाय नमः'** इत्यादि स्थलों में नमः शब्द त्यागार्थक है और चतुर्थी के द्वारा वहाँ पर प्रकृत्यर्थ शिव आदि का उद्देश्यत्व प्रत्याय्यित होता है। अर्थात् शिवोद्देश्यकत्याग बोधित होता है। इसमें त्याग नमः पदार्थ है और उद्देश्यत्व शिवपदोत्तर चतुर्थी का अर्थ है। त्याग यदि **'शिवस्यायं भवतु'** 'यह शिव का होवे' इत्यादि फलेच्छा के अधीन स्वस्वत्वाभावेच्छारूप है तो त्यागोद्देश्यत्व त्यागजनक इच्छा का स्वत्वभागितया विषयत्व होगा अर्थात् त्यागोद्देश्यत्व का अर्थ होगा त्यागजनक इच्छा का स्वत्वभागितया विषयत्व । तथा यदि त्याग रूप इच्छा ही स्वस्वत्वाभाव ही तरह अन्यदीयत्वेन त्यज्यमानगत स्वत्व को भी वहाँ पर विषय करती है, त्यागजनक इच्छा स्वस्वत्वाभाव की तरह अन्य दीयत्वेन त्यज्यमान गत स्वत्व को नहीं विषय करती है। तो स्वत्वभागितया त्यागविषयत्व ही त्यागोद्देश्यत्व है। शिवादि के विग्रहवान् होने पर भी शिव के द्वारा द्रव्यादिस्वीकार न होने के कारण, शिवाकारतया ध्यातमन्त्र की त्यागोद्देश्यता मत में शिवादि के विग्रहवत्त्व का भी अभाव होने से त्यज्यमानद्रव्य उपचार आदि में स्वत्व का अभाव होने पर भी तदीयत्वेन (शिवीयत्वेन) तत्तद्द्रव्य में स्वत्व का अवगाहन करने वाली इच्छा विसम्वादि रूपा ही होती है, वह इच्छा द्रव्यनिष्ठ अन्यदीयस्वत्व में बाधित जो शिवादिनिरूपितत्व अथवा शिवादिनिरूपित प्रसिद्धस्वत्वान्तर में बाधित तत्तद्द्रव्यसम्बन्ध का अवगाहन करती है।

यहाँ पर गदाधर का आशय यह है- नमः शब्द का दो अर्थ होता है त्याग और नमस्कार । नमस्कार अर्थ के बारे में आगे के पृष्ठों में बतलायेंगे । अभी त्याग अर्थ के विषय में बताया जा रहा है। त्याग के दो अर्थ हो सकते हैं शिवादिस्वत्वेच्छाधीन-स्वस्वत्वाभावेच्छा अथवा स्वस्वत्वाभाव शिवस्वत्व विषयकेच्छा। यदि शिवादिस्वत्वेच्छाधीनस्वस्वत्वाभावेच्छा त्याग हो, तो शिवादिस्वत्वेच्छा 'यह शिव का होवे' ऐसी इच्छा है, इस इच्छा के अधीन इच्छा है 'यह मेरा न रहे' यह स्वस्वत्वाभावेच्छा। इस पक्ष में शिव का त्यागोद्देश्यत्व है —त्याग (स्वस्वत्वाभावेच्छा) जनक इच्छा (शिवस्वत्वेच्छा) का स्वत्वभागितया विषयत्व। 'यह शिव का होवे' यह जो त्यागजनक इच्छा है इस इच्छा के स्वत्वभागितया विषय शिव ही हो रहे हैं। इस कारण शिव का त्यागोद्देश्यत्व उपपन्न होता है। यदि द्वितीय पक्ष हो, स्वस्वत्वाभाव शिवस्वत्वविषयक इच्छा ही त्याग हो, स्वस्वत्वाभाव के साथ

अन्यदीयस्वत्व को भी इच्छा विषय करे तो इस पक्ष में स्वत्वभागितया इच्छाविषयत्व ही (त्यागात्मक इच्छा विषयत्व ही) शिवादि का उद्देश्यत्व है। यह भी सूपपन्न है।

किन्तु अब उसमें एक समस्या है, अभी जो प्रतिपादित किया गया तदनुसार नमः पदार्थ त्याग में (उक्तेच्छा में) चतुर्थी के द्वारा शिवादि का उद्देश्यत्व बोधित होता है। किन्तु शिवादि का स्वत्व तो अर्घ्यादि दीयमान वस्तु में उत्पन्न नहीं हो सकता है क्योंकि शिव के विग्रहवान् होने पर भी स्वीकार तो उनके द्वारा किया नहीं जाता है, तथा शिवाकारतया ध्यातमन्त्र की त्यागोद्देश्यता के मत में तो शिव का विग्रहवत्त्व भी नहीं है। इस कारण इच्छा अप्रसिद्ध होने के कारण 'शिवादि निरूपितस्वत्व' को कैसे विषय करेगी? इस समस्या का समाधन गदाधर यह दे रहे हैं कि तत्तद् द्रव्य में स्वत्व का अवगाहन करने वाली इच्छा विसंवादिरूपा ही होती है, जो नहीं है उसी वस्तु को अवगाहन करने वाली होती है। इस प्रकार द्रव्यनिष्ठ अन्यदीय स्वत्व में बाधित शिवादिनिरूपितत्व का अथवा शिवादिनिरूपित प्रसिद्ध स्वत्वान्तर में बाधित तत्तद्द्रव्य सम्बन्ध का अवगाहन करती है।

न च स्वत्वान्तररूपफलेच्छां विना स्वस्वत्वाभावगोचरेच्छैव न सम्भवतीति 'शिवादिस्वत्वं त्यागस्यैव विषयः' इति पक्षोऽसम्भवदुक्तिक इति वाच्यम्; स्वस्वत्वाभावविषयकेच्छायाः पुण्यादिरूपफलजनकत्वात् तद्विषयस्य पुण्यादिजनकतावच्छेदकस्यापि पुण्यादिफलकत्वात्, अन्यथा तत्स्वत्वस्यापीष्टान्तराऽजनकतया स्वतोऽपुरुषार्थतया च प्रथममपि तदिच्छाया असम्भवेन प्रथमकल्पस्यापि हेयत्वापातात्। तत्र च प्रथमकल्पे स्वत्व प्रकारके-च्छाजन्यत्वं जन्यतासम्बन्धेन त्यागान्वयिनी तादृशेच्छैव वा चतुर्थ्यर्थस्तत्र प्रकृत्य-र्थस्य शिवादेर्विषयिताविशेषसम्बन्धेनान्वयः। द्वितीयकल्पे च विषयिताविशेष एव चतुर्थ्यर्थस्तत्र च निरूपितत्वसम्बन्धेन शिवादेरन्वयः, नमः पदार्थत्यागस्य च विषयताविशेषसम्बन्धेन द्रव्येऽन्वयः, द्रव्यस्यैव वा विशेष्यतया भासमानत्यागे विषयिताविशेषसम्बन्धेनान्वयः।

यदि कहो कि स्वत्वान्तररूप फलेच्छा के विना स्वस्वत्वाभावगोचरेच्छा ही सम्भव नहीं है, इस कारण 'शिवादिस्वत्व त्याग का ही विषय है' यह पक्ष (द्वितीय पक्ष) असम्भवदुक्तिक है। अभिप्राय यह कि त्यागरूपा इच्छा (स्वस्वत्वाभाव विषयक इच्छा) तभी उत्पन्न हो सकती है यदि स्वत्वान्तररूप फल की इच्छा पूर्व में हो, जब तक किसी और को देने की इच्छा, किसी और का यह हो जाये ऐसी इच्छा नहीं होती है तब तक स्वस्वत्वाभावविषयक इच्छा उत्पन्न नहीं हुआ करती है। इसलिए यही पक्ष उचित जान पड़ता है कि पूर्व में शिवादि स्वत्वेच्छा होती है और उस इच्छा के अधीन स्वस्वत्वाभावेच्छा होती है। स्वस्वत्वाभावेच्छा ही शिवादिस्वत्व को भी विषय करती है यह पक्ष अनुचित जान पड़ता है।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए स्वस्वत्वाभावविषयक इच्छा के पुण्यादिरूप फल जनक होने के कारण इच्छाविषय स्वस्वत्वाभाव पुण्यादिजनकतावच्छेदक भी पुण्यादि

फलक होता है। अन्यथा तत्स्वत्व (शिवादिस्वत्व) के भी इष्टान्तर का जनक न होने के कारण स्वतः अपुरुषार्थ होने से (अप्रयोजन होने से) प्रथम भी तदिच्छा (शिवस्वत्वेच्छा) के असम्भव होने के कारण प्रथम कल्प भी हेय हो जायेगा।

यहाँ पर समाधान कर रहे हैं। द्वितीय पक्ष में आपत्ति उठानेवाले का आशय है कि अनायास ही स्वस्वत्वाभावविषयक इच्छा नहीं हो सकती है उसके लिए कोई कारण शिवादिस्वत्वेच्छा होनी चाहिए। समाधाता कह रहा है कि यह तो ठीक है कि कोई कारण इस इच्छा के लिए होना चाहिए किन्तु इससे यह कहाँ से लब्ध होता है कि स्वत्वान्तरेच्छा होनी चाहिए। क्योंकि इस मत में जैसे स्वत्वान्तरेच्छा पूर्व में नहीं है अतः स्वस्वत्वाभावेच्छा अनुपपन्न है। उसी प्रकार प्रथम कल्प में शिवादिस्वत्वेच्छा अनुपपन्न है। कारण यह है कि शिवादिस्वत्व तो स्वतः पुरुषार्थ नहीं है इसलिए शिवादिस्वत्वेच्छा ही नहीं उत्पन्न हो सकेगी। पुरुषार्थ (इष्ट) विषयिणी ही इच्छा उत्पन्न हो सकती है। शिवादिस्वत्व तो इष्टान्तर को उत्पन्न नहीं करता है। इस तरह चूँकि स्वस्वत्वाभावविषयक इच्छा पुण्यादिरूप फल जनक है। इसलिए स्वस्वत्वाभाव पुण्यजनकतावच्छेदक है। इसलिए स्वस्वत्वाभाव पुण्य फलक होने से इष्ट है। अथः स्वत्वान्तरेच्छा न होने पर भी स्वस्वत्वाभावविषयक इच्छा होने में कोई आपत्ति नहीं है। इस प्रकार दोनो ही पक्ष सम्भव है।

उसमें प्रथम कल्प में स्वत्वप्रकारक इच्छा जन्यत्व अथवा जन्यता सम्बन्ध से त्याग से अन्वयिनी तादृशेच्छा (शिवादिस्वत्वेच्छ) ही चतुर्थी का अर्थ है। उसमें प्रकृत्यर्थ शिवादि का विषयिताविशेष सम्बन्ध से अन्वय होता है। द्वितीयकल्प में विषयिताविशेष ही चतुर्थी का अर्थ है और उसमें निरूपितत्व सम्बन्ध से शिवादि का अन्वय होता है। नमः पदार्थ त्याग का विषयताविशेष सम्बन्ध से द्रव्य में अन्वय होता है अथवा द्रव्य का ही विशेष्यतया भासमान त्याग में विषयिताविशेष सम्बन्ध से अन्वय होता है।

इस प्रकार **'एषोऽर्घ्यः शिवाय नमः'** इस वाक्य से प्रथम कल्प में **'शिवनिरूपितस्वत्वप्रकारकेच्छाजन्यत्यागविषयताश्रयः प्रत्यक्षबुद्धिविषयीभूतोऽर्घ्यः'** 'शिवनिरूपितस्वत्वप्रकारकेच्छाजन्यत्यागविषय प्रत्यक्षबुद्धिविषय अर्घ्य है' या **'शिवविषयिताशालिस्वत्वेच्छाजन्यः प्रत्यक्षबुद्धिविषयार्घ्यविषयिताशालित्यागः'** 'शिवविषयिताशालिस्वत्वेच्छाजन्य प्रत्यक्षबुद्धिविषयद्रव्य विषयक त्याग है' ऐसा शाब्दबोध होता है। द्वितीय कल्प में **'शिवनिरूपितविषयिताविशेषशालित्यागविषयः प्रत्यक्षबुद्धि विषयोऽर्घ्यः'** या **'शिवनिरूपितविषयिताविशेषशाली प्रत्यक्षबुद्धिविषयार्घ्यविषयकस्त्यागः'** 'शिवनिरूपितविषयिताविशेषशालि त्याग का विषय प्रत्यक्ष बुद्धिविषय अर्घ्य है' अथवा 'शिवनिरूपित विषयिताविशेषशाली प्रत्यक्षबुद्धिविषय अर्घ्यविषयक त्याग है' ऐसा शाब्दबोध होता है।

न च प्रथमान्तपदार्थस्य मुख्यविशेष्यतानियमः— 'भूतले न घटः' इत्यादौ निपातार्थस्यापि मुख्यविशेष्यतया भानात् । 'शिवायोत्सृजति' इत्यादाविव नात्रानिराकतृसम्प्रदानता— त्यागपदार्थस्य क्रियात्वाभावात् ।

यदि कहो 'प्रथमान्त पदार्थ की ही मुख्यविशेष्यता होती है' ऐसा नियम है। आप यहाँ पर त्याग को मुख्य विशेष्य बना रहे है वह कैसे सम्भव है? तो ऐसा नहीं है **'भूतले न घटः'** 'भूतल पर घट नहीं है' उत्यादि स्थलों में निपातार्थ (नञर्थ) का भी मुख्यविशेष्यतया भान होता है। अर्थात् साधारणतया तो प्रथमान्तार्थ का ही मुख्य विशेष्यतया भान होता है किन्तु प्रथमान्तार्थ का ही मुख्य विशेष्यतया भान होता है ऐसा नियम नहीं है। जैसे यहाँ पर नञ् का अर्थ अभाव मुख्यविशेष्य बनकर भासता है और **'घटाभावो भूतलवृत्तिः'** ऐसा शाव्दबोध होता है। उसी प्रकार **'एषोऽर्घ्यः शिवाय नमः'** में नमः पदार्थ त्याग का भी मुख्यविशेष्यतया भान हो सकता है। यहाँ पर **'शिवायोत्सृजति'** 'शिव के लिए उत्सर्जित करता है' की तरह शिव की अनिराकर्तृ सम्प्रदानता[1] नहीं है क्योंकि त्यागपदार्थ यहाँ पर क्रिया नहीं है। त्याग पदार्थ यहाँ पर इच्छा रूप होने के कारण गुण है क्रिया नहीं । उत्सर्जन तो क्रिया है इसलिए **'शिवायोत्सृजति'** में शिव की सम्प्रदानता (अनिराकर्तृसम्प्रदानता) बन जाती है। किन्तु यहाँ पर शिवादि की अनिराकर्तृसम्प्रदानता नहीं है।

नमः पदेन च स्वप्रयोक्तृपुरुषकर्तृत्वोपरागेणैव त्यागोऽभिधीयते– अन्योच्चरितनमःपदेनान्यदीयत्यागाबोधनात् तत्पुरुषोच्चरितनमःपदात् त्यागबोधे सति त्यागे त्यज्यमानेद्रव्ये चान्यदीयत्वसंशयानुदयात् । अत एव त्यागे तदीयत्वबोधनाय 'अहं ददे' इत्यादिवत् 'अहं नमः' इति न प्रयुज्यते, न वा परकीयत्वबोधनाय 'चैत्रो नमः' इत्यादि। ऋत्विजा च यजमानरूप पुरुषान्तरीयतत्तद्द्रव्यत्यागे स्वीयत्वमारोप्यैव पूजायां नमः पदं प्रयुज्यते, स चारोपस्तस्य विशेषदर्शनदशायामपि आहार्यतयोपपद्यत इति प्रतिनिधि प्रयुक्तस्य दानवाक्यस्येव पूजायां तादृशनमःपदघटितवाक्यस्य बाधितार्थत्वेप्यदृष्टजनकत्वं न विरुद्धम् ।

नमः पद के द्वारा स्वप्रयोक्तृ पुरुषकर्तृत्वोपराग से ही (नमः पद का प्रयोग करने वाले व्यक्ति के कर्तृत्व के उपराग से ही) त्याग का अभिधान होता है क्योंकि अन्योच्चरित नमः पद से अन्यदीय त्याग का बोध नहीं होता है। तत्पुरुषोच्चरित नमः पद से त्याग का बोध हो जाने पर त्याग में और त्यज्यमान द्रव्य में अन्यदीयत्व संशय का उदय नहीं होता है। इसी कारण ही त्याग में तदीयत्व का बोध कराने के लिए **'अहं ददे'** 'मैं देता हूँ' इत्यादि की तरह **'अहं नमः'** ऐसा प्रयोग नहीं किया जाता है। और न तो परकीयत्व का

---

1. 'अनिराकरणात् कर्तुस्त्यागाङ्गं कर्मणेप्तितम् ।
प्रेरणानुमतिभ्याञ्च लभते सम्प्रदानताम् ।।,

कर्ता का निराकरण न करने से त्यागाङ्ग जो कर्म से ईप्सित होता है वह सम्प्रदानता को प्राप्त करता है, इसी प्रकार प्रेरण व अनुमति से भी सम्प्रदानता को प्राप्त करता है। जैसे 'सूर्याय अर्घ्यं ददाति' यहाँ पर न सूर्य प्रार्थना करता है न निराकरण करता है किन्तु सूर्य की अनिराकर्तृसम्प्रदानता होती है। इसी प्रकार यह भी है। द्रष्टव्य प्रभादर्पण सहित भूषणसार पृ. 218-219

बोधन करने के लिए **'चैत्रो नमः'** इत्यादि प्रयोग किया जाता है। अभिप्राय यह है कि जैसे अस्मत् शब्द का प्रयोग करने पर उच्चारयिता पुरुष बोधित होता है, उसी प्रकार से नमः पद का प्रयोग करने पर जो त्याग बोधित होता है वह उच्चारयितृपुरुषकर्तृत्वोपराग से बोधित होता है। अर्थात् यदि चैत्र **'एषोऽर्घ्यः शिवाय नमः'** प्रयोग कर रहा है तो शाब्दबोध में चैत्रकर्तृकत्याग बोधित होगा, यदि मैत्र कर रहा है तो मैत्रकर्तृकत्याग बोधित होगा। इसके दो कारण हैं जिससे कि ग्रन्थकार ऐसा कह रहे हैं। प्रथमतः तत्पुरुषोच्चरित नमः पद से तत्पुरुषीयत्याग ही बोधित होता है जबकि तत्पुरुष का बोधक या उपस्थापक कोई पद नहीं है। द्वितीयतः तत्पुरुषोच्चरित नमः पद से त्याग का बोध हो जाने पर त्याग में और त्यज्यमानद्रव्य में अन्यदीयत्व का संशय नहीं होता । किन्तु इसमें एक समस्या है- यज्ञ, याग आदि में ऋत्विज् के द्वारा **'एषोऽर्घ्यः शिवाय नमः'** इत्यादि प्रयोग किया जाता है जबकि प्रयोक्ता पुरुष ऋत्विज् का अर्घ्य आदि द्रव्य में स्वत्व ही नहीं है। ऐसा कैसे होगा? जिसका स्वत्व होगा तदीय त्याग ही बोधित हो सकता है। इसका समाधान दे रहे हैं कि-ऋत्विज् के द्वारा यजमान रूप पुरुषान्तरीयतत्तद्द्रव्यत्याग में स्वीयत्व का आरोप करके ही पूजा में नमः पद का प्रयोग किया जाता है और वह आरोप उसके (उस पुरुष के-ऋत्विज् के) विशेषदर्शनदशा में भी (यह मेरा नहीं है यजमान का है ऐसा विशेषदर्शन होने की दशा में भी) आहार्य[1]तया उपपन्न होता है। इसलिए प्रतिनिधि से प्रयुक्त दानवाक्य की तरह पूजा में वैसे नमः पद घटित वाक्य के बाधितार्थक होने पर भी अदृष्टजनकत्व होना विरुद्ध नहीं है।

आशय यह है कि प्रतिनिधि का द्रव्य में स्वत्व न होने पर भी उसके द्वारा प्रयुक्त दानवाक्य जैसे अदृष्टजनक होता है, यद्यपि वह दानवाक्य बाधितार्थक है। उसी प्रकार यहाँ पर भी नमः पद का प्रयोग जब ऋत्विक् के द्वारा हो रहा है तो वह प्रयोग भी बाधितार्थक होने पर भी आहार्यतया उपपन्न होता है तथा अदृष्टजनक होता है। इसमें (बाधितार्थक होने और अदृष्टजनक होने में) कोई विरोध नहीं है।

अस्मच्छब्दादिवत् स्वोच्चारणकर्तृत्वोपलक्षितपुरुषविशिष्टवाचकान्नमःपदाद् विशेषरूपेण पुरुषभानम्। अशक्यस्य चैत्रत्वादेर्भानासम्भवे तस्यापि वाच्येऽन्तर्भावः स्वीकरणीयः। तदनुगमकञ्चोपलक्षणीभूतमेककालीनोभयावृत्त्युच्चारयितृशरीरजातित्वम्, स्वत्वाननुमगमेऽपि शक्त्यैक्यं कथञ्चिदुपपादनीयम् सर्वनामशक्त्यैक्यवत् ।

अस्मत् शब्दादि की तरह स्वोच्चारणकर्तृत्वोपलक्षित पुरुष विशिष्ट वाचक नमः पद से विशेषरूप से पुरुष का भान होता है। अर्थात् जैसे अस्मत् शब्द से स्वोच्चारण कर्ता (अस्मच्छब्दोच्चारण कर्ता) बोधित होता है उसी प्रकार नमः पद से स्वोच्चारणकर्तृत्वोपलक्षित पुरुष विशिष्ट त्याग बोधित होता है। अशक्य चैत्रत्व आदि का भान असम्भव होने से उसका

1. बाधकालीनेच्छाजन्यं ज्ञानमाहार्यम् । बाधकालीन इच्छा से जन्य ज्ञान को आहार्य कहा जाता है। जैसे बाध है कि वह द्रव्य मेरा नहीं है किन्तु इच्छा से उसे अपना मान लिया और उसका दान कर दिया। यह अपना मान लेना आहार्य ज्ञान है।

भी वाच्य में अन्तर्भाव स्वीकारना चाहिए। उस (चैत्रत्वादि) का अनुगमक उपलक्षणीभूत एककालीनोभयावृत्त्युच्चारयितृशरीरजातीयत्व है, स्वत्व का अनुगम न होने पर भी सर्वमान शक्त्यैक्यवत् कथंचित् शक्त्यैक्य उपपादित करना चाहिए।

अभी जो ग्रन्थकार ने प्रतिपादन किया है उसमें कहा गया कि नमः पद से स्वप्रयोक्तृपुरुषकर्तृत्वोपराग से ही त्याग का अभिधान होता है। किंतु समस्या यह है कि नमः शब्द की शक्ति जिसमें होगी उसी का नमः पद से बोधन सम्भव है। नमः पद की शक्ति चैत्रत्व मैत्रत्वादि में स्वीकारने पर शक्ति की अनन्तता होगी और न स्वीकारने पर उनका भान सम्भव नहीं होगा। इसलिए गदाधर ने कहा कि नमः पद की शक्ति चैत्रत्वादि में भी स्वीकारनी चाहिए और उन चैत्रत्वादि का अनुगमक है उपलक्षणीभूत एककालीनोभयावृत्त्युच्चारयितृ शरीरजातित्व, चैत्रत्वादि सभी एककालीनोभयावृत्त्युच्चारयितृ शरीरजाति हो जाते हैं। इस प्रकार चैत्रत्वादि का चैत्रत्वादि रूपेण प्रवेश न होने के कारण शक्ति का आनन्त्य नहीं होगा। तथा उपर्युक्त रीति से शक्ति स्वीकारने से शाब्दबोध में उनका भान भी हो सकेगा। किन्तु स्वोच्चारणकर्तृत्वोपलक्षित पुरुषविशिष्टत्याग का वाचक नमः पद को मानने पर स्वत्व के अनुगत न होने के कारण पुनः शक्ति की अनन्तता होगी। इसके लिए ग्रन्थकार का कहना है कि सर्वनामशक्ति के ऐक्य की तरह स्वत्व के अननुगत होने पर भी नमः पद की शक्ति का भी ऐक्य किसी तरह उपपादित करना चाहिए।

उपलक्षणरूपप्रविष्टमुच्चारणं वेदीयत्वेन विशेषणीयम्, अतः पूजाभिन्नयादृच्छिकान्नत्यागबोधनाय 'अन्नं नमः' इति न प्रयोगः। योग्यतासत्त्वेपि तत्र नमः पदप्रयोगस्य वेदाबोधितत्वेन तद्घटिततत्पदशक्य-पुरुषोपलक्षणरूपाप्रसिद्ध्याऽवाचकत्वात्। अत एव यथा नीचप्रीतिहेतु क्रियास्थले 'पूजयति' इत्यादिप्रयोगवारणाय पूजयतीत्यादिवाच्यप्रीतौ गौरवितवृत्तित्वस्वसमभिव्याहृतकर्तृपुरुषावधिकोत्कर्षवद्वृत्तित्वरूमुप-लक्षणमुपेयते, उक्तस्थले च योग्यतासत्त्वेऽपि नीचवृत्तिप्रीतेः स्वसमभिव्या-हृतकर्त्रवधिकोत्कर्षवद्वृत्तित्वरूपोपलक्षणानाक्रान्तत्वेन तत्प्रीतिहेतु-क्रियावाचकत्वविरहेण तत्तात्पर्येण 'पूजयति' इत्यादेर्न प्रयोग स्तथा नीचोद्देश्यकत्यागतात्पर्येण नमःपदाप्रयोगात् तदतिप्रसङ्गवारणाय गौरवि-तोद्देश्यकत्याग एव नमःपदशक्तिरित्यनादेयम् । गौरवितोद्देश्यकत्वस्य नमःपदार्थशरीरे निवेशेऽपि गौरवितोद्देश्यकपूजातिरिक्तद्रव्यत्यागबोधनाय नमःपदप्रयोगवारणायोक्तविशेषणस्योच्चारणेऽवश्यं निवेशनीयतया तत एव तदतिप्रसङ्गवारणात् ।

उपलक्षणरूपप्रविष्ट उच्चारण वेदीयत्वेन विशेषणीय है। स्वोच्चारणकर्तृत्वोपलक्षित पुरुषविशिष्ट त्याग नमः पद का अर्थ है। इसमें उपलक्षण रूप है स्वोच्चारणकर्तृत्व, उसमें प्रविष्ट है उच्चारण, उस उच्चारण को वेदीय होना चाहिए। अर्थात् वेदीय स्वोच्चारण कर्तृत्वोपलक्षित पुरुषविशिष्ट त्याग नमः पद से बोधित होगा। इस कारण पूजा से भिन्न

यादृच्छिक (अपनी इच्छा से) अन्नत्याग बोधित करने के लिए **'अन्नं नमः'** ऐसा प्रयोग नहीं होता है। योग्यता रहने पर भी अन्न पद के साथ नमः पद का प्रयोग वेद से बोधित नहीं होने के कारण अन्नपदघटित नमः पदशक्य पुरुषोपलक्षण रूप की (वेदीयस्वोच्चारणकर्तृत्व) की अप्रसिद्धि होने के कारण त्याग का वाचक नहीं होता है। यदि अन्नपद के साथ नमः पद का प्रयोग वेद बोधित होता तो **'अन्नं नमः'** ऐसा प्रयोग साधु माना जाता और इससे त्याग का बोध होता। किन्तु ऐसा तो है नहीं। इस कारण ही जैसे नीचप्रीतिकारणीभूत क्रिया के स्थल में **'पूजयति'** 'पूजा करता है' इस प्रयोग का वारण करने के लिए **'पूजयति'** इत्यादि से वाच्य प्रीति में गौरवितवृत्तित्व जो कि स्वसमभिव्याहृत कर्तृपुरुषावधिकोत्कर्षवदवृत्तित्व रूप होता है, उपलक्षण स्वीकार किया जाता है। (देखें- **'श्यामः शिवं पूजयति'** में प्रीति गौरवित शिव में वृत्ति है, **पूजयति** से समभिव्याहृत कर्तृ पुरुषश्यामावधिक उत्कर्ष शिव में विद्यमान है, इसलिए प्रीति में (शिववृत्ति प्रीति में) समभिव्याहृतकर्तृपुरुषश्यामावधिको-त्कर्षवच्छिववृत्तित्व है। गौरवित वृत्ति प्रीति = स्वसमभिव्याहृत कर्तृपुरुषावधिकोत्कर्षवद्वृत्ति प्रीति ही पूजा है। जब नीच व्यक्ति में प्रीति उत्पन्न की जा रही हो तब **पूजयति** प्रयोग नहीं होता है। क्योंकि **पूजयति** पद समभिव्याहृत कर्तृपुरुषावधिकोत्कर्षवत् नीच व्यक्ति नहीं होता है) उक्त स्थल में नीचव्यक्तिप्रीतिकारणीभूतक्रिया के स्थल में- नीच में भृत्यादि में योग्यता रहने पर भी नीचवृत्तिप्रीति के स्वसमभिव्याहृतकर्त्रवधिक उत्कर्षवद् वृत्तित्व रूप उपलक्षण से अनाक्रान्त होने के कारण (नीच, भृत्यादि कर्त्रवधिक उत्कर्षवत् नहीं हैं इस कारण उक्त उपलक्षण से अनाक्रान्त है तद्वृत्ति प्रीति, इसलिए) तत्प्रीतिहेतु क्रियावाचकत्व न होने से (गौरवितवृत्तिप्रीतिहेतुक्रियावाचकत्व भृत्यादि प्रीति हेतु क्रियास्थल में न होने से) उसके नीचवृत्तिप्रीतिहेतुक्रिया के तात्पर्य से **'पूजयति'** इत्यादि प्रयोग नहीं होते हैं। उसी प्रकार नीचोद्देश्यकत्याग तात्पर्य से **नमः** पद का प्रयोग नहीं होने के कारण नीचोद्देश्यकत्याग तात्पर्य से नमः पद प्रयोगापत्तिरूप अतिप्रसङ्ग वारण करने के लिए गौरवितोद्देश्यकत्याग में नमः पद की शक्ति है यह भी अनादेय है अनुपयोगी है। क्योंकि गौरवितोद्देश्यकत्व का नमः पदार्थ शरीर में निवेश करने पर भी गौरवितोद्देश्यक पूजातिरिक्त द्रव्य त्याग बोधन के लिए नमः पद के प्रयोग का वारण करने के लिए उक्त वेदीयत्व विशेषण उच्चारण में अवश्य निवेशनीय है उसी से ही नीचोद्देश्यकत्याग के तात्पर्य से नमः पद के प्रयोग की आपत्ति रूप अतिप्रसङ्ग भी वारित हो जायेगा। चूँकि नीचोद्देश्यक त्याग वेदीय नहीं है, अतः उसके अभिप्राय से नमः पद का प्रयोग नहीं होगा।

यहाँ पर **अतएव** से **वारणात्** तक के ग्रन्थ से गदाधर ने किसी अन्य के मत का निराकरण किया है। जिनका कथन था कि नमः पदार्थ में गौरवितोद्देश्यकत्व का प्रवेश भी करना चाहिए । गौरवितोद्देश्यकत्व का प्रयोग करने पर नीचोद्देश्यकत्याग के लिए नमः पद के प्रयोग की आपत्ति वारित हो जायेगी । गदाधर का कहना है कि पूजातिरिक्त द्रव्य त्याग का बोधन नमः पद से नहीं होता है, पूजाघटक द्रव्य त्याग का ही बोधन होता है। अतः स्वोच्चारणकर्तृत्वोपलक्षितपुरुषविशिष्टत्याग रूप नमः पदार्थ में उच्चारण में वेदीयत्व विशेषण देना ज़रूरी है। उसी विशेषण से ही नीचोद्देश्यक त्यागबोधन के लिए नमः पद प्रयोग की

आपत्ति भी वारित हो जायेगी क्योंकि नीचोद्देश्यक त्याग भी वेदीय तो है नहीं । अतः गौरवितोद्देश्यकत्व का नमः पदार्थ त्याग में प्रवेश अनावश्यक है

'इन्द्राय स्वाहा' 'तुभ्यं स्वधा' इत्यादावग्निप्रक्षेपोपहितदेवोद्देश्यकत्याग बोधकस्वाहापदपित्रुद्देश्यकत्यागबोधकस्वधापदयोरपि नमः पदवद् देशना-देशितोच्चारणकर्तृत्वोपलक्षितपुरुषीयत्यागवाचकता, अन्यथा पूर्ववदेवा तिप्रसङ्गः। एवञ्च देवोद्देश्यकत्वादेरपि न वाच्यान्तर्भावः, अतादृशत्यागतात्पर्येण स्वाहादिप्रयोगस्य देशनादेशितत्वविरहेणैवानतिप्रसङ्गात् । अतएव तान्त्रिक पूजायामर्घ्याचमनीयादिदानेऽग्निप्रक्षेपोपहितत्वपित्रुद्देश्यकत्वविरहेऽपि स्वाहा-स्वधाप्रयोगस्य नासमवेतार्थता। एवञ्च सति नमःस्वाहास्वधा शब्दानामैक-स्थानेऽन्यप्रयोगस्यापि वेदबोधितत्वाभावेनैव नातिप्रसङ्गः।

'इन्द्राय स्वाहा' 'तुभ्यं स्वधा' इत्यादि स्थलों में अग्निप्रक्षेपोपहित देवोद्देश्यक त्यागबोधक स्वाहापद और पितृ उद्देश्यकत्यागबोधक स्वधापद की भी नमः पद की तरह देशनादेशित (श्रुतिविहित=वेद बोधित) उच्चारणकर्तृत्वोपलक्षितपुरुषीयत्यागवाचकता है[1]। अन्यथा पूर्ववत् ही अतिप्रसङ्ग होगा। पूर्ववत् अतिप्रसङ्ग का अभिप्राय यादृच्छिकत्याग के लिए स्वाहा और स्वधापदों के प्रयोग की आपत्ति से है। इस प्रकार देवोद्देश्यकत्वादि का भी स्वाहा, स्वधा शब्दों के वाच्यार्थ में अन्तर्भाव नहीं करना चाहिए क्योंकि अतादृश त्याग का देशनादेशितत्व न होने के कारण ही अतिप्रसङ्ग नहीं होता है। भाव यह है कि यद्यपि स्वाहा पद का नियम से देवोद्देश्यक त्याग के लिए और स्वधा का पित्रुद्देश्यकत्याग के लिए प्रयोग होता है। तथापि स्वाहा और स्वधा शब्द के वाच्यार्थ क्रमशः देवोद्देश्यक त्याग और पितृ उद्देश्यक त्याग नही हैं बल्कि दोनों का अर्थ त्यागमात्र है। किन्तु इन दोनों के पर्यायवाची होने पर भी देवोद्देश्यक त्याग के लिए स्वधा का और पित्रुद्देश्यक त्याग के लिए स्वाहा का प्रयोग इसलिए नहीं होता क्योंकि वह देशनादेशित (श्रुतिविहित) नहीं है और देशनादेशितोच्चारणकर्तृत्वोपलक्षित पुरुषविशिष्ट त्याग के वाचक स्वाहा, स्वधा और नमः पद होते हैं।

इसलिए तान्त्रिक पूजा में अर्घ्य आचमनीय दान में अग्निप्रक्षेपोपहितत्व और पित्रुद्देश्यकत्व न होने पर भी स्वाहा, स्वधा पदों की असमवेतार्थता अयुक्तार्थता नहीं होती है। ऐसा होने पर नमः, स्वाहा, स्वधा शब्दों के पर्याय होने पर एक के स्थान में अन्य के प्रयोग के वेदबोधित न होने के कारण ही अतिप्रसङ्ग नहीं होता है, एक की जगह पर दूसरे का प्रयोग नहीं होता।

नतिरूपो नमःपदार्थश्च स्वापकर्षबोधनानुकूलः स्वीयव्यापारः, चतुर्थ्या चापकर्षान्वय्यवधित्वमवधिमत्त्वं वा प्रत्याय्यते। स्वमुच्चारयिता, तथा च चैत्राद्युच्चारितात् 'नमो हरये' इत्यादिशब्दाद्धर्यवधिकचैत्रापकर्षबोधानुकूलश्चैत्र

1. स्वाहा पद का नियम से और निश्चित रूप से देवतोद्देश्यक त्याग के लिए प्रयोग होता है और स्वधापद का पित्रुद्देश्यकत्याग के लिए प्रयोग होता है।

व्यापारः इत्याकारको बोधः। 'नारायणं नमस्कृत्य' इत्यादौ नमः शब्दयोगेऽपि न चतुर्थी- द्वितीयया कारकविभक्तित्वेन बलीयस्या बाधात्।

नतिरूप नमः पदार्थ तो स्वापकर्षबोधनानुकूल स्वीयव्यापार है, चतुर्थी के द्वारा अपकर्ष से अन्वयी अवधित्व या अवधिमत्त्व प्रत्यायित होता है। यहाँ पर स्व पद से ग्राह्य है उच्चारयिता (उच्चारण करने वाला) इस प्रकार चैत्रादि से उच्चारित **'हरये नमः'** इत्यादि शब्द से **'हर्यवधिकचैत्रापकर्षबोधानुकूलश्चैत्र व्यापारः'** 'हर्यवधिक चैत्रापकर्षबोधानुकूल चैत्रव्यापार है' ऐसा शाब्दबोध होता है।

'नारायणं नमस्कृत्य' 'नारायण को नमस्कार करके' इत्यादिस्थलों में नमः शब्द का योग होने पर भी **'नमः स्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च' पा०सू० 2/3/16** के द्वारा नारायण पद से चतुर्थी नहीं होती है क्योंकि कारक विभक्ति होने के कारण बलवती द्वितीया से बाध हो जाता है। नियम है कि **'उपपदविभक्तेः कारकविभक्ति र्बलीयसी'** 'उपपदविभक्ति से कारक विभक्ति बलवती होती है' **'नमः स्वस्ति...'** से होने वाली चतुर्थी उपपदविभक्ति है और कर्मणि द्वितीया कारक विभक्ति है। इसलिए द्वितीया से चतुर्थी का बाध हो जायेगा और नारायण पद से द्वितीया ही होगी।

विमर्श– यहाँ पर प्रश्न उठता है कि जब्र कारक विभक्ति से उपपदविभक्ति का बाध हो जायेगा तो द्वितीया ही होगी,फिर **'स्वयंभुवे नमस्कृत्य'** इत्यादि प्रयोग कैसे सिद्ध होते हैं? इसका समाधान यह है कि यहाँ पर स्वयंभू पद से **'नमः स्वस्ति...'** से चतुर्थी नहीं हुई है अपितु **'क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः' पा०सू० 2/3/14** के द्वारा चतुर्थी हुई है। तथा **'स्वयंभुवमनुकूलयितुं नमस्कृत्य'** इस अर्थ में **'स्वयंभुवे नमस्कृत्य'** प्रयोग है।

अथात्र नारायणादेर्नमस्कारघटकापकर्षावधित्वमेव तच्च न कर्मत्वं कर्मत्वञ्च क्रियाजन्यफलशालित्वादिरूपमेव तच्च न तस्येति द्वितीयाया नायं विषयः।

न चापकर्षबोधरूपफलाश्रयत्वरूपकर्मत्वं तत्राबाधितमेवेति तद्विवक्षयैव द्वितीयोपपत्तिरिति वाच्यम्; एवं सति नारायणावधिकापकर्षबोधकदण्डवत् प्रणिपातादिलिङ्गकतादृशापकर्षबोधाश्रयतायाः पुरुषान्तरसाधारणतया नारायणप्रणामदशायां 'मनुष्यं नमस्करोति' इत्यादिप्रयोगापत्तिः।

यदि चापकर्षावधित्वप्रकारकबोधानुकूलव्यापारो नमस्कारस्तद्घटक बोधविशेष्यतया नारायणादेः कर्मत्वं क्रियाजन्यफलशालित्वरूपे कर्मत्वे च व्यापारांशेऽनुकूलतासम्बन्धेन विशेषणीभूतं फलमेव विवक्षणीयमत्र चानुकूलत्वमेव व्यापारांशे विशेषणमित्यपकर्षावधित्वबोद्धुः पुरुषान्तरस्य न कर्मतेत्युच्यते? तदापि 'नारायणं प्रणम्य' इत्यादौ कर्मत्वमुपपद्यते न तु 'नारायणं नमस्कृत्य' इत्यादौ- नमःपदार्थघटकज्ञानस्य धात्वर्थताविरहेण तद्विषयतायाः कर्मतानात्मकत्वात्, कृतिविषयतायाश्च नमः पदार्थव्यापार एव सत्त्वात्।

यहाँ पर प्रश्न उठता है कि यहाँ पर नारायण आदि का नमस्कारघटकापकर्षावधित्व ही है और वह तो कर्मत्व है नहीं । नारायण में विद्यमान नमस्कारघटकापकर्षावधित्व नारायण का कर्मत्व नहीं है। कर्मत्व तो क्रियाजन्य फलशालित्व रूप ही होता है, और नारायण का क्रियाजन्यफल शालित्व रूप कर्मत्व तो है नहीं । इसलिए द्वितीया का यह विषय ही नहीं है। यहाँ पर नारायण पद से कर्मत्वार्थिका द्वितीया नहीं हो सकती है।

यदि कहो कि अपकर्षबोधरूप फल का आश्रयत्वरूप कर्मत्व तो नारायण का अबाधित ही है, इसलिए अपकर्षबोध रूपफलाश्रयत्व की विवक्षा से ही नारायण पद से द्वितीया की उपपत्ति हो जायेगी (बोध भी चैत्रादिक्रिया से जन्य फल ही तो है तदाश्रय होने से नारायण में क्रियाजन्यफलशालित्व सम्पन्न हो जायेगा) तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि ऐसा होने पर 'क्रियाजन्यचैत्राद्यपकर्षबोधाश्रयत्व रूप कर्मत्व होने पर' नारायणावधिकापकर्षबोधक जो दण्डवत् प्रणिपातादि हैं, तल्लिङ्गकनारायणावधिकचैत्राद्यपकर्षबोध की आश्रयता के पुरुषान्तरसाधारण होने के कारण नारायणप्रणामदशा में **'मनुष्यं नमस्करोति'** प्रयोग की आपत्ति है । भाव यह है कि नारायणप्रणामदशा में आप नारायण की कर्मता क्यों स्वीकार रहे हैं? इसलिए क्योंकि चैत्र क्रिया से जन्य नारायणावधिक चैत्रापकर्षबोधरूप फल के आश्रय नारायण हैं। किन्तु जब चैत्र की दण्डवत् प्रणिपातादि क्रिया हो रही है। तो पुरुषान्तर मैत्रादि को भी चैत्र की प्रणिपातादि क्रिया से अनुमान के द्वारा नारायणावधिकचैत्रापकर्षबोध होता है। यह बोध चैत्र की प्रणिपात क्रिया से जन्य है क्योंकि वही हेतु है, जिससे चैत्रापकर्ष का अनुमान होता है। ऐसी स्थिति में चैत्रक्रियाजन्य नारायणावधिकचैत्रापकर्षबोधरूप फल का आश्रयत्व पुरुषान्तर मैत्रादिसाधारण है। अतः पुरुषान्तर की भी नारायणवत् कर्मता हो जायेगी तथा **'नारायणं नमस्कृत्य'** की तरह **'मनुष्यं नमस्करोति'** प्रयोग भी उसी स्थल में होने लगेगा।

यदि अपकर्षावधित्वप्रकारकबोधानुकूल व्यापार नमस्कार है और एतादृश व्यापारघटक बोधविशेष्यतया नारायणादि की कर्मता होगी अर्थात् अपकर्षावधित्वप्रकारकबोधानुकूलव्यापार घटकबोधविशेष्यत्व ही नारायण की कर्मता है। इस प्रकार की कर्मता नारायणप्रणामावसर में मनुष्य की, पुरुषान्तर की न होगी। क्योंकि चैत्रक्रिया जिस अपकर्षावधित्वप्रकारक बोध के प्रति अनुकूल होगी वह बोध होगा **'नारायणः अपकर्षावधिः'** ऐसा बोध । इस बोध का विशेष्यत्व नारायण में ही होगा पुरुषान्तर में नहीं, इस प्रकार नारायण की ही कर्मता होगा, पुरुषान्तर की नहीं। क्रियाजन्यफलशालित्व रूप कर्मत्व में व्यापारांश में अनुकूलता सम्बन्ध से फल विशेषण होता है। यहाँ पर अनुकूलत्व ही व्यापार में विशेषण है। अतः अपकर्षावधित्व बोद्धा पुरुषान्तर की कर्मता नहीं होती है। अर्थात् यहाँ पर व्यापारांश में फल अनुकूलता सम्बन्ध से विशेषण होता है, वहीं पर क्रियाजन्यफलशालित्वरूप कर्मत्व स्वीकारा जाता है। यहाँ पर **'नारायणं नमस्करोति'** में अपकर्षावधित्वप्रकारकबोध व्यापार में (चैत्रादिक्रिया में) अनुकूलता सम्बन्ध से विशेषण नहीं है बल्कि अपकर्षावधित्वप्रकारक-बोधानुकूलत्व ही व्यापार में विशेषण है। अतः यहाँ पर क्रियाजन्यफलशालित्वरूप कर्मत्व नहीं स्वीकारते हुए क्रियाजन्यफलविषयत्व रूप कर्मत्व स्वीकारते हैं। इसस्थिति में पुरुषान्तर

की तादृशफलाश्रय होने पर भी कर्मता नहीं होगी नारायण की ही होगी। यदि ऐसा कहें? तो भी **'नारायणं प्रणम्य'** इत्यादि स्थलों में ही नारायण की कर्मता उपपन्न होती है। **'नारायणं नमस्कृत्य'** इत्यादि स्थलों में नहीं क्योंकि **नमस्कृत्य** में नमः पदार्थ घटक ज्ञान की तो धात्वर्थता ही नहीं होने के कारण (धातु तो कृ है उसका अर्थ कृति ही धात्वर्थ होगा नमः पदार्थ अपकर्षावधित्वप्रकारक बोधानुकूल व्यापार तो धात्वर्थ होगा नहीं इसलिए) चैत्रक्रियाजन्य अपकर्षावधित्वप्रकारक बोधविषयत्व तो कर्मत्व हो नहीं सकता है और कृतिविषयता तो नमः पदार्थ व्यापार में ही है। नारायण में नहीं है। अतः नारायण की कर्मता अनुपपन्न है।.

मैवम्- 'नमस्करोति' इत्यादौ कृधातुनैव व्यापारबोधात्, अत्र च स्वापकर्षावधित्वप्रकारकबोधविषयतामात्रं निपातार्थः, अत्र स्वं समभिव्याहृतः कर्ता तथा च तादृशबोधप्रयोजकव्यापारानुकूलकृतिमान् इति समुदायाधीनो बोधः, तादृशविषयताश्रयतया नारायणादेः कर्मत्वम्— यतः 'धात्वर्थतावच्छेदकफलशालित्वं कर्मत्वम्' इत्यत्र धात्वर्थतावच्छेदकत्वं न धातुशक्यतावच्छेदकत्वम्, अपितु व्यापाररूपार्थेऽनुकूलतासम्बन्धेन विशेषणतया धातुप्रतिपाद्यत्वम् । प्रकृते च निपातार्थस्य धात्वर्थे साक्षादन्वयेन तादृशबोधविषयत्वरूपस्य नमःपदार्थस्य धात्वर्थतावच्छेदकत्वमक्षतमेव।

ऐसा नहीं है अर्थात् उक्त प्रयोग में नारायण की कर्मता अनुपपन्न नहीं है, क्योंकि **नमस्करोति** इत्यादिस्थलों में कृ धातु से ही व्यापार का बोध होता है। यहाँ पर निपात नमः पद का अर्थ स्वापकर्षावधित्वप्रकारकबोधविषयता मात्र है। इसमें स्व माने समभिव्याहृत चैत्र आदि हैं, इस प्रकार तादृश (स्वापकर्षावधित्वप्रकारक) बोध प्रयोजकव्यापारानुकूल कृतिमान् ऐसा समुदायाधीन बोध होता है (इसमें कृति कृधातु का अर्थ नहीं है आख्यात का अर्थ है) तादृश (स्वापकर्षावधित्वप्रकारक) बोधविषयता का आश्रय होने के कारण नारायण आदि का कर्मत्व होता है। चूँकि **'धात्वर्थतावच्छेदकफलशालित्वं कर्मत्वम्'** इस स्थल में धात्वर्थतावच्छेदकत्व धातुशक्यतावच्छेदकत्व नहीं है। अपितु व्यापार रूप अर्थ में अनुकूलतासम्बन्ध से विशेषणतया धातुप्रतिपाद्यत्व ही धात्वर्थतावच्छेदकत्व है। प्रकृतस्थल **'नारायणं नमस्करोति'** में निपातार्थ नमःपदार्थ का धात्वर्थ व्यापार में साक्षात् अन्वय होने के कारण तादृशबोधविषयत्व रूप नमःपदार्थ का धात्वर्थतावच्छेदकत्व अक्षत ही है। आशय यह है कि धात्वर्थ में विशेषणतया भासमान धातुप्रतिपाद्य अर्थ धात्वर्थतावच्छेदक कहलायेगा बशर्ते वह धात्वर्थ व्यापारजन्य हो। वह यहाँ पर है ही, अतः नारायण की कर्मता में कोई आपत्ति नहीं है।

न चैवं पूर्वदेशादेर्गम्यादिकर्मत्वं दुर्वारम्; विभागादौ क्रियाजन्यत्वसत्त्वेऽपि निरुक्तधात्वर्थतावच्छेदकत्वाभावात्, नहि विभागादिर्गम्याद्यर्थे कथमपि विशेषणतया भासते।

एवञ्च नारायणादेः करोतिकर्मत्वेऽपि नमःप्रभृतिकं विना न तद्योगे

नारायणादिपदोत्तरं द्वितीया—तदर्थान्वयिफलोपस्थापकाभावेन तदर्थानन्वयात्।

नापि 'नारायणं फलं करोति' इति प्रयोगापत्तिः—फलस्यात्र धात्वर्थ व्यापारे साक्षादविशेषणत्वात्, निपातातिरिक्तनामार्थस्य धात्वर्थे भेदेनान्वय-स्याव्युत्पन्नत्वात्, धात्वर्थे साक्षाद्विशेषणीभवत्येव फले द्वितीयार्था धेयत्वान्वयात्। अत एव 'पुरस्कृत्य शिखण्डिनम्' इत्यादावपि शिखण्ड्यादेः कृतिकर्मता–धात्वर्थव्यापारविशेषणपुरःपदरूपनिपातार्थाग्रदेशावस्थानरूप-फलाश्रयत्वात् ।

यदि कहो कि इस प्रकार तो पूर्वदेशादि का गम्यादिकर्मत्व दुर्वार है क्योंकि जब आप धात्वर्थतावच्छेदकत्व को धातुशक्यतावच्छेदकत्व रूप नहीं मान रहे हैं अपितु व्यापार रूप धात्वर्थ में अनुकूलतासम्बन्ध से विशेषणतया धातुप्रतिपाद्यत्व ही धात्वर्थतावच्छेदकत्व है तदाश्रयत्व ही कर्मत्व है, ऐसा मान रहे हैं। तो गम् धातु का कर्म पूर्वदेश भी हो जायेगा क्योंकि गम्धात्वर्थ स्पन्दात्मकव्यापारजन्य फल पूर्वदेशविभाग भी है, उसका आश्रयत्व पूर्वदेश में है। अतः पूर्वदेश गम् धातु का कर्म हो जायेगा। तो ऐसा नहीं है क्योकि विभागादि के क्रिया से (गमनक्रिया से) जन्य होने पर भी विभागादि का निरुक्त धात्वर्थतावच्छेदकत्व नहीं है, विभागादि कहीं पर भी गम् धात्वर्थ में विशेषण बनकर नहीं भासता है। पूर्व में यही प्रतिपादित है कि **व्यापार रूप अर्थ में अनुकूलतासम्बन्ध से विशेषणतया धातुप्रतिपाद्यत्व ही धात्वर्थतावच्छेदकत्व है।** विभाग में तो व्यापार रूप अर्थ में विशेषणतया गम् धातु प्रतिपाद्यत्व ही नहीं है। अतः विभाग धात्वर्थतावच्छेदक फल ही नहीं है, अतः तदाश्रयतया पूर्वदेश की कर्मता नहीं हो सकती है।

इस प्रकार नारायणादि के करोति (कृ धातु) का कर्म होने पर भी नमः पदादि के विना कृ धातु का योग होने पर भी नारायण आदि पदों के बाद द्वितीया नहीं होती है। क्योंकि द्वितीयार्थ से अन्वयी फल का उपस्थापक न होने के कारण द्वितीयार्थ का कृधात्वर्थ में अन्वय नहीं हो सकता है।

न ही **'नारायणं फलं करोति'** प्रयोग की आपत्ति है क्योंकि फल का यहाँ पर धात्वर्थ व्यापार में साक्षात् विशेषणत्व नहीं है (बल्कि फलपदोत्तर द्वितीया के अर्थ को बीच में लेकर फलपदार्थ धात्वर्थ में विशेषण होता है) क्योंकि निपातातिरिक्त नामार्थ का धात्वर्थ में भेदसम्बन्ध से साक्षात् अन्वय अव्युत्पन्न है (फल निपातातिरिक्त नामार्थ है, उसका धात्वर्थ व्यापार में अनुकूलत्व रूप भेद सम्बन्ध से अन्वय व्युत्पत्तिसिद्ध नहीं है) और धात्वर्थ में साक्षात् विशेषणीभूत फल में ही द्वितीयार्थ आधेयत्व का अन्वय होता है। इसी कारण **'पुरस्कृत्य शिखण्डिनम्'** शिखण्डी को आगे करके' इत्यादि स्थलों में भी शिखण्डी आदि की कृतिकर्मता होती है क्योंकि कृधात्वर्थ व्यापार विशेषणीभूतपुरःपदरूप निपात के अर्थ अग्रदेशावस्थानरूप फल का आश्रयत्व ही शिखण्डी में है। यहाँ पर धात्वर्थ में साक्षात् विशेषणतया अग्रदेशावस्थान रूप फल का प्रतिपादन धातु द्वारा हो रहा है। अतः वह धात्वर्थतावच्छेदक है और तदाश्रयतया शिखण्डी की कर्मता सम्पन्न होती है।

'नारायणो नमस्क्रियते' 'ज्यायान् पुरस्क्रियते' इत्यादौ निपातार्थफलं धात्वर्थव्यापारे विशेष्यतयैव भासते। तदन्वितमाश्रयत्वं कर्माख्यातादिना प्रत्याय्यते।

कर्माख्यातस्थलीय **'नारायणो नमस्क्रियते' 'ज्यायान् पुरस्क्रियते'** 'नारायण को नमस्कार किया जाता है' 'ज्यायान् को आगे किया जाता है' इत्यादि स्थलों में निपातार्थ फल अपकर्षावधित्वप्रकारकबोध, अग्रदेशावस्थान धात्वर्थ व्यापार में विशेष्यतया ही भासता है। अर्थात् 'व्यापारजन्यापकर्षावधित्वप्रकारकबोध' व 'व्यापारजन्याग्रदेशावस्थान' का शाब्दबोध में भान होता है। इसमें प्रकार व्यापार बनता है और विशेष्य उक्त फल बनते हैं। कर्तृवाच्यस्थल से विपरीत स्थिति होती है। तथा उससे अन्वित आश्रयत्व कर्माख्यात आदि से बोधित होता है। इस प्रकार **'नारायणो नमस्क्रियते'** से **'व्यापारजन्यापकर्षावधित्व प्रकारकबोधविशेष्यताश्रयो नारायणः'** और **'ज्यायान् पुरस्क्रियते'** से **'व्यापारजन्या-ग्रदेशावस्थानाश्रयो ज्यायान्'** ऐसा बोध होता है।

अथैवमपि कारकविभक्तेः साक्षाद्धात्वर्थान्वयित्वनियमभङ्ग इतिचेत्? न, तादृशनियमे निपातार्थमन्तराकृत्वेत्यस्यैव साक्षादर्थत्वात्। अन्यथा 'घटो दण्डाज्जायते न पारिमाण्डल्यात्' इत्यादौ कारकपञ्चम्या जन्याद्यन्वयिनि नञर्थाभावे प्रतियोगितया स्वार्थप्रयोज्यत्वादिबोधनासम्भवात्। पारिमाण्डल्यादि-निरूपितमपि प्रयोज्यत्वं विषयितया तदवच्छिन्नजनकताकज्ञानादौ प्रसिद्धम्। प्रयोज्यत्वविशिष्टोत्पत्तिरेव वा तत्र धात्वर्थः, तत्र पञ्चम्यन्तार्थपारिमाण्डल्य-निरूपितत्वस्याभावो नञा बोध्यते। उक्तरीत्या क्रियायोगेन नमस्कार्यस्य कर्मत्वेऽपि 'स्वयंभुवे नमस्कृत्य' इत्यादौ चतुर्थी अपकर्षावत्वमात्रविवक्षया।

किन्तु प्रश्न उठता है कि इस प्रकार भी (उपर्युक्त रीति से प्रयोगों की साधुता का निर्वाह कर लेने पर भी) कारकविभक्ति के साक्षाद् धात्वर्थान्वयित्व नियम का भङ्ग हो जायेगा, नियम है कि कारक विभक्ति का धात्वर्थ में साक्षात् अन्वय होता है किन्तु **'नारायणं नमस्कृत्य'** इत्यादिस्थलों में कारकविभक्ति द्वितीया के अर्थ का अन्वय साक्षात् धात्वर्थ में न होकर नमः पदार्थ (निपातार्थ) में होकर धात्वर्थ में अन्वय आप स्वीकार रहे हैं। इस कारण यह नियम खण्डित हो रहा है? तो ऐसा नहीं है क्योंकि उस नियम में 'निपातातिरिक्त अर्थ को बीच में न करके' यही साक्षात् का अर्थ है। यहाँ पर भी निपातातिरिक्त अर्थ को बीच में न करके ही कारक विभक्ति का धात्वर्थ में अन्वय हो रहा है, अतः यह साक्षात् अन्वय ही है। यदि ऐसा न स्वीकारा जायेगा तो **'घटो दण्डाज्जायते न तु पारिमाण्डल्यात्'** 'घट दण्ड से उत्पन्न होता है पारिमाण्डल्य (अणु परिमाण) से नहीं' इत्यादि स्थलों में कारकपञ्चमी के द्वारा जन्याद्यन्वयी नञर्थ अभाव में प्रतियोगितया स्वार्थ प्रयोज्यत्व बोधन असम्भव है। इस स्थल में धात्वर्थ जन्य में अन्वयी होता है दण्ड पदोत्तर कारक विभक्ति पञ्चमी का अर्थ प्रयोज्यत्व और धात्वर्थ जन्य में नञ् का अर्थ अभाव भी अन्वित होता है, उस अभाव में पारिमाण्डल्यपदोत्तर पञ्चमी के अर्थ प्रयोज्यत्व का

प्रतियोगितया अन्वय होता है। इस स्थल में यह सुस्पष्ट है कि पारिमाण्डल्यपदोत्तर पञ्चमी जो कि कारकविभक्ति है, उसके अर्थ का अन्वय सीधे-सीधे धात्वर्थ में नहीं हो रहा है और न सम्भव ही है बीच में नञर्थ को लाना ही पड़ेगा। इसलिए यही कहना उचित है कि निपातातिरिक्त अर्थ को बीच में न करके ही कारकविभक्ति का धात्वर्थ में अन्वय होता है।

यदि आप कहें कि पारिमाण्डल्यनिरूपितप्रयोज्यत्व प्रसिद्ध नहीं है तो ऐसा नहीं है पारिमाण्डल्यादिनिरूपित भी प्रयोज्यत्व विषयिता सम्बन्ध से पारिमाण्डल्यावच्छिन्नजनकताकज्ञान आदि में प्रसिद्ध है। पारिमाण्डल्यावच्छिन्नविषयक ज्ञान के प्रति तो पारिमाण्डल्य की कारणता विषयविधया होती है। (इसीलिए न्यायसिद्धान्तमुक्तावली में **'पारिमाण्डल्य-भिन्नानां कारणत्वमुदाहृतम्'** कारिका 15 कारिकावली के व्याख्यानावसर पर विश्वनाथपञ्चानन कहते हैं **'ज्ञानातिरिक्तं प्रत्येवाकारणताया आचार्यरुक्तत्वात्'**) अथवा प्रयोज्यत्वविशिष्ट उत्पत्ति ही वहाँ पर धात्वर्थ है उसमें पारिमाण्डल्यनिरूपितत्व का (पञ्चम्यन्तार्थ का) अभाव नञ् के द्वारा बोधित होतात है। इस पक्ष में नञर्थ को बीच में लाकर ही पञ्चम्यर्थ (कारकविभक्ति के अर्थ) का धात्वर्थ में अन्वय होता है।

उक्तरीति से क्रियायोग होने से नमस्कार्य की कर्मता होने पर भी अपकर्षावधित्व मात्र की विवक्षा से **'स्वयंभुवे नमस्कृत्य'** इत्यादिस्थलों में चतुर्थी होती है।

वस्तुतः यहाँ पर **'क्रियार्थोपपदस्य....'** सूत्र के द्वारा **'स्वयंभुवमनुकूलयितुं नमस्कृत्य'** इस अर्थ में चतुर्थी हुआ करती है। यह बात पूर्व में ही व्याख्या में व्यवस्थापित की जा चुकी है।

केचित्तु–'नारायणं नमस्कृत्य' इत्यादौ नमःपदं नतिकर्मपरं तथाच 'नारायणं नतिकर्मीकृत्य' इत्यर्थविवक्षया 'घटं शुक्लं करोति, शुक्लीकरोति' इत्यादौ घटादेरिव नारायणादेः कृतिकर्मता। 'शिखण्डिनं पुरस्कृत्य' इत्यादौ पुरःपदमग्रस्थितपरम् । एवं 'घटं साक्षात्करोति' इत्यादौ साक्षात्पदं स्वीयप्रत्यक्षविषयपरं न तु धर्मपरम् । एवं 'दुःखमाविष्करोति' 'अस्त्रं प्रादुष्करोति' इत्यादावप्याविरादिपदं ज्ञानगोचरार्थकमिति सर्वत्र पूर्ववद् द्वितीयानिर्वाह इत्याहुः।

कुछ लोग तो- **'नारायणं नमस्कृत्य'** इत्यादि स्थलों में नमः पद नतिकर्म परक है, इस तरह **'नारायणं नतिकर्मीकृत्य'** 'नारायण को नति का कर्म बनाकर' इस अर्थ की विवक्षा से **'घटं शुक्लं करोति, शुक्लीकरोति'** इत्यादि स्थलों में घटादि की तरह नारायण की कृति कर्मता होती है। अर्थात् जैसे घट की कृतिकर्मता न होने पर भी शुक्लीकरण की कर्मता घट में आती है, उसीप्रकार नारायण में कृति कर्मता न होने पर भी नति की कर्मता नारायण में आती है। तथा नारायण को नति का कर्म बनाकर इस अर्थ में **'नारायणं नमस्कृत्य'** प्रयोग होता है। **'शिखण्डिनं पुरस्कृत्य'** इत्यादि स्थलों में पुरः पद अग्रस्थित परक है। (इस तरह **'शिखण्डिनं अग्रस्थितीकृत्य'** इस अर्थ में यह प्रयोग है) इसी प्रकार **'घटं साक्षात्करोति'** इत्यादि स्थलों में साक्षात् पद स्वीयप्रत्यक्षविषय परक

है न कि धर्मपरक। धर्म से स्वीय प्रत्यक्षविषयत्व को लेना है, अर्थात् साक्षात् पद स्वीयप्रत्यक्षविषयत्वपरक नहीं है बल्कि स्वीयप्रत्यक्षविषय परक है। अर्थात् 'घटं प्रत्यक्षविषयी करोति' अर्थ में यह प्रयोग है। इसी प्रकार 'दुःखमाविष्करोति' 'अस्त्रं प्रादुष्करोति' इत्यादि स्थलों में भी आविः, प्रादुः आदि पद ज्ञानगोचरार्थक हैं, इसलिए सर्वत्र द्वितीया निर्वाह पूर्ववत् होता है। (इस प्रकार 'दुःखं ज्ञानगोचरीकरोति' 'अस्त्रं ज्ञानगोचरी करोति' इन अर्थों में उक्त प्रयोग हुए हैं)— ऐसा कहते हैं।

तन्न- नमःपदस्य धर्मिबोधकत्वे 'हरिराविर्भवति' इत्यादिवत् 'नमो भवति' इति प्रयोगप्रसङ्गात्, तस्मात् 'नमस्करोति' 'आविष्करोति' 'पुरस्करोति' 'अलंकरोति' इत्यादौ नमःप्रभृतयो निपाताः धर्मवाचका एव लाघवात्, तत्तद्धर्माश्रयस्य दर्शितरीत्यैव कर्मतोपपत्तेः। 'आविर्भवति' इत्यादि प्रयोगानुरोधेन चाविरादिशब्दानां प्रकटताश्रये धर्मिणि लक्षणोपेयते 'शुक्लः पटः' इत्यादौ शुक्लादिशब्दानामिव।

अस्तु वा तत्रापि प्रकटतारूपो धर्म एव तदर्थस्तस्यैव धात्वर्थभावे धर्मरूपेऽभेदान्वयः, क्रियायां स्वार्थाभेदान्वये आविरादेरेवाकाङ्क्षा स्वीक्रियते न तु नमःपदादेरिति न 'नारायणो नमोभवति' इत्यादेः प्रसङ्गः।

'केचित्तु' प्रतीक से जो ग्रन्थ उठाया गया है उसका खण्डन करते हैं कि वह ठीक नहीं है। क्योंकि नमः पद के धर्मी का बोधक होने पर 'हरिराविर्भवति' इत्यादि प्रयोगों की तरह 'नमो भवति' ऐसे प्रयोग का प्रसङ्ग होगा। आशय यह है कि नमः पद यदि नतिकर्मरूपधर्मीपरक हो, धर्मपरक न हो तो जैसे 'हरिराविर्भवति' प्रयोग होता है, उसी प्रकार 'हरिर्नमोभवति' प्रयोग भी होने लगेगा। जैसे हरि पद से आविर्भवति का योग होने पर द्वितीया नहीं होती प्रथमा ही होती है। उसी प्रकार नमः पद का योग होने पर नारायण आदि पदों से प्रथमा ही होनी चाहिए। आविः पद धर्मीवाचक है, उसका योग होने पर हरि आदि पदों से प्रथमा होती है, नमः आदि पदों के भी धर्मीवाचक होने के कारण तद्वत् 'हरिर्नमोभवति' इत्यादि प्रयोग होने लगेंगे। इस कारण 'नमस्करोति' 'आविष्करोति' 'पुरस्करोति' 'अलं करोति' इत्यादि स्थलों में नमः प्रभृति निपात (नमः, आविः, पुरः और अलम् आदि निपात) धर्म के ही (नति, अग्रदेशावस्थान आदि के ही) वाचक हैं लाघव होने के कारण और तत्तद्धर्माश्रय के कर्मता की दर्शित रीति से ही उपपत्ति होती है। धर्म के वाचक यदि नमः प्रभृति निपात होंगे तो शक्यतावच्छेदक तत्तद्धर्मत्व से ही धर्म का अनुगम हो जायेगा। यदि नमः प्रभृति निपात धर्मी के (नतिकर्म, अग्रस्थित आदि के) वाचक हुए तो तत्तद्धर्मरूप शक्यतावच्छेदक का अनुगम तत्तद्धर्मत्व से करना पड़ेगा। अतः धर्म के ही वाचक नमः प्रभृति को मानने में लाघव है। जिस रीति से तत्तद्धर्माश्रय की कर्मता उपपादित की गयी है उसी रीति से तत्तद्धर्माश्रय की कर्मता बन जायेगी।

आविर्भवति' इत्यादि प्रयोग के अनुरोध से आविः आदि शब्दों की प्रकटताश्रय में धर्मी में लक्षणा स्वीकारी जाती है (अर्थात् मुख्य वृत्ति से आविः आदि पद भी प्रकटता

रूप धर्म के ही बोधक होते है) '**शुक्लः पटः**' इत्यादि स्थलों में शुक्ल आदि पदों की लक्षणा की तरह। '**शुक्लः पटः**' यहाँ पर शुक्ल पद शुक्लवान् में लाक्षणिक है। शुक्ल पद की मुख्या शक्ति शुक्लत्व आश्रय शुक्ल गुण में है और यहाँ पर शुक्ल पद लक्षणावृत्ति के द्वारा शुक्लवान् को बोधित कराता है। वैसे ही **आविर्भवति** में आविः पद की मुख्या वृत्ति प्रकटतारूप धर्म में ही है किन्तु लक्षणावृत्ति के द्वारा आविः पद प्रकटताश्रय (धर्मी) का बोधक होता है।

अथवा वहाँ पर '**आविर्भवति**' में भी प्रकटता रूप धर्म ही आविः का अर्थ हो जाये, उसी का भूधात्वर्थ भाव में अभेदसम्बन्ध से अन्वय होता है, क्रिया में स्वार्थ का अभेद सम्बन्ध से अन्वय होने में आविः आदि पदों की ही आकाङ्क्षा स्वीकारी जाती है न कि नमः पदादि की, इसलिए '**नारायणो नमोभवति**' इत्यादि प्रयोगों का प्रसङ्ग नहीं होता है। नमः पद की आकाङ्क्षा धात्वर्थ क्रिया में स्वार्थ के अभेदान्वय की कारण नहीं होती है।

'शुक्लीकरोति' इत्यादौ च्विप्रत्ययान्तस्यापि शौक्ल्यादिधर्म एवार्थः- अभूततद्भावे तदनुशासनात्। अभूततद्भावश्च–अभूतस्य = पूर्वकालावच्छेदेन शुक्लादिभावरहितस्य तद्भावः = शौक्ल्यादिः। अथवा अभूतः = पूर्वकालावच्छेदेन धर्मिण्यविद्यमानस्तद्भावः = शौक्ल्यादिः। 'शुक्लीभवति' इत्यादौ तु दर्शिता गतिः।

'**केचित्तु**' इस प्रतीक के द्वारा जो मत आया था, उसकी मूल धुरी थी-**शुक्लीकरोति** इत्यादि च्विप्रत्ययान्तस्थलों में जैसे धर्मी का बोध होता है, उसी प्रकार **नमस्कृत्य** इत्यादि स्थलों में नमः पद नतिकर्मरूप धर्मी का बोधक होता है। यहाँ पर गदाधर उसे भी खण्डित कर रहे हैं कि—

'**शुक्लीकरोति**' इत्यादि स्थलों में च्विप्रत्ययान्त का भी शौक्ल्यादि धर्म ही अर्थ होता है। क्योंकि अभूततद्भाव में च्वि का अनुशासन है। सूत्र है '**अभूततद्भावे च्विः**' अभूततद्भाव का अर्थ है— अभूतस्य माने पूर्वकालावच्छेदेन शुक्लादिरहित का, तद्भाव अर्थात् शौक्ल्यादि। पूर्वकालावच्छेदेन शुक्लादि रहित का शुक्ल होना ही अभूततद्भाव है। अथवा अभूतः तद्भावः अभूततद्भावः, अभूतः का अर्थ है पूर्वकालावच्छेदेन धर्मी में अविद्यमान तद्भाव शौक्ल्यादि। तद्भाव तो धर्म ही है। इस प्रकार च्विप्रत्ययान्त भी धर्म का ही वाचक होता है धर्मी का नहीं । '**शुक्लीभवति**' इत्यादि स्थलों में तो गति दर्शित है, दिखायी ही गयी है। जैसे **आविर्भवति** में आविः पद धर्मी में लाक्षणिक होता है वैसे ही '**शुक्लीभवति**' में च्विप्रत्ययान्त भी धर्मी में लाक्षणिक होता है। च्वि प्रत्ययान्त का मुख्यार्थ तो धर्म ही होता है।

विमर्श- अभूततद्भाव पद का अर्थ विवेचित करते हुए गदाधर दो समासों की सम्भावना व्यक्त करते हैं '**अभूतस्य तद्भावः**' इस षष्ठी तत्पुरुष समास की और '**अभूतः तद्भावः**' इस कर्मधारय समास की । षष्ठी तत्पुरुष होने पर अर्थ होगा 'पूर्वकालावच्छेदेन शुक्लादि से रहित का शौक्ल्य ही अभूततद्भाव है' कर्मधारय होने पर 'पूर्वकालावच्छेदेन धर्मी में

अविद्यमान तद्भाव शौक्ल्य ही अभूततद्भाव है'।

न चाभूततद्भावपर्यन्तस्य च्विप्रत्ययवाच्यत्वे गौरवाच्छुक्लादिपदोपस्थाप्यपदार्थतावच्छेदकशौक्ल्याद्यन्वय्यभूतत्वमेव च्विप्रत्ययार्थोऽस्तु, शुक्लतरः इत्यादौ तरबाद्यर्थोत्कर्षस्येव च्व्यर्थस्यापि व्युत्पत्तिवैचित्र्येण पदार्थतावच्छेदकेऽन्वयसम्भवादिति वाच्यम्; मन्मतेऽपि शौक्ल्यादिभावस्यैव च्विप्रत्ययार्थतोपगमेन गौरवानवकाशात्, पूर्वकालावच्छिन्नस्वनिष्ठाभाव प्रतियोगित्वसहितस्याधेयत्वस्य प्रत्ययार्थे प्रकृत्यर्थसम्बन्धतया भानोपगमाच्छौक्ल्यादावभूतत्वलाभेनैव 'जलपरमाणुः शुक्लीभवति' इति प्रयोगाप्रसङ्गात् ।

शौक्ल्यादेर्धर्मत्वेनैव वाच्यता न तु ताद्रूप्येणेति न शक्त्यानन्त्यम् । प्रकृत्यर्थतावच्छेदकतत्तद्धर्मनिष्ठाधेयताविशेषाणामेव सम्बन्धतया भानोपगमाद् धर्मान्तरस्याभूतत्वमादाय न 'जलपरमाणुः शुक्लीभवति' इत्यादिप्रसङ्गः।

यदि कहो कि अभूततद्भावपर्यन्त को च्विप्रत्यय का वाच्य मानने में गौरव होने के कारण (अभूत तद्भाव के अन्तर्गत शौक्ल्य और अभूतत्व दोनों की ही च्विप्रत्यय वाच्यता स्वीकारनी पड़ेगी, अतः गौरव होगा। इस कारण) शुक्लादिपदोपस्थाप्यपदार्थतावच्छेदक शौक्ल्याद्यन्वयी अभूतत्व ही च्वि प्रत्यय का अर्थ होवे। अर्थात् शुक्लादिपदोपस्थाप्य पदार्थतावच्छेदक शौक्ल्य में अन्वित होने वाला अभूतत्व ही च्विप्रत्यय का अर्थ होता है यही क्यों न स्वीकार लिया जाये? इसमें समस्या यह है च्विप्रत्ययार्थ अभूतत्व का शुक्ल पदार्थैकदेश (पदार्थतावच्छेदक) शौक्ल्य में अन्वय हो रहा है, अतः 'पदार्थ पदार्थ से ही अन्वित होता है पदार्थैकदेश से नहीं' इस नियम का व्यभिचार होगा। किन्तु शुक्लतरः इत्यादि स्थलों में तरप् आदि प्रत्ययों के अर्थ उत्कर्ष की तरह च्वि के अर्थ का भी व्युत्पत्ति वैचित्र्य से पदार्थतावच्छेदक में अन्वय सम्भव है। आशय यह है कि शुक्लतरः में तरबर्थ उत्कर्ष का अन्वय शुक्लपदार्थ शुक्ल में न होकर पदार्थतावच्छेदक शौक्ल्य में होता है। इसी प्रकार च्वि के अर्थ अभूतत्व का भी शौक्ल्य रूप पदार्थतावच्छेदक में अन्वय हो सकता है।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए हमारे मत में भी शौक्ल्यादिभाव की ही च्वि प्रत्ययार्थता स्वीकारने के कारण गौरवानवकाश है। भाव यह है कि आपकी मूल आपत्ति तो यही थी न, कि हमारे मत में च्विप्रत्यय का अर्थ अभूततद्भावपर्यन्त होने से अभूतत्व और तद्भाव दोनों की ही च्विप्रत्ययवाच्यता स्वीकारने से गौरव है, आपके मत में तो च्विप्रत्यय का अर्थ सिर्फ़ अभूतत्व है। अतः अभूतत्व मात्र की च्विप्रत्ययवाच्यता स्वीकारने से आपके मत में लाघव है। किन्तु हमारे मत में अभूतत्व में च्विप्रत्ययवाच्यता ही नहीं है केवल तद्भाव ही च्वि प्रत्यय का वाच्य है। फिर अभूतत्वलाभ कैसे होगा? प्रत्ययार्थ (तद्भाव) में पूर्वकालावच्छिन्नस्वनिष्ठाभावप्रतियोगित्वसहिताधेयत्व का प्रकृत्यर्थ (शुक्लादि) सम्बन्धतया भान स्वीकारने से शौक्ल्यादि में अर्थतः अभूतत्वलाभ हो जाने के कारण 'जलपरमाणुः

शुक्लीभवति' इत्यादि प्रयोगों का प्रसङ्ग नहीं है। जलपरमाणु में शौक्ल्य तो नित्य है, अतः जल परमाणु का शौक्ल्य में पूर्वकालावच्छिन्न स्वनिष्ठाऽभावप्रतियोगित्वसहिताधेयत्व सम्बन्ध से अन्वय नहीं सम्भव है। जलपरमाणु में पूर्वकालावच्छिन्न शौक्ल्याभाव नहीं मिलेगा, अतः पूर्वकालावच्छिन्न स्वनिष्ठाभावप्रतियोगित्व और उससे सहित आधेयत्व शौक्ल्य में नहीं है। अतः यह प्रयोग नहीं हो सकता है।

शौक्ल्यादि की च्विप्रत्ययवाच्यता धर्मत्वेन है न कि ताद्रूप्येण इसलिए शक्ति की अनन्तता नहीं होगी। प्रकृत्यर्थतावच्छेदकतत्तद्धर्मनिष्ठ आधेयता विशेषों का ही सम्बन्धतया भान स्वीकारने के कारण धर्मान्तर के अभूतत्व को लेकर 'जलपरमाणुः शुक्लीभवति' इत्यादि प्रयोगों का प्रसङ्ग नहीं होता। शौक्ल्यधर्मनिष्ठ आधेयताविशेष ही जलपरमाणु का शौक्ल्य में सम्बन्ध है न कि नैल्यादिधर्मनिष्ठ आधेयताविशेष। इसकारण धर्मान्तर के अभूतत्व को आधार बनाकर ऐसा प्रयोग नहीं हो सकता है।

निष्कर्ष- इस प्रकार हमारे मत में तद्भाव को च्विप्रत्यय का अर्थ मानने के पक्ष में कोई गौरव या अन्य कोई आपत्ति नहीं है। अतः इस पक्ष को ही स्वीकारना चाहिए। अभूतत्व को च्विप्रत्यय का अर्थ स्वीकारना उचित नहीं है। (इस पक्ष में दोष आगे दिखा रहे हैं।)

प्रकृत्यर्थतावच्छेदकगतप्रागविद्यमानत्वस्य च्विप्रत्ययार्थत्वमते तु 'अशुक्लीभवति' इत्यादौ प्रकृत्यर्थतावच्छेदकशौक्ल्याद्यभावस्य प्रागपि क्वचिद्विद्यमानतया तदभावान्वये योग्यतानुपपत्तिः। तत्तद्धर्मिण्यविद्यमानत्वस्य च्व्यर्थत्वे शक्त्यानन्त्यमिति पूर्वकालावच्छिन्नोऽभाव एवाविद्यमानत्वं तस्य च प्रकृत्यर्थतावच्छेदके सामानाधिकरण्यसहितप्रतियोगित्वसम्बन्धेनान्वयो वाच्यः, प्रकृत्यर्थे च तादृशसम्बन्धेनाभावविशिष्टस्य वैशिष्ट्यभानमुपेयम्, अन्यथाऽन्यत्र स्वाभावसमानाधिकरणस्याशौक्ल्यादेः सर्वदाऽशुक्ले काकादावपि सत्त्वेन 'काकोऽशुक्लीभवति' इति प्रयोगः स्यात् । अत्राभावरूपपदार्थान्तरविशिष्ट प्रकृत्यर्थतावच्छेदकवैशिष्ट्यभानं च प्रकृत्यर्थे न सम्भवति। प्रकृत्या स्ववृत्तिसहकारेण स्वार्थे यादृशविशेषणावच्छिन्नः प्रकृत्यर्थतावच्छेदकीयसम्बन्धो न प्रत्याय्यते पदान्तर-समभिव्याहाररूपाकाङ्क्षयापि पदार्थद्वयसम्बन्धभानमात्रप्रयोजिकया प्रकृत्यर्थे प्रकृत्यर्थतावच्छेदकीयतादृशविशेषणावच्छिन्नसम्बन्धाप्रत्यायनेन प्रकृत्यर्थता-वच्छेदकीयसम्बन्धे च्विप्रत्ययार्थाभावविशिष्टप्रतियोगित्वरूपविशेषणस्य प्रकृतिवृत्त्याऽभासमानस्य भानासम्भवादित्यनुपपत्तिः।

प्रकृत्यर्थतावच्छेदकगत प्राक् अविद्यमानत्व (अभूतत्व) को च्वि पद का अर्थ मानने के मत में तो **अशुक्लीभवति** इत्यादि स्थलों में प्रकृत्यर्थतावच्छेदकशौक्ल्यादि के अभाव के पूर्व भी कभी विद्यमान रहने के कारण शौक्ल्याद्यभाव का अन्वय करने में योग्यता की अनुपपत्ति है। भाव यह है कि **अशुक्लीभवति** प्रयोग करने पर शौक्ल्याभाव रूप अर्थ में (अशुक्लपदार्थ में) च्वि प्रत्ययार्थ अभूतत्व (प्राक् अविद्यमानत्व) का अन्वय करना पड़ेगा या अन्वय होना चाहिए। यदि कोई वस्तु पूर्व में अशुक्ल रही हो अनन्तर शुक्ल हुई हो

और बाद में फिर अशुक्ल हो गयी हो, (जैसे ईंट पूर्व में श्याम होती है बाद में रक्त और फिर श्याम हो जाती है। उसी प्रकार) तो वहाँ अन्तिम अशुक्ल अवस्था में **अशुक्लीभवति** प्रयोग होना चाहिए किन्तु हो नहीं सकेगा। क्योंकि अभूतत्व (प्राक् अविद्यमानत्व) का अन्वय शौक्ल्याभाव में होना चाहिए किन्तु शौक्ल्याभाव में तो प्राक् विद्यमानत्व ही है, अविद्यमानत्व नहीं। अतः च्व्यर्थ के अन्वय की योग्यता ही नहीं है।

तत्तद्धर्मी में अविद्यमानत्व को च्वि का अर्थ मानने पर तो शक्ति की अनन्तता होगी (क्योंकि तत् पदार्थ तो अनन्त होंगे) इसलिए पूर्वकालावच्छिन्न अभाव ही अविद्यमानत्व है और उसका प्रकृत्यर्थतावच्छेदक में सामानाधिकरण्य से सहितप्रतियोगित्व सम्बन्ध से अन्वय करना चाहिए। सामानाधिकरण्य से सहित प्रतियोगित्व का अर्थ है कि पूर्वकालावच्छिन्न अभाव का सामानाधिकरण्य और प्रतियोगित्व दोनों ही प्रकृत्यर्थतावच्छेदक में आना चाहिए। प्रकृत्यर्थ में तादृश (सामानाधिकरण्य सहित प्रतियोगित्व) सम्बन्ध से विशिष्ट प्रकृत्यर्थतावच्छेदक के वैशिष्ट्य का भान स्वीकारना चाहिए। (जैसे **अशुक्लीभवति** 'यहाँ पर पूर्वकालावच्छिन्न अभाव का सामानाधिकरण्य और प्रतियोगित्व दोनों ही अशौक्ल्य में है क्योंकि जिस वस्तु के लिए ऐसा प्रयोग हो रहा है, उस वस्तु में अशौक्ल्य का अभाव प्राक्कालावच्छेदेन है और वर्तमानावच्छेदेन अशौक्ल्य है, अतः अभाव का समानाधिकरण्य अशौक्ल्य में है तथा अभाव का प्रतियोगित्व भी अशौक्ल्य में है। और वही अशौक्ल्य घटादि में है। ऐसा नहीं स्वीकारने पर अन्यत्र स्वाभावसमानाधिकरण अशौक्ल्य सर्वदा अशुक्ल काक में भी रहने के कारण **'काकोऽशुक्लीभवति'** यह प्रयोग होने लगेगा। यहाँ पर काक पूर्व में भी शुक्ल नहीं रहा है, अतः उसके लिए ऐसा प्रयोग नहीं होना चाहिए। किन्तु यदि सामानाधिकरण्यसहितप्रतियोगित्व संबन्ध से पूर्वकालावच्छिन्न अभाव का प्रकृत्यर्थतावच्छेदक में और उसका उक्तोभय सम्बन्ध से विशिष्ट का प्रकृत्यर्थ में अन्वय करना चाहिए। इसे न माने तो अशौक्ल्य काक में है और अन्यत्र कहीं वह अशौक्ल्याभाव समानाधिकरण भी है। इसलिए ऐसा प्रयोग होना चाहिए। जब उक्त रीति से प्रकृत्यर्थतावच्छेदक में अशौक्ल्य और प्रकृत्यर्थानवच्छेदक को प्रकृत्यर्थ में रहना चाहिए तो सामानाधिकरण्य सहित प्रतियोगित्व से विशिष्ट प्रकृत्यर्थतावच्छेदक अशौक्ल्य काक रूप प्रकृत्यर्थ में नहीं है क्योंकि काक में रहने वाला अशौक्ल्य स्वाभावसमानाधिकरण्य से विशिष्ट नहीं है।

इस प्रकार आपको यही कहना पड़ रहा है कि अभाव रूप पदार्थान्तर से विशिष्ट प्रकृत्यर्थतावच्छेदक के वैशिष्ट्य का भान प्रकृत्यर्थ में होता है किन्तु यह तो सम्भव ही नहीं है। क्योंकि प्रकृति के द्वारा स्ववृत्ति सहकार से (अपनी वृत्ति शक्ति की सहायता से) स्वार्थ में यादृशविशेषणावच्छिन्न प्रकृत्यर्थतावच्छेदकीय सम्बन्ध प्रत्याय्यित नहीं होता है, पदान्तर समभिव्याहाररूपाकाङ्क्षा, जो कि पदार्थद्वयसम्बन्धभानमात्र प्रयोजिका होती है, से भी प्रकृत्यर्थ में प्रकृत्यर्थतावच्छेदकीय तादृशविशेषणावच्छिन्नसम्बन्ध का प्रत्यायन न होने से प्रकृत्यर्थतावच्छेदकीय सम्बन्ध में च्विप्रत्ययार्थाभावविशिष्टप्रतियोगित्व रूप विशेषण जो कि वृत्ति से भासमान नहीं है,का भान असम्भव है, यही अनुपपत्ति है।

आशय यह है कि यहाँ पर प्रकृत्यर्थ में अभावरूप पदार्थ से विशिष्ट प्रकृत्यर्थतावच्छेदक

वैशिष्ट्य का भान स्वीकारते हैं किन्तु यह सम्भव नहीं है। क्योंकि न तो पद की शक्ति से ही प्रकृत्यर्थ में अभाव रूप प्रत्ययार्थविशिष्ट प्रकृत्यर्थतावच्छेदक वैशिष्ट्य भास सकता है और न ही आकाङ्क्षा से। शक्ति से तो यह सम्बन्ध और ऐसा प्रत्यायन नहीं ही होता है और स्वार्थ में प्रकृति के द्वारा शक्ति के सहकार से यादृश विशेषणविशिष्ट प्रकृत्यर्थतावच्छेदक का सम्बन्ध नहीं प्रत्याय्यित होता है वह तादृशविशेषणविशिष्ट प्रकृत्यर्थतावच्छेदक सम्बन्ध आकाङ्क्षा से भी नहीं प्रत्यायित हो सकता है।

सार यह है कि इस प्रकार से विशिष्ट प्रकृत्यर्थतावच्छेदक का प्रकृत्यर्थ में जो सम्बन्ध भासेगा वह किसके आधार पर भासेगा? शक्ति के आधार पर या आकाङ्क्षा के आधार पर । न तो शक्ति के आधार पर ही वह भास सकता है और न आकाङ्क्षा के। शक्ति के आधार पर इसलिए नहीं क्योंकि शुक्ल पद की शक्ति शौक्ल्य से विशिष्ट में है, अतः शौक्ल्य का ही सम्बन्ध भास सकता है उक्त विशेषण विशिष्ट शौक्ल्य का नहीं । आकाङ्क्षा तो पदार्थद्वयसम्बन्ध भान मात्र प्रयोजिका होती है, उससे एक ही पदार्थ में पदार्थतावच्छेदक का सम्बन्ध कैसे भास सकता है? प्रकृत्यर्थ और प्रकृत्यर्थतावच्छेदक तो एक ही पदार्थ माने जाते हैं दो नहीं तो उनके बीच का सम्बन्ध कैसे आकाङ्क्षा से भासित हो सकता है? इस प्रकार यही निर्धारित होता है कि इस मत में च्विप्रत्ययार्थाभावविशिष्टप्रतियोगित्व रूप विशेषण जो कि प्रकृतिवृत्ति से अभासमान है का प्रकृत्यर्थतावच्छेदकीय सम्बन्ध में भान सम्भव नहीं है। यह अनुपपत्ति है।

अस्मन्मते तु– भवत्यर्थे भावे च्विप्रत्ययान्तार्थस्याधेयतासम्बन्धेन पूर्वकालावच्छिन्नस्वाभावाधिकरणविशिष्टाशौक्ल्यादेः सामानाधिकरण्यसम्बन्धेनैवान्वयस्योपगन्तव्यतया तेन सम्बन्धेन चाधिकरणविशिष्टा शौक्ल्यादिना विशिष्टस्य भवत्यर्थस्यैवाख्यातार्थे आश्रयत्वे निरूपितत्वसम्बन्धेनैव भानात्, तादृशविशिष्टनिरूपिताश्रयत्वस्य च पूर्वकालावच्छेदेनाशौक्ल्याद्यभावाधिकरण एव सत्त्वेन नोक्तातिप्रसङ्गः। अन्यत्स्वयमूहनीयम् ।

हमारे मत में तो—भूधात्वर्थ भाव में च्विप्रत्ययान्तार्थ का 'आधेयतासम्बन्ध से पूर्वकालावच्छिन्नस्वाभावाधिकरण विशिष्ट अशौक्ल्यादि का' सामानाधिकरण्य सम्बन्ध से ही अन्वय उपगन्तव्य होने के कारण और उस सम्बन्ध से अधिकरण विशिष्ट अशौक्ल्यादि से विशिष्ट भूधात्वर्थ का ही आख्यातार्थ आश्रयत्व में निरूपितत्व सम्बन्ध से ही भान स्वीकारा जाता है। तादृशविशिष्टनिरूपिताश्रयत्व के पूर्वकालावच्छेदेन अशौक्ल्याद्यभावाधिकरण में ही रहने के कारण उक्त अतिप्रसङ्ग नहीं है। शेष स्वयं समझ लेना चाहिए।

च्विप्रत्यय का अर्थ अभूतत्व को मानने में क्या दोष है यह बताया। अब च्विप्रत्यय का अर्थ तद्भाव मानने वाले अपने मत में कोई दोष नहीं आता है वह प्रतिपादित किया जा रहा है। इस मत में **अशुक्लीभवति** यहाँ पर च्विप्रत्ययान्त अशुक्लीपर्यन्त के अर्थ का भूधात्वर्थ में और भूधात्वर्थ का आश्रयत्व रूप आख्यातार्थ में अन्वय होगा। च्विप्रत्ययान्त का अर्थ है 'आधेयतासम्बन्ध से पूर्वकालावच्छिन्नस्वाभावाधिकरणविशिष्ट अशौक्ल्यादि'

उसका सामानाधिकरण्य सम्बन्ध से भूधात्वर्थ भाव में अन्वय होगा। इस भाव का (भूधात्वर्थ का) आश्रयत्व में निरूपितत्व सम्बन्ध से अन्वय होगा। इस प्रकार का अन्वय वहीं पर सम्भव है, जहाँ पर पूर्व में (पूर्वकालावच्छेदेन) अशौक्ल्यादि का अभाव रहा हो। जैसे **पटोऽशुक्लीभवति** प्रयोग में पूर्वकालावच्छिन्न (पूर्वकालावच्छेदेन) स्वाभाव (अशौक्ल्याभाव) के अधिकरण में अशौक्ल्य है, अतः पूर्वकालावच्छिन्नस्वाभावाधिकरण पट से आधेयतासम्बन्ध से विशिष्ट होगा अशौक्ल्य, उस अशौक्ल्य का सामानाधिकरण्यसम्बन्ध से अन्वय धात्वर्थ भाव में करना है। पट में उक्त अशौक्ल्य और भाव दोनों है, अतः सामाधिकरण्य सम्बन्ध से 'आधेयतासम्बन्ध से पूर्वकालावच्छिन्न स्वाभावाधिकरणीभूत पट विशिष्ट अशौक्ल्य से विशिष्ट हो गया भूधात्वर्थ भाव, तन्निरूपिताश्रयत्व पट में है। अतः यहाँ पर शाब्दबोध अबाधित है। यहाँ **पटोऽशुक्लीभवति** से **'आधेयतासम्बन्धेन पूर्वकालावच्छिन्नस्वाभावाधिकरण-विशिष्टाशौक्ल्यसमानाधिकरणभावनिरूपिताश्रयतावान् पटः'** ऐसा शाब्दबोध होता है। **'काकोऽशुक्लीभवति'** यह प्रयोग नहीं होता है क्योंकि शाब्दबोध में योग्यता ही नहीं है। यहाँ पर काक पूर्वकालावच्छेदेन अशौक्ल्याभाव का अधिकरण ही नहीं है। फिर अशौक्ल्य कैसे पूर्वकालावच्छेदेन स्वाभाव (अशौक्ल्याभाव) के अधिकरण से आधेयता सम्बन्ध से विशिष्ट होगा? और फिर इसके आगे का अंश भी बाधित ही होगा। तादृश अशौक्ल्यविशिष्ट भाव और भावनिरूपिताश्रयत्व सभी ही अप्रसिद्ध होगा। इस तरह इस मत में कोई भी दोष नहीं है।

'स्वस्ति भवते' इत्यादावाशीः स्वस्त्यर्थः सा च परहितविषयकस्वेच्छा, स्वम् = उच्चारयिता। हितान्वयी सम्बन्धश्चतुर्थ्यर्थः। एवञ्च 'भवदीयहित-विषयिणी मदीयेच्छा' इति बोधः। कल्याणाद्यर्थकोऽपि स्वस्तिशब्दः 'स्वस्त्यस्तु मह्यम्' इत्यादौ। तत्रापि चतुर्थ्यर्थः स्वस्त्यर्थान्वयी सम्बन्ध इत्यलं पल्लवितेन।

॥ इति चतुर्थ्यर्थनिरूपणम् समाप्तम् ॥

'स्वस्ति भवते' इत्यादि स्थलों में आशीष स्वस्ति पद का अर्थ है। तथा वह आशीष परहितविषयकवेच्छा है, स्व माने उच्चारयिता, हित में अन्वित होने वाला सम्बन्ध चतुर्थी का अर्थ है। इस प्रकार **'स्वस्ति भवते'** से **'भवदीयहितविषयिणी मदीयेच्छा'** 'आपके हित को विषय करने वाली मेरी इच्छा हैं ऐसा शाब्दबोध होता है। कल्याणादि अर्थ में भी स्वस्ति शब्द है **'स्वस्त्यस्तु मह्यम्'** 'मेरा कल्याण होवे' इत्यादि स्थलों में। वहाँ पर भी चतुर्थी का अर्थ स्वस्त्यर्थ (हित विषयिणी इच्छा) में अन्वयी सम्बन्ध है। इस प्रकार बस और व्याख्यान करने की आवश्यकता नहीं है।

यद्यपि स्वस्ति का अर्थ परहितविषयिणी इच्छा बताया है। किन्तु केवल हितविषयिणी इच्छा को स्वस्ति का अर्थ समझना चाहिए। साथ में जो प्रयुक्त होगा उसके साथ हित अन्वित हो जायेगा।

इस प्रकार महामहोपाध्याय गदाधर भट्टाचार्य विरचित व्युत्पत्तिवाद की श्रीसच्चिदानन्द मिश्र विरचित सुनन्दा नामक हिन्दी व्याख्या में चतुर्थीकारक पूर्ण हुआ।

-----:0:-----

–अथ पञ्चमी–

'वृक्षात्पर्णं पतति' इत्यादौ पञ्चम्या प्रकृत्यर्थस्य वृक्षादेः पतन क्रियाऽपादानत्वं प्रत्याय्यते । अपादानत्वञ्च स्वनिष्ठभेदप्रतियोगितावच्छेदकीभूतक्रियाजन्यविभागाश्रयत्वम् । पर्णादेः स्वनिष्ठवृक्षादिविभाग-जनकस्वपतनाद्यपादानत्ववारणाय भूतान्तं क्रियाविशेषणम्। भेदप्रतियोगिता-वच्छेदकत्वे विभागे च पञ्चम्याः शक्तिद्वयम् । भेदे विभागे च वृक्षादेः प्रकृत्यर्थस्याधेयतासम्बन्धेनान्वयः। प्रतियोगितावच्छेदकत्व माश्रयत्वसम्बन्धेन विभागश्च जनकतासम्बन्धेन क्रियायामन्वेति ।

'वृक्षात् पर्णं पतति' 'वृक्ष से पत्ता गिरता है' इत्यादि स्थलों में पञ्चमी के द्वारा वृक्ष आदि का पतन क्रियाऽपादानत्व प्रत्याय्यित हुआ करता है और अपादानत्व स्वनिष्ठभेद प्रतियोगितावच्छेदकीभूतक्रियाजन्यविभागाश्रयत्व है। पर्णादि का स्वनिष्ठवृक्षादिविभागजनक-स्वपतनाद्यपादानत्व का वारण करने के लिए भूतान्त-स्वनिष्ठभेदप्रतियोगितावच्छेदकीभूत विशेषण क्रिया में दिया गया है। भेदप्रतियोगितावच्छेदकत्व में और विभाग में पञ्चमी की दो शक्तियाँ है। भेद में और विभाग में वृक्षादि प्रकृत्यर्थ का आधेयता सम्बन्ध से अन्वय होगा । प्रतियोगितावच्छेदकत्व आश्रयत्वसम्बन्ध से और विभाग जनकतासम्बन्ध से क्रिया में अन्वित होगा।

यहाँ पर बता रहे हैं कि 'वृक्षात्पर्णं पतति' इत्यादि स्थलों में वृक्षपदोत्तर पञ्चमी के द्वारा वृक्ष का पतनक्रियाऽपादानत्व बोधित होता है। प्रश्न उठता है कि अपादानत्व क्या है? तो स्वनिष्ठभेदप्रतियोगितावच्छेदकीभूतक्रियाजन्यविभागाश्रयत्व ही अपादानत्व है। स्व माने वृक्ष, वृक्षनिष्ठ जो भेद 'विभागजनकक्रियावान् न' ऐसा भेद, इस भेद की प्रतियोगितावच्छेदकीभूतक्रिया (विभागजनक क्रिया) से जन्य विभाग का आश्रयत्व वृक्ष में विद्यमान है। अतः वृक्ष की अपादानता होती है। यदि इस अपादानत्व लक्षण में स्वनिष्ठ भेदप्रतियोगितावच्छेदकीभूत अंश, जो कि क्रिया विशेषण है, न दिया जाये; तो पर्णादि की अपादानता पर्णादिनिष्ठपतनादिक्रिया के प्रति हो जायेगी। क्योंकि फिर तो अपादानत्व क्रियाजन्यविभागाश्रयत्व रूप होगा। क्रियाजन्य विभागाश्रयत्व जैसे वृक्ष में है, उसी प्रकार पर्ण में भी है। इसलिए 'पर्णात् पर्णम् पतति' प्रयोग होने की आपत्ति आयेगी। इस कारण क्रियाविशेषण स्वनिष्ठभेदप्रतियोगितावच्छेदकीभूत अंश दिया जाता है। पर्णनिष्ठ क्रिया जो कि विभागजनकीभूत है, पर्णनिष्ठ भेद की प्रतियोगितावच्छेदक नहीं है। इसलिए उक्त प्रयोग नहीं होता है। अपादानत्व के स्वनिष्ठभेदप्रतियोगितावच्छेदकीभूत क्रियाजन्य-विभागाश्रयत्व रूप होने पर भी पञ्चमी की शक्ति भेदप्रतियोगितावच्छेदकत्व और विभाग में है। इस प्रकार पञ्चमी की शक्तियाँ दो है। भेद में प्रकृत्यर्थ वृक्षादि का आधेयत्व सम्बन्ध से और विभाग में भी आधेयत्व सम्बन्ध से अन्वय होगा। क्रिया में प्रतियोगितावच्छेदकत्व आश्रयत्व सम्बन्ध से और विभाग जनकता सम्बन्ध से अन्वित होगा। इस प्रकार 'वृक्षनिष्ठ

विभागजनकवृक्षनिष्ठभेदप्रतियोगितावच्छेदकत्वाश्रयक्रियावत् पर्णम्' 'वृक्षनिष्ठविभाग जनकवृक्षनिष्ठभेदप्रतियोगितावच्छेदक क्रियावत् पर्ण है' ऐसा शाब्दबोध उक्त वाक्य से हुआ करता है।

जनकतासम्बन्धस्य प्रतियोगितानवच्छेदकतया नञा तत्सम्बन्धावच्छिन्न विभागाभावः क्रियायां बोधयितुं न शक्यते इति चेत् ? तर्हि विभाग जनकत्वमेव पञ्चम्यर्थोऽस्तु। प्रतियोगितावच्छेदकत्वस्येव तस्याप्याश्रयता सम्बन्धेन क्रिया-यामन्वयः, एवञ्च वृक्षनिष्ठभेदप्रतियोगितावच्छेदक तन्निष्ठविभागजनक-पतनाश्रयः पर्णमित्याकारक उक्तस्थले बोधः।

जनकतासम्बन्ध के वृत्त्यनियामक होने के कारण नञ् के द्वारा वृत्त्यनियामक सम्बन्ध जनकतासम्बन्ध से अवच्छिन्नप्रतियोगिताक अभाव क्रिया में बोधित करना शक्य नहीं है। यदि ऐसा कहो? तो विभागजनकत्व ही पञ्चमी का अर्थ हो जाये, प्रतियोगितावच्छेदकत्व की तरह (जैसे प्रतियोगितावच्छेदकत्व का आश्रयता सम्बन्ध से क्रिया में अन्वय होता है उसी तरह) इसका विभागजनकत्व का भी क्रिया में आश्रयता सम्बन्ध से अन्वय होता है। इस प्रकार **'वृक्षनिष्ठभेदप्रतियोगितावच्छेदक, वृक्षनिष्ठविभागजनकपतनाश्रयः पर्णम्'** 'वृक्षनिष्ठभेद के प्रतियोगितावच्छेदक और वृक्षनिष्ठविभागजनक पतन का आश्रयपर्ण है' इस प्रकार का शाब्दबोध उक्तस्थल में होता है। इस पक्ष में विभागजनकत्व को ही पञ्चमी का अर्थ स्वीकारा गया है

अथ पञ्चमीसमभिव्याहृतनञोक्तयोः पञ्चम्यर्थयोर्द्वयोरेवाभावद्वयं बोध्यते यथायोगमेकतरस्य वा? नाद्यः पक्षः— 'पर्णं वृक्षात् पतति न स्व स्मात्' इत्यत्र स्वनिष्ठपतने स्वनिष्ठभेदप्रतियोगितावच्छेदकत्वाभावसत्त्वेऽपि स्वनिष्ठविभागजनकत्वाभावासत्त्वेन, 'वृक्षात्पतति न भूतलात्' इत्यत्र च पतने भूतलादिनिष्ठविभागादिजनकत्वाभावसत्त्वेऽपि तन्निष्ठभेदप्रतियोगिता वच्छेदकत्वाभावासत्त्वेनायोग्यतापत्तेः। नापि द्वितीयः— 'वृक्षात् पत्रं पतति न पत्रात्' इत्यत्र पत्रनिष्ठपतने पत्रनिष्ठविभागाजनकत्वस्येव पत्रान्तरनिष्ठ भेदप्रतियोगितावच्छेदकतया पत्रनिष्ठभेदप्रतियोगितानवच्छेदकत्वस्यापि बाधाद् योग्यताया निर्वाहयितुमशक्यत्वादिति।

उपर्युक्त रीति से पञ्चमी के दो अर्थ बताये गये भेदप्रतियोगितावच्छेदकत्व और विभागजनकत्व । अब प्रश्न उठता है कि पञ्चमी से समभिव्याहृत नञ् द्वारा उक्त दोनों ही पञ्चम्यर्थों का अभाव बोधित होता है अथवा यथायोग एकतर (किसी एक) का अभाव बोधित होता है? प्रथम पक्ष नहीं हो सकता है, दोनों ही पञ्चम्यर्थों का अभाव नञ् के द्वारा नहीं बोधित किया जा सकता है। **'पर्णं वृक्षात् पतति न स्वस्मात्'** 'पर्ण वृक्ष से गिरता है अपने आपसे नहीं' इस स्थल में स्वनिष्ठपतन में स्वनिष्ठभेदप्रतियोगितावच्छेदकत्वाभाव रहने पर भी स्वनिष्ठविभागजनकत्वाभाव न रहने के कारण और **'वृक्षात् पतति न भूतलात्'** 'वृक्ष से गिरता है भूतल से नहीं' इस स्थल में पतन में भूतलादिनिष्ठ

विभागादिजनकत्वाभाव रहने पर भी भूतलनिष्ठभेदप्रतियोगितावच्छेदकत्वाभाव न रहने के कारण अयोग्यता की आपत्ति आयेगी। दूसरा पक्ष भी नहीं हो सकता है क्योंकि **'वृक्षात् पत्रं पतति न पत्रात्'** इस स्थल में पत्रनिष्ठपतन में पत्रनिष्ठविभागाजनकत्व की तरह उसके पत्रान्तरनिष्ठभेदप्रतियोगितावच्छेदक होने के कारण पत्रनिष्ठभेदप्रतियोगितानवच्छेदकत्व का भी बाध होने के कारण योग्यता का निर्वाह करना अशक्य होगा।

यहाँ पर कहना यह है कि नञ् समभिव्याहार स्थल में नञ् के द्वारा पञ्चमी के दोनों ही अर्थों का अभाव प्रत्याय्यित होता है अथवा किसी एक अर्थ का अभाव प्रत्याय्यित होता है? यदि कहो कि दोनों ही अर्थों का अभाव प्रत्याय्यित होता है तो इसका अर्थ हुआ कि नञ् घटित स्थल में भेदप्रतियोगितावच्छेदकत्व का अभाव और विभागजनकत्व का अभाव प्रत्याय्यित होना चाहिए। किन्तु **'पर्णं वृक्षात् पतति न स्वस्मात्'** यहाँ पर स्वनिष्ठभेद **'विभागजनकक्रियावान् न'** भेद नहीं मिल सकता है क्योंकि स्व तो पर्ण ही है और वह विभागजनकक्रियावान् है। अतः स्वनिष्ठ भेद अन्य कोई भेद ही मिलेंगे, उनका प्रतियोगितावच्छेदकत्व क्रिया में नहीं आ सकता है। इसलिए स्वनिष्ठ भेद प्रतियोगितावच्छेदकत्व का अभाव तो क्रिया में बोधित हो सकता है। किन्तु स्वनिष्ठ विभागजनकत्व ही स्वनिष्ठ क्रिया में रहने के कारण स्वनिष्ठविभागजनकत्वाभाव क्रिया में नहीं बोधित हो सकता है। इस तरह दोनों पञ्चम्यर्थों का अभाव नहीं बोधित किया जा सकता है। इसी प्रकार **'वृक्षात् पतति न भूतलात्'** यहाँ पर पतनक्रिया में भूतलादिनिष्ठविभागजनकत्वाभाव रहने पर भी भूतलनिष्ठभेद **'क्रियावान् न'** भेद का प्रतियोगितावच्छेदकत्व ही पतनक्रिया में है। अतः भेदप्रतियोगितावच्छेदकत्वाभाव और विभागजनकत्वाभाव दोनों का बोधन पतनक्रिया में नहीं किया जा सकता है।

यदि आप कहें कि किसी एक का ही अभाव नञ्समभिव्याहारस्थल में बोधित होता है। तो उपर्युक्तस्थलों में **'पर्णं वृक्षात् पतति न स्वस्मात्'** वाक्य के द्वारा क्रिया में स्वनिष्ठभेदप्रतियोगितावच्छेदकत्वाभाव और **'वृक्षात् पतति न भूतलात्'** से भूतलनिष्ठ विभागजनकत्वाभाव पतनक्रिया में बोधित हो सकता है किन्तु **'वृक्षात् पत्रं पतति न पत्रात्'** यहाँ पर तो दोनों का ही बाध है। न तो पत्रनिष्ठ पतन में पत्रनिष्ठविभागजनकत्वाभाव है और न तो पत्रान्तरनिष्ठभेदप्रतियोगितावच्छेदकत्वाभाव ही है। इस तरह दोनों का ही बाध है। पतन में पत्रनिष्ठविभागजनकत्व भी है और पत्रान्तरनिष्ठभेद प्रतियोगितावच्छेदकत्व भी है। इस कारण योग्यता का निर्वाह करना असम्भव है। योग्यता न रहने पर शाब्दबोध तो सम्भव ही नहीं है।

अत्राहुः– विभागो जनकत्वञ्च पञ्चम्यर्थः, विभागे प्रकृत्यर्थस्यावधिकत्वं सम्बन्धस्तेन सम्बन्धेन प्रकृत्यर्थविशिष्टस्य विभागस्य निरूपितत्व विशेषसम्बन्धेन जनकत्वेऽन्वयः, जनकत्वञ्च फलोपधानरूपम्, विशिष्ट निरूपिततादृशजनकत्वस्य क्रियायाम्, नञ्समभिव्याहारस्थले च क्रियान्वयिन्यभावे प्रतियोगित्वेनान्वयः। वृक्षपत्रादिविभागजनकं पत्रादिकर्म च न पत्राद्यवधिकत्वविशिष्टविभागोपधायकम्– पत्रादेः स्वावधिकत्व विशिष्ट–

विभागानधिकरणत्वेन तत्कर्मणि विशिष्टविभागसामानाधिकरण्या-भावात्, फलोपधायकत्वस्य सामानाधिकरण्यगर्भत्वान्नोक्तानुपपत्तिः।

यहाँ पर यह समाधान देते हैं—विभाग और जनकत्व पञ्चमी के अर्थ हैं। विभाग में प्रकृत्यर्थ का अवधिकत्व सम्बन्ध है, उस सम्बन्ध से प्रकृत्यर्थविशिष्टविभाग का निरूपितत्वविशेष सम्बन्ध से जनकत्व में अन्वय होता है। जनकत्व तो यहाँ पर फलोपधान रूप है, विशिष्टनिरूपिततादृशजनकत्व का क्रिया में अन्वय होता है तथा नञ्समभिव्याहारस्थल में क्रियान्वयी अभाव में प्रतियोगित्वेन अन्वय होता है। वृक्षपत्रादिविभागजनक पत्रादिकर्म पत्राद्यवधिकत्वविशिष्टविभागोपधायक नहीं होते हैं क्योंकि पत्रादि के स्वावधिकत्व विशिष्ट विभाग का अनधिकरण होने के कारण पत्रादि कर्म में विशिष्ट विभाग सामानाधिकरण्य नहीं है, फलोपधायकत्व के सामानाधिकरण्यगर्भ होने के कारण उक्त अनुपपत्ति नहीं है।

यहाँ पर गदाधर सिद्धान्तित कर रहे हैं कि विभाग और जनकत्व पञ्चमी के अर्थ है। विभाग में प्रकृत्यर्थ स्वावधिकत्व सम्बन्ध से अन्वित होता है। इस तरह प्रकृत्यर्थ विशिष्ट विभाग निरूपितत्व सम्बन्ध से जनकत्व में अन्वित होता है। जनकत्व यहाँ पर फलोपधायकत्व रूप है तथा फलोपधायकत्व सामानाधिकरण्यगर्भ है। इस जनकत्व का प्रकृत्यर्थावधिक विभागनिरूपितफलोपधायकतारूप जनकत्व का क्रिया में अन्वय होता है और नञ् समभिव्याहारस्थल में क्रियान्वयी अभाव में प्रतियोगितया अन्वय होता है। इस प्रकार उपर्युक्त स्थलों में दोष वारित हो जाता है। **'वृक्षात् पत्रं पतति न स्वस्मात्'** से स्वावधिक विभागनिरूपितजनकत्व का अभाव पतनक्रिया में प्रत्याय्यित होता है, पतन क्रिया में स्वावधिकविभागनिरूपितजनकत्व नहीं है। शाब्दबोध अबाधित है। **'वृक्षात् पत्रं पतति न भूतलात्'** से भूतलावधिक विभागनिरूपितजनकत्व का अभाव पतनक्रिया में बोधित किया जाता है। पतन क्रिया में भूतलावधिकविभागनिरूपित जनकत्व तो है नहीं । अतः शाब्दबोध अबाधित है। **'वृक्षात् पत्रं पतति न पत्रात्'** यहाँ पर पत्रान्तरावधिकविभागनिरूपित जनकत्वाभाव पत्र में प्रत्याय्यित होता है। जो कि अबाधित है। अतः योग्यता की अनुपपत्ति नहीं है।

'वृक्षाद्विभजते' इत्यादावपि वृक्षावधिकत्वं विभागे–तत्रापादानताया अवधितारूपत्वाद, वृक्षाद्यवधिकत्वविशिष्टविभागनिरूपितमेवाश्रयत्व-माख्यातेन बोध्यतेऽतः 'वृक्षः स्वस्माद्विभजते' इति न प्रयोगः। यथा हि स्व प्रतियोगिकत्वविशिष्टसंयोगः स्वस्मिन्न वर्तते तथा स्वावधिकस्य विभागस्य स्ववृत्तित्वेऽपि स्वस्य न विशिष्टविभागाधिकरणत्वमित्यविवादमेव । अवधित्वादिकञ्च स्वरूपसम्बन्धविशेषः।

अभी बताया कि पञ्चमी का अर्थ विभाग और जनकत्व है। किन्तु इसमें समस्या यह है कि 'वृक्षाद्विभजते' में तो धात्वर्थ भी विभाग है, फिर कैसे इस वाक्य से जन्य बोध में विभागद्वय का प्रत्यायन हो सकता है? इसी का सामाधान यहाँ पर किया जा रहा है—

'वृक्षाद्विभजते' 'वृक्ष से विभक्त होता है' इत्यादि स्थलों में विभाग में वृक्षावधिकत्व

प्रतीत होता है। क्योंकि वहाँ पर अपादानता अवधिता रूप होती है। (स्वनिष्ठभेद प्रतियोगितावच्छेदकीभूतक्रियाजन्य विभागाश्रयत्वरूपा अपादानता नहीं होती है) वृक्षाद्यवधिकत्वविशिष्ट विभागनिरूपित ही आश्रयत्व आख्यात से बोधित होता है। अतः **'वृक्षः स्वस्माद्विभजते'** 'वृक्ष अपने से विभक्त हो रहा है' ऐसा प्रयोग नहीं होता है। जैसे स्वप्रतियोगिकत्व विशिष्ट संयोग स्व में नहीं रहता है वैसे ही स्वावधिक विभाग के स्ववृत्ति होने पर भी स्व का विशिष्टविभागाधिकरणत्व नहीं होता है, यह अविवाद ही है। अवधित्वादि स्वरूपसम्बन्धविशेष रूप होते हैं।

यहाँ पर गदाधर ने **'वृक्षाद्विभजते'** से **'वृक्षाद्यवधिकत्वविशिष्टविभागाश्रयत्व'** विषयक शाब्दबोध ही स्वीकार किया है। यहाँ पर अपादानता अवधितारूप ही बोधित होती है। इस प्रकार वृक्ष के विभाग का आश्रय होने पर भी **'वृक्षः स्वस्माद् विभजते'** प्रयोग क्यों नहीं होता है? इसका समाधान यह है कि वृक्ष यद्यपि विभागाश्रय है किन्तु वृक्षावधिकत्व विशिष्ट विभाग का आश्रय नहीं है। इसलिए ऐसा प्रयोग नहीं होता है। ऐसे प्रयोग से वृक्षावधिकत्वविशिष्ट विभाग का आश्रयत्व ही बोधित हो सकता है, वह तो वृक्ष में बाधित है। इसमें युक्ति यह है—संयोग के उभयवृत्ति होने से घटभूतलसंयोग का आश्रय भूतल और घट दोनों है तथापि घटप्रतियोगिकत्व विशिष्ट संयोग का आश्रय भूतल ही होता है घट नहीं होता है। उसी प्रकार वृक्षावधिकत्वविशिष्ट विभाग का आश्रय वृक्ष नहीं होता है।

यद्वा विभागोऽधिकरणता प्रयोजकत्वञ्च 'वृक्षात् पतति' इत्यादौ पञ्चम्यर्थः। विभागे स्वावधिकत्वसम्बन्धेन प्रकृत्यर्थान्वयः, तद्विशिष्टविभागस्य निरूपितत्वविशेषसम्बन्धेनाधिकरणतायामन्वयः, पत्रादिकर्मणि च न तदवधिकत्वविशिष्टविभागनिरूपितान्यमात्रनिष्ठाधिकरणताप्रयोजकत्वम्-कारणस्यापि स्वाश्रयनिष्ठकार्याधिकरणतामात्रप्रयोजकत्वादिति सामञ्जस्यम्।

अथवा **'वृक्षात् पतति'** 'वृक्ष से गिरता है' इत्यादि स्थलों में पञ्चमी के अर्थ विभाग, अधिकरणता और प्रयोजकत्व हैं। विभाग में प्रकृत्यर्थ का स्वावधिकत्व सम्बन्ध है। स्वावधिकत्वसम्बन्ध से प्रकृत्यर्थविशिष्ट विभाग का निरूपितत्वविशेष सम्बन्ध से अधिकरणता में अन्वय होता है। (इस प्रकार **'वृक्षावधिकविभागनिरूपिताधिकरणताप्रयोजकं पतनम्'** ऐसा शाब्दबोध इस वाक्य से होता है) पत्रादि क्रिया में तदवधिकत्व (पत्रावधिकत्व) विशिष्टविभागनिरूपितान्यमात्रनिष्ठाधिकरणताप्रयोजकत्व नहीं है क्योंकि कारण का भी स्वाश्रय-निष्ठकार्याधिकरणतामात्रप्रयोजकत्व होता है। इसलिए समञ्जस्य है।

इस पक्ष में विभाग, अधिकरणता और प्रयोजकत्व को पञ्चमी का अर्थ माना गया है। पत्रक्रिया में केवल वृक्षावधिकत्वविशिष्टविभागनिरूपित (अन्य) वृक्षनिष्ठ अधिकरणता का प्रयोजकत्व नहीं है, बल्कि पत्रनिष्ठ अधिकरणता का प्रयोजकत्व है क्योंकि कारण स्वाश्रयनिष्ठकार्याधिकरणतामात्र का प्रयोजक होता है। कारण है पत्रक्रिया, उसका आश्रय है पत्र, पत्रनिष्ठ अधिकरणतामात्र का प्रयोजकत्व पत्र क्रिया में हो सकता है। इस कारण **'पत्रम् स्वस्मात् पतति'** प्रयोग नहीं सम्भव है।

अथ 'वृक्षात् पतति' 'वृक्षाद्विभजते' इतिवत् 'वृक्षात् त्यजति' इत्यादिः कथं न प्रयोगः–पञ्चम्यर्थस्य विभाजनकत्वस्य विभागावच्छिन्नक्रियारूपत्यागेऽवधिमत्त्वरूपपञ्चम्यर्थस्य च विभागरूपधात्वर्थतावच्छेदकफलेऽन्वये बाधकाभावात् ।

यहाँ पर आशङ्का होती है कि 'वृक्षात् पतति' 'वृक्षाद्विभजते' की तरह 'वृक्षात् त्यजति' इत्यादि प्रयोग क्यों नहीं होते है? क्योंकि पञ्चम्यर्थ विभागजनकत्व का विभागावच्छिन्न क्रियारूप त्याग में और अवधिमत्त्वं रूप पञ्चम्यर्थ का विभाग रूप धात्वर्थतावच्छेदकीभूत फल में अन्वय में बाधक नहीं है।

अभिप्राय यह है कि अब तक के विवेचन से यही प्राप्त होता है कि पञ्चमी का अर्थ या तो विभागजनकत्व है या तो अवधिमत्त्व । विभागजनकत्व का भी अन्वय होने में कोई बाधक नहीं है और अवधिमत्त्व का भी। 'वृक्षात् त्यजति' यहाँ पर त्यज्धात्वर्थ है विभागावच्छिन्न क्रिया, इसमें विभागजनकत्व का अन्वय करने में कोई आपत्ति नहीं है। जैसे कि 'वृक्षात् पतति' यहाँ पर धात्वर्थ अधः संयोगावच्छिन्न क्रिया में विभागजनकत्व का अन्वय किया जाता है। उसी प्रकार की स्थिति यहाँ पर भी है। यदि अवधिमत्त्व को पञ्चम्यर्थ मानें तो जैसे 'वृक्षाद्विभजते' में विभाग जो कि धात्वर्थ है, उस धात्वर्थ विभाग में अवधिमत्त्व का अन्वय सम्भव होता है। उसी प्रकार 'वृक्षात् त्यजति' से भी विभागरूप धात्वर्थतावच्छेदक में वृक्ष का अवधिमत्त्व अन्वित हो सकता है।

न च विभागावच्छिन्नक्रियायां विभागान्वयोऽव्युत्पन्नः उद्देश्यतावच्छेदकविधेययोरैक्यादितिवाच्यम्; जनकतासम्बन्धेन विभागावच्छिन्ने प्रकृत्यर्थविशेषितविभागजनकत्वान्वये व्युत्पत्तिविरोधविरहात् ।

यदि कहो विभागावच्छिन्न क्रिया में विभाग का अन्वय अव्युत्पन्न है क्योंकि उद्देश्यतावच्छेदक और विधेय का ऐक्य हो जायेगा। । उद्देश्यतावच्छेदक भी विभाग होगा और विधेय भी, और उद्देश्यतावच्छेदक व विधेय के एक होने पर शाब्दबोध अव्युत्पन्न होता है। तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंक्रि जनकतासम्बन्ध से विभागावच्छिन्न में प्रकृत्यर्थ विशेषित विभागजनकत्व का अन्वय करने में व्युत्पत्तिविरोध नहीं है। अर्थात् हम जनक़ता सम्बन्ध से विभागविशिष्टक्रिया को त्यज् धात्वर्थ मानते हैं, उसमें वृक्षविशेषितविभाग (वृक्षविभाग) जनकत्व का अन्वय करते हैं। इस तरह उद्देश्यतावच्छेदक हुआ विभाग और विधेय हुआ वृक्षविभागजनकत्व। उद्देश्यतावच्छेदकविधेय का भेद होने से कोई समस्या कोई व्युत्पत्तिविरोध नहीं है।

न च पञ्चम्यर्थविभागजनकत्वावधिमत्त्वयोरन्वयबोधे धातुविशेषाधीन व्यापारविभागोपस्थितेर्हेतुत्वोपगमात्तदभावेन त्यजधातूपस्थिततत्तदर्थे न पञ्यम्यर्थान्वय इति वाच्यम्; त्यजिपत्योस्त्यजिविभज्योश्च पर्यायताभ्रमदशायां त्यजत्यर्थव्यापारविभागयोः पञ्चम्यर्थान्वयात् त्यज्धातुजन्य तदर्थोपस्थितेरपि पञ्चम्यर्थान्वयबोधहेतुताया अवश्यं वाच्यत्वात् ।

यदि कहो कि पञ्चम्यर्थ विभागजनकत्व और अवधिमत्त्व का अन्वयबोध होने में धातुविशेषाधीनव्यापारविभागोपस्थिति की हेतुता का उपगम होने के कारण धातुविशेषाधीन व्यापारविभागोपस्थिति न होने के कारण त्यज् धातूपस्थित विभागादि रूप अर्थ में पञ्चम्यर्थ का अन्वय होगा। आशय यह है कि पञ्चमी के अर्थ का अन्वय होने के प्रति कारण है धातुविशेष से जन्य व्यापार और विभाग की उपस्थिति। जहाँ पर धातुविशेषजन्य व्यापारोपस्थिति होगी, वहाँ पर व्यापार में पञ्चम्यर्थ विभागजनकत्व अन्वित होगा, जहाँ पर धातुविशेषजन्य विभागोपस्थिति होगी, वहाँ पर विभाग में पञ्चम्यर्थ अवधिमत्त्व का अन्वय होगा। त्यज् धातुजन्य व्यापारोपस्थिति और विभागोपस्थिति को पञ्चम्यर्थान्वयबोध के प्रति कारण ही नही माना जाता है। इस कारण **'वृक्षात् त्यजति'** प्रयोग नहीं होगा।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए त्यज् धातु और पत् धातु में पर्यायता का भ्रम हो जाने पर और त्यज् व विभज् में पर्यायता भ्रम होने पर त्यज्धात्वर्थ (त्यज्धातूपस्थाप्य) विभागावच्छिन्नव्यापार व विभाग में पञ्चम्यर्थ विभागजनकत्व, अवधिमत्त्व का अन्वय क्रमशः हुआ करता है। इस कारण त्यज्धातूपस्थाप्य व्यापारोपस्थिति, विभागोपस्थिति की पञ्चम्यर्थान्वय हेतुता अवश्य माननी पड़ेगी। इस लिए **'वृक्षात् त्यजति'** प्रयोग की आपत्ति पुनः प्रसक्त होती है।

न च पञ्चम्यर्थविभागजनकत्वान्वयबोधे धातुजन्यविभागरूप फलानवच्छिन्नव्यापारोपस्थितिस्तादृशावधिमत्त्वान्वयबोधे च धातुजन्य विभागमुख्यविशेष्यकोपस्थितिर्हेतुरिति त्यजधातुजन्यविभागावच्छिन्न व्यापारोपस्थितिविषयव्यापारविभागयोः पञ्चम्यर्थविभागजनकत्वावधि-मत्त्वान्वयासम्भव इति वाच्यम्; फलव्यापारयोः पृथग् धात्वर्थतामते त्यजधातोरपि प्राधान्येन विभागस्य तदनवच्छिन्नस्पन्दस्य चोपस्थित्या तदुपस्थितिविषयतादृशार्थयोरपि तत्तत्पञ्चम्यर्थान्वयसम्भवात्

यदि कहो कि पञ्चम्यर्थ विभागजनकत्वान्वयबोध में धातुजन्य विभागरूप फल से अनवच्छिन्न व्यापार की उपस्थिति और पञ्चम्यर्थ अवधिमत्त्व का अन्वयबोध होने के लिए धातुजन्य विभाग मुख्यविशेष्यक उपस्थिति कारण होती है। इस कारण त्यज धातुजन्य विभागावच्छिन्नव्यापारोपस्थिति के विषय व्यापार और विभाग में पञ्चम्यर्थ विभागजनकत्व और अवधिमत्त्व का अन्वय सम्भव नहीं है। आशय यह है कि त्यज् धातु से विभाग रूप फल से अवच्छिन्न व्यापार की उपस्थिति होती है, इसलिए पञ्चम्यर्थ विभागजनकत्व का अन्वय विभागावच्छिन्नव्यापार में नहीं हो सकता है। विभाग की मुख्यविशेष्यतया उपस्थिति नहीं होती है। इसलिए अवधिमत्त्व रूप पञ्चम्यर्थ का अन्वय विभाग में नहीं सम्भव है। तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि फल और व्यापार की पृथग्धात्वर्थता के मत में त्यज् धातु से भी प्राधात्येन विभाग की और विभागानवच्छिन्न स्पन्द की उपस्थिति होने के कारण तदुपस्थिति (त्यज् धातुजन्योपस्थिति) विषय विभाग और स्पन्द रूप अर्थों में भी तत्तत्पञ्चम्यर्थ का अन्वय सम्भव है। आशय यह है इस प्रकार से आप फलावच्छिन्न व्यापार की धात्वर्थता स्वीकारने वाले मत में तो दोष वारण कर सकते हैं, किंतु जो फल और व्यापार की पृथग् धात्वर्थता मानते हैं, उस मत में तो आपत्ति फिर भी रहेगी क्योंकि उस मत में त्यज् से

फलानवच्छिन्न व्यापार और विभाग की मुख्य विशेष्यतया ही उपस्थिति होती है।

इति चेत् ?

न, फलावच्छिन्नव्यापारस्य धात्वर्थतामते उक्तरीत्यैव सामञ्जस्यात्। तयोः पृथग्धात्वर्थतामते च फलविषयकव्यापारविषयकबोधं जनयतु धातुपदमित्येतादृशेच्छारूपा फलव्यापारयोरेकैव शक्तिः पुष्पदन्तादिपदवद् न तु फलविषयकं व्यापारविषयकं च बोधं जनयत्विति समूहालम्बनात्मकबोधनिष्ठा तत्तद्विषयकत्वावच्छिन्नविभिन्नविषयताशालिसङ्केतरूपा, तथा सति नानार्थत्वाविशेषेण कदाचित् फलव्यापारयोरेकैकपरित्यागेनाप्येकैकस्य बोधप्रसङ्गात् । तथा च विभागे पञ्चम्यर्थावधिमत्त्वान्वयबोधे सङ्केतीयबोधनिष्ठविषयत्वांशे विभागेतरविषयकत्वानवच्छिन्नत्वावगाहिधातुशक्तिज्ञानं क्रियांशे विभागजनकत्वपञ्चम्यर्थान्वयबोधे च तादृशबोधनिष्ठविषयतांशे विभागविषयकत्वानवच्छिन्नत्वावगाहिधातुशक्तिज्ञानं हेतुरुपेयते इति त्यज्धातोस्तादृशज्ञानमभ्रान्तस्यासम्भवीत्यतिप्रसङ्गानवकाशात्। शक्तिद्वयादिवद्दर्शितैकशक्तेरपि कर्मप्रत्ययस्थले फलव्यापारयोर्विशेषणविशेष्यभाववैपरीत्येन शाब्दबोधसम्भवात् विशिष्टशक्तावेव विशेष्यविशेषणभावविपर्यासानिर्वाहात् ।

यदि ऐसा कहो?

तो ऐसा नहीं है, क्योंकि फलावच्छिन्नव्यापार की धात्वर्थतामत में तो उक्त रीति से ही सामञ्जस्य होता है। जैसा ऊपर बताया गया उसी रीति से सामञ्जस्य हो सकता है, अन्ततः पृथग् धात्वर्थतामत में ही आपत्ति आ रही है और प्रदर्शित की गयी है। पृथग् धात्वर्थतामत में **'फलविषयकव्यापारविषयकबोधं जनयतु धातुपदम्'** 'धातु पद फलविषयक व्यापारविषयक बोध को उत्पन्न करे' इस प्रकार की इच्छा रूपा एक ही शक्ति पुष्पदन्तादिपदवत् फल और व्यापार में है, न कि **'फलविषयकं व्यापारविषयकं च बोधं जनयतु'** इस प्रकार समूहालम्बनात्मकबोधनिष्ठा तत्तद्विषयकत्वावच्छिन्न विभिन्न विषयताशालिसङ्केतरूपा है। क्योंकि वैसा होने पर नानार्थत्वाविशेष होने के कारण कदाचित् फल व व्यापार में से एक-एक का परित्याग करके भी एक-एक का बोध प्रसङ्ग है। अभिप्राय यह है कि जो लोग फल और व्यापार की पृथग् धात्वर्थता मानते हैं, वे लोग भी **'फलविषयकं व्यापारविषयकञ्च बोधं धातुपदं जनयतु'** 'फलविषयक और धातु विषयक बोध को धातुपद उत्पन्न करे' ऐसी शक्ति नहीं मानते हैं। क्योंकि ऐसी स्थिति में नानार्थक शब्दों से धातु में कोई अन्तर नहीं रहेगा। नानार्थक शब्दों की भी इसी रीति से शक्ति स्वीकारी जाती है। किन्तु नानार्थक शब्दों से धातुओं में अन्तर है। अन्तर यह है कि नानार्थक शब्द से एक स्थल पर अपरार्थ का परित्याग करके एकार्थविषयक बोध होता है। किन्तु धातु से फल और व्यापार में से किसी का परित्याग करके बोध नहीं होता है। इसलिए यदि इस तरह से शक्ति मानोगे तो कदाचित् किसी अर्थ (व्यापार या फल) का परित्याग करके भी धातु से बोध होने लगेगा। अतः **फलविषयकव्यापारविषयकबोधं**

धातुपदं जनयतु' ऐसी ही शक्ति स्वीकारनी चाहिए।

इस प्रकार विभाग में पञ्चम्यर्थ अवधिमत्त्वान्वय बोध के प्रति सङ्केतीय बोधनिष्ठ विषयत्वांश में विभागेतरविषयकत्वानवच्छिन्नत्वावगाहि धातुशक्ति ज्ञान और क्रियांश में विभागजनकत्वरूप पञ्चम्यर्थान्वयबोध के प्रति तादृशबोधनिष्ठ विषयतांश में विभाग विषयकत्वानवच्छिन्नत्वावगाहिशक्तिज्ञान कारण माना जाता है। इसलिए वैसा ज्ञान त्यज् धातु से अभ्रान्त को सम्भव न होने के कारण अतिप्रसङ्ग का अवकाश नहीं है। भाव यह है कि पञ्चम्यर्थ अवधिमत्त्वान्वयबोध के प्रति सङ्केतीयबोधनिष्ठविषयत्वांश में विभागेतर विषयकत्वानवच्छिन्नत्वावगाहि धातुशक्तिज्ञान कारण होता है। **'वृक्षाद्विभजते'** यहाँ पर ऐसा है क्योंकि **'विभागविषयकबोधं 'वि' उपसर्गक भज्धातुपदं जनयतु'** ऐसा सङ्केत है। इस स्थल में धातुशक्तिज्ञान विभागेतरविषयकत्वानवच्छिन्नत्वावगाही है। इस कारण पञ्चम्यर्थ अवधिमत्त्वान्वयबोध सम्भव हो पाता है। **'वृक्षात् पतति'** यहाँ पर **'अधःसंयोगविषयकपतनविषयकबोधं जनयतु पतधातुपदम्'** ऐसा संकेत है, संकेतीयबोधनिष्ठविषयत्वांश में विभागविषयकत्वानवच्छिन्नत्वावगाही यह शक्तिज्ञान है। अतः पञ्चम्यर्थ विभागजनकत्व का अन्वय बोध सम्भव होता है। **'वृक्षात् त्यजति'** यहाँ पर **'विभागविषयकत्याग (स्पन्द) विषयकबोधं जनयतु त्यज् धातुपदम्'** ऐसा सङ्केत है। शक्तिज्ञान न तो संकेतीयबोधनिष्ठविषयत्वांश में विभागेतरविषयकत्वानवच्छिन्न है क्योंकि विभागेतर त्यागरूप क्रिया भी विषय हो रही है। अतः अवधिमत्त्वान्वयबोध नहीं हो सकता है। और न तो संकेतीय बोधनिष्ठविषयत्वांश में विभागविषयकत्वानवच्छिन्नत्वागाहि शक्तिज्ञान है। अतः विभागजनकत्व रूप पञ्चम्यर्थ का भी अन्वय शाब्दबोध में नहीं हो सकता है। अतः उक्त प्रयोग नहीं होता है। उक्त प्रयोग की आपत्ति नहीं है।

शक्तिद्वयादिवत् दर्शित एक शक्ति के द्वारा भी कर्म प्रत्ययस्थल में विशेष्यविशेषण भाववैपरीत्येन शाब्दबोध सम्भव है। विशिष्ट में शक्ति मानने पर ही विशेष्यविशेषणभाव के विपर्यास का निर्वाह नहीं होता है।

यदि च फलव्यापारयोः शक्तिभेदे एकार्थपरित्यागेनापरार्थबोध प्रसङ्गवद् उक्तरूपसङ्केतोपगमेऽपि पुष्पवन्तपदशक्त्यविशेषेण तत इव सकर्मकधातुतोऽपि विशेष्यविशेषणभावानापन्नस्यैवार्थद्वयस्यान्वयबोधः स्यान्नतु तदापन्नार्थद्वय विषयक इत्युच्येत? तदा सङ्केतस्य बोधांशे विशेषणतया भासमानयोः फलव्यापारविषयकत्वयोरवच्छेद्यावच्छेदकभावावगाहित्वमपि स्वीकरणीयं विशेषणविशेष्यभावेन भासमानयोरेव फलव्यापारयोर्विषयताद्वयमप्यवच्छेद्यावच्छेदकभावापन्नामिति तथैव तयोर्भानम्। पुष्पवन्तपदसङ्केते चन्द्रसूर्यविषयतयोरवच्छेद्यावच्छेदकभावो न भासतेऽतस्तयोर्विशृङ्खलमेव भानमिति न काप्यननुपपत्तिः ।

यदि फल और व्यापार में शक्ति भेद स्वीकारने पर एक अर्थ के परित्याग से अपर अर्थ के बोध के प्रसङ्ग की तरह (जैसे फल व्यापार में शक्ति भेद मानने पर वाच्यार्थ से

अविशेष होने के कारण एक अर्थ के परित्याग से अपरार्थ के बोध का प्रसङ्ग होता है उसी प्रकार) उक्त रूप सङ्केत का उपगम करने पर भी पुष्पवन्त पद शक्त्यविशेष होने के कारण सकर्मक धातु से भी विशेषणविशेष्यभावानापन्न ही अर्थद्वयविषयक अन्वयबोध होना चाहिए। अर्थात् जैसे पुष्पवन्त पद की सूर्य और चन्द्रमा में एक शक्ति है और सङ्केत ज्ञान है **'सूर्यविषयकचन्द्रविषयकबोधं पुष्पवन्तपदं जनयतु'** ऐसा शक्ति ज्ञान। यहाँ पर पुष्पवन्त पद से सूर्य और चन्द्र दोनों का बोध होता है किन्तु कोई किसी में विशेषण नहीं बनता है। आप उसी प्रकार का शक्तिग्रहण संकेत स्वीकार रहे हैं धातुओं से भी। तो धातुओं से जो बोध होता है, उसमें फल और व्यापार का विशेषणविशेष्यभावापन्न होकर भान नहीं होना चाहिए, विशेषण विशेष्यभावापन्न हुए विना ही अर्थद्वयविषयक अन्वयबोध होना चाहिए।

ऐसा कहो? तो सङ्केत के बोधांश में विशेषणतया भासमान फलविषयकत्व और व्यापारविषयकत्व का अवच्छेद्यअवच्छेदकभावागाहित्व भी स्वीकार करना चाहिए। विशेषण विशेष्यभाव से भासमान ही फल और व्यापार के विषयताद्वय अवच्छेद्य अवच्छेदकभावापन्न होते हैं। इस कारण विशेषणविशेष्यभाव से ही फल और व्यापार का शाब्दबोध में भान होता है। पुष्पवन्तपदसङ्केत में चन्द्र और सूर्य की विषयताओं में परस्पर अवच्छेद्यअवच्छेदकभाव नहीं भासता है, इसलिए विशृङ्खल ही (परस्पर विशेषण विशेष्यभावानापन्न ही) उनका भान हुआ करता है, इस कारण कोई अनुपपत्ति नहीं है।

यदि च 'वृक्षात् स्पन्दते' इत्यादिर्न प्रयोगस्तदा सकर्मकधातोः फलविशिष्टव्यापारवाचकतामते पञ्चम्यर्थविभागजनकत्वबोधे विभागानवच्छिन्नफलावच्छिन्नव्यापारविषयकधातुशक्तिज्ञानजन्योपस्थितिः फलव्यापारयोर्वैशिष्ट्यानुपरक्तयोर्धात्वर्थतामते च सङ्केतीयबोधनिष्ठविषयतांशे विभागविषयकत्वानवच्छिन्नत्वफलान्तरविषयकत्वावच्छिन्नत्वोभयावगाहिज्ञानजन्योपस्थितिः कारणमभ्युपगन्तव्येत्यलमाधिक्येन।

स्पन्द धातु अकर्मक है। इस कारण स्पन्द धातु से स्पन्द क्रिया की उपस्थिति होती है। इस प्रकार सकर्मक धातु को फलावच्छिन्न व्यापार का वाचक मानने वाले के मत में अवधिमत्त्व रूप पञ्चमी के अर्थ के अन्वयबोध की सामग्री नहीं है क्योंकि स्पन्द धातु से विभागमुख्यविशेष्यक उपस्थिति होती है। किन्तु विभागजनकत्वरूप पञ्चम्यर्थ के अन्वय बोध की सामग्री है क्योंकि इसके लिए आवश्यक है धातुजन्यफलानवच्छिन्नव्यापारोपस्थिति। वह तो विद्यमान ही है। अतः **'वृक्षात् स्पन्दते'** प्रयोग होने की आपत्ति है। फल और व्यापार की पृथग् धात्वर्थता मत में भी ऐसे प्रयोग की आपत्ति है क्योंकि विभागजनकत्व रूप पञ्चम्यर्थान्वयबोध में सङ्केतीयबोधनिष्ठविषयत्वांश में विभागविषयकत्वानवच्छिन्नत्वावगाहिशक्ति ज्ञान कारण माना जाता है और यहाँ पर विभागविषयकत्वानवच्छिन्नत्वावगाहि शक्ति ज्ञान है। इसका एक समाधान तो यह है, ठीक है, हम ऐसा प्रयोग स्वीकारते हैं। दूसरा गदाधर दे रहे हैं—

यदि **'वृक्षात् स्पन्दते'** इत्यादि प्रयोग नहीं होते हैं, तो सकर्मक धातु की फल

विशिष्टव्यापारवाचकतामत में पञ्चम्यर्थ विभागजनकत्व बोध के प्रति विभागानवच्छिन्न फलावच्छिन्न-व्यापारविषयक धातुशक्तिज्ञानजन्य उपस्थिति को और वैशिष्ट्यानुपरक्त फल व व्यापार की धात्वर्थतामत में सङ्केतीयबोधनिष्ठविषयतांश में विभागविषयकत्वानवच्छिन्नत्व फलान्तरविषयकत्वावच्छिन्नत्वोभयावगाहि ज्ञान जन्य उपस्थिति को कारण मानना चाहिए, ज़्यादा कहने की आवश्यकता नहीं है।

फलविशिष्ट व्यापार की धात्वर्थतामत में विभाग से अनवच्छिन्न फलावच्छिन्न-व्यापारोपस्थिति को विभागजनकत्वरूपपञ्चम्यर्थान्वयबोध में कारण मान लेने पर **'वृक्षात् स्पन्दते'** प्रयोग की आपत्ति वारित हो जाती है क्योंकि स्पन्द से फलावच्छिन्न व्यापारोपस्थिति नहीं होती है, शुद्धव्यापारोपस्थिति होती है। अतः विभागानवच्छिन्न फलावच्छिन्नव्यापारोपस्थिति रूप कारण न होने से इस वाक्य से पञ्चम्यर्थ विभागजनकत्वान्वयबोध होकर शाब्दबोध नहीं होता है। फलतः ऐसा प्रयोग नहीं होता है। वैशिष्ट्यानुपरक्त फल व व्यापार की धात्वर्थता के मत में संकेतीयबोधनिष्ठविषयता अंश में विभागविषयकत्वानवच्छिन्नत्व फलान्तरविषयकत्वावच्छिन्नत्वोभयावगाहिज्ञान जन्य उपस्थिति पञ्चम्यर्थ विभागजनकत्वान्वय बोध में कारण मानने पर इस पक्ष में भी उक्तापत्ति वारित हो जाती है। क्योंकि स्पन्द धातु का संकेत है **'स्पन्दविषयकबोधं स्पन्दधातुपदं जनयतु'** इसमें बोधनिष्ठविषयता अंश में विभागविषयकत्वानवच्छिन्नत्व होने पर भी फलान्तरविषयकत्वावच्छिन्नत्व नहीं है। इस कारण यहाँ पर विभागजनकत्व रूप पञ्चम्यर्थान्वयबोध असम्भव होने से उक्त प्रयोग नहीं होता है।

'व्याघ्राद्बिभेति' 'दस्युभ्यो रक्षति' इत्यादौ "भीत्रार्थाना भयहेतुः" इत्यनेनापादानत्वम् । भयं च परतोऽनिष्टसम्भावना, त्राणं चानिष्ट निवृत्त्यनुकूलोव्यापारः, तदर्थकधातुयोगे तादृशानिष्टप्रयोजकमपादानसंज्ञमिति सूत्रार्थः, एवञ्च पञ्चम्यर्थस्तत्र प्रयोज्यत्वं तच्च निरुक्तधात्वर्थघटकानिष्टेऽन्वेति।

'व्याघ्राद्बिभेति' 'बाघ से डरता है' **'दस्युभ्यो रक्षति'** 'डाकू से रक्षा करता है' इत्यादि स्थलों में **'भीत्रार्थानां भयहेतुः'** पा॰ सू॰ 1/4/25 के द्वारा बाघ, दस्यु आदि की अपादानता होती है। भय है पर से दूसरे से अनिष्ट की सम्भावना, त्राण है अनिष्ट निवृत्त्यनुकूल व्यापार। सूत्र का अर्थ होता है—तदर्थक—पर से अनिष्ट सम्भावनार्थक और अनिष्टनिवृत्त्यनुकूलव्यापारार्थक— धातु का योग होने पर तादृशानिष्टप्रयोजक अपादानसंज्ञक होता है। अनिष्ट प्रयोजक की अपादानसंज्ञा होती है। इस प्रकार पञ्चमी का अर्थ होता है प्रयोज्यत्व और वह उक्तधात्वर्थघटक अनिष्ट में अन्वित होता है। इस प्रकार **'व्याघ्रप्रयोज्यानिष्टसम्भावनाश्रयः' 'दस्युप्रयोज्यानिष्टनिवृत्त्यनुकूलव्यापारवान्'** ऐसा शाब्दबोध उक्त वाक्यों से होता है।

अथ यस्य व्याघ्राधीनं भयमप्रसिद्धमथच व्याघ्राधीनत्वेनासौ स्वीयमरणादिकं सम्भावयति तत्पुरुषपरः 'व्याघ्रात्स्वं बिभेति' इति कथं प्रयोगः

प्रमाणम्—अनिष्टे व्याघ्राधीनत्वस्य बाधादिति चेत्? भयार्थकधातुयोगे प्रयोज्यता प्रकारकत्वं पञ्चम्यर्थस्तच्चानिष्टसम्भावनायामन्वेति। प्रकृते च व्याघ्राधीनत्वस्य तत्पुरुषीयानिष्टे बाधेऽप्यनिष्टसम्भावनायां तत्प्रकारकत्वमबाधितमेवेति नानुपपत्तिः। एवञ्च शत्रुभ्रमेण मित्रादपि 'बिभेति' इत्यादिवाक्यस्यापि प्रामाण्यनिर्वाहः। एवञ्च भयार्थकधातुयोगे भयहेतुत्वेन सम्भावितमपादानमित्येकः सूत्रार्थः। अनिष्ट-विरहानुकूलव्यापाररूपत्राणार्थकधातुयोगे तदनिष्टप्रयोजकं तदित्यपरः अनिष्टं च दुःखमेव सर्वत्रानुगतम्।

किन्तु प्रश्न उठता है कि जिसका व्याघ्राधीन भय अप्रसिद्ध है (अर्थात् व्याघ्र के अधीन कोई अनिष्ट जिसका अब तक हुआ नहीं है) और वह व्यक्ति व्याघ्राधीनत्वेन स्वीयमरणादिक की सम्भावना करता है। उस पुरुष परक **'व्याघ्रादयं बिभेति'** 'यह व्याघ्र से डरता है' ऐसा प्रयोग कैसे प्रमाण होगा? क्योंकि अनिष्ट में व्याघ्राधीनत्व यदि रहे तब तो **'व्याघ्राधीनानिष्टसम्भावना'** को विषय करने वाला शाब्दबोध प्रसिद्ध हो क्योंकि व्याघ्र का अन्वय आपने अनिष्ट में करने के लिए कहा है। किन्तु व्याघ्राधीन अनिष्ट के ही अप्रसिद्ध होने के कारण व्याघ्राधीनानिष्टसम्भावनाविषयक शाब्दबोध भी अप्रसिद्ध होगा फिर उक्त प्रयोग कैसे प्रमाण हो सकेगा? तो भयार्थक धातु का योग होने पर प्रयोज्यताप्रकारकत्व पञ्चमी का अर्थ है और वह अनिष्ट सम्भावना में अन्वित होता है। प्रकृत स्थल में तत्पुरुषीय अनिष्ट में व्याघ्राधीनत्व का बाध होने पर भी अनिष्टसम्भावना में व्याघ्रप्रयोज्यताप्रकारकत्व तो अबाधित ही है, इस कारण कोई अनुपपत्ति नहीं है। इस प्रकार शत्रु भ्रम से मित्र से भी **'बिभेति'** इत्यादि वाक्य का अप्रामाण्य नहीं होता है। (क्योंकि मित्राधीन अनिष्ट के अप्रसिद्ध होने पर भी मित्रप्रयोज्यताप्रकारक अनिष्टसम्भावना तो प्रसिद्ध ही है) इस प्रकार भयार्थक धातु का योग होने पर भय हेतुत्वेन सम्भावित अपादान संज्ञक होता है, यह एक सूत्रार्थ है। अनिष्टविरहानुकूलव्यापाररूप त्राणार्थक धातु का योग होने पर तदनिष्टप्रयोजक अपादानसंज्ञक होता है, यह दूसरा अर्थ होता है। अनिष्ट तो दुःख ही है जो कि सर्वत्र अनुगत है।

यज्जन्यं दुःखं कस्यापि न प्रसिद्ध्यति तादृशस्याप्यहिकण्टकादेरपा दानत्वं कथमिति चेत्? तर्हि यन्निष्ठस्वदुःखोपधायकव्यापारविरहानुकूल-व्यापारस्तदपादानकं स्वकर्मकं रक्षणमिति वक्तव्यम्। घटाद्यचेतनकर्मकं च रक्षणं विनाशोपधायकव्यापारविरहगर्भं निर्वाच्यम्।

जिससे जन्य दुःख किसी को भी प्रसिद्ध नहीं है, वैसे भी साँप, कण्टक आदि का अपादानत्व किस प्रकार होता है? भाव यह है कि रक्षणार्थक धातुओं के योग में अनिष्ट प्रयोजक ही अपादानसंज्ञक होता है। अनिष्टप्रयोजक का अर्थ है दुःख का प्रयोजक। जिस कण्टक आदि से जन्य दुःख किसी का भी प्रसिद्ध नहीं है वह तो अनिष्टप्रयोजक हुआ नहीं फिर वह कैसे अपादान होगा? जैसे जिस काँटे से किसी को दुःख नहीं हुआ है, उस काँटे की अपादानता कैसे होगी? और कैसे 'कण्टकादात्मानं रक्षति' प्रयोग हो सकेगा?

इससे शाब्दबोध होना चाहिए '**कण्टकप्रयोज्यानिष्टविरहानुकूलव्यापारविषयक**' किन्तु कण्टकप्रयोज्य अनिष्ट ही अप्रसिद्ध होने के कारण उक्त विषयक शाब्दबोध सम्भव न होगा।

तो यन्निष्ठस्वदुःखोपधायकव्यापारविरहानुकूलव्यापार है तदपादानक स्वकर्मक रक्षण है ऐसा कहना चाहिए। यन्निष्ठ विशेषण है व्यापार विरह में, इस प्रकार अर्थ हुआ कि यन्निष्ठ स्वदुःखोपधायकव्यापारविरह के अनुकूल व्यापार है उसकी अपादानसंज्ञा होगी। कण्टकजन्य अनिष्ट के अप्रसिद्ध होने पर भी कण्टकनिष्ठ स्वदुःखोपधायकव्यापार विरह के अनुकूल व्यापार है। इसलिए कण्टक की अपादानता होती है। घटादि अचेतन कर्मक रक्षण तो विनाशोपधायकव्यापारविरह गर्भ ही कहना चाहिए। घटविनाशोपधायकव्यापार विरह के अनुकूल व्यापार होने पर '**घटं बालाद् रक्षति**' इत्यादि प्रयोग होते हैं।

'यवेभ्यो गां वारयति' 'कूपादन्धं वारयति' इत्यादौ ''वारणार्थानाम्'' इत्यनेन यवकूपादेरपादानत्वम्, वारणं क्रियाप्रतिषेधस्तदर्थकधातुयोगे ईप्सितः = तत्तत्क्रियाजन्यफलभागितया तत्तत्क्रियाकर्तुरभिप्रेतोऽपादानमिति सूत्रार्थः। क्रिया च भक्षणगमनादिरूपा, तात्पर्यवशात् क्वचित् कस्याश्चित् प्रतिषेधो वारयतीत्यादिना बोध्यते। प्रतिषेधः कर्तृत्वाभावानुकूलव्यापारः कर्तृत्वाभावरूपधात्वर्थतावच्छेदकफलशालितया गवान्धादेः कर्मता। यवादिपदोत्तरपञ्चम्या यवादिगतत्वेनेच्छाविषयफलकत्वं भक्षणादौ प्रत्याय्यते। इच्छा च भक्षणादिक्रियाकर्तृगवादिनिष्ठा तदर्थेन्तर्भावनीया। एवं चोक्तस्थले यवकूपादिनिष्ठत्वेन गवान्धादीच्छाविषयो यो गलाधस्संयोगोत्तरदेशसंयोगादिर्गवादिनिष्ठतत्तत्फलकव्यापारविशेषकर्तृत्वाभावानुकूलव्यापारानुकूलकृतिमानित्याकारको बोधः। अन्धादेर्यद्यपि कूपगमनत्वादिना नेच्छा तथाप्यभिमुखदेशगमनत्वादिना कूपगमनादेरिच्छा वर्तत एवेति, वस्तुगत्या यः कूपादिदेशस्तद्गतत्वेन क्रियाजन्यसंयोगस्य तदिच्छा विषयत्वमक्षतमेव।

'**यवेभ्यो गां वारयति**' 'यवों से गाय को हटाता है' '**कूपादन्धं वारयति**' 'कूप से अन्धे को वारित करता है' इत्यादि स्थलों में '**वारणार्थानामीप्सितः**' पा० सू० 1/4/27 के द्वारा यव, कूप आदि की अपादानता होती है। वारण का अर्थ है क्रियाप्रतिषेध, क्रियाप्रतिषेधार्थक धातु का योग होने पर ईप्सित = 'तत्तत्क्रियाजन्यफलभागितया तत्तत्क्रियाकर्ता का अभिप्रेत' अपादान संज्ञक होता है, ऐसा सूत्रार्थ है । क्रिया है भक्षण, गमन आदि रूप। तात्पर्यवशात् कहीं पर किसी का प्रतिषेध '**वारयति**' इत्यादि से बोधित होता है। प्रतिषेध है कर्तृत्वाभावानुकूल व्यापार। कर्तृत्वाभावरूप धात्वर्थतावच्छेदकफलशाली होने के कारण गो, अन्ध आदि का कर्मता होती है। (प्रतिषेधकर्तृत्वाभावानुकूलव्यापार वारणार्थक धातुओं का अर्थ है इसमें धात्वर्थतावच्छेदक फल हुआ कर्तृत्वाभाव, कर्तृत्वाभावरूप धात्वर्थतावच्छेदकीभूत फलशाली होते हैं गो, अन्ध आदि। इसलिए उनकी कर्मता होती है) यव आदि पदों के बादवाली पञ्चमी से यवादिगतत्वेन इच्छाविषयफलकत्व भक्षणादि में प्रत्याय्यित होता है। भक्षणादिक्रिया कर्तृगवादिनिष्ठ इच्छा का उसके अर्थ में अन्तर्भाव करना चाहिए। इस प्रकार

उक्त स्थल में यवकूपादिनिष्ठत्वेन गवान्धादीच्छाविषय जो गलाधः संयोग, उत्तरदेशसंयोग आदि, गवादिनिष्ठतत्तत्फलकव्यापारविशेषकर्तृत्वाभावानुकूल व्यापारानुकूलकृतिमान् है, इस प्रकार का बोध हुआ करता है। (**'यवेभ्यो गां वारयति'** से **'यवनिष्ठत्वेन गवेच्छाविषयो यो गलाधःसंयोगः गवादिनिष्ठतत्फलकव्यापारविशेषकर्तृत्वाभावानुकूलव्यापारानुकूलकृतिमान्'** और **'कूपादन्धं वारयति'** से **'कूपनिष्ठत्वेन अन्धेच्छाविषयो य उत्तरदेशसंयोगः अन्धनिष्ठतत्फलकव्यापारविशेषकर्तृत्वाभावानुकूलव्यापारानुकूलकृतिमान्'** ऐसा शाब्दबोध होता है) अन्ध आदि की यद्यपि कूपगमनत्वादिना इच्छा नहीं होती है **'कूपगमनं मे भवतु'** ऐसी इच्छा नहीं होती है तथापि अभिमुखदेशगमनत्वादिना **'अभिमुखदेशगमनं में भवतु'** इस तरह से कूपगमनादि की इच्छा भी है ही। वस्तुतः जो कूपादिदेश है तद्गतत्वेन क्रियाजन्य संयोग का तदिच्छा (कूपगमनेच्छा) विषयत्व अक्षत ही है।

न च प्रकृते यवकूपादिनिष्ठफलविशेषजनकत्वमेव पञ्चम्यर्थोऽस्तु किमिच्छान्तर्भावेणेति वाच्यम्; यत्र चैत्रादेर्नान्तरीयकतया विषभोजनादिकं प्रसक्तं न तु स्वेच्छातस्तत्र तद्भोजनविरोधिव्यापारकर्तरि 'चैत्रं विषाद्वारयति' इति न प्रयोगोऽपितु 'सविषान्नाद् वारयति' इत्यादिरेव, तत्र पूर्वप्रयोगवारणाय सूत्रकृता "ईप्सितः" इत्यत्र सन्प्रत्ययेनेच्छोपादानात्। अत एव यद्यवादिकं केनापि न भुक्तं तत्कर्मकभोजनाप्रसिद्धावपि भोजनफले संयोगविशेषे तद्यवादिगतत्वेनेच्छाविषयत्वप्रसिद्ध्या तद्यवाद् 'गां वारयति' इत्यादि प्रयोगोपपत्तिः। एवं च तत्र भक्षणादौ तद्यवादिकर्मकत्वगवादिकर्तृकत्वोभयाभावबोधाय केषाञ्चित् प्रयासोऽनादेय एवेति।

यदि कहो कि प्रकृतस्थल में यवकूपादिनिष्ठ फल विशेषजनकत्व ही पञ्चमी का अर्थ हो, इच्छा का अन्तर्भाव करने की ज़रूरत क्या है? अभी उपपादित किया है कि 'यवादिपदोत्तर पञ्चमी से यवादिगतत्वेनेच्छाविषयफलकत्व भक्षणादि में प्रत्याय्यित होता है' **'यवादिपदोत्तरपञ्चम्या यवादिगतत्वेन्रेच्छाविषयफलकत्वं भक्षणादौ प्रत्याय्यते'** इसमें पञ्चमी के अर्थ में इच्छा भी अन्तर्भूत है। इसी पर प्रश्न उठाया गया है कि इच्छा का अन्तर्भाव किये विना यवकूपादिनिष्ठ फल विशेषजनकत्व को ही पञ्चमी क़ा अर्थ क्यों नहीं मान लेते हो?

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि जहाँ पर चैत्रादि के द्वारा नान्तरीयक होने के कारण विषभोजन प्रसक्त हुआ स्वेच्छा से नहीं, वहाँ पर तद्भोजनविरोधिव्यापारकर्ता में **'चैत्रं विषाद्वारयति'** ऐसा प्रयोग नहीं होता है अपितु **'सविषान्नाद् वारयति'** इत्यादि प्रयोग ही होते हैं। भाव यह है कि चैत्र जा रहा था भोजन करने, भोजन में विष मिला हुआ था विष खाने की इच्छा चैत्र की नहीं थी भोजन की ही इच्छा थी। वहाँ पर भोजन से जब कोई चैत्र को रोकता है तब प्रयोग यही होता है कि **'चैत्रं सविषान्नाद्वारयति'** प्रथम प्रयोग **'चैत्रं विषाद्वारयति'** नहीं होता है। उक्त स्थल में पूर्वप्रयोग **'चैत्रं विषाद्वारयति'** का वारण करने के लिए सूत्रकार के द्वारा **'ईप्सितः'** वहाँ पर (सूत्र घटक उक्त पद से) सन् प्रत्यय

के द्वारा इच्छा का उपादान किया गया है।इसी.कारण जो यव आदि किसी के द्वारा भुक्त नहीं हुए तत्कर्मक भोजन की अप्रसिद्धि होने पर भी भोजन फल संयोगविशेष में तद्यवादिगतत्वेन इच्छाविषयत्व की अप्रसिद्धि होने के कारण तद्यव से 'गां वारयति' इत्यादि प्रयोगों की उपपत्ति होती है। (इच्छा से अघटित ही पञ्चमी का अर्थ मानने पर यवकूपादिनिष्ठफलजनकत्व को ही पञ्चमी का अर्थ मानना पड़ेगा, इस स्थिति में जो यवादि किसी के द्वारा भुक्त नहीं हुए, उस यवादि कर्मक भोजन की अप्रसिद्धि होने के कारण शाब्दबोध ही बाधितविषयक हो जायेगा । इच्छा से घटित पञ्चमी का अर्थ मानने पर तो प्रसिद्ध हो जाता है क्योंकि तद्यवादिगतत्वेनेच्छाविषयत्व तो प्रसिद्ध ही है। इसलिए उक्त प्रयोग उपपन्न होता है) इस कारण वहाँ पर (यद्यवादिकर्मक भोजन अप्रसिद्ध है, तद्यवादि से 'गां वारयति' प्रयोग करने पर) भक्षणादि में तद्यवादिकर्मकत्व गवादिकर्तृत्वोभयाभाव बोधित कराने के लिए किन्हीं लोगों द्वारा किया जा रहा प्रयास अनादेय ही है।

'पण्डितात्पुराणं श्रृणोति' 'उपाध्यायाद्वेदमधीते' 'रामादधीतसन्देशः' इत्यादावाख्यातुः ''आख्यातोपयोगे'' इत्यनेनापादानता, तत्र प्रकृत्यर्थपण्डिता दिकर्तृकोच्चारणाधीनत्वं पञ्चम्यर्थः, तस्य च श्रवणोच्चारणार्थविशेषज्ञानादि क्रियायामन्वयः।

'पण्डितात् पुराणं श्रृणोति' 'पण्डित से पुराण सुनता है' **'उपाध्यायाद्वेदमधीते'** 'उपाध्याय से वेद पढ़ता है' **'रामादधीतसन्देशः'** 'राम से अधीत सन्देश' इत्यादि स्थलों में **'आख्यातोपयोगे'** पा० सू० 1/4/29 के द्वारा आख्याता की (वक्ता की) अपादान संज्ञा होती है। वहाँ पर प्रकृत्यर्थ पण्डितादिकर्तृकोच्चारणाधीनत्व पञ्चमी का अर्थ है और उसका श्रवण = उच्चारणार्थविशेषज्ञान क्रिया में अन्वय होता है। इस प्रकार **'पण्डित कर्तृकोच्चारणाधीनार्थविशेषज्ञानाश्रयः'** इत्यादि शाब्दबोध हुआ करता है।

'मृत्पिण्डाद् घटो जायते' इत्यादौ ''जनिकर्तुः'' इत्यनेनापादानत्वम्, तत्र प्रकृतित्वं न विकारित्वम्—प्रकृतिविकृतिभावाभावेऽपि ''प्राक् केकयीतो भरतस्ततोऽभूत्'' 'वायोर्जातः' इत्यादौ पञ्चमीदर्शनात् । नहि सुतवपुषो मातापितृशरीरविकारत्वमपि तु तदीयशुक्रशोणितादिविकृतित्वमेव शुक्रशोणितादेः शरीरस्थत्वेऽपि मलमूत्रादेरिव शरीरावयवत्वाभावात् तदवयवारभ्यस्यैव तद्विकारतारूपत्वात् ।

'मृत्पिण्डाद् घटो जायते' मृत्पिण्ड से घट उत्पन्न होता है' इत्यादि स्थलों में **'जनिकर्तुः प्रकृतिः'** पा० सू० 1/4/30 से अपादानता होती है। वहाँ पर प्रकृतित्व विकारित्व नहीं है क्योंकि प्रकृतिविकृतिभाव न होने पर भी **'प्राक्केकयीतो भरतस्ततोऽभूत्'** 'इसके बाद केकयी से पहले भरत उत्पन्न हुए' **'वायोर्जातः'** वायु से उत्पन्न हुआ' इत्यादिस्थलों में पञ्चमी देखी जाती है। (यहाँ पर केकयी और भरत में प्रकृतिविकृतिभाव नहीं है, फिर भी केकयी से पञ्चमी हुई है पञ्चमी की जगह पर तसिल्[1] का प्रयोग किया गया

1. पञ्चमी की जगह पर तसिल् विधायक सूत्र है 'पञ्चम्यास्तसिल्' पा० सू० 5/3/7

है) पुत्र के शरीर का माता-पिता के शरीर का विकारत्व नहीं है, अपितु तदीय शुक्रशोणितादि का विकारत्व ही है, शुक्रशोणित आदि के शरीर स्थित होने पर भी मलमूत्रादि की तरह शरीरावयवत्व नहीं होने के कारण। तदवयवारभ्यत्व का ही तद्विकारतारूपत्व है। भाव यह है कि तदवयवारभ्यत्व ही न्यायवैशेषिक सम्प्रदाय में तद्विकारत्व है। जैसे दुग्धावयवारभ्यत्व दधि में है, अतः दधि का दुग्धविकारत्व है। पुत्रादिशरीर के माता-पिता के शुक्रशोणिता दि से आरभ्य होने पर भी माता और पिता के विकार पुत्रादि नहीं है; क्योंकि शुक्रशोणित आदि माता पिता के अवयव ही नहीं है

न च तत्र हेतुपञ्चम्येव नापादानपञ्चमीति वाच्यम्; ऋणगुणातिरिक्तहेतौ पञ्चम्यनुशासनविरहात्, अन्यथा 'दुग्धाद् दधि जायते' 'मृत्तिकाभ्यो घटो जायते' 'शृङ्गाद्धनुर्जायते' इत्यादेरपि हेतुपञ्चम्यैवोपपत्तौ "जनिकर्तुः' इत्यादिसूत्रस्यैव वैयर्थ्यापत्तेः, तस्मात् कारणत्वमेव प्रकृते प्रकृतित्वम् । 'दण्डाद् घटो जायते' इत्यादयोऽपि प्रयोगा इष्यन्त एव। अत एवेश्वरस्य द्रव्यादिकार्या प्रकृतित्वेऽपि "यतो द्रव्यं गुणाः कर्म" इत्यादौ पञ्चमी।

न च प्रकृतिपदेन कारणमात्रविवक्षायामपि क्रियायोगाभावादपादान पञ्चम्यनुपपत्तिः, हेतुपञ्चमी चोक्तक्रमेण प्रकृतेऽनुपपन्नैवेति वाच्यम्; अगत्या 'जायते' इत्यादिक्रियाध्याहारेण तत्र पञ्चम्या उपपादनीयत्वात् ।

यदि कहो कि वहाँ (**'प्राक् केकयीतो भरतस्ततोऽभूत्'** और **'वायोर्जातः'** इत्यादि स्थलों में) हेतु पञ्चमी ही है अपादान पञ्चमी नहीं, तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि ऋण और गुणातिरिक्त हेतु में पञ्चमी विधायक अनुशासन नहीं है। ऋणहेतु में पञ्चमीविधायक सूत्र है **'अकर्तर्यृणे पञ्चमी'** पा॰ सू॰ 2/3/24 और गुण हेतु में पञ्चमी विधायक अनुशासन है **'विभाषा गुणेऽस्त्रियाम्'** पा0 सू0 2/3/25 इसके अतिरिक्त हेतु अर्थ में पञ्चमीविधायक कोई अनुशासन नहीं है। अन्यथा (यदि सामान्यतः हेत्वर्थक पञ्चमी में कोई अनुशासन न होने पर भी आप उक्त स्थलों में हेतु पञ्चमी ही मानें तो) **'दुग्धाद् दधि जायते'** 'दूध से दही उत्पन्न होता है' **'मृत्तिकाभ्यो घटो जायते'** 'मिट्टी से घड़ा बनता है' **'शृङ्गाद् धनुर्जायते'** 'सींग से धनुष बनता है' इत्यादि प्रयोगों की भी हेतुपञ्चमी से ही उपपत्ति सम्भव होने के कारण **'जनिकर्तुः प्रकृतिः'** पा॰ सू॰ 1/4/30 इत्यादि सूत्र के ही वैयर्थ्य की आपत्ति होगी। (इस कारण उपर्युक्त स्थलों में हेतुपञ्चमी नहीं मानी जा सकती है) इस वज़ह से प्रकृत स्थल में **'जनिकर्तु प्रकृतिः"** यहाँ पर कारणत्व ही प्रकृतित्व है। **'दण्डाद् घटो जायते'** इत्यादि प्रयोग भी इष्ट ही हैं। इसी कारण ईश्वर के द्रव्यादि कार्यों की प्रकृति न होने पर भी जनकमात्र होने पर भी **'यतो द्रव्यं गुणाः कर्म'** 'जिससे द्रव्य, गुण और कर्म उत्पन्न होते हैं' इत्यादि स्थलों में पञ्चमी हुआ करती है।

यदि कहो कि **'जनिकर्तुः प्रकृतिः'** सूत्र में प्रकृति पद से कारण मात्र विवक्षा होने पर भी क्रिया का योग न होने के कारण अपादानपञ्चमी की अनुपपत्ति है और उक्त क्रम से (हेतु पञ्चमी के ऋण, गुणातिरिक्त हेतु में विहित नहीं होने के कारण) वहाँ पर **'यतो द्रव्यं'**

में हेतु पञ्चमी अनुपपन्न ही है। तो ऐसा न ही कहना चाहिए क्योंकि अगत्या दूसरा मार्ग न होने से '**जायते**' इत्यादि क्रिया का अध्याहार करके वहाँ पर पञ्चमी का उपपादन करना चाहिए। क्रियायोग होने पर अपादानपञ्चमी होने में कोई समस्या नहीं है।

'हिमवतो गङ्गा प्रभवति' इत्यादौ "भुवः प्रभवः" इत्यनेनापादानता, यत्सम्बन्धात् प्रभवनम् = प्रथमः प्रकाशः स एव प्रभवः, प्रथमप्रकाश एव प्रभवत्यर्थः। पञ्चम्यर्थः सम्बन्धाधीनत्वं तादृशक्रियायामन्वेति, सम्बन्धे च हिमवदादेः प्रकृत्यर्थस्यान्वयः।

'हिमवतो गङ्गा प्रभवति' 'हिमालय से गङ्गा प्रभूत होती है' इत्यादि स्थलों में **'भुवः प्रभवः'** पा0सू0 1/4/31 के द्वारा हिमवान् की अपादानता होती है। जिसके सम्बन्ध से प्रभवन प्रथम प्रकाश होता है,वही है प्रभव, प्रथम प्रकाश ही प्रभवन का अर्थ है। पञ्चमी का अर्थ सम्बन्धाधीनत्व उसी प्रथमप्रकाश रूप क्रिया में अन्वित होता है, सम्बन्ध में हिमवत् आदि प्रकृत्यर्थ का अन्वय होता है। इस प्रकार **'हिमवत्सम्बन्धाधीन प्रथमप्रकाशाश्रया गङ्गा'** ऐसा शाब्दबोध होता है।

'उपाध्यायादन्तर्धत्ते छात्रः' इत्यादौ "अन्तर्द्धौ येनादर्शनमिच्छति" इत्यपादानता। अन्तर्द्धिः = अन्तर्धानं स्वनिष्ठान्यकर्तृकदर्शनविरहतोद्देश्यको व्यापारः एवञ्च व्यापारानुकूलतयाऽन्तर्द्धानघटको यत्कर्तृकदर्शनविषयताविरहोद्देशः सोऽपादानमिति सूत्रार्थः। उक्तस्थलीयपञ्चम्या अन्तर्द्धिघटक-दर्शनान्वयिकर्तृतानिरूपकत्वमेवार्थ इत्युपाध्यायकर्तृकदर्शनविषयताया यः स्वनिष्ठोऽभावस्तदुद्देश्यकव्यापारकर्ता छात्र इति तत्रान्वयबोधः।

'उपाध्यायादन्तर्धत्ते छात्रः' 'छात्र उपाध्याय से छुपता है' उत्यादि स्थलों में **'अन्तर्द्धौ येनादर्शनमिच्छति'** पा० सू० 1/4/28 के द्वारा उपाध्याय आदि की अपादानता होती है। अन्तर्द्धि का अर्थ है अन्तर्धान, स्वनिष्ठान्यकर्तृकदर्शनविरहतोद्देश्यक व्यापार । इस प्रकार व्यापारानुकूलतया अन्तर्द्धान घटक यत्कर्तृकदर्शनविरहतोद्देश है वह अपादान होता है। यह सूत्रार्थ है। उक्त स्थलीय पञ्चमी का अन्तर्द्धिघटकदर्शनान्वयिकर्तृतानिरूपकत्व ही अर्थ होता है, इसलिए उपाध्यायकर्तृकविषयता का जो स्वनिष्ठ अभाव तदुद्देश्यक-व्यापारकर्ता छात्र है ऐसा अन्वयबोध वहाँ पर होता है।

यहाँ अन्तर्धान का अर्थ स्वनिष्ठ जो अन्यकर्तृकदर्शनविषयताविरह तदुद्देश्यक व्यापार है। यत्कर्तृकदर्शनविषयताविरहोद्देश्यक व्यापार होगा, उसकी अपादानता होगी। उपाध्यायकर्तृक (स्वनिष्ठ) दर्शनविषयताविरहोद्देश्यकव्यापार छात्र का है। अतः उपाध्याय की अपादानता होती है। शाब्दबोध होता है— **'उपाध्यायकर्तृकदर्शनविषयताप्रतियोगिकः यः स्वनिष्ठोऽभावस्तदुद्देश्यकव्यापारानुकूलकृतिमान् छात्रः'** 'उपाध्यायकर्तृकदर्शनाविषयता प्रतियोगिक जो स्वनिष्ठ अभाव तदुद्देश्यकव्यापारानुकूल कृतिमान् छात्र है'।

इदन्तु बोध्यम्– 'अस्मादयं दीर्घः' 'अस्मादयं तारः' इत्यादौ नापादान पञ्चमी दैर्घ्याद्यवधिभावात्मकसम्बन्धानुशासनात्। "ध्रुवमपायेऽपादानम्" इत्यनेन

ह्यपाये=विभागरूपक्रियायां क्रियान्तरजन्यविभागे च यदवधिभूतं तस्यापादानत्वं विधीयते नत्ववधिमात्रस्य । यदि चापायपदं वस्तुमात्रोपलक्षकमुच्यते तदा तदुपादानमनर्थकं स्यात् ।

यह तो समझ लेना चाहिए—'अस्मादयं दीर्घः' 'यह इससे लम्बा है' 'अस्मादयं तारः' 'यह इससे तेज़ है' (ध्वनि के विषय में यह प्रयोग है) इत्यादि स्थलों में अपादान पञ्चमी नहीं है क्योंकि दैर्घ्य आदि अवधि के अपादानत्व का अनुशासन नहीं है। 'ध्रुवमपायेऽपादानम्' पा० सू० 1/4/24 के द्वारा अपाय में = विभाग रूप क्रिया में और क्रियान्तर जन्य विभाग में जो अवधिभूत होता है, उसी के अपादानत्व का विधान है अवधिमात्र के अपादानत्व का नहीं । (यहाँ पर न तो क्रियान्तर जन्य विभाग मे और न ही विभागरूप क्रिया में इदम् पदार्थ अवधिभूत है। वह तो अवधि मात्र है।अतः उसकी अपादानता इस सूत्र से सम्भव नहीं है) यदि अपायपद वस्तुमात्र का उपलक्षक होता तो उसका उपादान सूत्र में व्यर्थ ही होता। भाव यह है कि फिर सूत्र को अपाय पद से अघटित रखने पर भी कोई फर्क़ नहीं पड़ेगा, केवल 'ध्रुवमपादानम्' से भी काम चल जायेगा, ध्रुव का अर्थ अवधिभूत ही है, अवधि वस्तुमात्र के प्रति लेना है तो वह तो स्वतः लभ्य है। उसके लिए अपायपद का परिग्रह व्यर्थ है।

अथ तत्पदेन क्रियामात्रमुपलक्ष्यते 'अस्माद् दीर्घः' इत्यादौ च 'भवति' इत्यध्याहार्यं दीर्घभवनञ्च दीर्घतैवेति क्रियायाः सावधित्वम्, आवश्यकश्च क्रियाध्याहारस्तद्योगमन्तरेण कारकत्वस्यानिर्वाहात् । एवं 'बलाहकाद्विद्योतते विद्युत्' इत्यादौ द्योतनादिक्रियायाः सावधिकत्वविरहेण 'निःसृत्य' इत्यध्याह्रियते अत एव नैतदपादानं निर्दिष्टविषयमपितूपात्तविषयमिति वैयाकरणाः। निर्दिष्टत्वम् = उच्चरितत्वम् । उपात्तत्वम् = अध्याहृतत्वम् । विषयः = अवधित्वनिरूपकः। निस्सरणञ्च विभाग एवेत्युक्तस्थलेऽध्याहृतक्रियायाः सावधिकत्वमिति चेत् ? एवं सति 'वृक्षात् पतति' इत्यादौ वृक्षादेरसंग्रहः। तत्रापि विभागक्रियाध्याह्रियते इति चेत् ? तत्र निर्दिष्टविषयताप्रवादविरोधः। एवम् 'अस्मादयं दीर्घः' इत्यादावपि क्रियाध्याहारे तत्समशीले 'माथुराः स्त्रौघ्नेभ्यः आढ्यतराः' इत्यादावपि क्रियाया अध्याहरणीयतया तत्रापादानत्वस्यापेक्षितक्रियारूपस्योपात्तविषयान्तर्भावप्रसङ्ग इति तादृशापादानयोरविशेषापत्तिः। एवञ्च—

"उपात्तविषयं किञ्चिन्निर्दिष्टविषयं तथा।
अपेक्षितक्रियं चेति त्रिधापादानमुच्यते ॥" इति शाब्दिकविभागविरोधः।

यदि उस पद से (अपाय पद से) क्रियामात्र उपलक्षित होता है और 'अस्माद् दीर्घः' इत्यादि स्थलों में भवति इस क्रिया का अध्याहार करना चाहिए, दीर्घभवन तो दीर्घता ही है, इसलिए क्रिया का सावधित्व है। क्रिया का अध्याहार तो आवश्यक है क्योंकि बिना क्रिया के योग के कारकत्व का निर्वाह नहीं हो सकता है। (क्रिया का

अध्याहार करके ही क्रियान्वयित्व रूप कारकत्व का निर्वाह सम्भव है) इसी प्रकार **'बलाहकाद्विद्योतते विद्युत्'** 'बादल से बिजली चमक रही है' इत्यादि स्थलों में द्योतनादिक्रिया का सावधिकत्व न होने के कारण (बादल द्योतनक्रिया का अवधि नहीं बनता है इसलिए) **निःसृत्य** का अध्याहार किया जाता है। इसलिए यह अपादान निर्दिष्ट विषय नहीं है अपितु उपात्तविषय है ऐसा वैयाकरणों का कथन है। निर्दिष्टत्व का अर्थ है उच्चरितत्व । उपात्तत्व का अर्थ है अध्याहृतत्व। विषय का अर्थ है अवधितानिरूपक । निस्सरण तो विभाग ही है इसलिए उक्त स्थल में अध्याहृत क्रिया का सावधिकत्व होता है। (अध्याहृत क्रिया बलाहक की अवधिता की निरूपिका है, अतः बलाहक उपात्तविषय अपादान है) ऐसा कहो? तो ऐसा होने पर तो **'वृक्षात् पतति'** इत्यादि स्थलों में वृक्षादि का असंग्रह हो जायेगा क्योंकि पतन का अर्थ तो अधोदेशसंयोग ही है, वह तो सावधिक है नहीं । अतः वृक्ष की पतनक्रिया के प्रति अवधिता न होने से अपादानता नहीं बन सकेगी। यदि 'वहाँ पर भी विभागक्रिया का अध्याहार करेंगे' ऐसा कहो तब तो वहाँ पर निर्दिष्टविषयताप्रवाद का विरोध होगा। **'वृक्षात् पतति'** निर्दिष्टविषय अपादान है, ऐसा बतलाते हैं ऐसी चर्चा है। आप कह रहे हैं कि वहाँ पर निर्दिष्ट (उच्चरित) क्रिया के सावधि न होने से विभाग क्रिया का अध्याहार करेंगे । किन्तु विभाग क्रिया का अध्याहार करने पर यह निर्दिष्ट विषय अपादान नहीं रहेगा बल्कि उपात्तविषय (अध्याहृत विषय) अपादान हो जायेगा। इसलिए उक्त चर्चा से विरोध होगा ।

इसी प्रकार **'अस्माद् दीर्घः'** इत्यादि स्थलों में भी क्रिया का अध्याहार करने पर तत्समशील **'माथुराः स्रौघ्नेभ्य आढ्यतराः'** 'मथुरावासी स्रुघ्नवासियों से आढ्यतर हैं' इत्यादि स्थलों में भी क्रिया के अध्याहरणीय होने के कारण वहाँ पर अपेक्षित क्रिया रूप अपादान के उपात्तविषय अपादान में अन्तर्भाव का प्रसङ्ग है। इसकारण उक्त दोनों अपादानों (उपात्तविषय व अपेक्षित विषय) के अविशेष की आपत्ति है। इस प्रकार **'उपात्तविषयं ....उच्यते'** इस शाब्दिक विभाग से विरोध होगा।

अभिप्राय यह है कि अपादानों का त्रैविध्य बतलाया गया है- निर्दिष्ट विषय उपात्तविषय और अपेक्षितक्रिय। निर्दिष्ट विषय के उदाहरण **'वृक्षात् पतति'** आदि हैं उपात्तविषय के उदाहरण **'बलाहकाद्विद्योतते विद्युत्'** आदि हैं और **'माथुराः स्रौघ्नेभ्य आढ्यतराः'** इत्यादि अपेक्षित क्रिया के उदाहरण हैं। आपके द्वारा जैसे प्रतिपादन किया जा रहा है, तदनुसार **'वृक्षात् पतति'** यह भी उपात्तविषय हो जा रहा है और **'माथुराः स्रौघ्नेभ्य आढ्यतराः'** यह भी उपात्तविषय का उदाहरण हो जा रहा है।

अथापायपदेन क्रियासामान्यं क्रियाजन्यविभागश्च विवक्षितः, एवञ्च 'वृक्षात् पतति' इत्यादौ न विभागात्मकक्रियाध्याहार इति तदपादानमपि निर्दिष्ट-विषयम् । यत्रापादानतानिर्वाहार्थमेव क्रियाध्याहारः 'बलाहकात्' इत्यादौ तदपादानमुपात्तविषयम् , यत्र वाक्यसमाप्त्यर्थं तदध्याहारस्तत एव चापादानतानिर्वाहो यथा 'माथुराः स्रौघ्नेभ्यः' 'अस्माद् दीर्घः' इत्यादौ तत्रापेक्षित क्रियत्वमिति चेत् ?

एवमपि 'अयमस्मात्तरः' इत्यादावगतिः—तत्र हि तारत्वं जातिर्जातेश्च न सावधिकत्वमिति कुतोऽपादानता? अन्यथा 'अयमस्माद् गौः' इत्याद्यापत्तिः।

न च जातेरपि तारत्वस्य 'अयमस्मात्तारः' इति प्रतीतिबलाद् भवत्येव सावधिकत्वमिति वाच्यम्; यदेव ह्येकापेक्षं तारत्वं तदेवान्यापेक्षं मन्दत्वम्-समनियतजातिद्वयानभ्युपगमात् समनियतत्वानभ्युपगमे जातिसङ्करप्रसङ्गात् तथा च तारत्वादेः सावधिकत्वे स्वापेक्षया यस्तारस्तमपेक्ष्य स्वस्मिन् मन्दव्यवहार इव तारव्यवहारोऽपि स्यात्, स्वापेक्षया यो मन्दस्तमपेक्ष्य तारव्यवहारवत् तमपेक्ष्य स्वस्मिन् मन्दव्यवहारोऽपि स्यात् ।

यदि अपाय पद से क्रियासामान्य और क्रियाजन्यविभाग दोनों ही विवक्षित हैं, इस प्रकार **'वृक्षात् पतति'** इत्यादि स्थलों में विभागात्मक क्रिया का अध्याहार नहीं करना पड़ता है (अपायपद से क्रियाजन्यविभाग के भी विवक्षित होने से पतनक्रियाजन्यविभाग की अवधिता वृक्ष में होने के कारण वृक्ष की अपादानता सम्पन्न होती है) इसलिए उक्त अपादान निर्दिष्टविषय (उच्चरित विषय) होता है। जहाँ पर अपादानतानिर्वाहार्थ ही क्रिया का अध्याहार करना पड़ता है **'बलाहकाद् विद्योतते विद्युत्'** इत्यादि स्थलों में, वह अपादान उपात्तविषय होता है। क्योंकि विना **निःसृत्य** क्रिया का अध्याहार किये बादलों की अपादानता नहीं हो सकती है। जहाँ पर वाक्य समाप्ति के लिए क्रिया का अध्याहार करना पड़ता है और उसी से अपादानता का निर्वाह हो जाता है, जैसे **'माथुराः स्रौघ्नेभ्य आढ्यतराः' 'अयमस्माद् दीर्घः'** इत्यादि स्थलों में वाक्य परिसमाप्ति[1] के लिए **भवन्ति, भवति** क्रिया का अध्याहार करना पड़ता है और उसी अध्याहृतक्रिया से ही स्रौघ्न, इदम् पदार्थ की अपादानता का भी निर्वाह हो जाता है। इन्हें अपेक्षितक्रिय[2] अपादान कहा जाता है। ऐसा कहो? तो ऐसा कहने पर भी **'अयमस्मात्तारः'** इत्यादि स्थलों में रास्ता नहीं है क्योंकि वहाँ पर तारत्व जाति है और जाति सावधिक नहीं होती है। इसलिए कैसे इदम् पदार्थ की अपादानता हो सकती है? यदि जाति भी सावधिक होने लगे तब तो **'अयमस्माद् गौः'** ऐसे प्रयोग की भी आपत्ति आयेगी।

यदि कहो कि **'अयमस्मात्तारः'** इत्यादि प्रतीतियों के बल से जाति भी तारत्व का सावधिकत्व होता ही है, तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि जो किसी एक की अपेक्षा तारत्व है वही दूसरे की अपेक्षा मन्दत्व है, इसलिए एक ही व्यक्ति में समनियत जातिद्वय तारत्व और मन्दत्व को स्वीकारना पड़ेगा। किन्तु समनियत जातिद्वय का अभ्युपगम नहीं किया जाता है। (समनियत जातिद्वय का अङ्गीकार करने में तुल्यत्व जातिबाधक है) यदि तारत्व मन्दत्व को समनियत न मानें तब तो जातिसाङ्कर्य (रूप जातिवाधक) प्रसक्त होगा। इस तरह तारत्वादि जातियों के सावधिक होने पर स्वापेक्षया जो तार है उसकी अपेक्षा से

1. सर्वं वाक्यं क्रियया परिसमाप्यते इति वैयाकरणाः।

2. यहाँ पर अपेक्षितक्रिया और उपात्तविषय अपादान में बहुत ही सूक्ष्म फ़र्क बतलाया है। अपेक्षितक्रिय अपादान में क्रिया का अध्याहार वाक्य परिसमाप्ति के लिए होता है, उसी से अपादानता होती है। उपात्तविषय में क्रिया का अध्याहार वाक्यसमाप्ति के लिए न होकर अपादानता निर्वाह के लिए ही होता है।

अपने में मन्दव्यवहार की तरह तारव्यवहार भी होने लगेगा और स्वापेक्षया जो मन्द है उसकी अपेक्षा से अपने में तारव्यवहार की तरह मन्दव्यवहार भी होने लगेगा। यह अन्तिम दोष एक ही जाति को तारत्व और मन्दत्व मानने पर दिया जा रहा है। तारत्व और मन्दत्व यदि एक ही हो तो जिसकी अपेक्षा तारत्व है उसकी अपेक्षा मन्दत्व भी है। अतः उक्त आपत्ति है।

अथ तदपेक्षया तारव्यवहारस्तत्सजातीयत्वे सति तत्साक्षात्कार प्रतिबन्धकतावच्छेदकजातिमत्त्वमवलम्बतेऽतो न स्वापेक्षया यस्तारस्तदपेक्षया तारव्यवहारोऽन्यापेक्षया तारेऽपि भवतीति चेत्? तर्हि 'अस्मात्तारः' इत्यत्र साजात्यसमानाधिकरणसाक्षात्कारप्रतिबन्धकतावच्छेदकजातिरूपतारपदप्रवृत्तिनिमित्तघटकसाजात्ये साक्षात्कारे च पञ्चम्यर्थान्वयो वाच्यस्तावतैव दर्शितातिप्रसङ्गवारणसम्भवात्। तत्र साजात्यं तद्वृत्तिशब्दत्वजातिस्तस्याः साक्षात्कारस्य च न सावधिकत्वमिति सावधिकत्वरूपमपादानत्वं तत्र पञ्चम्यर्थः।

यदि कहो कि तदपेक्षया तारव्यवहार तत्सजातीय और तत्साक्षात्कारप्रतिबन्धकताकच्छेदकीभूत जातिमत्त्व का अवलम्बन करता है, इस कारण स्वापेक्षया जो तार है उसकी अपेक्षा से अपने में तारव्यवहार नहीं होता है, भले ही खुद वह किसी दूसरे की अपेक्षा से तार भी हो । देखें—वीणाध्वनि अपने प्रबलतर वीणाध्वनि से छुप जाती है, प्रबलतर वीणाध्वनि भी प्रबलतम वीणाध्वनि से अभिभूत हो जाती है। उसका श्रावणप्रत्यक्ष नहीं सम्भव हो पाता है। इसमें प्रबलतर वीणाध्वनि में प्रबल वीणाध्वनि की अपेक्षा से तारव्यवहार होता है, प्रबलतम वीणाध्वनि की अपेक्षा से नहीं। ऐसा किस कारण है? क्योंकि प्रबल की अपेक्षा प्रबलतर वीणाध्वनि में होने वाला तारव्यवहार प्रबलवीणाध्वनि सजातीय और प्रबलवीणाध्वनिसाक्षात्कारप्रतिबन्धकतावच्छेदक जातिमत्त्व का अवलम्बन करता है। प्रबलतर वीणाध्वनि में प्रबलतम वीणाध्वनिसाक्षात्कारप्रतिबन्धकतावच्छेदक जातिमत्त्व नहीं है। इस कारण स्वापेक्षया जो तार है उसकी अपेक्षा से अपने में तारव्यवहार नहीं होता है। तो **'अस्मात्तारः'** इस स्थल में साजात्यसमानाधिकरणसाक्षात्कारप्रतिबन्धकतावच्छेदक जाति रूप तारपदप्रवृत्तिनिमित्त में घटकीभूत साजात्य में और साक्षात्कार में पञ्चम्यर्थ का अन्वय कहना चाहिए। उसी से ही दर्शित अतिप्रसङ्ग का वारण सम्भव है। उसमें साजात्य का अर्थ तद्वृत्ति शब्दत्व जाति है, उसका और साक्षात्कार का सावधिकत्व तो है नहीं, इस कारण सावधिकत्व रूप अपादानत्व वहाँ पर पञ्चमी का अर्थ नहीं हो सकता है। आशय यह है कि तार पद का अर्थ है साजात्यसमानाधिकरण साक्षात्कारप्रतिबन्धकतावच्छेदक जातिमान्, तारत्व है साजात्यसमानाधिकरणसाक्षात्कारप्रतिबन्धकतावच्छेदक जाति। इस स्थिति में पञ्चमी के अर्थ का अन्वय या तो साजात्य में या तो साक्षात्कार में करेंगे, किन्तु दोनों ही सावधिक नहीं है, अतः यहाँ पर अवधि अर्थ में पञ्चमी (अपादान पञ्चमी) नहीं हो सकती है।

न च साजात्यघटकजातेः सावधिकत्वाभावेऽपि वृत्तेः सावधिकत्व-

मस्त्येव। एवं साक्षात्कारो विलक्षणविषयिताशालिज्ञानं तद्विषयिता च सावधिकैवेति तत्र पञ्चम्यर्थान्वयेन सामञ्जस्यमिति वाच्यम्; यतो वृत्तेर्विषयितायाश्च स्वाधारविषयप्रतियोगिकत्वमेव न तु तदवधिकत्वम्, तदवधिकत्वतत्प्रतियोगिकत्वयोर्वस्तुनोर्भेदात्, अन्यथा 'घटे वर्तते' 'घटमवगाहते' इत्यत्र 'घटाद्वर्तते' 'घटादवगाहते' इति प्रयोगस्य घटस्यापादानत्वेन दुर्वारत्वात्। अत एव प्रतियोगिताया अपादानत्वानात्मकतयाऽन्यादिशब्दयोगे प्रतियोगिवाचकपदात् पञ्चमी सूत्रान्तरेणानुशिष्टा प्रतियोगित्वस्यापादानत्वरूपत्वे तद्वैयर्थ्यापत्तेः।

यदि कहो कि साजात्य घटक जाति का सावधिकत्व न होने पर भी वृत्ति का सावधिकत्व तो है ही। (सजातीयत्व का अर्थ अभी बतलाया **साजात्यं तद्वृत्तिशब्दत्वजातिः** इसमें घटकीभूत शब्दत्वजाति के सावधिक न होने पर भी वृत्तित्व तो सावधिक है ही) और साक्षात्कार विलक्षणविषयिताशालिज्ञान है और उसज्ञान की विषयिता तो सावधिक ही है (क्योंकि प्रतीति होती है। घट विषयिता है पटविषयिता नहीं) उसमें पञ्चम्यर्थ का अन्वय कर लेने से सामञ्जस्य हो जायेगा। अर्थात् अपादानपञ्चमी के अर्थ सावधिकत्व का अन्वय साजात्यघटक वृत्तित्वांश में और साक्षात्कारघटक विषयिता में हो जायेगा।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए। क्योंकि वृत्ति (आधेयता) और विषयिता का स्वाधार विषयप्रतियोगिकत्व ही है स्वाधारविषयावधिकत्व नहीं है। (आधेयता भी स्वाधारविषय प्रतियोगिक होती है, स्व का आधार विषय आधेयता का प्रतियोगि हुआ करता है। विषयिता भी स्वाधारविषयिताश्रयीभूत ज्ञान के विषय प्रतियोगिक होती है। विषयिताश्रयीभूत ज्ञान का विषय विषयिता में प्रतियोगी बनता है) तदवधिकत्व और तत्प्रतियोगिकत्व इन दोनों वस्तुओं में भेद है। अन्यथा (यदि तदवधिकत्व और तत्प्रतियोगिकत्व इन दोनों वस्तुओं में भेद न होगा तो) **'घटे वर्तते' 'घटमवगाहते'** की जगह पर **'घटाद्वर्तते' 'घटादवगाहते'** प्रयोग घट की अपादानता होने से दुर्वार हो जायेगा। **घटे वर्तते** इस प्रयोग में आधेयता घट प्रतियोगिक है, इस कारण आधेयता घटावधिक हो गयी इसलिए इसके स्थान पर **घटाद्वर्तते** प्रयोग होना चाहिए। **घटमवगाहते** इस प्रयोग में विषयिता रूप अवगाहन पदार्थ घटक अंश में घटप्रतियोगिकत्व है, इस कारण घटावधिक अवगाहन हो गया। इसलिए **घटादवगाहते** प्रयोग की आपत्ति है। इसीलिए प्रतियोगिता के अपादानत्वात्मक न होने के कारण अन्य आदि शब्दों के योग में प्रतियोगि वाचक पद से पञ्चमी सूत्रान्तर से अनुशिष्ट है। प्रतियोगित्व यदि अपादानत्व रूप होता तो उस सूत्रान्तर से पञ्चमी अनुशासन के वैयर्थ्य की आपत्ति होती अभिप्राय यह है **'घटादन्यः'** इत्यादि स्थलों में घट पद से पञ्चमी विधान के लिए पाणिनि ने **''अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते''** पा॰सू॰ 2/3/29 सूत्र का प्रणयन किया है। **घटादन्यः** से घटप्रतियोगिकभेदवान् समझा जाता है। भेद में घटप्रतियोगिकत्व है, यदि घटावधिकत्व और घट प्रतियोगिकत्व दोनों चीज़ें एक ही होतीं तब तो इस सूत्र की ज़रूरत ही नहीं है। जैसे **'अस्मात्तारः'** में **'ध्रुवमपायेऽपादानम्'** सूत्र

से वृत्ति (आधेयता) और विषयिता में सावधिकत्व रूप अपादान पञ्चमी का अर्थ अन्वित कर सकते हैं (अवधिकत्व और प्रतियोगिकत्व को एक मानकर) उसी तरह यहाँ पर भी सम्भव है।

अथान्यादिशब्दार्थभेदादेः क्रियात्वाभावेन कारकत्वासम्भव इति मुनिः सूत्रान्तरं प्रणिनायेति चेत् ? तत् किं तारादिघटकवृत्त्यादेः क्रियात्वमनुमन्यते भवता? तस्मादत्र पञ्चम्युपपादकं सूत्रान्तरमनुसर्तव्यमिति।

यदि अन्य आदि शब्द के अर्थ भेद आदि का क्रियात्व न होने के कारण अपादानकारकत्व घटादि का असम्भव है क्योंकि क्रियान्वयित्व ही कारकत्व है, पञ्चमी का अर्थ यदि क्रिया में अन्वयी होगा तभी उसे कारक कह सकते हैं। यहाँ पर पञ्चमी का अर्थ अवधिकत्व (प्रतियोगिकत्व) भेद में अन्वित हो रहा है जो कि क्रिया नहीं है। इस कारण मुनि ने सूत्रान्तर '**अन्यारात् ...**' इत्यादि का प्रणयन किया है। तो भाई यह बताओ कि क्या आप तारादि घटक वृत्ति आदि (आधेयता, विषयिता आदि) का क्रियात्व स्वीकार करते हैं? इसलिए यहाँ पर भी पञ्चम्युपादक सूत्रान्तर का अनुसरण करना चाहिए दोनों ही स्थलों में स्थिति समान है । अन्य पदार्थ भेद का जैसे क्रियात्व नहीं है, अतः अपादानपञ्चमी अनुपपन्न होने के कारण सूत्रान्तर आवश्यक है। उसी प्रकार यहाँ पर भी पञ्चमी विधान हेतु सूत्रान्तर ज़रूरी है क्योंकि तारपदार्थ घटक वृत्ति आदि का भी क्रियात्व नहीं होने के कारण अपादानपञ्चमी यहाँ भी अनुपपन्न है।

निष्कर्ष– यहाँ पर गदाधर ने पाणिनीयव्याकरण की न्यूनता की ओर संकेत किया है। '**अस्मात्तारः**' इत्यादि स्थलों में किसी भी सूत्र से पञ्चमी का विधान नहीं सम्भव है।

'गुणो द्रव्याद् भिन्नः' इत्यादौ ''अन्यारात्'' इति सूत्रेणैव पञ्चमी-अन्यदस्यान्यार्थकपदपरत्वादिति बहवः।

न चान्यपदेन तदर्थकत्वविवक्षणे तत्समानार्थकेतरपदोपादनवैयर्थ्य मिति वाच्यम्; अन्येतरपदयोरेकस्यान्योन्याभावविशिष्टार्थकपरत्वात्, अपरस्य पृथक्त्वगुणविशिष्टपरतयोपादानसार्थक्यात्। ''पृथग्विना'' इत्यादिसूत्रे पृथक्-पदोपादानं तद्योगे वैकल्पिकतृतीयोपपत्त्यर्थम् ।

वस्तुतस्तत्र पृथक्पदमसाहित्यार्थकं न तु गुणवदर्थकम् ''दुनोति चन्द्रात् पृथगप्यनङ्गः'' इत्युदाहरणेऽसाहित्यस्यैव प्रतीतेः।

'**गुणो द्रव्याद्भिन्नः**' 'गुण द्रव्य से भिन्न है' इत्यादि स्थलों में '**अन्यारात् ....**' **पा॰ सू॰ 2/3/29** के द्वारा ही पञ्चमी हुआ करती है क्योंकि अन्यपद अन्यार्थक पद परक है, ऐसा बहुत लोग कहते हैं। इस प्रयोग में अन्य पद का योग नहीं है भिन्न पद का योग है। परन्तु भिन्न पद के अन्यार्थक होने के कारण इसी सूत्र से पञ्चमी हो जाती है।

यदि कहो कि आप यदि अन्य पद से अन्यार्थकत्व की विवक्षा करेंगे तो सूत्र में अन्य पद समानार्थक इतर पद के उपादान की कोई सार्थकता नहीं होगी निरर्थकता ही होगी क्योंकि अन्यपद के द्वारा ही इतर पद का योग होने पर भी इतर पद के अन्यार्थक होने से

पञ्चमी सम्पादित हो जायेगी। तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि अन्य और इतर पदों में एक का अन्योन्याभावविशिष्टार्थकत्व और दूसरे की पृथक्त्वगुणविशिष्टपरता होने के कारण ही दोनों पदों के उपादान की सार्थकता होती है। **'पृथग्विनानानाभिस्तृतीयान्यतरस्याम्' पा॰सू॰ 2/3/32** में पृथक् पद का उपादान पृथक् पद का योग होने पर वैकल्पिक तृतीया की उपपत्ति के लिए है। इस सूत्र में पृथक् पदोपादान न होने पर पञ्चमी ही होती तृतीया नहीं।

वस्तुतः उसमें **'पृथग्विना.....'** सूत्र में पृथक् पद असाहित्यार्थक हैं पृथक्त्व गुणवदर्थक नहीं है **'दुनोति चन्द्रात् पृथगप्यनङ्गः'** 'चन्द्रमा से पृथक् (असहित) भी अनङ्ग दुःख देता है' इस उदाहरण में असाहित्य की ही प्रतीति होती है।

न चान्यादिपदं नान्योन्याभावार्थकं किंतु पृथक्त्वगुणविशिष्टार्थकं तथासति 'घटः पटो न' इत्यादावपि नञस्तदर्थकतया तद्योगे पञ्चम्यापत्तेः। न च तद्विशिष्टार्थकपदपरम्– तस्यापि विशिष्टार्थवाचकत्वात् नञ्पदञ्च न तथा तदुपस्थिताभावस्य नामान्तरार्थे भेदान्वयसम्भवेन लाघवेन तस्य धर्ममात्रवाचकत्वादिति न तद्योगे पञ्चमीप्रसङ्ग इति वाच्यम्; 'द्रव्याद् गुणस्य भेदः' इत्यादौ पञ्चमीनिर्वाहाय भेदार्थकपदस्यैवोपादेयत्वात्, अन्यादिपदस्यापि वाच्यविशेषणभेदार्थकत्वादित्यांचार्यानुसारिमतम्। तत्र अन्योन्याभाववाचक पदस्य पञ्चम्यनुपयोगित्वे 'द्रव्यादन्यो गुणः' इत्यादौ पञ्चम्यनुपपत्तेः गुणादौ पृथक्त्वरूपगुणासम्भवेनान्योन्याभावस्यैवान्यपदार्थत्वात्। अन्योन्याभावार्थकपदप्रयोगस्य पञ्चमीप्रयोजकत्वे तत्र निपातातिरिक्तत्वविशेषण प्रवेशेनापि नञ्योगे पञ्चमीवारणसम्भवात्।

वस्तुतस्त्वन्योन्याभावीयप्रतियोगित्वरूपार्थविवक्षायां पञ्चमी नञ्पदोपस्थापिताभावस्य च प्रतियोगिता न विभक्त्या बोध्यते–नञर्थे प्रति योगितयैवाधेयत्वातिरिक्तविभक्त्यर्थान्वयस्य व्युत्पन्नत्वात्; 'न चैत्रस्य' इत्यादौ षष्ठ्याद्यर्थस्य नञर्थप्रतियोगित्वादतो न तद्योगे पञ्चमी।

अभी उपपादित किया कि **'अन्यारात् ....' पा॰ सू॰ 2/3/29** में अन्यपद अन्योन्याभावविशिष्टार्थक है और इतर पद पृथक्त्वगुणविशिष्टार्थक है। इस पर आक्षेप उठाकर समाधान इस ग्रन्थ से दिखलायेंगे–

यदि कहो कि (यदि प्रश्न उठाओ कि) अन्यादिपद यदि अन्योन्याभावार्थक है तो **'घटः पटो न'** यहाँ पर नञ् के अन्योन्याभावार्थक होने से और नञ् पद का योग होने के कारण पञ्चमी का आपत्ति आयेगी (पञ्चमी के लिए अन्योन्याभावार्थक पद का योग अपेक्षित है और वह यहाँ पर है ही) इसलिए सूत्र को पृथक्त्वगुण विशिष्टार्थक मानो। यदि अन्य पद को अन्योन्याभावार्थक न मानकर अन्योन्याभाव विशिष्टार्थक मानो, तब भी काम नही चलेगा क्योंकि उसका भी (नञ् पद का भी) विशिष्टार्थ (अन्योन्याभावविशिष्टार्थ) वाचकत्व होने के कारण उसका योग होने पर पञ्चमी की आपत्ति फिर भी आयेगी। अन्यपद को

पृथत्त्वगुण विशिष्ट अर्थ का वाचक मानने पर नञ् पद तो वैसा है नहीं क्योंकि नञ् से उपस्थाप्य अर्थ का नामान्तरार्थ में भेदान्वय सम्भव होने के कारण लाघव होने के कारण उसकी धर्ममात्रवाचकता स्वीकारी जाती है इसलिए नञ् पद का योग होने पर पञ्चमी की आपत्ति नहीं है।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि '**द्रव्याद् गुणस्य भेदः**' इत्यादि स्थलों में पञ्चमी निर्वाह के लिए भेदार्थक अन्य पद ही सूत्र में उपादेय है। अन्यादि पद का वाच्य में विशेषणीभूत भेदार्थकत्व है ऐसा आचार्यानुसारियों का मत है। उसमें अन्योन्याभाववाचक पद के पञ्चमी का उपयोगी न होने पर '**द्रव्यादन्यो गुणः**' इत्यादि स्थलों में पञ्चमी की अनुपपत्ति होगी। गुण में पृथत्त्व रूप गुण असम्भव होने के कारण अन्योन्याभाव ही अन्य पद का अर्थ है। अन्योन्याभावार्थक पद प्रयोग के पञ्चमी का प्रयोजक होने पर निपातातिरिक्तत्व विशेषण प्रवेश से भी नञ् का योग होने पर पञ्चमी का वारण सम्भव है।

आशय यह है कि अन्य पद को भेदार्थक (अन्योन्याभावार्थक) ही मानना पड़ेगा। यदि भेदार्थक नहीं मानोगे तो '**द्रव्याद् गुणस्य भेदः**' में द्रव्य पद से पञ्चमी असम्भव होगी। यदि अन्योन्याभाव वाचक पद को पञ्चमी का प्रयोजक न मान कर पृथत्त्वगुणविशिष्ट वाचक पद को पञ्चमी का प्रयोजक माना जायेगा तो '**द्रव्यादन्योगुणः**' में पञ्चमी नहीं हो सकेगी। यहाँ पर गुण में द्रव्यपृथत्त्व का वैशिष्ट्य भासे तब तो पञ्चमी हो किन्तु गुण में पृथक्त्व वैशिष्ट्य नहीं भास सकता है क्योंकि गुण में गुण (पृथत्त्व) नहीं रह सकता है। अतः भेदार्थक ही अन्य पद को सूत्र में समझना चाहिए किंतु '**घटः पटो न**' में पञ्चमी वारण कैसे करोगे? तो निपातातिरिक्तत्व विशेषण देने से काम चल जायेगा।

वस्तुतः तो अन्योन्याभावीयप्रतियोगित्वरूप अर्थ की विवक्षा में पञ्चमी होती है। नञ् पद से उपस्थापित अभाव की प्रतियोगिता विभक्ति के द्वारा नहीं बोधित होती है क्योंकि नञर्थ में प्रतियोगितया (प्रतियोगिता सम्बन्ध से) ही आधेयत्वातिरिक्त विभक्त्यर्थान्वय व्युत्पन्न होता है। '**न चैत्रस्य**' इत्यादि स्थलों में षष्ठ्याद्यर्थ के नञर्थ प्रतियोगि होने के कारण (चैत्र के नञर्थ का प्रतियोगी न होने के कारण) उसका योग होने पर भी इसी कारण पञ्चमी नहीं होती है। यदि प्रकृत्यर्थ चैत्रादि नञर्थ प्रतियोगी होते तब तो उससे पञ्चमी होती। यहाँ तो नञर्थ का प्रतियोगी विभक्त्यर्थ स्वत्व (चैत्रस्वत्व) है। अतः पञ्चमी नहीं होती।

इस प्रकार गदाधर ने अन्यपद का भेदार्थकत्व और इतर पद का पृथत्त्वगुण विशिष्टार्थ कत्व मानकर सार्थकत्व सम्पादित किया।

अथ पृथत्त्वगुणानङ्गीकर्तृमीमांसकमते सूत्रेऽन्येतरपदयोरेकतरोपादानवैयर्थ्यं दुर्वारम्—उक्तरीत्या सार्थकत्वासम्भवादिति चेत् ? न, तन्मतेऽप्येकस्य प्राधान्येनान्योन्याभाववाचकस्यापरपदस्य चान्योन्याभाव विशिष्टवाचकस्य सङ्ग्राहकतया सार्थक्यात् ।

यदि कहो कि पृथत्त्वगुण का अङ्गीकार न करने वाले मीमांसक मत में सूत्र में अन्य और इतर पदों में से किसी एक पद का वैयर्थ्य दुर्वार होगा क्योंकि उक्त रीति से (एक की

भेदार्थकता और दूसरे की पृथत्त्वगुण विशिष्टार्थकता स्वीकार करके) सार्थकता असम्भव है। तो ऐसा नहीं है क्योंकि मीमांसकों के मत में एक की प्राधान्येन अन्योन्याभाव (भेद) वाचक की और दूसरे की अन्योन्याभावविशिष्टावाचक की सङ्ग्राहकता स्वीकारने से दोनों की ही सार्थकता होती है। इसी प्रकार पृथत्त्व गुणानङ्गीकर्ता रघुनाथ के मत में भी प्रतिपादित कर सकते है।

न च 'पटाद् भेदः' इत्यादौ क्रियायोगादपादानपञ्चम्येव, धातूपस्थाप्यपदार्थप्रतियोगिताया अपादानतारूपत्वे 'घटे वर्तते' इत्यादौ पञ्चमी प्रसङ्गस्य परत्वेनाधिकरणसप्तम्यादिना बाधादेवानवकाशात्, अभावीयविलक्षणप्रतियोगिताया एव वा तथात्वात्, 'घटादन्यत्वम्' इत्यादौ चापादानत्वासम्भवेऽप्यन्यपदयोगेनैव पञ्चमी तत्रान्यपदाद्विशेषणतया भासमान भेदे एव पञ्चम्यर्थान्वयोपगमात् न तु भावप्रत्ययात् प्राधान्येन भासमाने तस्मिन् पदार्थैकदेश इव वृत्त्येकदेशे ससम्बिन्धिके प्रतियोगिसम्बन्धान्वयस्य व्युत्पत्तिसिद्धत्वादिति वाच्यम्; प्राधान्येन भावप्रत्ययाद् भासमानेऽप्यन्यत्वे घटपटादिप्रतियोगिकत्वान्वयविवक्षया 'घटादन्यत्वम्' इति प्रयोगाद् तन्निर्वाहायैवान्येतरपदद्वयोपादानात् ।

यदि कोई कहे कि **'पटाद् भेदः'** इत्यादि स्थलों में क्रिया का योग होने से अपादान पञ्चमी ही है (भेद शब्द भिद् धातु से भाव में प्रत्यय करके निष्पन्न होता है, इस कारण भेद पदार्थ क्रिया ही है, उसका योग होने से पट पद से अपादान पञ्चमी होती है) धातु से उपस्थाप्य पदार्थ की प्रतियोगिता के अपादानता रूप होने पर **'घटे वर्तते'** यहाँ पर पञ्चमी प्रसङ्ग का (**पटाद्भेदः** में धातूपस्थाप्य भेदपदार्थ भेद की प्रतियोगिता ही पट में अपादानता है, उसी प्रकार **घटे वर्तते** में धातूपस्थाप्य वृत्तित्व आधेयता रूप अर्थ की प्रतियोगिता भी घट में है वह भी घट की अपादानता ही है, अतः पञ्चमी प्रसङ्ग है, उसका) परत्वेन बाद में होने के कारण अधिकरण सप्तमी आदि से बाध हो जाने के कारण ही अवकाश नहीं है। पञ्चमी विधायक सूत्र के बाद अधिकरण सप्तमीविधायक सूत्र है। इसकारण सप्तमी विधायक सूत्र पञ्चमी का बाधक हो जावेगा। अथवा अभावीय विलक्षण प्रतियोगिता की ही अपादानता है। (**पटाद् भेदः** में पट में अभावीयविलक्षणप्रतियोगिता होने से उसकी अपादानता होती है, **घटे वर्तते** में घट में अभावीयविलक्षणप्रतियोगिता नहीं है, अतः उसकी अपादानता नहीं होती है) **'घटादन्यत्वम्'** इत्यादि स्थलों में तो अपादानत्व असम्भव होने पर भी (क्योंकि अन्यत्व पदार्थ भेद यहाँ पर धातूपस्थाप्य नहीं है इसलिए उसकी प्रतियोगिता तो अपादानता नहीं हो सकती है, फिर भी) अन्य पद का योग होने के कारण ही पञ्चमी होती है, वहाँ पर अन्य पद से विशेषणतया भासमान भेद में ही पञ्चम्यर्थ का अन्वय स्वीकारा जाता है न कि भाव प्रत्यय से प्राधान्येन भासमान भेद में अर्थात् अन्यत्व पद से अन्य पद से भेदवान् की उपस्थिति होती है इसमें भेद विशेषणतया भासमान है। उसके बाद के भाव प्रत्यय त्व से भेद विशेष्यतया भासता है। इसमें विशेषणतया भासमान भेद में ही

पञ्चम्यर्थ प्रतियोगिता का अन्वय किया जाता है। पदार्थैकदेश की तरह ससम्बन्धिक वृत्त्येकदेश में भी प्रतियोगिसम्बन्धान्वय व्युत्पत्ति सिद्ध होता है। जैसे ससम्बन्धिक पदार्थैकदेश में प्रतियोगि सम्बन्धान्वय व्युत्पत्तिसिद्ध है वैसे ही वृत्त्येकदेश के ससम्बन्धिक होने पर उसमें भी प्रतियोगिसम्बन्धान्वय व्युत्पत्तिसिद्ध है।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि प्राधान्येन भाव प्रत्यय (त्व) से भासमान भी अन्यत्व (भेद) में घट, पटादि प्रतियोगिकत्व के अन्वय की विवक्षा से 'घटादन्यत्वम्' ऐसा प्रयोग होता है (केवल विशेषणतया भासमान भेद में घटपटादि प्रतियोगिकत्व के अन्वय की विवक्षा से ही ऐसा प्रयोग नहीं होता है) उसी का निर्वाह करने के लिए ही अन्य और इतर पदों का उपादान है।

अथवा 'ध्रुवमपाये' इत्यत्रावधित्वमेव विवक्षितं न तु प्रतियोगित्वम्-उभयानुगमकरूपाभावादिति 'पटाद्भेदः' इत्यादौ पञ्चम्युपपत्तयेऽन्येतर पदोपादानम्।

वस्तुतस्त्वन्येतरपदं स्वरूपपरमेव, अर्थपरत्वे 'घटादन्यः' इतिवद् 'घटादेकः' इति प्रयोगापत्तेः।

अथवा **'ध्रुवमपायेऽपादानम्'** यहाँ पर अवधित्व ही विवक्षित है प्रतियोगित्व नहीं क्योंकि उभयानुगमक (अवधित्व और प्रतियोगित्व दोनों का अनुगमक) एक रूप नहीं है। इसलिए **'पटाद्भेदः'** इत्यादि स्थलों में पञ्चमी की उपपत्ति के लिए अन्य और इतर पद का उपादान किया गया है।

वस्तुतः तो **अन्यारादितरर्ते ...'पा0 सू0 2/3/29** में अन्य और इतर पद स्वरूपपरक ही हैं, अर्थ परक होने पर **'घटादन्यः'** की तरह **'घटादेकः'** प्रयोग की आपत्ति है। भाव यह है कि एक पद भी अन्यार्थक होता है। अमरकोष में कहा गया है **'एके मुख्यान्यकेवलाः'** इस कारण यदि सूत्र में अन्य और इतर पद अर्थ परक हों, तो एक पद का अन्यार्थक प्रयोग करके **'घटादेकः'** प्रयोग होने की आपत्ति आयेगी। इस कारण अन्य और इतर पद अर्थ परक नहीं है सिर्फ़ अपने ही बोधक होते हैं।

विमर्श– उक्तसूत्रघटक अन्यादि पदों को अर्थपरक मानने पर **'स्वं रूपं शब्दस्याशब्द संज्ञा' पा॰ सू॰ 1/1/68** सूत्र का बाध होगा। साथ ही **'क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः' पा॰ सू॰ 1/4/37** सूत्र में भी इसी प्रकार क्रुध द्रुहादि को अर्थ परक माना जा सकता है। अतः अर्थ ग्रहण निरर्थक हो जायेगा। अतः स्वरूप परक ही अन्य और इतर शब्दों को मानना उचित है।

यदि चैकपदस्यान्यत्वरूपेण नान्यार्थकताऽपि तु समभिव्याहृतान्यत्वोपलक्षिते वस्तुनि वक्तृबुद्धिविषयतावच्छेदकघटत्वादिनैव–'चैत्र एकमानयति मैत्रश्चापरम्' इत्यादौ घटत्वपटत्वादिनैवानयनकर्मतादिप्रतीते र्नतु पटघटान्यत्वादिना—अन्यत्वान्वयिप्रतियोगिवाचकपदासमभिव्याहारात् अन्यथा तद्योगे पञ्चम्या असाधुत्वेऽपि 'घटस्यैकः' इति प्रतियोगिनि

षष्ठ्यापत्तेर्दुर्वारत्वादित्युच्यते? तदाप्यन्यार्थकतदादियोगे पञ्चमीप्रयोगापत्त्याऽर्थग्रहणासम्भव इति, तथा च 'पटाद् भिन्नम्' 'घटाद् भिद्यते' इत्यादौ पञ्चमीनिर्वाहाय तत्रापादानत्वमेव कथंचिदुपपादनीयम् ।

और यदि एक पद की अन्यत्वेन रूपेण अन्यार्थकता नहीं है अपितु समभिव्याहृतान्यत्वोपलक्षित वस्तु में वक्तृ बुद्धिविषयतावच्छेदकघटत्वादिना ही अन्यार्थकता है- **'चैत्र एकमानयति मैत्रश्चापरम्'** इत्यादिस्थलों में घटत्व पटत्वादिना ही आनयनकर्मतादि की प्रतीति होती है न कि पट घटान्यत्वादिना क्योंकि अन्यत्वान्वयी घटपटादि पदों का समभिव्याहार नहीं है। अन्यथा एकपदयोग होने पर पञ्चमी के असाधु होने पर भी **'घटस्यैकः'** इस प्रकार प्रतियोगी में षष्ठी की आपत्ति दुर्वार होगी अर्थात् एक पद की अन्यत्वेन अन्यार्थकता नहीं है अपितु समभिव्याहृतान्यत्वोपलक्षित वस्त्वर्थता वक्तृबुद्धिविषयतावच्छेदक घटत्वादिना है। इसी आधार पर उसकी अन्यार्थकता बता रहे हैं। प्रयोगस्थल में भी घटपटत्वादिना ही आनयन कर्मता आदि की प्रतीति होती है, घटपटान्यत्वादिना नहीं होती है। यदि एक पद अन्यत्वेन अन्यार्थक होता तो पञ्चमी हो चाहे न हो षष्ठी की आपत्ति तो दुर्वार हो जाती ।

ऐसा कहें ? तब भी अन्यार्थक तदादिशब्द का योग होने पर पञ्चमीप्रयोग की आपत्ति से अर्थ ग्रहण असम्भव होगा, इस कारण सूत्र घटक अन्य इतर पदों को अन्यार्थक और इतरार्थक न मान कर स्वरूपपरक ही मानना चाहिए । और **'पटाद् भिन्नम्' 'घटाद् भिन्नम्'** इत्यादि स्थलों में पञ्चमी के निर्वाह के लिए उसमें अपादानत्व ही कथंचित् (किसी तरह) उपपादित करना चाहिए।

तथाहि– भिद्धातोर्नान्योन्याभावोऽर्थः 'घटाद् भिनत्ति पटः' इति प्रयोगापत्तेः, 'भिद्यते घटः' इत्यादिप्रयोगानुपपत्तेश्च- कर्तरि यगात्मनेपदासम्भवात् अदैवादिकत्वात् परस्मैपदित्वाच्च श्यन्कर्त्रात्मनेपदयोरनवकाशात्, अकर्मक धातुयोगे कर्मकर्तृविवक्षाया अप्ययोगात् । कस्यचिदकर्मकस्य ण्यर्थान्तर्भावेण कर्मकर्तृत्वमुपपादनीयम्, अन्योन्याभावस्याजन्यतया तदर्थकधातोरर्थे ण्यर्थान्तर्भावस्य दुष्करत्वात् । 'भिद्यते कुसूलः' इत्यादौ भिदेर्विदारणार्थकत्वेन सकर्मकतया कुसूलादेः कर्मकर्तृत्वसम्भवात् । अतोऽन्यत्वज्ञापनं भिदेरर्थः, ज्ञापनं ज्ञानविषयताप्रयोजकव्याप्तिपक्षधर्मता तदाश्रयोऽसाधारणधर्म एव भिदादिकर्तृत्वाद् भेदक उच्यते। अन्यत्वप्रकारकानुमितिविषयतारूपधात्वर्थतावच्छेदकफलाश्रयो भिदादिकर्मतया भेद्यः, एवञ्च 'पृथवीतरेभ्यो भिद्यते' इत्यादौ पृथिव्यादेः कर्मतैव न केवलकर्तृता । अन्योन्याभावे साध्ये सर्वतान्त्रिकाणां तादृशप्रतिज्ञालेखनं केषाञ्चिदनवधानेन। प्रतिज्ञास्थवह्न्यादिपदं वह्न्यादिज्ञानविषयतार्थकम्। हेत्त्वयवस्थपञ्चम्या ज्ञाप्यत्वं नार्थोऽपितु प्रयोज्यत्वमर्थोति मणिकारादिमतानुसारेण केषाचिदिति सूक्ष्मविवेचनचतुराः।

गदाधर ने अभी सिद्धान्तित किया कि '**अन्यारादितरर्ते**' सूत्र में अन्य और इतर पद अर्थ परक नहीं हैं स्वरूप परक हैं, मात्र अपने ही बोधक हैं। '**पटाद् भिन्नम्**' इत्यादि स्थलों में पञ्चमीनिर्वाह के लिए पटादि की अपादानता ही किसी तरह उपपादित करनी चाहिए। किन्तु यह कैसे होगा? इस प्रकार होगा—

भिद् धातु का अन्योन्याभाव अर्थ नहीं हो सकता है क्योंकि भिद् धातु का अर्थ भेद हो तो '**घटाद् भिनत्ति पटः**' प्रयोग होने की आपत्ति होगी। (भेद के अजन्य होने के कारण उसका आश्रयत्व ही उसका कर्तृत्व होगा और **घटाद् भिन्नः पटः** की तरह '**घटाद् भिनत्ति पटः**' प्रयोग भी होने लगेगा) और **भिद्यते पटः** इत्यादि प्रयोगों की अनुपपत्ति भी होगी क्योंकि कर्ता अर्थ में यक् और आत्मनेपद सम्भव नहीं होते हैं। (इस प्रयोग में पट कर्ता स्थानीय होगा, कर्तृवाच्य में **भिद्यते** तो नहीं ही सिद्ध हो सकता है क्योंकि यक् और आत्मने पद होकर ही यह सिद्ध हो सकता है और कर्ता अर्थ में न तो यक् होता है और न तो आत्मनेपद) भिद् धातु के दिवादिगणीय न होने से और परस्मैपदी होने से श्यन् और कर्ता में आत्मनेपद का भी अवकाश नहीं है। **भिद्यते** में य श्यन् का है यह भी इस कारण नहीं कह सकते । कर्मकर्तृ प्रयोग में ऐसा हो सकता है किन्तु अकर्मक धातु का योग होने पर कर्मकर्तृविवक्षा का भी योग नहीं है। किसी अकर्मक का कर्मकर्तृत्व ण्यर्थ के अन्तर्भाव से ही उपपादित किया जा सकता है किन्तु अन्योन्याभाव के अजन्य होने के कारण तदर्थक (अन्योन्याभावार्थक) धातु के अर्थ में ण्यर्थ का अन्तर्भाव भी दुष्कर है।

'**भिद्यते घटः**' प्रयोग होता है, इसकी अनुपपत्ति दे रहे हैं गदाधर, यदि भिद्यते का अर्थ अन्योन्याभाव माने तो (1) **भिद्यते** की सिद्धि कर्ता में यक् और आत्मनेपद असम्भव होने के कारण नहीं हो सकती है। (2) श्यन् होकर नहीं हो सकती है क्योंकि यह धातु दिवादिगणीय नहीं है और परस्मैपदी है। (3) कर्मकर्तृविवक्षा होकर भी नहीं हो सकती है क्योंकि अन्योन्याभावार्थक धातु के अकर्मक होने से कर्मकर्तृ विवक्षा का भी योग नहीं है। (4) अकर्मक धातु का कर्मकर्तृत्व ण्यर्थ का अन्तर्भाव करके सम्पादित हो सकता है किन्तु अन्योन्याभाव के अजन्य होने से ण्यर्थान्तर्भाव भी दुष्कर है।

'**भिद्यते कुसूलः**' इत्यादि स्थलों में भिद् धातु के विदारणार्थक होने के कारण (अन्योन्याभावार्थक न होने के कारण) कुसूलादि का कर्मकर्तृत्व सम्भव है। किन्तु '**भिद्यते पटः**' में सम्भव नहीं है। अतः अन्यत्वेन ज्ञापन भिद् धातु का अर्थ है। ज्ञापन का अर्थ है ज्ञानविषयताप्रयोजकव्याप्तिपक्षधर्मता उसका आश्रय असाधारण धर्म ही भिदादि का कर्ता होने के कारण भेदक कहा जाता है, अन्यत्वप्रकारक अनुमितिविषयता रूप धात्वर्थतावच्छेदक फल का आश्रय भिदादिकर्मतया भेद्य होता है। अन्यत्वेन ज्ञानविषयताप्रयोजक ही भिद् धातु का अर्थ है, इसमें धात्वर्थतावच्छेदक हुआ अन्यत्वेन (अन्यत्व प्रकारक) ज्ञानविषयत्व, उसका आश्रय भिद् धातु का कर्म होगा। और अन्यत्वेन ज्ञानविषयताप्रयोजक (व्याप्ति और पक्षधर्मता) का आश्रय जो होगा वही भेदक होगा, भिद् धातु का कर्ता होगा। इस प्रकार '**पृथिवी इतरेभ्यो भिद्यते**' इत्यादि स्थलों में पृथिवी आदि की कर्मता ही होती है केवल कर्तृता नहीं होती है। अर्थात् पृथिवी की कर्मकर्तृता यहाँ पर है, केवल कर्तृता नहीं है।

अन्योन्याभाव के साध्य होने पर सभी तान्त्रिकों (दार्शनिकों) का वैसा प्रतिज्ञालेखन कुछ लोगों के अनवधान की वज़ह से है। प्रतिज्ञास्थ वह्नि आदिपद वह्न्यादि ज्ञानविषय परक हैं। हेत्ववयवस्थ पञ्चमी का ज्ञाप्यत्व अर्थ नहीं है बल्कि प्रयोज्यत्व ही अर्थ है। मणिकारादिमत के अनुसार **केषांचित्** प्रयोग है । ऐसा सूक्ष्मविवेचनचतुर लोग कहते हैं।

आशय यह है कि **पृथिवी इतरेभ्यो भिद्यते** जब प्रयोग किया जाता है तो बोधित होता है कि '**पृथिवी इतरेभ्यो अन्यत्वेन ज्ञाप्यते**' 'पृथिवी इतर से अन्यत्वेन ज्ञापित होती है'। पृथिवी में इतरभेद सिद्ध करने के लिए (इतरभेद को साध्य के रूप में उपस्थित करने के लिए) ऐसा प्रयोग नहीं किया जा सकता है। '**पृथिवी इतरेभ्यो भिद्यते गन्धवत्त्वात्**' प्रयोग करने पर पृथिवी में इतरभेद की साध्यता है यह नहीं बताया जा सकता है। इसलिए ऐसा प्रयोग कुछ ग्रन्थकारों के अनवधान से ही चल पड़ा है।

'**पर्वतो वह्निमान् धूमात्**' इत्यादि प्रतिज्ञास्थलों में वह्नि आदि पद वह्न्यादिज्ञान विषयपरक हैं और धूम पदोत्तर पञ्चमी का अर्थ प्रयोज्यत्व है ज्ञाप्यत्व नहीं इस प्रकार '**धूमप्रयोज्यवह्निज्ञानविषयता**' का बोध हुआ करता है। '**पृथिवीतरेभ्यो भिद्यते' गन्धवत्त्वात्**' यहाँ पर '**गन्धवत्त्वप्रयोज्यान्यत्वप्रकारकज्ञानविषयताश्रयत्व**' पृथिवी में बोधित होता है।

'अर्जुनः क्रोशाल्लक्ष्यं विध्यति' 'अद्यभुक्त्वाऽयं द्व्यहाद्भोक्ता' इत्यादौ 'सप्तमीपञ्चम्यौ कारकमध्ये'' इति पञ्चमी प्रकृत्यर्थयोरध्वकालयोः कारक द्वयव्यवधायकतामभिधत्ते। तथा च स्वाधिष्ठितदेशान्तरक्रोशात्मका-ध्वभागानन्तरदेशस्थं लक्ष्यं विध्यत्यर्जुन इत्यादिः प्रथमस्थले बोधः, समभिव्याहृतकर्त्रधिष्ठितदेशानन्तर्यं विशेषणतया प्रकृत्यर्थान्वयि, विशेष्यतया प्रकृत्यर्थान्वयिचानन्तरदेशस्थत्वं पञ्चम्यर्थः। स्वीयैकार्थान्वितापरपदार्था-न्वितापरस्वार्थबोधकत्वमप्यत्र व्युत्पत्तिवैचित्र्यादेकपदस्य स्वीक्रियते। भोजन-कृत्यधिकरणैतद्दिवसानन्तरद्व्यहानन्तरदिनवृत्तिभोजनकृतिमानित्याकारक-बोधश्चरमस्थले। कारकपदेन क्रियानुकूलव्यापाररूपकारकपदार्थतावच्छे-स्यापि विवक्षया एकक्रियानुकूलकृत्यन्वयिनः प्रकृत्यर्थकालानन्तरकालीन-त्वस्य प्रकृत्यर्थविशेषणीभवदपरक्रियानुकूलकृत्यधिकरण कालानन्तर्यस्य च बोधकत्वेऽपि पञ्चम्युपपत्तिः। कारकद्वयमध्यवर्तिता चात्र कालस्य नोपपद्यते–कर्तुरैक्यात्। अत एवोक्तम्–''कर्तृशक्त्योर्मध्ये चैकः कालः'' इति।

–इति पञ्चम्यर्थनिरूपणं समाप्तम्–

'**अर्जुनः क्रोशाल्लक्ष्यं विध्यति**' अर्जुन कोस भर से लक्ष्य बींधता है '**अद्य भुक्त्वाऽयं द्व्यहाद्भोक्ता**' 'आज खाकर यह दो दिनों के बाद खायेगा' इत्यादि स्थलों में '**सप्तमीपञ्चम्यौ कारकमध्ये**' पा० सू० 2/3/7 के द्वारा पञ्चमी होती है और उक्त पञ्चमी प्रकृत्यर्थ अध्व और काल की कारकद्वयव्यवधायकता बतलाती है। इस प्रकार स्वाधिष्ठितदेशानन्तरक्रोशात्मक अध्वभागानन्तर देशस्थ लक्ष्य को अर्जुन बींधता है ऐसा

शाब्दबोध प्रथमस्थल में होता है। समभिव्याहृत कर्ता से (अर्जुनादि से) अधिष्ठितदेश का आनन्तर्य विशेषणतया प्रकृत्यर्थ से अन्वित होने वाला है, वह और विशेष्यतया प्रकृत्यर्थान्वयी अनन्तरदेशस्थत्व पञ्चमी का अर्थ है। अर्थात् पञ्चमी का एक आनन्तर्य रूप अर्थ क्रोश में अन्वित होता है जोकि समभिव्याहृत कर्ता से अधिष्ठित देश का आनन्तर्य है। दूसरा अनन्तरदेशस्थत्व रूप पञ्चमी का अर्थ क्रोश रूप प्रकृत्यर्थ में विशेष्य बनता है।

किन्तु इसमें समस्या यह है कि पञ्चमी का अर्थ तो प्रकृत्यर्थ में विशेष्य बनकर ही भासना चाहिए विशेषण बनकर नहीं क्योंकि नियम है कि **प्रकृतिप्रत्ययौ सहार्थं ब्रूतः प्रत्ययार्थस्यैव प्राधान्यम्** 'प्रकृति और प्रत्यय साथ-साथ अर्थ को बताते हैं उसमें प्रत्ययार्थ की प्रधानता होती है' यहाँ पर आप पञ्चमी के अर्थ आनन्तर्य को क्रोश में विशेषण विधया भी बोधित कर रहे हैं। तो यह कैसे? इसी समस्या का समाधान '**स्वीयैकार्थान्वित ....स्वीक्रियते**' से कर रहे हैं कि- अपने एक अर्थ से अन्वित भी अपरपदार्थ से अन्वित अपरस्वार्थ बोधकत्व भी यहाँ पर व्युत्पत्ति की विचित्रता से एक पद का स्वीकार किया जाता है। यहाँ पर अपने (पञ्चमी के) एक अर्थ अनन्तरदेशस्थत्व से अन्वित अपरपदार्थ (अर्जुनादि) से अन्वित अपर स्वार्थ आनन्तर्य का बोधकत्व पञ्चमी का स्वीकारते हैं। अन्यत्र नहीं ।

भोजनकृत्यधिकरणैतद्दिवसानन्तर द्व्यहानन्तरदिनवृत्तिभोजनकृतिमान् ऐसा बोध चरमस्थल में दूसरे वाक्य से होता है। यद्यपि कारक पद क्रियाविशिष्ट का वाचक होता है। तथापि क्रियानुकूलव्यापाररूप कारकपदार्थतावच्छेदक की भी कारक पद से विवक्षा होने के कारण एक क्रियानुकूल कृत्यन्वयी (कर्ता) के प्रकृत्यर्थकालानन्तरकालीनत्व और प्रकृत्यर्थविशेषणी-भवत् अपर क्रियानुकूलकृत्यधिकरण कालानन्तर्य का बोधक होने पर भी पञ्चमी की उपपत्ति होती है। यहाँ पर काल की कारकद्वय मध्यवर्तिता नहीं उपपन्न होती है क्योंकि कर्ता का एकता है। इसीलिए कहा गया है कि—कर्ता की शक्तियों के मध्य में एक काल होता है।

यहाँ पर आशय यह है कि जहाँ पर मार्ग या काल कारकों के बीच में हो वहाँ पर मार्ग या काल से पञ्चमी या सप्तमी '**सप्तमीपञ्चम्यौ कारकमध्ये**' पा०सू० 2/3/7 से हो सकती है। '**अद्य भुक्त्वाऽयं द्व्यहाद् भोक्ता**' 'आज खाकर यह दो दिन के बाद खायेगा' इत्यादिस्थलों में आज खाने वाला जो है वही दो दिन बाद भी खानेवाला है। कर्ता रूप कारक एक है। इसलिए कारकों के बीच में दो दिन रूपी काल नहीं आ रहा है। फिर कैसे द्व्यह से पञ्चमी होगी? इसका समाधान यह दे रहे हैं कि कारक पद से कारक पदार्थतावच्छेदकीभूत क्रियानुकूल व्यापार भी विवक्षित है। इसका मतलब यह हुआ कि कारक के बीच में काल आने पर भी पञ्चमी होती है, कारकपदार्थतावच्छेदक (क्रियानुकूलव्यापार) के बीच में काल आने पर भी पञ्चमी होती है। यहाँ पर दोनों भोजनानुकूलव्यापारों के बीच में काल (द्व्यह) है, अतः उससे पञ्चमी होती है। यही बात कर्तृशक्तियों के मध्य एक काल होता है कहकर भी बतायी गयी है।

इस प्रकार श्रीमद्गदाधरभट्टाचार्यप्रणीत व्युत्पत्तिवाद की श्रीसच्चिदानन्दमिश्रविरचित सुनन्दानामक हिन्दी व्याख्या में पञ्चमीकारक पूर्ण हुआ।

-------:0:-------

–अथ षष्ठी–

स्वसम्बन्धविवक्षायां कारकविभक्त्यप्रसक्तेः "शेषे षष्ठी" इत्यनेन 'चैत्रस्येदम्' इत्यादौ षष्ठी। 'चैत्रस्य द्रव्यम्' 'घटस्य कारणम्' 'चैत्रस्य हस्तः' इत्यादौ स्वत्वनिरूपितत्वावयवत्वादीनां सम्बन्धत्वेनैव षष्ठ्यर्थता न तु विशिष्य शक्त्यानन्त्यप्रसंगात्। संयोगादिसम्बन्धसत्त्वेऽपि 'चैत्रस्य नेदं वासः' इत्यादौ स्वत्वादिसम्बन्धविशेषाभावबोधतात्पर्येण यत्र नञ्प्रयुज्यते तत्र विशेषरूपेण लक्षणैव, "सुब्विभक्तौ न लक्षणा" इति प्रवादस्यानुशासनासत्त्वे एक विभत्यर्थेऽपरविभक्तेर्न लक्षणा इत्येतत्परत्वात्। अत एव च "कृद्योगापि हि षष्ठी सम्बन्धत्वेनैव बोधयति" इति मिश्राः। इत्थमेव च सम्बन्धत्वेन कर्मत्वादिविवक्षया 'मातुः स्मृतम्' इत्यादौ "अधीगर्थ" इत्यादि-षष्ठ्यनुशासनस्य नियमपरतया सार्थक्योपपादनं वृत्तिकृतामुपपद्यते। सम्बन्ध-त्वविशिष्टसम्बन्धविवक्षायां "शेषे षष्ठी" इत्यस्य षष्ठ्यविधायकत्वे तादृशानुशासनस्य विधित्वमेव स्यात्। अत एव च "आमं शूद्रस्य पक्वान्नं पक्वमुच्छिष्टमुच्यते" इत्यत्र 'पक्वम्' इत्यत्रानुषज्यमानायाः षष्ठ्याः सम्बन्धत्वेन कर्तृत्वमर्थो न तु स्वत्वम्– शूद्रकर्तृकवृषोत्सर्गे चरुहोमानुपपत्तेरिति नवीनस्मार्तानां मतमप्युपपद्यते ॥

अपने सम्बन्ध की विवक्षा में कारक विभक्ति की प्रसक्ति नहीं होने के कारण (क्रियान्वयी कारक होता है, अपने सम्बन्धादि का क्रिया में अन्वय नहीं सम्भव होने के कारण कारकविभक्ति नहीं हो सकती है, इसी कारण) 'शेषे षष्ठी' पा॰सू॰ 2/3/50 के द्वारा 'चैत्रस्येदम्' 'यह चैत्र का है' इत्यादि स्थलों में चैत्रपदोत्तर षष्ठी होती है। 'चैत्रस्य द्रव्यम्' 'चैत्र का द्रव्य' 'घटस्य कारणम्' 'घट का कारण' 'चैत्रस्य हस्तः' 'चैत्र का हाथ' इत्यादि स्थलों में क्रमशः स्वत्व, निरूपितत्व, अवयवत्वादि की सम्बन्धत्वेन ही षष्ठ्यर्थता है विशेष रूप से (स्वत्वत्वेन, निरूपितत्वत्वेन, अवयवत्वत्वेन) नहीं है क्योंकि विशेष रूप से इनकी षष्ठ्यर्थता मानने पर तो षष्ठी के शक्ति का आनन्त्य हो जायेगा, सम्बन्धों के अनन्त होने के कारण उनमें षष्ठी की शक्ति भी विशेष रूप से अनन्त होगी। संयोगादि सम्बन्ध रहने पर भी 'चैत्रस्य नेदं वासः' 'यह वस्त्र चैत्र का नहीं है' इत्यादि स्थलों में स्वत्वादिसम्बन्धविशेषाभावबोध के तात्पर्य से जहाँ पर नञ् का प्रयोग किया जाता है वहाँ पर विशेष रूप से षष्ठी की लक्षणा ही होती है। अर्थात् चैत्र ने वस्त्र धारण कर रखा है, वस्त्र में चैत्र का संयोग है, फिर भी प्रयोग किया जाता है कि 'चैत्रस्य नेदं वासः' तो ऐसा प्रयोग वस्त्र में चैत्रसम्बन्ध का अभाव बोधित कराने के लिए नहीं हो सकता है क्योंकि वह तो बाधित है। फिर किसका अभाव बोधन करने के लिए उक्त प्रयोग किया जा रहा है? चैत्र के स्वत्वरूप सम्बन्धविशेष का अभाव बोधित करने के लिए उक्त प्रयोग किया जा

रहा है। किन्तु यह कैसे होगा? षष्ठी के द्वारा तो स्वत्वत्वेन स्वत्व की उपस्थिति ही सम्भव नहीं है क्योंकि षष्ठी का अर्थ तो सम्बन्धत्वेन सम्बन्ध होता है। अतः सम्बन्ध का अभाव तो बोधित किया जा सकता है किन्तु स्वत्वत्वेन स्वत्व सम्बन्धविशेष का अभाव नहीं बोधित किया जा सकता है। इसपर समाधान यह दिया कि अभिधा से षष्ठी सम्बन्धत्वेन सम्बन्ध की बोधक या उपस्थापक होती है, लक्षणा से तो षष्ठी के द्वारा भी स्वत्वत्वेन स्वत्व की उपस्थिति हो सकती है, उसका अभाव बोधित हो सकता है। **'सुब्विभक्तौ न लक्षणा'** 'सुब्विभक्ति में लक्षणा नहीं होती है' यह प्रवाद तो 'अनुशासन न रहने पर एक विभक्ति के अर्थ में दूसरी विभक्ति की लक्षणा नहीं होती है' इस अर्थ परक है। यहाँ पर तो किसी विभक्ति के अर्थ में षष्ठी विभक्ति की लक्षणा नहीं की जा रही है। इसीलिए "कृद्योगा षष्ठी सम्बन्धत्वेन बोधित करती है" ऐसा मिश्रमहोदय कहते हैं। (मिश्र से आशय सम्भवतः पक्षधर मिश्र से है) इसी प्रकार ही सम्बन्धत्वेन कर्मत्वादि की विवक्षा से **'मातुः स्मृतम्'** इत्यादि स्थलों में **'अधीगर्थदयेषां कर्मणि' पा॰ सू॰ 2/3/52** अनुशासन का वृत्तिकार द्वारा नियमपरतया सार्थक्योपपादन उपपन्न होता है। सम्बन्धत्वविशिष्ट सम्बन्धविवक्षा में **'शेषे षष्ठी' पा॰ सू॰ 2/3/50** के षष्ठी का विधायक न होने पर (विशेष रूप से सम्बन्ध की विवक्षा में षष्ठी का विधायक होने पर) उक्त अनुशासन का विधित्व ही होता और इसी कारण **'आमं शूद्रस्य पक्वान्नं पक्वमुच्छिष्टमुच्यते'** 'शूद्र का कच्चा अन्न पका हुआ और पका हुआ अन्न जूठा माना जाता है' यहाँ पर **पक्वम्** में अनुषज्यमान षष्ठी का सम्बन्धत्वेन कर्तृत्व ही अर्थ होता है स्वत्व नहीं, शूद्रकर्तृक वृषोत्सर्ग में चरुहोम की अनुपपत्ति होने के कारण ऐसा नवीनस्मार्तों का मत भी उपपन्न होता है। नवीन स्मार्त से रघुनाथ भट्टाचार्य अभिप्रेत हैं ऐसा सुदर्शनाचार्य जी का कथन है।

अभिप्राय यह है कि **'अधीगर्थदयेषां कर्मणि' पा॰सू॰ 2/3/52** के द्वारा **'मातुः स्मरणम्'** आदि स्थलों में मातृपद से षष्ठी का विधान किया जाता है। किन्तु उक्त स्थलों में मातृपदादि से षष्ठी का विधान तो **'षष्ठी शेषे'** सूत्र से ही सम्भव है। इस कारण **'अधीगर्थदयेषां कर्मणि'** सूत्र के द्वारा षष्ठी विधान तो व्यर्थ ही है। इस तरह यह सूत्र व्यर्थ है। इसलिए **व्यर्थो हि विधिर्नियमाय कल्पते** 'व्यर्थ विधि नियम के लिए कल्पित होती है' इसके अनुसार यह विधिसूत्र नियमार्थक होता है कि 'अधीगर्थार्थक (स्मरणार्थक) दयार्थक (दान, गति, रक्षणार्थक) ईशार्थक (ऐश्वर्यार्थक) धातुओं का योग होने पर कर्म कारक के ही शेषत्वेन विवक्षित होने पर षष्ठी होती है' इस प्रकार इस सूत्र की सार्थकता होती है। सम्बन्धत्वविशिष्ट सम्बन्ध की विवक्षा होने पर **'शेषे षष्ठी'** यह सूत्र यदि षष्ठी का विधायक नहीं होता है, विशेष रूप से सम्बन्ध की विवक्षा में षष्ठी का विधायक होता है, तब तो **'अधीगर्थदयेषां कर्मणि'** सूत्र का सार्थक्योपपादन उपर्युक्त रीति से असम्भव होगा क्योंकि कर्मत्वेन सम्बन्ध की विवक्षा होने पर षष्ठी का विधान **षष्ठी शेषे** से नहीं है। यह मानकर अविहित का विधायक होने के कारण विधिपरकतया ही **'अधीगर्थदयेषां कर्मणि'** सूत्र की सार्थकता सम्पादित की जा सकती है। इसी प्रकार सम्बन्धत्वेन रूपेण ही षष्ठी के स्वत्व, कर्तृत्व, निरूपकत्व आदि की बोधक होने के कारण **'आमं शूद्रस्य पक्वान्नं**

पक्वमुच्छिष्टमुच्यते' यहाँ पर शूद्रपदोत्तर षष्ठी का अर्थ सम्बन्धत्वेन कर्तृत्व होता है, स्वत्व नहीं होता है। क्योंकि शूद्रकर्तृक वृषोत्सर्ग में शूद्र के ही अन्न को पकाकर चरुहोम किया जाता है। यहाँ पर षष्ठी का अर्थ यदि स्वत्व हो तब मुश्किल यह है कि अर्थ होगा –शूद्र का पका हुआ अन्न (शूद्रस्वत्वाश्रय पक्वान्न) उच्छिष्ट होता है, उच्छिष्ट अन्न से तो चरु होम नहीं किया जाता है। इस कारण अर्थ यही किया जाता है कि षष्ठी का अर्थ यहाँ सम्बन्धत्वेन कर्तृत्व है, इस तरह 'शूद्रकर्तृक पक्वान्न उच्छिष्ट होता है' यह अर्थ होता है। शूद्र का अन्न यदि ब्राह्मणादि द्वारा पकाया गया है तो वह तो शूद्रकर्तृक (कर्तृत्वसम्बन्ध से शूद्र सम्बन्धी) नहीं हुआ, अतः उस चरु से होम किया जाता है उस की अनुपपत्ति नहीं है।

न च तत्र कृद्योगा षष्ठी कर्तृत्वत्वेनैव बोधयतीति वाच्यम्; निष्ठायोगे तस्याः निषेधात् । अत एव "नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां न पुंसा वामलोचना" इत्यादौ करणत्वादेः सम्बन्धत्वेन विवक्षया षष्ठ्युपपत्तिः, तृतीयादि-विधिविषयतया विशेषरूपेण करणत्वादिसम्बन्धविवक्षायां षष्ठ्यनुपपत्तेः।

अभी गदाधर ने कहा कि 'कृद्योगा भी षष्ठी सम्बन्धत्वेन ही कर्तृत्वादि सम्बन्धों को बोधित करती है' ऐसा मिश्र ने कहा है। कृद्योगा का अभिप्राय **'कर्तृकर्मणोः कृति' पा०सू० 2/3/65** से होनेवाली षष्ठी से है। चूँकि इस सूत्र से जहाँ पर षष्ठी होती है **'कृष्णस्य कृतिः' 'जगतः कर्ता कृष्णः'** इत्यादि स्थलों में वहाँ पर कर्तृत्व या कर्मत्व का ही सम्बन्धत्वेन षष्ठी से भान होता है। इसमें सन्देह यह है कि कर्तृत्व और कर्मत्व में कृद्योगा षष्ठी की शक्ति कर्तृत्वत्वेन और कर्मत्वेन है या सम्बन्धत्वेन है। **'कृष्णस्य कृतिः'** में कृञ् धातूत्तर क्तिन् प्रत्यय के भाव में होने के कारण कृष्ण के कर्तृत्व के अभिहित न होने के कारण उससे षष्ठी होती है प्रथमा नहीं । **'जगतः कर्ता कृष्णः'** में कृष्ण के कर्तृत्व का तृच् प्रत्यय से अभिधान होने के कारण कृष्णपद से षष्ठी नहीं सम्भव है, जगत् पद से कर्मत्व अर्थ में षष्ठी होती है। उक्त सन्देह निवारण हेतु ही गदाधर ने इस ग्रन्थ की अवतारणा की है।

यदि कहो कि वहाँ कृद्योगा षष्ठी कर्तृत्वत्वेन ही कर्तृत्व को बोधित करती है, तो ऐसा नहीं है क्योंकि निष्ठा के योग में कृद्योगा षष्ठी का निषेध है। (निष्ठा का मतलब क्त और क्तवतु प्रत्यय से है **'क्तक्तवतू निष्ठा' पा० सू०1/1/26**) अभिप्राय यह है कि यदि कहो कि **'आमं शूद्रस्य पक्वान्नं पक्वमुच्छिष्टमुच्यते'** में शूद्रपदोत्तर षष्ठी कृद्योगा षष्ठी है क्योंकि **पक्वम्** इस कृत् (कृदन्त) का योग है तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि **पक्वम्** यह निष्ठा है और निष्ठा के योग में **'न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृणाम् ' पा०सू०2/3/69** के द्वारा **'कर्तृकर्मणोः कृति'** सूत्र से होनेवाली कृद्योगा षष्ठी का निषेध कर दिया जाता है। इस प्रकार कृद्योगा षष्ठी सम्बन्धत्वेन कर्तृत्व का बोधन कराती हो या कर्तृत्वत्वेन **'आमं शूद्रस्य०........उच्यते'** में तो शूद्र का कर्तृत्व षष्ठी के द्वारा सम्बन्धत्वेन ही बोधित होगा कर्तृत्वत्वेन नहीं । क्योंकि उक्त षष्ठी कृद्योगा षष्ठी नहीं है। शेषे षष्ठी ही है। इस कारण इसी रीति से यह भी मानना चाहिए कि कृद्योगा भी षष्ठी सम्बन्धत्वेन ही कर्तृत्व, कर्मत्वादि को बोधित कराती है।

इसी कारण (षष्ठी के सम्बन्धत्वेन ही कर्तृत्वादि सम्बन्धों का बोधक होने के कारण) **'नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां न पुंसा वामलोचना'** 'अग्नि काष्ठ से नहीं तृप्त होती वामलोचना पुरुषों से नहीं तृप्त होती है' इत्यादि स्थलों में करणत्वादि की सम्बन्धत्वेन विवक्षा होने की स्थिति में तो तृतीया विधि का विषय होने के कारण षष्ठी की अनुपपत्ति होगी। यदि षष्ठी द्वारा विशेष रूप से करणत्वत्वादिरूप से करणत्वादि का सम्बन्ध बोधित होता हो, तब तो उक्त स्थलों में काष्ठ, पुम् आदि पदों के द्वारा षष्ठी नहीं सम्भव होगी क्योंकि उस स्थिति में कहना यह पड़ेगा कि करणत्वत्वादि रूप से करणत्वादि की विवक्षा होने पर षष्ठी होगी। किन्तु करणत्वत्वरूप से करणत्व की विवक्षा होने पर तो तृतीया का विधान है। अतः तृतीया के द्वारा बाध हो जायेगा । षष्ठी नहीं हो सकेगी । इसलिए सम्बन्धत्वेन करणत्वादि की विवक्षा होने पर ही षष्ठी होती है। यही मानना चाहिए ।

अथ सम्बन्धत्वेन सम्बन्धस्य षष्ठीवाच्यत्वे 'पुरुषस्य दण्डः' इत्यादौ 'दण्डस्य पुरुषः' इत्यादिरपि प्रयोगः स्यात् । एवं 'दण्डी पुरुष' 'रूपवान् घटः' इत्यादिवत् दण्डरूपादेः पुरुषघटाद्यनाधारत्वेऽपि 'पुरुषी दण्डः' 'घटवद्रूपम् ' इत्यादिप्रयोगो दुर्वारः –'तदत्रास्ति ' इत्यर्थ इव 'तदस्य' इत्यर्थेपि मतुपो विधानात् दण्डरूपादिपदोत्तरषष्ठ्या चैत्रघटादिनिष्ठतदर्थ-सम्बन्धप्रतिपादने तदुत्तरमपि मत्त्वर्थीयस्य प्रसङ्गादिति चेत् ? विशिष्य केषाञ्चित् सम्बन्धानां षष्ठ्यर्थतोपगमेऽपि 'घटस्य रूपम् ' इत्यादि प्रयोगानुरोधेन समवेतत्वादेः षष्ठ्यर्थतायाः आवश्यकत्वेन 'हस्तस्य चैत्रः' 'चैत्रवान् हस्तः' 'शाखायाः वृक्षः' 'वृक्षवती शाखा' इति कथं न प्रयुज्यते? पूर्वप्रयोगाभावा-दिति समाधानं तु तुल्यम् ।

यदि विशेषरूपेण कर्तृत्वादि सम्बन्धों की षष्ठ्यर्थता स्वीकारनेवाला पूँछे कि–सम्बन्धत्वेन सम्बन्ध के षष्ठी का वाच्य होने पर **'पुरुषस्य दण्डः'** 'पुरुष का दण्ड है' इत्यादि स्थलों पर **'दण्डस्य पुरुषः'** 'दण्ड का पुरुष है' इत्यादि भी प्रयोग होना चाहिए क्योंकि जैसे पुरुष का सम्बन्ध दण्ड से है वैसे ही दण्ड का भी सम्बन्ध पुरुष से है। इसी प्रकार **'दण्डी पुरुषः' 'रूपवान् घटः'** इत्यादि की तरह दण्ड रूप आदि के पुरुष और घट आदि का आधार न होने पर भी **'पुरुषी दण्डः' 'घटवद्रूपम् '** इत्यादि प्रयोग दुर्वार होंगे–क्योंकि जैसे 'वह यहाँ है' इस अर्थ में मतुप् का विधान है, उसी प्रकार 'वह इसका है' इस अर्थ में भी मतुप् का विधान है। दण्ड, रूप आदि पदोत्तर षष्ठी के द्वारा चैत्र, घटादि निष्ठ तदर्थसम्बन्ध का प्रतिपादन करने पर तदुत्तर भी मत्वर्थीय प्रत्यय होना चाहिए । प्रश्न का आशय यह है कि यदि सम्बन्धत्वेन सम्बन्ध षष्ठी का वाच्य है तब तो **'पुरुषस्य दण्डः'** की तरह **'दण्डस्य पुरुषः'** प्रयोग भी होना चाहिए क्योंकि यदि पुरुष का दण्ड में सम्बन्ध है तो दण्ड का भी पुरुष में सम्बन्ध है। दूसरी बात यह है **'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्' पा०सू० 5/2/94** के द्वारा दो अर्थों में मतुप् का विधान किया जाता है आधार अर्थ में और सम्बन्ध अर्थ में । पुरुष दण्ड का आधार बनता है, रूप का आधार घट बनता है,

पक्वमुच्छिष्टमुच्यते' यहाँ पर शूद्रपदोत्तर षष्ठी का अर्थ सम्बन्धत्वेन कर्तृत्व होता है, स्वत्व नहीं होता है। क्योंकि शूद्रकर्तृक वृषोत्सर्ग में शूद्र के ही अन्न को पकाकर चरुहोम किया जाता है। यहाँ पर षष्ठी का अर्थ यदि स्वत्व हो तब मुश्किल यह है कि अर्थ होगा –शूद्र का पका हुआ अन्न (शूद्रस्वत्वाश्रय पक्वान्न) उच्छिष्ट होता है, उच्छिष्ट अन्न से तो चरु होम नहीं किया जाता है। इस कारण अर्थ यही किया जाता है कि षष्ठी का अर्थ यहाँ सम्बन्धत्वेन कर्तृत्व है, इस तरह 'शूद्रकर्तृक पक्वान्न उच्छिष्ट होता है' यह अर्थ होता है। शूद्र का अन्न यदि ब्राह्मणादि द्वारा पकाया गया है तो वह तो शूद्रकर्तृक (कर्तृत्वसम्बन्ध से शूद्र सम्बन्धी) नहीं हुआ, अतः उस चरु से होम किया जाता है उस की अनुपपत्ति नहीं है।

न च तत्र कृद्योगा षष्ठी कर्तृत्वत्वेनैव बोधयतीति वाच्यम्; निष्ठायोगे तस्याः निषेधात् । अत एव "नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां न पुंसा वामलोचना" इत्यादौ करणत्वादेः सम्बन्धत्वेन विवक्षया षष्ठ्युपपत्तिः, तृतीयादि-विधिविषयतया विशेषरूपेण करणत्वादिसम्बन्धविवक्षायां षष्ठ्यनुपपत्तेः।

अभी गदाधर ने कहा कि 'कृद्योगा भी षष्ठी सम्बन्धत्वेन ही कर्तृत्वादि सम्बन्धों को बोधित करती है' ऐसा मिश्र ने कहा है। कृद्योगा का अभिप्राय **'कर्तृकर्मणोः कृति' पा०सू० 2/3/65** से होनेवाली षष्ठी से है। चूँकि इस सूत्र से जहाँ पर षष्ठी होती है **'कृष्णस्य कृतिः' 'जगतः कर्ता कृष्णः'** इत्यादि स्थलों में वहाँ पर कर्तृत्व या कर्मत्व का ही सम्बन्धत्वेन षष्ठी से भान होता है। इसमें सन्देह यह है कि कर्तृत्व और कर्मत्व में कृद्योगा षष्ठी की शक्ति कर्तृत्वत्वेन और कर्मत्वेन है या सम्बन्धत्वेन है। **'कृष्णस्य कृतिः'** में कृञ् धातूत्तर क्तिन् प्रत्यय के भाव में होने के कारण कृष्ण के कर्तृत्व के अभिहित न होने के कारण उससे षष्ठी होती है प्रथमा नहीं । **'जगतः कर्ता कृष्णः'** में कृष्ण के कर्तृत्व का तृच् प्रत्यय से अभिधान होने के कारण कृष्णपद से षष्ठी नहीं सम्भव है, जगत् पद से कर्मत्व अर्थ में षष्ठी होती है। उक्त सन्देह निवारण हेतु ही गदाधर ने इस ग्रन्थ की अवतारणा की है।

यदि कहो कि वहाँ कृद्योगा षष्ठी कर्तृत्वत्वेन ही कर्तृत्व को बोधित करती है, तो ऐसा नहीं है क्योंकि निष्ठा के योग में कृद्योगा षष्ठी का निषेध है। (निष्ठा का मतलब क्त और क्तवतु प्रत्यय से है **'क्तक्तवतू निष्ठा' पा० सू०1/1/26**) अभिप्राय यह है कि यदि कहो कि **'आमं शूद्रस्य पक्वान्नं पक्वमुच्छिष्टमुच्यते'** में शूद्रपदोत्तर षष्ठी कृद्योगा षष्ठी है क्योंकि **पक्वम्** इस कृत् (कृदन्त) का योग है तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि **पक्वम्** यह निष्ठा है और निष्ठा के योग में **'न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृणाम् '** पा.सू.2/3/69 के द्वारा **'कर्तृकर्मणोः कृति'** सूत्र से होनेवाली कृद्योगा षष्ठी का निषेध कर दिया जाता है। इस प्रकार कृद्योगा षष्ठी सम्बन्धत्वेन कर्तृत्व का बोधन कराती हो या कर्तृत्वत्वेन **'आमं शूद्रस्य०........उच्यते'** में तो शूद्र का कर्तृत्व षष्ठी के द्वारा सम्बन्धत्वेन ही बोधित होगा कर्तृत्वत्वेन नहीं । क्योंकि उक्त षष्ठी कृद्योगा षष्ठी नहीं है। शेषे षष्ठी ही है। इस कारण इसी रीति से यह भी मानना चाहिए कि कृद्योगा भी षष्ठी सम्बन्धत्वेन ही कर्तृत्व, कर्मत्वादि को बोधित कराती है।

इसी कारण (षष्ठी के सम्बन्धत्वेन ही कर्तृत्वादि सम्बन्धों का बोधक होने के कारण) **'नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां न पुंसा वामलोचना'** 'अग्नि काष्ठ से नहीं तृप्त होती वामलोचना पुरुषों से नहीं तृप्त होती है' इत्यादि स्थलों में करणत्वादि की सम्बन्धत्वेन विवक्षा होने की स्थिति में तो तृतीया विधि का विषय होने के कारण षष्ठी की अनुपपत्ति होगी। यदि षष्ठी द्वारा विशेष रूप से करणत्वत्वादिरूप से करणत्वादि का सम्बन्ध बोधित होता हो, तब तो उक्त स्थलों में काष्ठ, पुम् आदि पदों के द्वारा षष्ठी नहीं सम्भव होगी क्योंकि उस स्थिति में कहना यह पड़ेगा कि करणत्वत्वादि रूप से करणत्वादि की विवक्षा होने पर षष्ठी होगी। किन्तु करणत्वत्वरूप से करणत्व की विवक्षा होने पर तो तृतीया का विधान है। अतः तृतीया के द्वारा बाध हो जायेगा । षष्ठी नहीं हो सकेगी । इसलिए सम्बन्धत्वेन करणत्वादि की विवक्षा होने पर ही षष्ठी होती है। यही मानना चाहिए ।

अथ सम्बन्धत्वेन सम्बन्धस्य षष्ठीवाच्यत्वे 'पुरुषस्य दण्डः' इत्यादौ 'दण्डस्य पुरुषः' इत्यादिरपि प्रयोगः स्यात् । एवं 'दण्डी पुरुष' 'रूपवान् घटः' इत्यादिवत् दण्डरूपादेः पुरुषघटाद्यनाधारत्वेऽपि 'पुरुषी दण्डः' 'घटवद्रूपम् ' इत्यादिप्रयोगो दुर्वारः –'तदत्रास्ति ' इत्यर्थ इव 'तदस्य' इत्यर्थेपि मतुपो विधानात् दण्डरूपादिपदोत्तरषष्ठ्या चैत्रघटादिनिष्ठतदर्थ-सम्बन्धप्रतिपादने तदुत्तरमपि मत्त्वर्थीयस्य प्रसङ्गादिति चेत् ? विशिष्य केषाञ्चित् सम्बन्धानां षष्ठ्यर्थतोपगमेऽपि 'घटस्य रूपम् 'इत्यादि प्रयोगानुरोधेन समवेतत्वादेः षष्ठ्यर्थतायाः आवश्यकत्वेन 'हस्तस्य चैत्रः' 'चैत्रवान् हस्तः' 'शाखायाः वृक्षः' 'वृक्षवती शाखा' इति कथं न प्रयुज्यते? पूर्वप्रयोगाभावादिति समाधानं तु तुल्यम् ।

यदि विशेषरूपेण कर्तृत्वादि सम्बन्धों की षष्ठ्यर्थता स्वीकारनेवाला पूँछे कि–सम्बन्धत्वेन सम्बन्ध के षष्ठी का वाच्य होने पर **'पुरुषस्य दण्डः'** 'पुरुष का दण्ड है' इत्यादि स्थलों पर **'दण्डस्य पुरुषः'** 'दण्ड का पुरुष है' इत्यादि भी प्रयोग होना चाहिए क्योंकि जैसे पुरुष का सम्बन्ध दण्ड से है वैसे ही दण्ड का भी सम्बन्ध पुरुष से है। इसी प्रकार **'दण्डी पुरुषः' 'रूपवान् घटः'** इत्यादि की तरह दण्ड रूप आदि के पुरुष और घट आदि का आधार न होने पर भी **'पुरुषी दण्डः' 'घटवद्रूपम् '** इत्यादि प्रयोग दुर्वार होंगे–क्योंकि जैसे 'वह यहाँ है' इस अर्थ में मतुप् का विधान है, उसी प्रकार 'वह इसका है' इस अर्थ में भी मतुप् का विधान है। दण्ड, रूप आदि पदोत्तर षष्ठी के द्वारा चैत्र, घटादि निष्ठ तदर्थसम्बन्ध का प्रतिपादन करने पर तदुत्तर भी मत्वर्थीय प्रत्यय होना चाहिए । प्रश्न का आशय यह है कि यदि सम्बन्धत्वेन सम्बन्ध षष्ठी का वाच्य है तब तो **'पुरुषस्य दण्डः'** की तरह **'दण्डस्य पुरुषः'** प्रयोग भी होना चाहिए क्योंकि यदि पुरुष का दण्ड में सम्बन्ध है तो दण्ड का भी पुरुष में सम्बन्ध है। दूसरी बात यह है **'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्' पा०सू० 5/2/94** के द्वारा दो अर्थों में मतुप् का विधान किया जाता है आधार अर्थ में और सम्बन्ध अर्थ में । पुरुष दण्ड का आधार बनता है, रूप का आधार घट बनता है,

इसलिए **'पुरुषो दण्डवान्'** **'रूपवान् घटः'** प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार घट का सम्बन्धी रूप है, दण्ड पुरुष का सम्बन्धी है। अतः **'पुरुषवान् दण्डः'** **'घटवद्रूपम्'** प्रयोग होना चाहिए, क्यों नहीं होते हैं ?

तो (विशेषरूप से षष्ठी का वाच्य कर्तृत्वादि सम्बन्धों को मानने वाले से पूँछना चाहिए कि–) विशेषरूप से कुछ-कुछ सम्बन्धों की षष्ठ्यर्थता स्वीकारने पर भी **'घटस्य रूपम्'** इस प्रकार के प्रयोगों के अनुरोध से समवेतत्वादि की षष्ठ्यर्थता आवश्यक होने के कारण **'हस्तस्य चैत्रः'** **'चैत्रवान् हस्तः'** **'शाखायाः वृक्षः'** **'वृक्षवती शाखा'** ऐसे प्रयोग क्यों नहीं किये जाते ? अर्थात् **'घटस्य रूपम्'** इत्यादि प्रयोगों के अनुरोध से समवेतत्व की षष्ठ्यर्थता स्वीकारनी पड़ेगी, शाब्दबोध होगा **'घटसमवेतं रूपम्'** 'घट समवेत रूप' इसी प्रकार **'हस्तसमवेतश्चैत्रः'** इस शाब्दबोध के अभिप्राय से **'हस्तस्य चैत्रः'** प्रयोग होना चाहिए । जैसे रूप घट में समवेत है, उसी प्रकार चैत्र हस्त में समवेत है वृक्ष शाखा में समवेत है। जैसे गुण गुणी में समवेत होता है वैसे अवयवी अवयव में समवेत होता है। जैसे गुण का आधार गुणी होता है, उसी प्रकार अवयवी का समवाय सम्बन्ध से आधार अवयव होता है। इसलिए ये प्रयोग भी होने ही चाहिए । क्यों नहीं होते? यदि उत्तर दो कि पूर्वप्रयोग न होने के कारण ऐसे प्रयोग नहीं होते है, तो सम्बन्धत्वेन सम्बन्ध को षष्ठी का वाच्य माननेवाला भी यह उत्तर दे सकता है कि पूर्व प्रयोग न होने के कारण **'पुरुषी दण्डः'** **'घटवद्रूपम्'** **'दण्डस्य पुरुषः'** प्रयोग नहीं होते हैं । यह समाधान तो दोनों ही पक्षों में समान ही है। इस कारण सम्बन्धत्वेन ही सम्बन्ध षष्ठी का वाच्य होता है यही मानना चाहिए ।

'नराणां क्षत्रियः शूरो नरेषु वा' 'अध्वगानां रथगामिनः शीघ्रतराः अध्वगेषु वा' 'गवां कृष्णा सम्पन्नक्षीरा गोषु वा' इत्यादौ "यतश्च निर्धारणम्" इत्यनेन षष्ठीसप्तम्यौ विधीयेते । तदर्थश्च–'जात्यादिविशेषणविशिष्टयद्धर्मावच्छिन्नस्य तादृशविशेषणशून्यतद्धर्मावच्छिन्नव्यावृत्तत्वविशिष्टविधेयवत्तया प्रतिपादनं तद्धर्मावच्छिन्नार्थकपदात् षष्ठीसप्तम्यौ' इति। प्रकृते च क्षत्रियत्वादिविशेणविशिष्टे नरादौ तच्छून्यनरादिव्यावृत्तत्वेन शौर्यविशेषादिरूपविधेयसम्बन्धोऽभिमत इति नरादिपदात् षष्ठी। 'नरेभ्यो राक्षसाः शूरतमाः इत्यादौ राक्षसत्वादिविशेषणविशिष्टे तच्छून्यनरादिव्यावृत्तशूरतमत्वविवक्षायामपि न निरुक्तनिर्धारणम् –राक्षसत्वादिविशिष्टस्य नरत्वादिरूपसामान्यधर्मानवच्छिन्नत्वात् ।

'नराणां क्षत्रियः शूरो नरेषु वा' 'मनुष्यों में क्षत्रिय शूर हैं' **'अध्वगानां रथगामिनः शीघ्रतराः अध्वगेषु वा'** 'अध्वगों (पथिकों) में रथगामी शीघ्रतर हैं' **'गवां कृष्णा सम्पन्नक्षीरा गोषु वा'** 'गायों में कृष्णा सम्पन्नक्षीरा है' इत्यादि स्थलों में **'यतश्च निर्धारणम्'** पा॰ सू॰ 2/3/41 के द्वारा षष्ठी और सप्तमी का विधान किया जाता है। और उस सूत्र का अर्थ है जात्यादिविशेषणविशिष्ट यद्धर्मावच्छिन्न का तादृशविशेषणशून्य-

तद्धर्मावच्छिन्नव्यावृत्तत्वविशिष्टविधेयवत्तया प्रतिपादन किया जाता है तद्धर्मावच्छिन्नवाचकपद से षष्ठी और सप्तमी होती है। प्रकृतस्थल में **'नराणां क्षत्रियः शूरो नरेषु वा'** यहाँ पर क्षत्रियत्वादि (जाति) विशेषण से विशिष्ट नरत्वधर्मावच्छिन्न नरादि में (क्षत्रिय मनुष्य में) क्षत्रियत्वविशेषणशून्य नरत्वधर्मावच्छिन्न नर (ब्राह्मण, शूद्र, वैश्यादि) व्यावृत्तत्वेन शौर्यविशेषादिरूप विधेय का सम्बन्ध अभिमत है । इसलिए नरपद से षष्ठी (या सप्तमी) होती है। इसी प्रकार रथगामित्वविशेषण से विशिष्ट अध्वगत्वधर्मावच्छिन्न का (रथगामी अध्वग का) रथगामित्वविशेषणशून्य अध्वगत्व धर्मावच्छिन्न से व्यावृत्त शीघ्रतरत्व रूप विधेयवत्तया प्रतिपादन किया जाता है। अतः अध्वगत्वावच्छिन्नवाचक अध्वगपद से षष्ठी होती है। इसी प्रकार अन्य स्थलों में भी है।

'नरेभ्यो राक्षसाः शूरतमाः' 'मनुष्यों से राक्षस शूरतम हैं ' इत्यादि स्थलों में राक्षसत्वादिविशेषणविशिष्ट में राक्षसत्वादिविशेषणशून्यनरादिव्यावृत्त शूरमत्व रूप विधेय की विवक्षा होने पर भी निरुक्तनिर्धारण नहीं है क्योंकि राक्षसत्वादिविशिष्ट नरत्वादिरूप सामान्यधर्मावच्छिन्न नहीं है। भाव यह है कि राक्षसत्वादिविशिष्ट नरत्वावच्छिन्न का यदि राक्षसत्वादि विशेषणशून्यनरादिव्यावृत्तशूरतमत्व रूप विधेयवत्तया प्रतिपादन होता तब नरत्वावच्छिन्न वाचक नरपद से षष्ठी या सप्तमी हो सकती थी, किन्तु राक्षसत्वादिविशेषणविशिष्ट नरत्वावच्छिन्न प्रसिद्ध ही नहीं है और उसका तादृशविधेयवत्तया प्रतिपादन नहीं है। अतः नरपद से षष्ठी या सप्तमी नहीं होती है।

'नराणां क्षत्रियः शूरतमः' इत्यादौ क्षत्रियादिनिष्ठशूरतमत्वादौ नरादिसामान्यव्यावृत्तत्वबाधाच्छून्यत्वान्तं व्यावृत्त्यवधेर्विशेषणम् । तद्धर्माश्रययत्किञ्चिद्व्यक्तिव्यावृत्तत्वविवक्षणे 'द्रव्येषु घटो गन्धवान् ' इत्यपि स्यात्—गन्धादेर्यत्किञ्चिद्द्रव्यव्यक्तिव्यावृत्तत्वात् । तादृशविशेषणशून्यसामान्यव्यावृत्तत्वनिवेशे 'नराणां क्षत्रियः शूरतमः' इत्यादावेव तदसम्भवः शूरतमत्वादेः क्षत्रियत्वादिशून्यराक्षसाद्यव्यावृत्तत्वात् , अतस्तद्धर्मावच्छिन्नेति ।

'नराणां क्षत्रियः शूरतमः' 'नरों में क्षत्रिय शूरतम है' इत्यादि स्थलों में क्षत्रियादि निष्ठशूरतमत्वादि में नरादिसामान्यव्यावृत्तत्व का बाध होने के कारण शून्यत्वान्त (जात्यादिविशेषणशून्यत्व) व्यावृत्त्यवधि का विशेषण दिया गया है। तद्धर्माश्रयत्किञ्चिद्व्यक्तिव्यावृत्तत्व की विवक्षा करने पर **'द्रव्येषु घटो गन्धवान् '** 'द्रव्यों में घट गन्धवाला है' ऐसा प्रयोग भी होना चाहिए क्योंकि गन्धादि यत्किञ्चिद्द्रव्यव्यक्ति से व्यावृत्त हैं । तादृशविशेषणशून्यसामान्यव्यावृत्तत्व का निवेश करने पर **'नराणां क्षत्रिय शूरतमः'** इत्यादि स्थलों में ही वह असम्भव हो जायेगा क्योंकि शूरतमत्वादि का क्षत्रियत्वादिशून्यराक्षसादि से व्यावृत्तत्व नहीं है, अथः तद्धर्मावच्छिन्न भी कहा है।

यहाँ पर गदाधर ने पिछले पृष्ठ में **'यतश्च निर्धारणण् '** पा॰सू॰ 2/3/141 का जो अर्थ बतलाया है कि 'जात्यादि विशेषणविशिष्ट यद्धर्मावच्छिन्न का जात्यादिविशेषणशून्यतद्धर्मावच्छिन्नव्यावृत्तत्वविशिष्ट विधेयवत्तया प्रतिपादन किया जाता है, तद्धर्मावच्छिन्नार्थक

पद से षष्ठी या सप्तमी होती है' इसमें अब क्रमशः पदकृत्य कर रहे हैं, जात्यादिविशेषणशून्यत्व, तद्धर्मावच्छिन्नत्व विवक्षा की जरूरत क्या है? यह बता रहे हैं । यदि जात्यादिविशेषण–शून्यत्वांश हटा दें, तो अर्थ होगा 'जात्यादिविशेषणविशिष्ट यद्धर्मावच्छिन्न का तद्धर्मावच्छिन्न व्यावृत्तत्वविशिष्टविधेयवत्तया प्रतिपादन किया जाता है, तद्धर्मावच्छिन्नवाचकपद से षष्ठी या सप्तमी होती है' ऐसा स्थिति में 'नराणां क्षत्रियः शूरतमः' में ही समस्या उठ खड़ी होगी क्योंकि क्षत्रियत्वजातिविशिष्ट नरत्वधर्मावच्छिन्न का नरत्वावच्छिन्नव्यावृत्तत्वविशिष्टशूरतमत्व विधेयवत्तया प्रतिपादन नहीं किया जाता है, नरत्वावच्छिन्न तो क्षत्रिय भी है, क्षत्रियव्यावृत्तशूरतमत्व का क्षत्रिय में प्रतिपादन तो बाधित है। अतः जात्यादि विशेषणशून्यत्व विशेषण देते हैं, क्षत्रियत्वशून्यनरत्वावच्छिन्नव्यावृत्तशूरतमत्व का क्षत्रिय में प्रतिपादन किया जाता है, अतः नरपद से षष्ठी (या सप्तमी) होती है।

यदि यह कहा जाये कि 'जात्यादिविशेषणविशिष्ट यद्धर्मावच्छिन्न का जात्यादिविशेषणशून्य-तद्धर्माश्रयत्किञ्चिद्व्यक्तिव्यावृत्तत्वविशिष्ट विधेयवत्तया प्रतिपादन होता है, तद्धर्मावच्छिन्न वाचकपद से षष्ठी या सप्तमी होती है' तो 'द्रव्येषु घटो गन्धवान्' प्रयोग होने की आपत्ति आयेगी । यहाँ पर घटत्वविशेषणविशिष्टद्रव्यत्वावच्छिन्न का घटत्वविशेषणशून्य द्रव्यत्वाश्रय यत्किञ्चिद्व्यक्ति जलादिव्यक्तिव्यावृत्त गन्धवत्तया प्रतिपादन हो रहा है, अतः द्रव्यत्वावच्छिन्नवाचकपद से षष्ठी या सप्तमी होनी चाहिए । सिद्धान्तोक्त रीति से निर्वचन करने पर तो ऐसी आपत्ति नहीं है क्योंकि घटत्व शून्य द्रव्यत्वावच्छिन्नव्यावृत्तगन्धवत्तया घट का प्रतिपादन नहीं हो सकता है, बाधित है क्योंकि घटातिरिक्त द्रव्य भी गन्धवान् होता है।

यदि कहा जाये कि 'जात्यादि विशेषणविशिष्टयद्धर्मावच्छिन्न का जात्यादिविशेषणशून्य-व्यावृत्तत्वविशिष्टविधेयवत्तया प्रतिपादन किया जाता है, तद्धर्मावच्छिन्नवाचकपद से षष्ठी या सप्तमी होती है' तो ऐसा कहने पर तो 'नराणां क्षत्रियः शूरतमः' इत्यादि स्थलों में षष्ठी असम्भव हो जायेगी क्योंकि शूरतमत्व क्षत्रियत्वादिशून्यराक्षसादि से व्यावृत्त नहीं हैं, क्षत्रियत्वविशिष्टनरत्वावच्छिन्न का क्षत्रियत्वादिशून्य (राक्षसादि सभी) से व्यावृत्त शूरतमत्व नहीं प्रतिपादित हो रहा है। अतः यथा निरुक्त ही निर्वचन रखना चाहिए।

अथ विधेये जात्यादिविशेषणशून्यसाधारणधर्मावच्छिन्नान्वितं व्यावृत्तत्वं साधारणधर्मावच्छिन्नवाचकपदोत्तरषष्ठ्यादेरेवार्थो वाच्यस्तावता च नरत्वादिरूप-साधारणधर्मावच्छिन्नव्यावृत्तत्वस्यैव लाभः सम्भवति न तु क्षत्रियत्वादिशून्य-त्वविशेषितनरादिव्यावृत्तत्वस्य–प्रकृत्यर्थे नरादौ तादृश विशेषणशून्य-त्वबोधकाभावात् ।

यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि विधेय में अन्वित होने वाला जात्यादिविशेषण शून्यसाधारणधर्मावच्छिन्नान्वितव्यावृत्तत्व साधारण धर्मावच्छिन्नवाचक पदोत्तर षष्ठी आदि का अर्थ है ऐसा कहना होगा और उससे तो नरत्वादिरूप साधारणधर्मावच्छिन्नव्यावृत्तत्व का ही लाभ सम्भव है न कि क्षत्रियत्वादिशून्यत्वविशेषित नरादिव्यावृत्तत्व का क्योंकि प्रकृत्यर्थ नरादि में तादृश (क्षत्रियत्वादि) विशेषणशून्यत्व बोधक नहीं है।

प्रश्न का आशय यह है कि **'नराणां क्षत्रियः शूरः'** इत्यादि स्थलों में आपका कहना है कि क्षत्रियत्वविशिष्टनरत्वधर्मावच्छिन्न में क्षत्रियत्वविशेषणशून्यनरत्वावच्छिन्नव्यावृत्तत्वविशिष्ट शूरत्व का प्रतिपादन होता है। किन्तु इसमें एक समस्या है, क्षत्रियत्वविशेषणविशिष्ट नरत्व धर्मावच्छिन्न की उपस्थिति क्षत्रियपद से हो सकती है, नरत्वावच्छिन्न की नरपद से, शूरत्व की शूरपद से उपस्थिति हो सकती है। नरपदोत्तर षष्ठी का अर्थ व्यावृत्तत्व है, इसलिए व्यावृत्तत्व की उपस्थिति षष्ठी से हो सकती है। किन्तु नरपदोत्तर षष्ठी का अर्थ व्यावृत्तत्व होने पर नरत्वावच्छिन्नव्यावृत्तत्व ही बोधित होगा, क्षत्रियत्वविशेषणशून्यनरत्वावच्छिन्नव्यावृत्तत्व नहीं बोधित होगा । क्षत्रियत्वादि विशेषणशून्यत्वांश को बोधित करानेवाला तो कोई है नहीं । इस कारण क्षत्रियत्वविशेषणविशिष्टनरत्वावच्छिन्न में नरत्वावच्छिन्नव्यावृत्तत्वविशिष्टशूरत्व का प्रतिपादन ही शक्य है, क्षत्रियत्वादिविशेषणशून्यनरत्वावच्छिन्नव्यावृत्तशूरत्व का नहीं क्योंकि क्षत्रियत्वादिविशेषणशून्यत्वांश की उपस्थिति किसके द्वारा होगी ?

न च षष्ठ्या एव तदर्थः, शक्त्यानन्त्यप्रसङ्गात् ।

न च भेद एव षष्ठ्यर्थस्तत्र च क्षत्रियादिपदस्य प्रतियोगित्वेनान्वयात् क्षत्रियाद्यन्यनरादिव्यावृत्तत्व लाभः शक्तिभेदं विनैवेति वाच्यम्; एवमपि संख्यातिरिक्तविभक्त्यर्थस्य प्रकृत्यर्थविशेष्यतयैव भानमिति व्युत्पत्तिविरोधा-परिहारात्, 'नरेषु क्षत्रियाणामेव शौर्यम्' इत्यादौ क्षत्रियादेर्विभक्त्यर्थ-विशेषणतयोपस्थितस्य भेदे विशेषणतया भानोपगमे व्युत्पत्त्यन्तरविरोधाच्च।

यदि कहो कि क्षत्रियत्वादिविशेषणशून्यत्वांश षष्ठी का अर्थ है तो ऐसा नहीं कह सकते क्योंकि उसमें षष्ठी की शक्ति मानने पर क्षत्रियत्वादि धर्मों के अनन्त होने के कारण और अननुगत होने के कारण शक्ति का आनन्त्य प्रसक्त होगा ।

यदि कहो कि भेद ही षष्ठी का अर्थ है और उसमें (भेद में) क्षत्रियादि पदों का प्रतियोगित्वेन अन्वय होने के कारण क्षत्रियाद्यन्यनरादिव्यावृत्तत्व का लाभ शक्तिभेद के विना भी हो जायेगा अर्थात् क्षत्रियत्वादिशून्यनरत्वाद्यवच्छिन्नव्यावृत्तशूरत्व नहीं भासता है, अपितु क्षत्रियादिभिन्ननरत्वावच्छिन्नव्यावृत्तशूरत्व भासता है। भेद भी षष्ठी का अर्थ ही है उसमें प्रतियोगितया क्षत्रिय का अन्वय हो जायेगा और भेद का आश्रयत्व सम्बन्ध से नरत्वावच्छिन्न नर में अन्वय हो जायेगा । उससे व्यावृत्त शूरत्व क्षत्रिय में भासेगा । तो ऐसा भी नहीं कहना चाहिए क्योंकि 'संख्या से अतिरिक्त विभक्त्यर्थ का प्रकृत्यर्थविशेष्यतया ही भान होता है' इस व्युत्पत्ति से विरोध का परिहार नहीं होता है। नरपद की विभक्ति है षष्ठी, उसके अर्थ भेद का अन्वय आप नर में करेंगे, नर उसके प्रति विशेष्य होगा, जबकि संख्या से अतिरिक्त विभक्त्यर्थ को प्रकृत्यर्थ के प्रति विशेष्य होना चाहिए, प्रकृत्यर्थ का उसमें विशेषणतया अन्वय होना चाहिए । इसलिए इस व्युत्पत्ति से विरोध का परिहार नहीं हो सकेगा । इसके अलावा **'नरेषु क्षत्रियाणामेव शौर्यम्'** 'नरों में क्षत्रियों में ही शूरता है' इत्यादि स्थलों में विभक्त्यर्थविशेषणतया उपस्थित क्षत्रियादि का भेद में विशेषणतया भान स्वीकारने पर व्युत्पत्त्यन्तर के साथ विरोध होगा । भाव यह है कि आप निर्धारण षष्ठ्यर्थ (और सप्तम्यर्थ)

भेद में क्षत्रियादि का प्रतियोगितया अन्वय कर रहे हैं। **'नरेषु क्षत्रियाणामेव शौर्यम्'** यहाँ पर नरपदोत्तर निर्धारण सप्तमी है, उसके अर्थ भेद में भी क्षत्रिय का प्रतियोगितया अन्वय करना पड़ेगा किन्तु इसमें समस्या यह है कि क्षत्रियपदार्थ क्षत्रियपदोत्तर षष्ठी के अर्थ में विशेषण बनकर उपस्थित है। इतरविशेषणतया उपस्थित का अन्यत्र विशेषणत्वेन अन्वय तो अव्युत्पन्न है।

अस्तु लक्षणया नरादिपदादेव क्षत्रियान्यनरत्वादिरूपेणोपस्थितिरिति चेत् ? अस्तु । व्यावृत्तत्वं किं तावत् ? कुत्र वा तदन्वयः? व्यावृत्तत्वं तदवृत्तित्वंशूरतमादिपदोपस्थापिते धर्मे तदन्वय इति चेत् ? न, पदार्थतावच्छेदकेन पदार्थान्तरानन्वयात्, 'पदार्थानां जातिमिति सत्ता' इत्यादौ जातिमदन्यपदार्थवृत्तित्वसामान्याभावस्य सत्तादौ वारितत्वात्, तादृशपदार्थसमवेतत्वाद्यभावस्य चाप्रसिद्धेर्व्यावृत्तिबोधासम्भवाच्च। एवम् –'द्रव्येषु कम्बुग्रीवादिमान् घटः' इत्यादौ घटत्वादिधर्मस्यान्वयितावच्छेदकरूपेणानुपस्थितत्वात् तत्र व्यावृत्तत्वान्वयबोधो दुर्घट इति।

यदि कहो कि नरादिपदों से ही लक्षणा के द्वारा क्षत्रियान्यनरत्वादिरूपेण उपस्थिति हो जायेगी अर्थात् नर पद की शक्ति नरत्वावच्छिन्न में होने पर भी क्षत्रियान्यनरत्वावच्छिन्न की उपस्थिति नरपद की लक्षणावृत्ति के द्वारा हो जायेगी ? तो ठीक है हो जाये । किन्तु व्यावृत्तत्व क्या है ? और उसका अन्वय किसमें होगा? यदि आप कहें कि व्यावृत्तत्व तदवृत्तित्व है और तदवृत्तित्व का शूरतमादिपदोपस्थापित धर्म में अन्वय होता है तो ऐसा नहीं कहा जा सकता क्योंकि पदार्थतावच्छेदक के साथ पदार्थान्तर का अन्वय नहीं होता है। **'पदार्थानां जातिमति सत्ता'** 'पदार्थों में जातिमान् में सत्ता रहती है' इत्यादि स्थलों में जातिमदन्य पदार्थवृत्तित्व सामान्याभाव तो सत्ता में नहीं ही है और जातिमदन्यपदार्थसमवेतत्वाद्यभाव की अप्रसिद्धि होने के कारण बोध असम्भव है। इसी प्रकार **'द्रव्येषु कम्बुग्रीवादिमान् घटः'** 'द्रव्यों में कम्बुग्रीवादिमान् घट है' इत्यादि स्थलों में घटत्वादि धर्म के अन्वयितावच्छेदक रूप से अनुपस्थित होने के कारण उसमें व्यावृत्तत्व का अन्वय दुर्घट है।

यदि नर आदि पदों से ही लक्षणा से क्षत्रियान्यनरत्वादिरूप से क्षत्रियान्य नर की उपस्थिति होगी, यह मान लें, तब उपर्युक्त दोष तो वारित हो जायेगा, क्षत्रियान्यत्व की उपस्थिति किससे होगी ? यह प्रश्न समाहित हो जायेगा । किन्तु व्यावृत्तत्व क्या चीज़ है? यह तो बतलाना चाहिए । व्यावृत्तत्व यदि तदवृत्तित्व है तो इसका अन्वय शूरतमादिपदार्थतावच्छेदक शूरतमत्व आदि में स्वीकारना पड़ेगा । इसमें निम्नानुसारी समस्याएँ हैं –प्रथमतः पदार्थ में ही पदार्थान्तर का अन्वय होता है पदार्थावच्छेदक (पदार्थैकदेश) में नहीं । द्वितीयतः यदि अन्वयितावच्छेदक रूप से शूरतमत्वत्वादि रूप से शूरतमत्वादि के उपस्थित होने के कारण उसमें (पदार्थतावच्छेदक में) पदार्थान्तरान्वय (तदवृत्तित्वान्वय) कर लें तब भी **'पदार्थानां जातिमति सत्ता'** यहाँ पर सत्ता में जातिमदन्यपदार्थावृत्तित्व का अन्वय करना पड़ेगा, किन्तु समस्या यह है कि सत्ता जातिमदन्यपदार्थ जाति विशेष में

एकार्थसमवाय सम्बन्ध से वृत्ति ही है। अवृत्ति नहीं है। यदि जातिमदन्यपदार्थ निरूपित समवायसम्बन्ध से अवृत्तित्व (असमवेतत्व) सत्ता में विवक्षित है, तो इसमें मुश्किल यह है कि जातिमदन्यपदार्थनिरूपित समवेतत्व अप्रसीद्ध होने से तादृश असमवेतत्व (समवेतत्वाभाव) तो अप्रसिद्ध है, इसलिए वैसी व्यावृत्ति नहीं बोधित की जा सकती है। तृतीयतः 'द्रव्येषु कम्बुग्रीवादिमान् घटः' यहाँ पर घटत्व की स्वरूपतः उपस्थिति होने के कारण अन्वयितावच्छेदक रूपेण उपस्थिति न होने के कारण कम्बुग्रीवादिमदन्यद्रव्यावृत्तित्व का अन्वय उसमें नहीं किया जा सकता है।

अत्र केचित् –'नराणां क्षत्रियः शूरः' इत्यादौ क्षत्रिय इव लक्षणया क्षत्रियान्योऽपि क्षत्रियपदार्थः, शूरपदस्य शूर इव तदन्योऽप्यर्थः, षष्ठ्यर्थोऽभेदः क्षत्रिये तदन्यस्मिंश्चान्वेति तथा च नराभिन्नः क्षत्रियः शूरो नराभिन्नक्षत्रियान्यो न शूरः इत्यर्थः।'नराणां क्षत्रियेषु शौर्यम् 'इत्यत्रापि क्षत्रियपदं प्राग्वदुभयार्थकम्, शौर्यपदञ्च तत्तदत्यन्ताभावार्थकम् , तथा च नराभिन्नक्षत्रिये शौर्यं तदन्यस्मिंस्तदभाव इति बोधः । उद्देश्यविधेययोः यादृशसम्बन्धो भावान्वयबोधस्थले भासते तत्सम्बन्धावच्छिन्नविधेयाभाव उद्देश्यवाचकविधेयवाचकपदयोर्वैयधिकरण्यस्थले विधेयपदलक्ष्यार्थः, तयोः सामानाधिकरण्यस्थले तु विधेयधर्मिभिन्न इति सामान्यतो व्युत्पत्तिरित्याहुः।

यहाँ पर कुछ लोग —'नराणां क्षत्रियः शूरः' इत्यादि स्थलों में क्षत्रिय की तरह क्षत्रियान्य भी क्षत्रियपद का लक्षणा से अर्थ है, शूरपद का भी शूर की तरह शूरान्य भी अर्थ है। षष्ठी का अर्थ है अभेद, वह क्षत्रिय में भी अन्वित होता है, क्षत्रियान्य में भी । इस प्रकार 'नराभिन्न क्षत्रिय शूर है, नराभिन्न क्षत्रियान्य शूर नहीं है' यह अर्थ होता है। 'नराणां क्षत्रियेषु शौर्यम् ' 'नरों में क्षत्रियों में शौर्य है' यहाँ पर भी क्षत्रियपद पूर्ववत् उभयार्थक (क्षत्रिय और क्षत्रियान्यर्थक) है। शौर्यपद भी शौर्य और शौर्याभाव उभयार्थक है। इस प्रकार नराभिन्नक्षत्रिय में शौर्य और नराभिन्न क्षत्रियान्य में शौर्याभाव है ऐसा बोध होता है। उद्देश्य और विधेय का जैसा सम्बन्ध भावान्वयबोध में भासता है, उद्देश्यवाचक और विधेयवाचकपदों के वैयधिकरण्यस्थल में विधेयपद का लक्ष्यार्थ (विधेयपद का लक्षणालभ्य अर्थ) तत्सम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिताक विधेयाभाव होता है तथा उद्देश्यवाचक और विधेयवाचक पदों के सामानाधिकरण्य स्थल में विधेयधर्मी से भिन्न विधेयपद का लक्ष्यार्थ होता है यह सामान्यतः व्युत्पत्ति है, ऐसा कहते हैं ।

'नराणां क्षत्रियः शूरः' यह उद्देश्यविधेयवाचकपदों का सामानाधिकरण्य स्थल है। यहाँ पर विधेयपद शूर पद का लक्ष्यार्थ शूरान्य होता है। यहाँ उद्देश्यवाचक क्षत्रियपद और विधेयवाचक शूरपद में समानविभक्ति होने के कारण यह सामानाधिकरण्य स्थल है। 'नराणां क्षत्रियेषु शौर्यम् ' यह उद्देश्यविधेयवाचक पदों का वैयधिकरण्य स्थल है क्योंकि उद्देश्य क्षत्रियपदोत्तर सप्तमीविभक्ति है और विधेय शौर्यपदोत्तर प्रथमा है। यहाँ पर भावान्वयबोध में क्षत्रिय में शौर्य का आश्रयत्व सम्बन्ध भासता है, अथः क्षत्रियान्य में 'आश्रयत्वसम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिताकशौर्याभाव' भासता है और शौर्य पद का लक्ष्यार्थ

होता है। इस पक्ष में अभिधा (शक्ति) के द्वारा क्षत्रिय और शूरपदों से क्षत्रिय और शूर की तथा लक्षणा से क्षत्रियान्य और शूरान्य की उपस्थिति होती है । वैयधिकरण्यस्थल में क्षत्रिय और शौर्यपदों की शक्ति से क्षत्रिय और शौर्य की तथा लक्षणा से क्षत्रियान्य और,आश्रयत्व सम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिताकशौर्याभाव की उपस्थिति होती है।

तत्र शोभनम् –तथा सति 'तस्मै पुरुषोत्तमाय नमः' इत्यत्र तत्पदार्थ-तदन्ययोरेव पुरुषपदार्थाभेदविवक्षणे उत्तमपदेनासामर्थ्यात् समासाप्रसक्तेः "न निर्धारणे" इति निषेधाश्रयणेन प्रकाशकृतां निर्धारणषष्ठीसमासखण्ड-नानौचित्यप्रसङ्गात् । एवं 'नरेषु शूरस्य क्षत्रियस्येदं राज्यम् ' इत्यादौ शूरपदार्थाशूरान्वितक्षत्रियपदार्थक्षत्रियान्यस्य षष्ठ्यर्थसम्बन्दौ नान्वय इत्येतन्नोपपद्यते–'श्वेतं सैन्धवं भुङ्क्ते' इत्यादौ कर्मतादिविशेषणतया लवणादि बुद्धौ मुख्यविशेष्यतयाश्वादेरभानादेकपदोपस्थापितयोर्द्वयोस्तत्प्रकृतिकविभक्त्यर्थे एकस्य विशेषणतयाऽपरस्य तदविशेषणतया भानस्याव्युत्पन्नत्वात्।

'अत्र केचित्' से जो समाधान दिया गया था उसे खण्डित कर रहे हैं कि वह कथन शोभन नहीं है क्योंकि वैसा होने पर **'तस्मै पुरुषोत्तमाय नमः'** 'उस पुरुषोत्तम को नमस्कार है' इस स्थल में तत् पदार्थ तत् और तदन्य दोनों के साथ पुरुषपदार्थ के अभेद की विवक्षा करने पर उत्तमपद से समास हेतु पुरुष पद का असामर्थ्य होने के कारण समास की प्रसक्ति न होने के कारण **'न निर्धारणे'** पा॰सू॰ 2/2/10 इस निषेध के आश्रयण से प्रकाशकार द्वारा निर्धारण षष्ठी समास खण्डन का अनौचित्य प्रसक्त होता है। आशय यह है कि **'तस्मै पुरुषोत्तमाय नमः'** यहाँ पर पुरुष और उत्तम पदों के समास विचार के अवसर पर प्रकाशकार द्वारा कहा गया है कि **'पुरुषाणाम् उत्तमः'** इस प्रकार षष्ठी समास तो यहाँ पर सम्भव नहीं है क्योंकि यह निर्धारण षष्ठी है और निर्धारण षष्ठी के साथ समास नहीं किया जा सकता है **'न निर्धारणे'** से निषेध हो जाता है। किन्तु निर्धारण षष्ठी के स्थल में यदि उपर्युक्त रीति से अर्थ निर्वचन किया जाता है तो मुश्किल यह है कि पुरुष पदार्थ का तत् पदार्थ के साथ भी अभेदान्वय होगा और पुरुषपदार्थ का तत्पदार्थ (तत्पदलक्ष्यार्थ) तदन्य के साथ भी अभेदान्वय होगा । इस प्रकार अर्थ होगा कि 'पुरुषाभिन्न तद् उत्तम है, पुरुषाभिन्न तदन्य उत्तम नहीं है' इस प्रकार पुरुषपद समासाघटक तत् पद सापेक्ष है क्योंकि तत्पदार्थ तत् और तदन्य के साथ उसका अन्वय होता है। इस प्रकार पुरुषपद में समासाघटकपदसापेक्षत्वरूप असामर्थ्य है। इस कारण ही उत्तम पद से उसका समास नहीं हो सकता है, समास अप्राप्त है। तो जब समास की प्राप्ति ही यहाँ पर नहीं है तो **'न निर्धारणे'** से समास का निषेध तो व्यर्थ ही है, अनुचित ही है[1]।

इसी प्रकार **'नरेषु शूरस्य क्षत्रियस्येदं राज्यम्'** 'नरों में शूर क्षत्रिय का ही यह राज्य है' इत्यादि स्थलों में शूरपदार्थ अशूर से अन्वित क्षत्रियपदार्थ क्षत्रियान्य का षष्ठ्यर्थ सम्बन्ध आदि में अन्वय नहीं होता है, किन्तु शूरपदार्थ शूर से अन्वित क्षत्रियपदार्थ क्षत्रिय

1. सिद्धान्ततः यहाँ पर कर्मधारयसमास स्वीकार किया जाता है।

का ही षष्ठ्यर्थ सम्बन्ध आदि में अन्वय होता है यह उपपन्न नहीं है क्योंकि '**श्वेतं सैन्धवं भुङ्क्ते**' इत्यादि स्थलों में कर्मतादिविशेषणतया लवणादिबुद्धि में मुख्यविशेष्यतया अश्वादि का भान नहीं होने के कारण एकपदोस्थापित दो अर्थों में से तत्प्रकृतिक विभक्त्यर्थ में एक का विशेषणतया और एक का अविशेषणतया भान का अव्युत्पन्नत्व है।

यहाँ पर कहना यह है कि 'एक पदोस्थापित दो अर्थों में से तत्प्रकृतिक विभक्त्यर्थ में एक का विशेषणतया और दूसरे का अविशेषणतया भान अव्युत्पन्न होता है' '**श्वेतं सैन्धवं भुङ्क्ते**' में सैन्धवपदार्थ दो हैं घोड़ा और लवण, लवण रूप अर्थ तत्पदप्रकृतिक द्वितीया विभक्ति के अर्थ कर्मता में विशेषणतया भासता है किन्तु ऐसा नहीं होता है कि घोड़ा रूप अर्थ मुख्यविशेष्यतया या विशेष्यतया भासता हो । आप स्वीकार रहे हैं कि '**नरेषु शूरस्य क्षत्रियस्येदं राज्यम्** ' यहाँ पर शूरपदार्थ दो हैं शूर और अशूर, क्षत्रियपदार्थ दो हैं क्षत्रिय और क्षत्रियान्य, राज्य शूरान्वित क्षत्रिय का बोधित होता है, अशूरान्वित क्षत्रियान्य का नहीं। अर्थात् षष्ठ्यर्थ (क्षत्रियपदप्रकृतिक षष्ठी विभक्ति के अर्थ) में शूरान्वित क्षत्रिय पदार्थ विशेषणतया अन्वित होता है । अशूरान्वित क्षत्रियान्यपदार्थ विशेषणतया नहीं भासता, अविशेषणतया भासता है। यह अव्युत्पन्न है।

एवम् –'क्षितिपाथसी रसवती' इत्यादौ क्षितिजलोभयत्वावच्छिन्नभिन्ने रसवदाद्यन्यत्वबोधो न सम्भवति–रसादिमत्यपि प्रत्येकमुभयत्वावच्छिन्नभेद सत्त्वात् । नापिप्रत्येकभेदावच्छिन्ने तथैव बाधात् । नाप्येकभेदविशिष्टा-परभेदावच्छिन्ने–एकपदस्य तादृशभेदावच्छिन्नलक्षकत्वेऽपरपदार्थे रसवदा-द्यन्यत्वरूपविधेयानन्वयात्, द्वन्द्वघटकैकपदार्थमात्रे विधेयान्वयस्याव्युत्पन्नत्वात्। नापि पदाभ्यां लक्षणाया तत्तद्भिन्नोपस्थितावभेदेनैकभिन्नान्वितेऽपरभिन्ने तथापि पदार्थद्वये विधेयान्वयानुपपादनात् , द्वन्द्वे समस्यमानपदार्थानां परस्पर-मन्वयादित्यपि चिन्त्यम् ।

इसी प्रकार '**द्रव्येषु क्षितिपाथसी रसवती**' 'द्रव्यों में पृथिवी और जल रसवाले हैं' इत्यादि स्थलों में पृथिवीजलोभयत्वावच्छिन्नभिन्न में रसवदाद्यन्यत्वबोध नहीं सम्भव है क्योंकि रसादिमत् प्रत्येक में भी उभयत्वावच्छिन्न भेद है । अभिप्राय यह है कि अभी तक के आप के प्रतिपादन के अनुसार '**द्रव्येषु क्षितिपाथसी रसवती**' यहाँ पर द्रव्यपदोत्तर निर्धारण सप्तमी होने के कारण क्षितिपाथसी शब्द से पृथिवी और जल की शक्ति के द्वारा और क्षितिजलोभयभिन्न की लक्षणा के द्वारा उपस्थिति होगी । रसवती पद से रसवत् की शक्ति से रसवदन्य की लक्षणा से उपस्थित होगी । तथा 'द्रव्याभिन्न क्षितिजलोभय रसवत् है और द्रव्याभिन्न क्षितिजलोभयभिन्न रसवत् नहीं है' यह अर्थ बोधित होगा किन्तु इसमें मुश्किल यह कि क्षितिजलोभयभिन्न क्षिति भी है और वह रसवत् है । क्षितिजलोभयभिन्न जल भी है वह रसवत् है। अतः शाब्दबोध बाधितार्थक हो जायेगा ।

प्रत्येक भेदावच्छिन्न (क्षितिभेद या जलभेद से अवच्छिन्न) में भी रसवदन्यत्व का अन्वय नहीं कर सकते हैं क्योंकि उसी प्रकार बाध होगा । उसी प्रकार क्रमशः जल या

पृथिवी के क्षितिभेदावच्छिन्न या जलभेदावच्छिन्न होने के कारण उसमें रसवदन्यत्व का अन्वय बाधित होगा । एक भेद से विशिष्ट अपरभेदावच्छिन्न में भी रसवदन्यत्व का अन्वय नहीं किया जा सकता है, यद्यपि उपर्युक्त आपत्ति वारित हो जाती है क्योंकि क्षिति और जल क्षितिभेद से विशिष्ट जलभेद से अवच्छिन्न नहीं है। क्षिति, जल दोनों के अलावा तेज वायु आदि ही होंगे उनमें रसवदन्यत्व अन्वित हो सकता है। किन्तु इसमें समस्या यह है कि क्षिति या पाथस् किसी एक पद की लक्षणा से क्षितिभेदविशिष्टजलभेदावच्छिन्न उपस्थित होगा, इसलिए जिससे क्षितिभेदविशिष्टजलभेदावच्छिन्न उपस्थित नहीं होगा उस पद के अर्थ में रसवदाद्यन्यत्वरूप विधेय का अन्वय नहीं होगा और द्वन्द्व समास घटक सिर्फ एक पद के अर्थ में विधेय का अन्वय अव्युत्पन्न होता है। दोनों पदों की लक्षणा से तत्तद्भिन्न की उपस्थिति होने पर अभेदेन एक भिन्न से अन्वित अपर भिन्न में भी रसवदाद्यन्यत्व का अन्वय नहीं किया जा सकता है क्योंकि ऐसा स्वीकारने पर भी दोनों पदार्थों में (क्षितिभिन्न और जलभिन्न में) विधेय रसवदन्यत्व के अन्वय का उपपादन नहीं होता है । क्षितिभिन्न का जलभिन्न में अभेदेन अन्वय होता है और जलभिन्न (जोकि क्षितिभिन्नाभिन्न है) में ही रसवदन्यत्व का अन्वय हो रहा है। इसके अतिरिक्त यह भी चिन्तनीय है कि द्वन्द्व समास में समासपदों के अर्थों का परस्पर अन्वय नहीं होता है और यहाँ पर आप समस्यमान क्षिति और जल पदों के अर्थों (लक्ष्यार्थों) क्षितिभिन्न और जलभिन्न का परस्पर भी अन्वय कर रहे हैं । दोनों का अभेदेन अन्वय हो रहा है। इस कारण यह पक्ष अनुचित है। अस्वीकार्य है।

यत्तु 'नराणां शूरः क्षत्रियः' इत्यादौ शूराद्यन्वय्यभेदः षष्ठ्यर्थः, नराभिन्न शूरत्वाद्यवच्छेदेन च क्षत्रियाभेदान्वयः, एवञ्च क्षत्रियान्ये नरेऽर्थतः शौर्यव्यवच्छेदलाभ इति, तदत्यन्तमसत् –'नराणां क्षत्रिये शौर्यम् ' इत्यादौ 'क्षत्रियाणां कर्णः प्रचुरं ददाति' इत्यादौ चानिर्वाहात् ।

जो लोग कहते हैं कि 'नराणां शूरः क्षत्रियः' 'नरों में क्षत्रिय शूर है' इत्यादि स्थलों में शूराद्यन्वयी (शूरादि में अन्वित होने वाला) अभेद षष्ठी का अर्थ है, नराभिन्नशूरत्वाद्यवच्छेदेन क्षत्रियाभेदान्वय होता है ('नराभिन्नशूराभिन्नः क्षत्रियः' ऐसा वाक्यार्थ लब्ध होता है) इस प्रकार क्षत्रियान्य नर में शब्दतः शौर्यव्यवच्छेद न होने पर भी अर्थतः शौर्यव्यवच्छेद लब्ध हो जाता है। अर्थतः ही यह ज्ञात होता है कि क्षत्रियान्य नर शूर नहीं है। वह तो एकदम ग़लत है क्योंकि 'नराणां क्षत्रिये शौर्यम् ' 'क्षत्रियाणां कर्णः प्रचुरं ददाति' इत्यादि स्थलों में तो निर्वाह नहीं ही सम्भव है। यहाँ पर शौर्य के साथ नर का अभेदान्वय नहीं हो सकता है , न ही क्षत्रिय के साथ शौर्य का अभेदान्वय सम्भव है। इसी प्रकार द्वितीय वाक्य में तिङर्थ दान (प्रचुरदान) में कर्ण और क्षत्रिय का अभेदान्वय सम्भव नहीं है।

इदन्तु तत्त्वम् –निर्धारणविभक्तेर्व्यावृत्तत्वमेवार्थः, व्यावृत्तत्वञ्चाभेदान्वयिविधेयसमभिव्याहारस्थलेऽन्योन्याभावप्रतियोगित्वं भेदान्वयितत्स्थले चात्यन्ताभावप्रतियोगित्वं तस्य च विधेयतावच्छेदकावच्छेदेनान्वयोऽतो न

द्वित्वाद्यवच्छिन्नाभावमायातिप्रसङ्गः । अभावे च प्रकृत्यर्थस्य नरादेः क्षत्रियत्वादिरूपोद्देश्यतावच्छेदकावच्छिन्नभेदविशिष्टप्रकृत्यर्थतावच्छेदक नरत्वादिव्यापकाधिकरणतानिरूपिताधेयतासम्बन्धेनान्वय एतावतैव जात्यादिरूपविशेषणशून्यप्रकृत्यर्थनरादिसामान्यव्यावृत्तेर्विधेयधर्मे लाभः।

तत्त्व तो यह है –निर्धारण विभक्ति का अर्थ व्यावृत्तत्व ही है। (निर्धारण विभक्ति से आशय' **यतश्च निर्धारणम्** ' सूत्र से होनेवाली षष्ठी और सप्तमी से है) और व्यावृत्तत्व अभेदान्वयिविधेयसमभिव्याहार स्थल में (जहाँ पर विधेय अभेदेन अन्वित होता है उन स्थलों में) अन्योन्याभाव प्रतियोगित्व है, भेदान्वयिविधेयसमभिव्याहारस्थल में (जहाँ पर विधेय भेद सम्बन्ध से उद्देश्य में अन्वित होता है उन स्थलों में) अत्यन्ताभावप्रतियोगित्व है। उसका विधेयतावच्छेकावच्छेदेन ही अन्वय होता है, इस कारण द्वित्वाद्यवच्छिन्नाभाव को लेकर अतिप्रसङ्ग नहीं है। अभाव में प्रकृत्यर्थ नरादि का क्षत्रियत्वादिरूपोद्देश्यता-वच्छेदकावच्छिन्नभेद विशिष्ट प्रकृत्यर्थतावच्छेदकनरत्वादिव्यापकाधिकरणतानिरूपिताधेयता सम्बन्ध से अन्वय होता है, इतने से ही जात्यादिरूपविशेषणशून्य प्रकृत्यर्थनरादिसामान्यव्यावृत्ति का विधेयधर्म में लाभ होता है।

यहाँ पर निर्धारण विभक्ति का व्यावृत्तत्व ही अर्थ है यह सिद्धान्तित किया । व्यावृत्तत्व दो तरह का है एक अन्योन्याभावप्रतियोगित्वात्मक और दूसरा अत्यन्ताभावप्रतियोगित्वात्मक। जहाँ पर विधेय अभेदेन अन्वित होता है जैसे '**नराणां क्षत्रियः शूरः**' इत्यादि स्थलों में, वहाँ पर अन्योन्याभावप्रतियोगित्व रूप व्यावृत्तत्व है और जहाँ पर विधेय भेदेन अन्वित होता है वहाँ पर अत्यन्ताभावप्रतियोगित्वरूप व्यावृत्तत्व लेना है, जैसे–'**नराणां क्षत्रिये शौर्यम्** ' इत्यादि स्थलों में । हाँ, व्यावृत्तत्व उद्देश्यतावच्छेदेन अन्वित न होकर विधेयतावच्छेदकावच्छेदेन ही अन्वित होगा । इस कारण '**द्रव्येषु क्षितिपाथसी रसवती**' यहाँ पर क्षिति और जल के भी क्षितिजलोभयत्वावच्छिन्न भिन्न होने पर भी रसवत्त्वावच्छिन्नभिन्न न होने के कारण कोई अतिप्रसङ्ग नहीं होता है। अभाव में प्रकृत्यर्थ नरादि का क्षत्रियत्वादिरूपोद्देश्यता-वच्छेदकावच्छिन्न भेदविशिष्ट प्रकृत्यर्थतावच्छेदकनरत्वादिव्यापकाधिकरणतानिरूपिताधेयतासम्बन्ध से अन्वय होगा । इस प्रकार स्थिति यह लब्ध होती है । '**नराणां शूरः क्षत्रियः**' यहाँ पर नरपद से नर की, नरपदोत्तरषष्ठी से अन्योन्याभावप्रतियोगित्वरूप व्यावृत्तत्व की, शूरपद से शूर की, क्षत्रियपद से क्षत्रिय की उपस्थिति होती है। नर का अन्योन्याभावप्रतियोगित्व के एकदेश अन्योन्याभाव में –क्षत्रियत्वावच्छिन्नभेदविशिष्टनरत्वव्यापक अधिकरणता क्षत्रियान्य नरनिष्ठ अधिकरणता से निरूपित आधेयता विद्यमान है। इस कारण इस सम्बन्ध से नर का अन्योन्याभाव में अन्वय हो जायेगा । वह अन्योन्याभाव है '**शूरो न** ' ऐसा अन्योन्याभाव शूरभेद, उसका प्रतियोगित्व शूर में है, उस शूर का क्षत्रिय के साथ अभेदान्वयबोध होता है। इस प्रकार '**क्षत्रियत्वावच्छिन्नभेदविशिष्टनरत्वव्यापकाधिकरणतानिरूपिता-धेयतासम्बन्धेन नरविशिष्टान्योन्याभावप्रतियोगिशूराभिन्नः क्षत्रियः**' 'क्षत्रियत्वा-वच्छिन्नभेदविशिष्टनरत्वव्यापकाधिकरणतानिरूपिताधेयतासम्बन्ध से नर विशिष्ट अन्योन्या-भावप्रतियोगि शूर से अभिन्न क्षत्रिय' ऐसा शाब्दबोध होता है। '**नराणां क्षत्रिये शौर्यम्** '

यहाँ पर **'क्षत्रियत्वावच्छिन्नभेदविशिष्टनरत्वव्यापकाधिकरणतानिरूपिताधेयतासम्बन्धेन नरविशिष्टात्यन्ताभावप्रतियोगिक्षत्रियवृत्ति शौर्यम'** 'क्षत्रियत्वावच्छिन्नभेदविशिष्टनरव्यापकाधिकरणतानिरूपिताधेयतासम्बन्ध से नरविशिष्ट अत्यन्ताभाव का प्रतियोगी क्षत्रियवृत्तिशौर्य है' ऐसा बोध होता है।

'द्रव्याणां क्षितिपाथसी रसवती' इत्यादौ भेदद्वयादिविशिष्टद्रव्यत्वादिव्यापकतैव सम्बन्धः। विधेयस्य शूरतमत्वादेर्निर्धारणविभक्तिप्रकृत्यर्थतावच्छेदकनरत्वादिविशिष्टतादात्म्यादिरेव सम्बन्धतया भासतेऽतो 'नराणां राक्षसः शूरः' इत्यादेर्नापत्तिः । अन्यत्स्वयमूह्यम् ।

–इति षष्ठ्यर्थनिरूपणं समाप्तम् –

'द्रव्याणां क्षितिपाथसी रसवती' 'द्रव्यों में पृथिवी और जल रसवाले हैं' इत्यादि स्थलों में भेदद्वयादिविशिष्ट द्रव्यत्वादिव्यापकता ही सम्बन्ध है। अर्थात् भेद्द्वयविशिष्टद्रव्यत्वव्यापकाधिकरणतानिरूपिताधेयता ही सम्बन्ध है। इस प्रकार **'(क्षिति भेद, पयोभेद इति) भेदद्वयविशिष्टद्रव्यत्वव्यापकाधिकरणतानिरूपिताधेयतासम्बन्धेन द्रव्यविशिष्ट अन्योन्याभावप्रतियोगि रसवदभिन्ने क्षितिपाथसी'** 'क्षितिभेद, जलभेद इन भेदद्वय से विशिष्ट द्रव्यत्वव्यापक अधिकरणता निरूपित आधेयता सम्बन्ध से द्रव्य विशिष्ट भेद 'रसवान् न' भेद के प्रतियोगी रसवत् से अभिन्न पृथिवी और जल हैं' ऐसा शाब्दबोध होता है। क्षितिभेद, जलभेद इन भेदद्वय से विशिष्ट द्रव्यत्व व्यापक अधिकरणता पृथिवी और जल के सिवा तेज, वाय्वादि सभी द्रव्यों में रहेगी, उससे निरूपित आधेयता 'रसवान् न' इस भेद में है। अतः उपर्युक्त रीति से शाब्दबोध उपपन्न होता है।

विधेय शूरतमादि का निर्धारणविभक्तिप्रकृत्यर्थतावच्छेदकनरत्वादिविशिष्ट तादात्म्यादि ही सम्बन्धतया भासता है, अतः **'नराणां राक्षसः शूरः'** इत्यादि की आपत्ति नहीं होती है। अभिप्राय यह है कि उक्त रीति से तो **'नराणां राक्षसः शूरः'** प्रयोग की भी आपत्ति आयेगी क्योंकि इससे शाब्दबोध होना चाहिए **'राक्षसत्वावच्छिन्न भेदविशिष्टनरत्वव्यापकाधिकरणतानिरूपिताधेयतासम्बन्धेन नरविशिष्टान्योन्याभाव प्रतियोगि-शूराभिन्नो राक्षसः'** 'राक्षसत्वावच्छिन्नभेदविशिष्टनरत्वव्यापकाधिकरणतानिरूपिताधेयतासम्बन्ध से नरविशिष्टान्योन्याभावप्रतियोगि शूर से अभिन्न राक्षस' ऐसा बोध होने में तो कोई भी बाधक नहीं है। नर में राक्षस का भेद है ही इसलिए राक्षसत्वावच्छिन्नभेदविशिष्ट नरत्व नरमात्र में रहेगा, तादृशनरत्वव्यापक अधिकरणता निरूपित आधेयता **'शूरो न'** इस भेद में रहनेवली आधेयता होगी । इस कारण यह भेद उक्त सम्बन्ध से नर विशिष्ट हो गया, उसका प्रतियोगी शूर, उस शूर से अभिन्न राक्षस है। इस कारण ऐसा प्रयोग होना चाहिए। इसका समाधान यह है कि विधेय शूर आदि का निर्धारण विभक्ति की प्रकृति के पदार्थावच्छेदक नरत्वादि से विशिष्ट तादात्म्य आदि ही सम्बन्ध बनकर भासित होता है। केवल शूर से तादात्म्य

(अभेद) नहीं भासता है। उक्त स्थल में तादृशशूरनराभिन्नत्व ही भासता है राक्षस में वह बाधित है। वैयधिकरण्यस्थल में केवल तादृशक्षत्रियादिवृत्तित्व शौर्य में नहीं भासता है अपितु तादृशक्षत्रियनरादिवृत्तित्व ही शौर्य में भासता है। अन्य स्वयं समझ लेना चाहिए।

इस प्रकार श्रीमद्‌गदाधरभट्टाचार्यविरचित व्युत्पत्तिवाद की श्री सच्चिदानन्दमिश्रविरचित सुनन्दानामकव्याख्या में षष्ठ्यर्थ निरूपण पूर्ण हुआ ।

-----:0:-----

–अथ सप्तमी–

आधारसप्तम्या आधेयत्वमर्थस्तस्य क्रियायामन्वयः। आधाराधेयभावश्च न संयोगादिरूपसम्बन्धात्मकः—कुण्डादिसंयोगिनो बदरादेरपि कुण्डाधारताप्रसङ्गात् अपितु पदार्थान्तरमेव। स च सम्बन्धविशेषावच्छिन्नः—संयोगेनाधिकरणं समवायेनाधिकरणमिति व्यवहारात्। अथवोक्तातिप्रसङ्गभिया संयोगेनाधारत्वमेवातिरिक्तं समवायसम्बन्धावच्छिन्नञ्च समवायादिरूपमेव। न च समवायस्यापि सम्बन्धत्वेन द्विष्ठतया रूपादेरपि पटाद्यधिकरणताप्रसङ्गः, तथा सति तुल्ययुक्त्याऽधिकरणत्वस्यापि द्विष्ठतया तादृशातिप्रसङ्गस्य दुर्वारत्वात्। यदि चाधारताया आधारेऽनुयोगित्वं सम्बन्ध आधेये च प्रतियोगित्वमिति सम्बन्धवैलक्षण्यान्नातिप्रसङ्गः—आधारतानुयोगिताया एवाधारव्यवहारप्रयोजकत्वादित्युच्यते ? तदा समवायस्यापि तद्वैलक्षण्येनातिप्रसङ्गवारणादतिरिक्ताधारतायां मानाभावात्।

स्पर्शाद्याधारवाय्वादे रूपाद्याधारतावारणायाधेयभेदेनाधारत्वमतिरिक्तमिति न सत् , आधेयभेदभिन्नाधिकरणतानामतिरिक्तसमवायस्य च कल्पनामपेक्ष्याधेयभेदेन समवायभेदस्यैवोपगन्तुमुचितत्वात् ।

आधारसप्तमी का आधेयत्व अर्थ है और उसका क्रिया में अन्वय होता है । तथा आधाराधेयभाव संयोगादिसम्बन्धात्मक नहीं होता है क्योंकि कुण्डादिसंयोगी बदरादि का भी आधारता प्रसङ्ग प्राप्त होता है। (कुण्ड में बदर=बेर के संयोग सम्बन्ध से रहने पर कुण्ड और बेर के संयोग के द्विष्ठ होने के कारण संयोग के कुण्ड में रहने के कारण जैसे कुण्ड की बेर के प्रति आधारता होती है, उसी प्रकार बेर की भी कुण्ड के प्रति आधारता होनी चाहिए क्योंकि संयोग ही तो आधारता है ऐसा स्वीकार रहे हैं, बेर में भी कुण्ड संयोग होने के कारण बेर की कुण्डाधारता प्राप्त होती है, इसलिए आधारता संयोगादिरूप नहीं है) अपितु पदार्थान्तर ही है आधारता और सम्बन्धविशेष से उक्त आधारता अवच्छिन्न होती है क्योंकि प्रतीति होती है, व्यवहार होता है 'संयोग से अधिकरण है' 'समवाय से अधिकरण है' । अथवा उक्त अतिप्रसङ्ग (बेर के कुण्डाधारत्व की आपत्ति) के भय से संयोग सम्बन्ध से ही आधारत्व अतिरिक्त है, समवायसम्बन्धावच्छिन्न आधारता समवायादि रूप ही होती है, समवायसम्बन्ध से अतिरिक्त नहीं होती है। अभिप्राय यह है कि संयोगात्मकसम्बन्ध उभयनिष्ठतया प्रत्यक्षसिद्ध है और समवाय सम्बन्ध विशिष्टबुद्धिनियामकतया अनुमेय है। इस कारण यदि संयोग को आधारतारूप मानें तो कुण्ड और बदर दोनों में ही संयोग के रहने के कारण संयोगरूप आधारता भी दोनों में रहेगी, अतः कुण्डादि के बदराधारत्व की तरह बदर का कुण्डाधारत्व भी प्रसक्त होगा । समवाय के अनुमेय होने के कारण उसको आधारतारूप और आधारनिष्ठ ही स्वीकारा जा सकता है। इसकारण समवायसम्बन्धावच्छिन्ना

आधारता को समवायादि सम्बन्धरूप मानने से भी काम चल ही सकता है।

यदि कहो कि समवाय के भी सम्बन्ध होने के कारण द्विष्ठ होने से रूपादि की भी पटाधिकरणता का प्रसङ्ग होगा, तो ऐसा होने पर तो तुल्ययुक्ति से अधिकरणत्व के भी द्विष्ठ होने के कारण तादृशातिप्रसङ्ग दुर्वार होगा । तुल्ययुक्ति का आशय यह है कि समवाय यदि प्रतियोगी से असम्बद्ध ही सम्बन्ध हो तो असम्बद्धत्व तो अन्य सभी में भी समान है, इस कारण जो प्रतियोगी नहीं हैं उनका भी सम्बन्ध समवाय हो। इसी प्रकार अनुयोगी से असम्बद्ध समवाय यदि सम्बन्ध हो तब तो सर्वत्र ही प्रतियोगी का सम्बन्ध समवाय होना चाहिए । इस कारण यही मानना पड़ेगा कि समवाय प्रतियोगी और अनुयोगी से सम्बद्ध होकर ही सम्बन्ध बनता है । फिर तो प्रतियोगी और अनुयोगी दोनों ही समवाय सम्बन्ध से एक दूसरे के आधार बनने लगेंगे, रूपादि भी पट के अधिकरण (आधार) बनने लगेंगे। इसलिए यदि आधारता को अतिरिक्त मानो तो यहाँ पर भी उसी रीति से उसी युक्ति से द्विष्ठत्व आधारता का भी सिद्ध हो जायेगा । आधारता यदि आधेय से असम्बद्ध ही आधारता व्यवहार की प्रयोजक है तो सभी की आधारता के व्यवहार की प्रयोजिका उस आधारता को होना चाहिए, इस कारण आधारता का आधेय के साथ भी सम्बन्ध स्वीकारना ही पड़ेगा । साथ ही आधार के साथ भी सम्बन्ध स्वीकारना पड़ेगा । ऐसा स्थिति में आधारता को अतिरिक्त मानने पर भी रूपादि में पटाधिकरणता का प्रसङ्ग पुनः पूर्ववत् प्रसक्त होगा तथा दुर्वार होगा ।

यदि आधारता का आधार में अनुयोगित्व सम्बन्ध है और आधेय में प्रतियोगित्वसम्बन्ध है इस सम्बन्धवैलक्षण्य के कारण अतिप्रसङ्ग नहीं होता है (रूपादि में पटाद्यधिकरणता का प्रसङ्ग नहीं होता है) क्योंकि आधारता की अनुयोगिता का ही आधारव्यवहारप्रयोजकत्व है। आधारता की प्रतियोगिता का आधारव्यवहारप्रयोजकत्व नहीं है। रूपादि में आधारता की प्रतियोगिता ही है अनुयोगिता नहीं, अतः रूपादि के पटाधिकरणत्व का व्यवहार नहीं होता है। ऐसा कहते हो ? तो समवाय के भी उसी वैलक्षण्य के कारण (समवाय की भी अनुयोगिता आधार व्यवहार की प्रयोजक होती है, प्रतियोगिता आधारव्यवहार की प्रयोजक नहीं होती है, समवाय की अनुयोगिता पटादि में और प्रतियोगिता रूपादि में है इसी वैलक्षण्य के कारण) अतिप्रसङ्गवारण हो जाने के कारण, रूपादि की पटाधिकरणताव्यवहार की आपत्ति वारित हो जाने के कारण समवायादि से अतिरिक्त आधारता में प्रमाण नहीं है।

स्पर्शादि के आधार वायु आदि की रूपाद्यधारतावारण करने के लिए जो यह कहा जाता है कि आधेयभेद से आधारता भिन्न-भिन्न है, अतिरिक्त है । न्यायवैशेषिक सम्प्रदाय में समवाय एक ही है इस कारण यह आपत्ति आती है कि रूप का समवाय और स्पर्श का समवाय जब एक है तो वायु में स्पर्शसमवाय होने से स्पर्शवत्ता प्रतीति की तरह समवाय होने से रूपवत्ता प्रतीति भी होनी चाहिए इसका वारण करने के लिए कहा जाता है कि आधेय (रूप और स्पर्श) के भेद से आधारता भिन्न हो जाती है, इसलिए समवाय के एक होने पर भी आधारता के अतिरिक्त हो जाने रूपाधारता के वायु में न होने से रूपवत्ता प्रतीति नहीं होती है। वह तो ठीक नहीं है क्योंकि आधेयभेद से भिन्न आधारताओं की और उससे

अतिरिक्त समवाय की कल्पना की अपेक्षा आधेयभेद से समवाय भेद स्वीकारना ही उचित है। समवाय का ही आधारतारूपत्व है।

विमर्श– सूत्रकार ने 'सप्तम्यधिकरणे च' पा०सू० 2/3/37 के द्वारा अधिकरण अर्थ में सप्तमी का विधान किया है । अतः सप्तमी का अर्थ आधारता ही होना चाहिए किंतु आधारता को सप्तम्यर्थ मानने पर उसका निरूपकत्वसम्बन्ध से ही अन्वय क्रिया में करना पड़ेगा इसमें मुश्किल यह है कि निरूपकत्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक आधारत्वाभाव का प्रत्यायन नञ् घटित स्थल में होना चाहिए क्योंकि प्रतियोगि और अभावान्वय तुल्ययोगक्षेम होते हैं । किन्तु वृत्त्यनियामक सम्बन्ध के अत्यन्ताभावीयप्रतियोगितावच्छेदक न होने के कारण यह सम्भव नहीं है । अतः आधेयत्व को ही सर्वत्र सप्तमी का अर्थ मानना चाहिए । उसका क्रिया में आश्रयत्व सम्बन्ध से अन्वय होने के कारण नञ् घटित स्थल में आश्रयत्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक आधेयत्वाभाव का प्रत्यायन करना पड़ेगा । आश्रयत्व के वृत्तिनियामक होने के कारण यह सम्भव ही है।

अथ संयोगेनाधिकरणत्वमपि संयोगरूपमस्तु कुण्डबदरादिसंयोगानां कुण्डादिकमनुयोगि न तु बदरादिकमिति नातिप्रसङ्गः ।

न चैवमपि बदरादेः कुण्डादिनिष्ठसंयोगानुयोगितया आधारतापत्तिः– तादृशसंयोगस्य कुण्डादिनिष्ठत्वेऽपि तत्प्रतियोगिकत्वानुपगमात्, तत्प्रतियोगिकसंयोगानुयोगिताया एव तदाधारताव्यवहारप्रयोजकत्वात् ।

न चासौ संयोगो बदरादौ कुण्डादिविशिष्टबुद्धिप्रयोजकतयोभयानुयोगिक एवमुभयप्रतियोगिकोऽपीति वाच्यम् ; आधेये संयोगेनाधिकरणविशिष्टबुद्धेरप्रामाणिकत्वात् , 'कुण्डे बदरम् ' इत्यादिविशिष्टबुद्धौ संयोगप्रतियोगिताया एव सम्बन्धत्वात् 'घटे रूपम् ' इत्यादिसमवायीयप्रतियोगितावत् , अन्यथा तादृशविशिष्टबुद्धिबलाद् रूपादावपि घटादिसमवायानुयोगिताप्रसङ्गादितिचेत्?

मा भूत्तत्सम्बन्धावच्छिन्नमप्यतिरिक्तम् ।

इसमें प्रश्न उठता है कि संयोगेन अधिकरणत्व भी संयोगरूप ही हो जाये (उसे भी अतिरिक्त मानने की क्या आवश्यकता है?) कुण्डबदरादि संयोगों के (कुण्ड और बेर के संयोग के) कुण्डादिक अनुयोगि होते हैं बदरादिक नहीं होते हैं, इस कारण उक्त अतिप्रसङ्ग नहीं है, बदर के कुण्डाधिकरणत्व व्यवहार की आपत्ति नहीं है। इसीलिए तो संयोग सम्बन्ध से अधिकरणता को संयोगातिरिक्त आप मान रहे थे, वह तो ऐसे सिद्ध हो सकता है।

यदि कहो कि इस प्रकार स्वीकारने पर भी बदरादि के कुण्डादिनिष्ठ संयोग का अनुयोगी होने के कारण बदरादि के कुण्डाधारता की आपत्ति है, तो ऐसा नहीं है क्योंकि कुण्डबदर संयोग के कुण्डनिष्ठ होने पर भी उस संयोग के कुण्डप्रतियोगिकत्व का उपगम नहीं किया जाता है, और तत्प्रतियोगिक संयोग की अनुयोगिता का ही तदाधारताव्यवहार का प्रयोजकत्व माना जाता है। बदर के कुण्डप्रतियोगिक संयोग का अनुयोगी न होने के कारण

बदर के कुण्डाधारत्व का व्यवहार नहीं होगा ।

यदि कहो कि वह संयोग बदरादि में कुण्डादिविशिष्ट बुद्धि का प्रयोजक होने के कारण उभयानुयोगिक और उभयप्रतियोगिक भी है अर्थात् जैसे कुण्ड में बदरवत्ता बुद्धि होती है, उसी प्रकार बदर में कुण्डवैशिष्ट्य बुद्धि होती है, इस कारण जैसे कुण्ड में अनुयोगिता है वैसे ही बदर में भी संयोग की अनुयोगिता माननी चाहिए । इसी प्रकार दोनों में प्रतियोगिता भी माननी चाहिए । तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि आधेय में संयोग सम्बन्ध से अधिकरणविशिष्टबुद्धि का अप्रमाणिकत्व है। 'कुण्डे बदरम्' इत्यादि विशिष्टबुद्धियों में संयोगप्रतियोगिता का ही सम्बन्धत्व है, कुण्ड का बदर में संयोगप्रतियोगितासम्बन्ध से ही वैशिष्ट्य है। जैसे 'घटे रूपम्' यहाँ पर रूप में समवाय प्रतियोगिता ही घट का रूप में सम्बन्ध होता है। नहीं तो वैसी विशिष्टबुद्धि (घटे रूपम्) के बल से रूपादि में पटादिसमवायानुयोगिताप्रसङ्ग होगा । अर्थात् जैसे आप संयोग के बदरादि में कुण्डविशिष्ट बुद्धि का प्रयोजक होने के कारण बदरादि में संयोग की अनुयोगिता स्वीकारना चाह रहें हैं, उसी प्रकार समवाय के भी 'घटे रूपम्' इस प्रकार के रूप में घटविशिष्ट बुद्धि का प्रयोजक होने के कारण रूप आदि में समवाय की भी अनुयोगिता प्रसक्त होगी । इस कारण यही दोनों जगहों पर एक समान रीति से मानना बेहतर है कि समवायप्रतियोगितासम्बन्ध से रूप में घटविशिष्टबुद्धि उक्त प्रतीति से होती है तथा 'कुण्डे बदरम्' में संयोग प्रतियोगितासम्बन्ध से कुण्ड का वैशिष्ट्य बदर में भासता है। संयोगसम्बन्ध से भी अवच्छिन्न आधारता को अलग मानने की आवश्यकता नहीं है।

ठीक है, उस सम्बन्ध (संयोग) से अवच्छिन्न आधारत्व भी अतिरिक्त न हो । इस प्रकार संयोगसम्बन्धावच्छिन्न आधारता भी अलग नहीं है बल्कि संयोगरूप ही है।

यत्तु तत्पतनप्रतिबन्धकसंयोगवत्त्वं तदाधारत्वं कुण्डादिपतन-प्रतिबन्धकसंयोगवत्त्वञ्च न बदरादौ–तत्संयोगसत्त्वेऽपि तस्य पतनादिति, तदसत् –यस्य पतनमप्रसिद्धं तदाधारत्वासंग्रहात् , स्वस्मिन् स्वपतन-प्रतिबन्धकसंयोगसत्त्वेन स्वस्यापि स्वाधारताप्रसङ्गाच्च । स्वान्यत्वे सति स्वनिष्ठपतनानुत्पादप्रयोजकसंयोगवत्त्वं तदिति चेत् ? न, एतदनुपस्थिता-वप्यधिकरणव्यवहारादित्यलम् ।

जो यह कहा जाता है कि तत्पतनप्रतिबन्धकसंयोगवत्त्व तदाधारत्व है, कुण्डादिपतन प्रतिबन्धकसंयोगवत्त्व बदरादि में नहीं है क्योंकि कुण्डादि संयोग बदरादि में रहने पर भी कुण्ड का पतन हो जाता है (इस कारण बदर कुण्डाधार नहीं होता है, बदरपतनप्रतिबन्धक-संयोगवत्त्व कुण्ड में है, कुण्डसंयोग रहने पर बदर का पतन नहीं होता है इस कारण बदराधारता कुण्ड की होती है) तो ऐसा कथन ग़लत है क्योंकि जिसका पतन अप्रसिद्ध है उसके आधारत्व का संग्रह नहीं हो सकेगा । (जैसे भूतल में वृक्षाधारत्व है किन्तु जो वृक्ष कभी गिरा नहीं है हमेशा पृथिवी से संयुक्त ही है उस वृक्ष की आधारता भूमि में नहीं बन सकेगी, क्योंकि वृक्षपतनप्रतिबन्धकसंयोगवत्त्व ही वृक्षाधारत्व है, उस वृक्ष का पतन अप्रसिद्ध है) दूसरी बात यह है कि संयोग के द्विष्ठ होने के कारण स्वपतनप्रतिबन्धकसंयोग के स्व में भी रहने के कारण स्व का स्वाधारत्व प्रसक्त होगा । यदि कहो कि स्वान्यत्वे सति स्वनिष्ठपतनानुत्पादप्रयोजक

संयोगवत्त्व ही स्वाधारत्व है (स्व के स्व से अन्य न होने से स्व के स्वाधारत्व का प्रसङ्ग नहीं है) तो ऐसा भी नहीं है क्योंकि स्वान्यत्वे सति स्वनिष्ठपतनानुत्पादप्रयोजकसंयोगवत्त्व की उपस्थिति न होने पर भी अधिकरण व्यवहार होता है। इसके आधारता (अधिकरणता) रूप होने पर विना ऐसी आधारता की उपस्थिति हुए अधिकरणव्यवहार नहीं होना चाहिए।

अथाधारसप्तम्या आधेयतार्थकत्वे 'भूतले वर्तते घटः' इत्यादौ धात्वर्थस्य वृत्तेराधेयतारूपत्वेन तत्र भूतलाद्याधेयत्वाभावेनायोग्यताप्रसङ्ग इति चेत् ? न, तत्र निरूपकत्वस्यैवाधारतारूपत्वेन निरूप्यत्वस्यैव सप्तम्यर्थत्वात् भूतलादिनिरूप्यत्वस्य च घटादिनिष्ठवृत्तावबाधात् । अथ एत "इति हेतुस्तदुद्भवे" इत्यादौ हेतौ हेतुतायाञ्चोद्भवपदार्थोत्पत्तिवृत्तित्वाभावेऽपि हेतुतायामुत्पत्तिनिरूपितत्वसत्त्वेन सप्तम्युपपत्तिः ।

अथवा वृद्धातोराप्याधारत्वमेवार्थस्तन्निरूपकत्वमेव च घटादेस्तत्कर्तृत्वम्। एवञ्च तादृशधात्वर्थे भूतलाद्यधिकरणकत्वमेव सप्तम्यन्तेन बोध्यते–तत्र तदबाधात् ।

ऊपर व्यवस्थापित किया कि सप्तमी (आधारसप्तमी) का आधेयत्व ही अर्थ है इसमें यह प्रश्न उठता है कि—आधार सप्तमी के आधेयतार्थक होने पर **'भूतले वर्तते घटः'** 'भूतल पर घट है' इत्यादि स्थलों पर धात्वर्थ वृत्ति के आधेयतारूप होने से उसमें भूतलाद्याधेयता का अभाव होने के कारण अयोग्यता का प्रसङ्ग होगा । अर्थात् क्रिया से कारकविभक्ति का अर्थ अन्वित होता है। इस कारण यहाँ पर धात्वर्थ वृत्ति में ही सप्तम्यर्थ आधेयता का अन्वय करना पड़ेगा, किन्तु मुश्किल यह कि धात्वर्थ वृत्ति भी आधेयता रूप है, आधेयता में आधेयता का अन्वय अशक्य ही है,दूसरी बात आधेयता में भूतलनिरूपिताधेयता नहीं है क्योंकि आधेयता भूतलनिष्ठा नहीं है घटनिष्ठा है। तो ऐसा नहीं है क्योंकि वहाँ पर **'भूतले घटो वर्तते'** में निरूपकत्व के ही आधारतारूप होने के कारण निरूप्यत्व के ही सप्तम्यर्थ होने के कारण और भूतलादिनिरूप्यत्व का घटादिनिष्ठवृत्ति (आधेयता) में बाध नहीं होने के कारण कोई दोष नहीं है । इस प्रकार यहाँ पर शाब्दबोध होगा **'भूतलनिरूप्याधेयताश्रयो घटः'** 'भूतलनिरूप्य आधेयता का आश्रय घट है'। यहाँ पर भूतल की आधारता निरूपकता रूपा है। इसी कारण **'इति हेतुस्तदुद्भवे'** (काव्यप्रकाश कारिका सं. 3) इत्यादि स्थलों में हेतु में हेतुता में उद्भव पदार्थ उत्पत्तिवृत्तित्व का अभाव होने पर भी हेतुता में उत्पत्तिनिरूपितत्व रहने के कारण सप्तमी की उपपत्ति होती है। वहाँ भी उत्पत्ति की आधारता निरूपकतारूप है और हेतुता में निरूप्यत्व ही सप्तमी का अर्थ होता है।

अथवा वृत् धातु का भी आधारता ही अर्थ है और उस आधारता का निरूपकत्व ही घटादि का वृद्धात्वर्थ कर्तृत्व है, इस प्रकार उस (वृत्) धातु के अर्थ आधारता में भूतलाद्यधिकरणकत्व ही सप्तम्यन्त के द्वारा बोधित होता है और आधारता में भूतलाद्यधिकरणकत्व का ब्राध नहीं है। इस प्रकार यहाँ पर शाब्दबोध होता है **'भूतलाधिकरणकाधारतानिरूपको घटः'** 'भूतलाधिकरणक आधारता का निरूपक घट है'।

अथाधारसप्तम्या क्रियायां प्रकृत्यर्थाधिकरणकत्वं यदि बोध्यते तदा 'चैत्रे चैत्रो गच्छति' इत्यादिप्रयोगापत्तिः तत्र धात्वर्थस्पन्दस्य कर्त्रादिवृत्तित्वात् 'भुवि गच्छति' इत्यादिश्च न स्यात् –चैत्रनिष्ठक्रियाया भुवि बाधादिति चेत्? न, तत्र कर्तृघटितपरम्परासम्बन्धावच्छिन्नाधारताया एव सप्तम्यर्थत्वेन सर्वसामञ्जस्यात्, परम्परासम्बन्धस्यापि प्रतीतिबलेन क्वचिदाधारता-नियामकत्वोपगमात् ।

किन्तु इसमें प्रश्न उठता है कि –आधारसप्तमी के द्वारा क्रिया में प्रकृत्यर्थाधिकरणकत्व यदि बोधित होता है तो **'चैत्रो चैत्रे गच्छति'** 'चैत्र चैत्र में जा रहा है' ऐसे प्रयोग की आपत्ति है क्योंकि वहाँ पर धात्वर्थ सपन्दादि (गमन) का कर्त्रादिवृत्तित्व है। अर्थात् इस वाक्य से बोध्य अर्थ है **'चैत्राधिकरणकगमनाश्रयश्चैत्रः'** 'चैत्राधिकरणकगमन क्रिया का आश्रय चैत्र है' यह अबाधित है। इस कारण ऐसा प्रयोग होना चाहिए । इसी प्रकार **'भुवि गच्छति'** 'भूमि पर जा रहा है' ऐसा प्रयोग नहीं होना चाहिए क्योंकि चैत्रनिष्ठक्रिया का भूमि में बाध है। अर्थात् यहाँ पर **'भूम्यधिकरणकगमन'** विषयक बोध होना चाहिए किन्तु भूमि में गमन की अधिकरणता न होने से भूम्यधिकरणकत्व गमन में बाधित है। इसलिए इस वाक्य से शाब्दबोध नहीं सम्भव होने से बाधित विषयक होने से ऐसा प्रयोग नहीं होना चाहिए ।

तो ऐसा नहीं है क्योंकि वहाँ पर (सप्तमी प्रयोगस्थल में) कर्तृघटित परम्परा-सम्बन्धावच्छिन्नाधारता के (स्वाश्रयाश्रयत्वादिसम्बन्धावच्छिन्नाधारता के) ही सप्तम्यर्थ होने के कारण सब सामञ्जस्य हो जाता है। परम्परासम्बन्ध का भी कहीं पर प्रतीति के बल से आधारतानियामकत्व स्वीकारा जाता है। चैत्र स्वाश्रयाश्रयत्व सम्बन्ध से गमन क्रिया का आधार नहीं है अतः उस सम्बन्ध से चैत्राधिकरणकगमनक्रिया नहीं होती है। इसलिए चैत्रपदोत्तर सप्तमी प्रयोग से **'चैत्रे चैत्रो गच्छति'** प्रयोग नहीं होता है। स्वाश्रयाश्रयत्व सम्बन्ध से भूमि के गमन का आश्रय होने के कारण **'भुवि चैत्रो गच्छति'** प्रयोग होता है'[1] ।

अवच्छेद्यताविशेषोऽप्याधारसप्तम्यर्थो यथा 'वीणायां शब्दः' 'कर्णे शब्दः' 'वृक्षाग्रे कपिसंयोगः' इत्यादौ, एषु कारकतानिर्वाहाय 'भवति' इत्यध्याहारः। अथवा "सप्तम्यधिकरणे च" इति चकारेणाकारकाधारवाचिनोपि सप्तमी, अत एव "साध्यवद्भिन्नसाध्याभाववदवृत्तित्वम्" इत्यत्र "साध्यवद्भिन्ने यः साध्याभावः" इति सप्तमीतत्पुरुषेण व्याख्यानं सङ्गच्छते, तत्र क्रियाध्याहारे सापेक्षतयाऽसामर्थ्येन समासानुपपत्तेः।

अवच्छेद्यताविशेष भी आधारसप्तमी का अर्थ होता है, जैसे **'वीणायां शब्दः' 'कर्णे**

1. इसीलिए वैयाकरणभूषणसार (दर्पणप्रभासहित) में पृ. 203 पर वाक्यपदीय से उद्धृत करते हुए कहा गया है कि– 'कर्तृकर्मव्यवहितामसाक्षाद्धारयत् क्रियाम् ।
उपकुर्वन् क्रियासिद्धौ शास्त्रेऽधिकरणं स्मृतम् ।।'
कर्तृ और कर्म से व्यवहित असाक्षात् क्रिया को धारण करते हुए क्रियासिद्धि में उपकार करने वाला अधिकरण कहा जाता है।

शब्दः' 'वृक्षाग्रे कपिसंयोगः' इत्यादि स्थलों में कारकता (क्रियान्वयित्व कारकता) के निर्वाह के लिए '**भवति**' ऐसा अध्याहार करना चाहिए या किया जाता है । उसका अध्याहार करने पर ही उस क्रिया से अन्वय होकर क्रियान्वयित्वरूपकारकत्व सम्पन्न होता है।

अथवा '**सप्तम्यधिकरणे च**' पा॰ सू॰ 2/3/36 इस सूत्र घटक चकार से अकारकवाची अधिकरण से भी सप्तमी होती है।[1] इसी कारण '**साध्यवद्भिन्नसाध्याभाववदवृत्तित्वम्** ' इस व्याप्तिपञ्चकान्तर्गत द्वितीयव्याप्तिलक्षण में '**साध्यवद्भिन्ने यः साध्याभावः**' इस प्रकार सप्तमीतत्पुरुष से व्याख्यान भी सङ्गत होता है क्योंकि उसमें क्रिया का अध्याहार करने पर समासाघटकपद (क्रियापद) सापेक्ष होने के कारण असामर्थ्य होने के कारण समास की अनुपपत्ति हो जायेगी । आशय यह है कि यदि क्रिया का अध्याहार करने पर ही सप्तमी सार्थक हो '**साध्यवद्भिन्ने यः साध्याभावः**' इस विग्रह में साध्यवद्भिन्न पदोत्तर सप्तमी की उपपत्ति के लिए क्रियापदाध्याहार आवश्यक होगा, ऐसी स्थिति में साध्यवद्भिन्ने पद समासाघटकक्रियापदसापेक्ष होने से असमर्थ होगा, इसीलिए समासायोग्य होगा । इसलिए न्यायमतानुसार चकारग्रहण से अकारक अधिकरण से भी सप्तमी होती है।

'चर्मणि द्वीपिनम् ' इत्यादौ ''निमित्तात्कर्मयोगे'' इत्यनेन सप्तमी प्रकृत्यर्थचर्मादेर्हननादिक्रियानिमित्तत्वं बोधयति । निमित्तत्वञ्च न कारणत्वम् —चर्मादेर्हननादिक्रियाकारणत्वे मानाभावात् , पूर्ववर्तित्वेऽपीच्छाकृत्यादनाऽन्यथासिद्धत्वात् अपितु क्रियाजनिका या विनियोज्यत्वेनेच्छा तद्विषयत्वम्, स्वविषयकतादृशेच्छाधीनत्वमेव तत्र क्रियान्वयी सप्तम्यर्थः, तदेकदेशविषयितायां निरूपकत्वेन प्रकृत्यर्थान्वयः । चर्मादेर्घात्यव्याघ्रादेः सम्बन्धश्च न सप्तम्यर्थः, अपितु सप्तम्याः साधुत्वे स्वरूपसन्नपेक्षितः ।

'**चर्मणि द्वीपिनं हन्ति**' 'चर्म के लिए चीते को मारता है' इत्यादि स्थलों में चर्मपदोत्तर '**निमित्तात्कर्मयोगे**' वार्त्तिक के द्वारा होने वाली सप्तमी प्रकृत्यर्थ चर्मादि का हननादिक्रियानिमित्तत्व बोधित करती है। किन्तु चर्मादि का हननादिक्रियानिमित्तत्व हननादिक्रियाकारणत्व नहीं है क्योंकि चर्मादि के हननादि क्रिया का कारण होने में कोई प्रमाण नहीं है, क्योंकि चर्मादि के हननादि क्रिया का पूर्ववर्ती होने पर भी इच्छा, कृत्यादि के द्वारा चर्मादि का हननादिक्रिया के प्रति अन्यथासिद्धत्व है। अपितु क्रियाजनिका या विनियोज्यत्वेन इच्छा उस इच्छा का विषयत्व ही चर्मादि का हननादि क्रिया निमित्तत्व है, (तादृश इच्छा है **चर्मविनियोगो भवतु** ऐसी इच्छा, इसका विषयत्व ही चर्म में है, यही चर्म का हननक्रियानिमित्तत्व है) वहाँ पर स्वविषयकतादृशेच्छाधीनत्व ही क्रिया में अन्वित होने वाला सप्तम्यर्थ है उसके एकदेश विषयिता में निरूपकत्व सम्बन्ध से चर्मादि का अन्वय होता है। इस प्रकार '**चर्मनिरूप्यविषयिताश्रयेच्छाधीनव्याघ्रकर्मकहननक्रियावान्**'

1. वैयाकरण चकार ग्रहण से दूरान्तिकार्थों से सप्तमी का उपपादन करते हैं ।

'चर्मनिरूप्यविषयिताश्रयेच्छाधीनव्याघ्रकर्मकहननक्रियावान्' ऐसा बोध इस वाक्य से होता है। चर्मादि विषयिता के निरूपक है, अतः चर्मनिरूप्यविषयिता होती है। चर्मादि और घात्य व्याघ्र आदि का सम्बन्ध सप्तम्यर्थ नहीं है अपितु सप्तमी के साधु होने के लिए स्वरूपतः विद्यमान रहता हुए अपेक्षित है। यदि सम्बन्ध न होगा तो सप्तमी नहीं होगी किन्तु वह सम्बन्ध सप्तम्यर्थ नहीं होता ।

'गोषु दुह्यमानासु गतः' इत्यादौ "यस्य च भावेन" इत्यनेन गवादिपदात् सप्तमी । तत्समानाधिकरणदुह्यमानादिपदाच्च 'नीलं घटमानय' इत्यादौ नीलादिपदाद् द्वितीयावद् विशेषणपदस्य विशेष्यपदसमानविभक्तिकत्व-नियमात् सप्तमी । विधायकसूत्रे च भावपदं क्रियापरं तथा च 'यद्विशेषण-कृदन्तार्थविशेषणतापन्नक्रियया क्रियान्तरस्य लक्षणम् =व्यावर्तनं तद्वाच-कपदात् सप्तमी' इति तदर्थः । उक्तस्थले गमनादिक्रिया दोहनादिसमान-कालीनत्वादिविशेषणपुरस्कारेण बोध्यतयाऽभिप्रेता, अतो व्यावर्तकविशेषण प्रविष्टतादृशक्रियाया अपि व्यावर्तकतया तत्कर्माद्यभेदान्वयिगवादिपदात् सप्तमी । अतस्तादृशसप्तम्याः समानकालीनत्वादिकमात्रमर्थस्तत्र दुह्याद्युप-स्थापितदोहनादेर्निरूपकत्वेनान्वयाद् दोहनसमानकालीनत्वादिकं गमनादौ लभ्यते इति न युक्तम् –दुह्याद्युपस्थापितक्रियाया कृदन्तार्थविशेषण-तयोपस्थितायाः समानकालीनत्वादिविशेषणत्वासम्भवात् प्रकृत्यर्थगवा-दिनानन्वितार्थस्य सप्तम्या बोधनासम्भवाच्च । किन्तु समभिव्याहृत दोहनादिक्रियैव सप्तम्यर्थस्तस्याश्च समानकालीनत्वादिकं क्रियान्तरे सम्बन्धः, तत्र वर्तमानार्थककृत्समभिव्याहारस्थले समानकालीनत्वम् , 'दोग्धव्यासु गतः' इत्यादिभविष्यदर्थकृत्स्थले प्राक्कालीनत्वम् , 'दुग्धासु गतः' इत्यादा वतीतार्थकृत्स्थले उत्तरकालीनत्वं सम्बन्धतया भासते । 'पाथसि पीते तृषा शाम्यति' इत्यादावतीतार्थककृत्समभिव्याहारात् कार्यकारणभावोऽपि सम्बन्धतया भासत इत्यादिकमूहनीयम् ।

'गोषु दुह्यमानासु गतः' 'गायों के दुहे जाते समय गया' इत्यादि स्थलों में 'यस्य च भावेन भावलक्षणम् ' पा० सू० 2/3/37 के द्वारा गो आदि पदों से सप्तमी होती है। तथा गोसमानाधिकरण (गो में अभेदेन विशेषण वाचक) दुह्यमान आदि पदों से, 'नीलं घट मानय' 'नीले घड़े को लाओ' इत्यादि स्थलों में नीलादि पदों से द्वितीया की तरह विशेषणपद के विशेष्यवाचकपदसमानविभक्तिकत्व का नियम होने के कारण सप्तमी होती है। इस सप्तमीविधायकसूत्र में भाव पद क्रियापरक है, इस प्रकार 'यद्विशेषण कृदन्तार्थ विशेषणतापन्न क्रिया से क्रियान्तर का लक्षण व्यावर्तन किया जाता है तद्वाचक पद से सप्तमी होती है' यह उस सूत्र का अर्थ होता है । उक्त 'गोषु दुह्यमानासु गतः' स्थल में गमनादिक्रिया दोहनादिसमानकालीनत्वादिविशेषणपुरस्कार से बोध्यतया अभिप्रेत है (दोहन

क्रिया की समानकालीन गमनक्रिया है यह बतलाया जा रहा है) अतः गमन क्रिया के व्यावर्तक[1] विशेषण दोहनक्रियासमानकालीनत्व में प्रविष्ट तादृशक्रिया (दोहनक्रिया) की भी व्यावर्तकता होती है, इस कारण दोहन क्रिया कर्म से अभेदान्वयी गो आदि पदों से सप्तमी होती है। अतः तादृशसप्तमी का अर्थ सिर्फ़ समानकालीनत्वादि हैं, उसमें दुह्यादि से उपस्थापित दोहनादि का निरूपकत्वेन अन्वय होने से गमनादि में दोहनसमानकालीनत्वादि लब्ध होता है।

यह तो युक्तिसङ्गत नहीं है क्योंकि दुह्यादि से उपस्थापित क्रिया के कृदन्तार्थ विशेषणतया उपस्थित होने के कारण समानकालीनत्वादिविशेषणत्व असम्भव है और प्रकृत्यर्थगवादि से अन्वित अर्थ का सप्तमी के द्वारा बोधन असम्भव है। भाव यह है कि आप गोपदोत्तर सप्तमी का अर्थ समानकालीनत्व कर रहें हैं तथा उसमें दुह धातु से उपस्थाप्य दोहन का निरूपकत्व सम्बन्ध से अन्वय कर हैं । इसमें दो समस्याएँ हैं (1) दोहन रूप अर्थ दुह पदोत्तर विहित कृत् प्रत्यय (शानच्) के अर्थ में विशेषण बनकर उपस्थित है, एकत्र विशेषणतया उपस्थित का दूसरी जगह विशेषणत्वेन अन्वय अव्युत्पन्न होने के कारण कृदर्थ में विशेषणतया उपस्थित दोहन का समकालीनत्व में अन्वय नहीं हो सकता है। (2) **प्रकृतिप्रत्ययौ सहार्थः, ब्रूतः प्रत्ययार्थस्यैव प्राधान्यम्** इस नियम के आधार पर गोपद के प्रत्यय सप्तमी के अर्थ समानकालीनत्व का भान गो से अन्वय हुए बिना नहीं हो सकता है। आप उसमें दोहन क्रिया का अन्वय कर रहे हैं । इस कारण आपका पक्ष ग़लत है।

किन्तु समभिव्याहृत दोहनादि क्रिया ही सप्तम्यर्थ है, उसका क्रियान्तर में समानकालीनत्व सम्बन्ध है, उसमें वर्तमानर्थक कृत् समभिव्याहारस्थल में समानकालीनत्व, **'दोग्धव्यासु गतः'** 'गायें दुही जानेवाली थीं तब गया' इत्यादि भविष्यदर्थककृत्समभिव्याहारस्थल में प्राक्कालीनत्व, **'दुग्धासु गतः'** 'गायें दुही जा चुकी थीं तब गया' इत्यादि अतीतार्थक कृत् स्थल में उत्तरकालीनत्व सम्बन्धविधया भासता है। इस प्रकार **गोषु दुह्यमानासु गतः** इस वाक्य से **'दुह्यमानगोवृत्तिदोहनक्रियासमानकालीनगमनवान्'** 'दुह्यमान गोवृत्ति दोहन क्रिया समानकालीनगमनवाला है' ऐसा बोध होता है। इसी प्रकार **'गोषु दुग्धासु गतः'** इत्यादि स्थलों में भी समझना चाहिए । **'पाथसि पीते तृषा शाम्यति'** 'जल पीने के बाद तृषा शान्त होती है' इत्यादि स्थलों में अतीतार्थक कृत् प्रत्यय (क्त) के समभिव्याहार से कार्यकारणभाव भी सम्बन्धतया भासता है, इत्यादि भी स्वयं समझ लेना चाहिए । इस प्रकार इससे **'पीतजलपानक्रियाजन्यतृषाशमनाश्रयः'** ऐसा बोध होता है।

'गुणान्यत्वे सति सत्त्वात् ' इत्यादौ "सति" इत्यनन्तरम् 'सतः' इत्यध्याहार्यम् , अन्यथा लक्षणीयक्रियाभावेनोक्तसूत्राविषयतया सप्तम्यनुपपत्तेः तत्र चास्धातोरर्थ आधारता, गुणान्यत्वाद्याधारतायाश्च सत्ताधारतायां तद्वन्निष्ठत्वं सम्बन्धतया भासते इति चिन्तामणिकारोक्तसामानाधिकरण्यलाभनिर्वाहः । शयानेन चैत्रेण भुक्तम्' इत्यादौ शयनभोजनादिक्रिययोः

1. विद्यमान होते हुए व्यावर्तक जो होता है उसे विशेषण कहते हैं ।

समानकालीनत्वभानेऽपि तत्र लट्प्रत्ययेनैव समभिव्याहाराद् भोजनादिसमान-कालीनत्वं शयनादिक्रियायां बोध्यतेऽतो न सप्तमी —अन्यतस्तदनभिधाने एव सप्तमीविधानात् ।

—इति सप्तम्यर्थविवेचनं समाप्तम् —

'गुणान्यत्वे सति सत्त्वात् ' 'गुणान्य होते हुए सत्ता से' इत्यादि स्थलों में **सति** के अनन्तर **सतः**[1] (सत् के पञ्चमी के रूप) का अध्याहार करना चाहिए, अन्यथा लक्षणीय क्रिया न होने के कारण उक्त सूत्र **'यस्य च भावेन भावलक्षणम् '** का विषय न होने के कारण सप्तमी की अनुपपत्ति होगी । विशेषणीभूत क्रिया होने पर ही यह सूत्र प्रवृत्त हो सकता है । वह क्रिया है नहीं, इसलिए उस क्रिया का अध्याहार **सतः** पद के अध्याहार से करना चाहिए । उसका अध्याहार करने पर लक्षणीय क्रिया होने से उक्त सूत्र से सप्तमी उपपन्न होती है। उसमें अस् धातु का अर्थ आधारता है। गुणान्यत्वाद्याधारता का सत्ताधारता में तद्वन्निष्ठत्व सम्बन्ध बनकर भासता है इस प्रकार चिन्तामणिकारोक्त उक्त समानाधिकरण्य के लाभ का निर्वाह हो जाता है। इस प्रकार **'गुणान्यत्वे सति (सतः) सत्त्वात् '** से **विद्यमानगुणान्यत्वाधारतावन्निष्ठसत्ताधारता'** का बोध होता है। **'शयानेन चैत्रेण भुक्तम् '** 'सोते हुए चैत्र के द्वारा खाया गया ' इत्यादि स्थलों में शयन भोजनादि क्रियाओं के समानकालीनत्व का भान होने पर भी वहाँ पर लट् प्रत्यय के द्वारा समभिव्याहार होने के कारण भोजनसमानकालीनत्व शयनादिक्रिया में बोधित होता है, अतः सप्तमी नहीं होती है क्योंकि अन्य के द्वारा उसका अनभिधान होने पर सप्तमी का विधान है।

भाव यह है कि यदि समानकालीनत्व का अन्य के द्वारा अभिधान न हो रहा हो तभी समानकालीनत्व अर्थ को बोधित करने के लिए सप्तमी का विधान है। **'गोषु दुह्यमानासु गतः '** में दोहनक्रियासमानकालीनत्व गमनक्रिया में अन्य के द्वारा नहीं बोधित हो सकता है, इस कारण गोपदोत्तर समानकालीनत्व अर्थ में सप्तमी का विधान उक्त सूत्र से किया गया है। **'शयानेन चैत्रेण भुक्तम्'** यहाँ पर शीङ् धातूत्तर लट् के समभिव्याहार के द्वारा ही समानकालीनत्व भासता है। अर्थात् यहाँ पर समानकालीनत्व आकाङ्क्षाभास्य होता है। इस कारण सप्तमी नहीं होती है। **'गोषु दुह्यमानासु गतः '** में वह समानकालीनत्व आकाङ्क्षाभास्य नहीं हो सकता है। पूर्व में शयनकालीनत्व, द्वितीय में दोहनक्रियाविशिष्ट का गमन में अन्वय नहीं होने से वह नहीं सम्भव है।

वस्तुतः तो **'शयानेन चैत्रेण भुक्तम् '** यहाँ पर **'कर्तृकरणयोस्तृतीया' पा॰ सू॰ 2/3/18** से सप्तमी का बाध होने के कारण ही सप्तमी नहीं होती है। किन्तु पाणिनि द्वारा उक्त विधान किस दृष्टि से है, गदाधर ने यहाँ पर उसे ही उद्घाटित किया है।

इस प्रकार श्रीमद्गदाधरभट्टाचार्यविरचित व्युत्पत्तिवाद की श्रीसच्चिदानन्दमिश्रविरचित सुनन्दानामक व्याख्या में सप्तम्यर्थ विवरण पूर्ण हुआ ।

-------:0:-------

1. अस् धातु का शतृ प्रत्यान्त रूप है सत् ।

अथ सम्बोधनप्रथमा

'चैत्र त्वया भुज्यताम्' इत्यादौ "सम्बोधने" इति प्रथमा सम्बोधनमेवाह। तच्चवक्तुरव्यवहितशब्दजन्यबोधाश्रयत्वेनेच्छा। प्रथमार्थतादृशेच्छाया विषयतासम्बन्धेन प्रकृत्यर्थविशेषणतया भानम्।

'चैत्र! त्वया भुज्यताम्' 'चैत्र! तुम खाओ' इत्यादिस्थलों में 'सम्बोधने च' पा॰ सू॰ 2/3/47 के द्वारा होनेवाली प्रथमा सम्बोधन को ही बताती है। और वह सम्बोधन वक्ता की अव्यहितशब्दजन्यबोधाश्रयत्वेन इच्छारूप है। प्रथमार्थ (सम्बोधनप्रथमा के अर्थ) तादृश इच्छा का विषयतासम्बन्ध से प्रकृत्यर्थविशेषणतया भान होता है। इस प्रकार 'चैत्र! त्वया भुज्यताम्' से 'अव्यवहित (त्वया) शब्दजन्यबोधाश्रयत्वेन वक्त्रिच्छाविषय-चैत्रकर्तृकभोजनव्यापारो भवतु' 'अव्यवहित 'त्वया'' शब्द से जन्यबोधाश्रयत्वेन वक्ता की इच्छा का विषय चैत्रकर्तृक भोजनव्यापार हो' ऐसा शाब्दबोध होता है।

अथ सम्बोध्यत्वज्ञानं विनापि 'त्वया भुज्यताम्' इतिवाक्याधीनस्य चैत्रादेर्वाक्यार्थबोधस्य भोजनादिप्रवृत्तेश्च निर्वाहात् 'चैत्र' इत्यादिप्रथमान्तपद प्रयोगो निरर्थक इति चेत्? न सम्बोध्यतानुमापकासाधारणाभिमुख्यादिविरहे विशिष्य चैत्रत्वाद्यवच्छिन्ने युष्मत्पदशक्तिग्रहनिर्वाहस्यैव तत्प्रयोजनत्वात्, चैत्रत्वाद्यवच्छिन्ने सम्बोध्यत्वग्रहं विना सम्बोध्यतावच्छेदकत्वोपलक्षित धर्मावच्छिन्नवाचकतत्पदस्य विशिष्य चैत्रत्वाद्यवच्छिन्ने शक्तेर्निश्चेतु-मशक्यत्वात्।

लेकिन सम्बोध्यत्वज्ञान के विना भी 'त्वया भुज्यताम्' इस वाक्य के अधीन चैत्रादि को वाक्यार्थ बोध और चैत्रादि की भोजनादि प्रवृत्ति का निर्वाह होने के कारण 'चैत्र' इत्यादि प्रथमान्त पद प्रयोग निरर्शक है? तो ऐसा नहीं है क्योंकि सम्बोध्यतानुमापक असाधारण आभिमुख्य आदि का विरह होने पर विशेष रूप से चैत्रत्वादि से अवच्छिन्न (विशिष्ट) में युष्मत् पदशक्तिग्राहकतानिर्वाह का ही सम्बोधनप्रयोजनत्व है चैत्रत्वाद्यवच्छिन्न में सम्बोध्यत्वग्रह के विना सम्बोध्यतावच्छेदकत्वोपलक्षित धर्मावच्छिन्नवाचक उस पद (युष्मत्पद) की विशेष करके चैत्रत्वाद्यवच्छिन्न में शक्ति का निश्चय करना अशक्य है।

अभिप्राय यह है कि सम्बोध्यतावच्छेदकत्वोपलक्षितधर्मावच्छिन्न में युष्मत् पद की शक्ति स्वीकारी जाती है, इस कारण जब तक ये पता नहीं चलेगा कि चैत्रत्वाद्यवच्छिन्न का सम्बोध्यत्व है, तब तक युष्मत् पद की शक्ति से चैत्र का बोध नहीं होगा। चैत्र की सम्बोध्यता का अनुमापक असाधारण अभिमुख्य आदि तो है नहीं, अभिमुख होने पर तो यूँ भी पता चल सकता था कि चैत्र को सम्बोधित किया जा रहा है। इसलिए सम्बोधन 'चैत्र' पद के प्रयोग का प्रयोजन यही है कि सम्बोधन प्रयोग कर देने पर चैत्र आदि का असाधारण आभिमुख्य न होने पर भी युष्मत् पद की शक्ति का चैत्र में ग्रहण हो जाता है।

न चैवमपि यत्रानन्तरवाक्यं न युष्मच्छब्दघटितम् 'चैत्रात्र घटोऽस्ति' इत्यादौ तत्र सम्बोधनपदसार्थक्यं दुरुपपादमेवेति वाच्यम्; तत्रापि तत्तद्वाक्ये स्वीयवाक्यार्थबोधार्थोच्चरितत्वरूपतात्पर्यनिश्चयार्थमेव तत्पदप्रयोगात्। तादृशतात्पर्यनिश्चयं विना श्रुतादपि तत्तद्वाक्याच्चैत्रादेः शाब्दबोधासम्भवात्। चैत्रस्याश्वानयनादिबोधाय मैत्रस्य च लवणानयनादिबोधायोच्चरितात् 'सैन्धवमानय' इति वाक्याद् वैपरीत्येन चैत्रमैत्रयोस्तत्तद्वाक्यार्थबोधवारणाय तदीयतदर्थबोधे तदीयतद्बोधार्थोच्चरितत्वरूपतात्पर्यनिश्चयस्य हेतुताया आवश्यकत्वात्।

यदि कहो कि यूँ भी जहाँ पर सम्बोधन के अनन्तर आनेवाला वाक्य युष्मद् शब्द से घटित नहीं है, जैसे 'चैत्र! अत्र घटोऽस्ति' 'चैत्र !घट यहाँ है' इत्यादि स्थलों में, वहाँ पर, सम्बोधनपद की सार्थकता दुरुपपाद ही होगी। क्योंकि युष्मत् पद का शक्तिग्रह कराना ही सम्बोधनपद का प्रयोजन है और युष्मत् पद उक्तस्थलों में है ही नहीं। तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि वहाँ पर भी तत्तद् वाक्य में स्वीयवाक्यार्थबोधार्थोच्चरितत्वरूप तात्पर्य निश्चय के लिए ही सम्बोधनपद का प्रयोग किया जाता है। वैसे तात्पर्यनिश्चय के विना सुनते हुए भी तत्तद् वाक्य से चैत्रादि को शाब्दबोध नहीं सम्भव होता है। अभिप्राय यह है कि जब तक चैत्र को यह पता नहीं चलेगा कि यह वाक्य मेरे लिए प्रयुक्त है तब तक चैत्र को उस वाक्य से शाब्दबोध नहीं होगा। यही ज्ञान कराने के लिए ही सम्बोधनपद का प्रयोग किया जाता है। चैत्र को अश्वानयन का बोध कराने के लिए और मैत्र को लवणानयन बोध कराने के लिए उच्चरित 'सैन्धवमानय' 'सैन्धव लाओ ' इस वाक्य से वैपरीत्येन चैत्र और मैत्र को वाक्यार्थबोध का वारण करने के लिए (चैत्र को लवणानयन के बोध का और मैत्र को अश्वानयन के बोध का वारण करने के लिए) तदीय तदर्थ बोध में तदीयतद्बोधार्थोच्चारितत्व रूप तात्पर्यनिश्चय की हेतुता आवश्यक है। तदीयतद्बोधार्थोच्चरितत्व रूप तात्पर्यनिश्चय होने के लिए सम्बोधनप्रयोग आवश्यक है। सम्बोधन प्रयोग करने पर ही चैत्र को अश्वानयन बोधार्थोच्चरितत्व और मैत्र को लवणानयनबोधार्थोच्चरितत्व का ज्ञान हो सकता है। इसलिए सम्बोधन प्रयोग सार्थक होता है।

''संख्यातिरिक्तसुबर्थः प्रकृत्यर्थविशेष्यतयैव भासते'' इति नियमे संख्याभेदवत् सम्बोधनभेदोऽपि निवेशनीयः, अतः सम्बोधनस्य प्रकृत्यर्थविशेषणतया भानेऽपि न क्षतिः। सम्बोधनस्य प्रकृत्यर्थविशेष्यतयैव वा भानमुपेयम्।

वस्तुतो नामार्थस्य प्रत्ययार्थमन्तराकृत्वैव क्रियान्वय इत्यनुरोधात् सुबर्थकर्मत्वादेः प्रकृत्यर्थविशेष्यतयैव भानमुपेयते न तूक्तनियमानुरोधेन–उक्तनियमे मानाभावात्। सम्बोधनविभक्त्यन्तप्रकृत्यर्थस्यान्यत्र विशेषणतयाऽन्वयात् सम्बोधनस्य विशेष्यतया भानं निर्युक्तिकमिति कृतं विस्तरेण।

—इति सम्बोधनप्रथमार्थविवेचनं समाप्तम् —

'संख्या से अतिरिक्त सुबर्थ प्रकत्यर्थविशेष्यतया (प्रकृत्यर्थ में विशेष्य बनकर) ही भासता है' इस नियम में संख्याभेदवत् सम्बोधनभेद भी निवेशनीय है अर्थात् **'संख्या और सम्बोधन से अतिरिक्त सुबर्थ प्रकृत्यर्थ विशेष्यतया भासता है'** ऐसा नियम मानना चाहिए । इसलिए सम्बोधन का प्रकृत्यर्थ में विशेषणतया भान होने पर भी क्षति नहीं है, कोई नियमभङ्ग नहीं होता है। अथवा सम्बोधन का प्रकृत्यर्थ विशेष्यतया ही भान स्वीकारना चाहिए ।

वस्तुतः 'नामार्थ का क्रिया में अन्वय प्रत्ययार्थ को बीच में करके ही होता है' (क्योंकि नामार्थ और क्रियाधात्वर्थ का साक्षादन्वयबोध अव्युत्पन्न है) इसी के अनुरोध से सुबर्थकर्मत्वादि का प्रकृत्यर्थविशेष्यतया भान स्वीकारा जाता है न कि उक्त नियम के (संख्यातिरिक्त सुबर्थ का प्रकृत्यर्थविशेष्यतया ही भान होता है इस नियम के) अनुरोध से क्योंकि उक्त नियम में कोई प्रमाण नहीं है। सम्बोधनविभक्त्यन्त प्रकृत्यर्थ का अन्यत्र विशेषणतया अन्वय होता है इसलिए सम्बोधन का प्रकृत्यर्थविशेष्यतया भान युक्तिरहित है, इसलिए विस्तार से कहने की आवश्यकता नहीं है। प्रकृत्यर्थविशेष्यतया सम्बोधन का भान मानने पर एकत्र विशेषणतया अन्वित का अन्यत्र विशेषणतया अन्वय व्युत्पत्तिविरुद्ध होने के कारण सम्बोधन में विशेषणतया अन्वित प्रकृत्यर्थ का अन्यत्र भोजनादिव्यापार में विशेषणतया अन्वय सम्भव नहीं हो सकेगा ।

इस प्रकार श्रीमद्गदाधरभट्टाचार्य विरचित व्युत्पत्तिवाद की श्रीसच्चिदानन्दमिश्र विरचित सुनन्दानामक हिन्दी व्याख्या में सम्बोधनप्रथमार्थ विवेचन पूर्ण हुआ ।

-------:0:-------

अथ स्त्रीप्रत्ययाः

प्रातिपदिकप्रकृतिकाः "स्त्रियाम्" इत्यनेन विहिताष्टाबादयः क्वचित्स्त्रीत्वं प्रकृत्यर्थविशेषणतया बोधयन्ति—'अजाश्वा शूद्रा श्यामा चपला ब्राह्मणी गौरी सुकेशी गर्भिणी' इत्यादौ । स्त्रीत्वञ्च योनिमत्त्वम् ।

न च स्त्रीपरपदात् साधुत्वार्थष्टाबादिप्रत्ययो न तु स्त्रीत्वं तस्यार्थः, क्वचित् स्त्रीत्वबोधश्च स्त्रीप्रत्ययप्रकृतितात्पर्यविषयत्वरूपलिङ्गज एवेति वाच्यम्; खट्वादौ व्यभिचारेण तादृशहेतोः स्त्रीत्वासाधकत्वात्, प्राणित्वेन विशेषणेऽपि देवतादौ व्यभिचारात् ।

वस्तुतस्तु अजवत्यपि 'अजा नास्ति' इत्यादिप्रयोगात् स्त्रीत्वस्य नञर्थान्वयितावच्छेदकतया भानमावश्यकम्, अन्यथा पुंसाधारणजातिविशेषाद्यवच्छिन्नाभावस्य बाधेन तादृशप्रयोगस्य प्रामाण्यानुपपत्तेः ।

प्रातिपदिक प्रकृतिक 'स्त्रियाम्' पा० सू० 4/1/3 के अधिकार से विहित टाप् आदि कहीं पर स्त्रीत्व को प्रकृत्यर्थविशेषणतया बोधित करते हैं—'अजा, अश्वा, शूद्रा, श्यामा, चपला, ब्राह्मणी, गौरी, सुकेशी, गर्भिणी' इत्यादि स्थलों में । स्त्रीत्व तो योनिमत्त्व ही है।

यदि कहो स्त्रीपर (स्त्रीबोधक) पद से साधुत्वार्थक ही टाप् आदि प्रत्यय होते हैं स्त्रीत्व उन प्रत्ययों का अर्थ नहीं होता है। कहीं पर स्त्रीत्व का बोध स्त्रीप्रत्यय प्रकृतितात्पर्यविषयत्वरूपलिङ्ग से ही होता है। अभिप्राय यह है कि टाप् आदि प्रत्यय यद्यपि स्त्रीत्वार्थक नहीं होते हैं फिर भी उनका विधान इस कारण किया गया है कि यदि उनका विधान नहीं किया जायेगा तो स्त्रीबोधनार्थ प्रयुक्त उन शब्दों का असाधुत्व हो जायेगा, असाधुत्व की आपत्ति आयेगी । इसलिए उनका प्रयोग करने पर जो स्त्रीत्व का बोध होता है वह स्त्रीत्व टाप् आदि का अर्थ नहीं है बल्कि वह स्त्रीत्वबोध मानस अनुमित्यात्मक है, अनुमिति होती है 'अत्र स्त्रीत्वं स्त्रीप्रत्ययप्रकृतितात्पर्यविषयत्वात्' इस से ही स्त्रीत्व का बोध होता है।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि खट्वा आदि स्थलों में व्यभिचार होने के कारण तादृश हेतु का स्त्रीत्वसाधकत्व नहीं है। भाव यह है खट्वा में भी स्त्रीप्रत्यय प्रकृतितात्पर्यविषयत्व है किन्तु स्त्रीत्व नहीं है, खट्वापद में स्त्रीत्वबोधकत्व नहीं है। इसलिए यह हेतु स्त्रीत्व का साधक नहीं है, यदि प्राणित्वेन विशेषण दे दें अर्थात् प्राणित्वे सति स्त्रीप्रत्ययप्रकृतितात्पर्यविषयत्वात् इस प्रकार हेतु बनाएँ तो भी देवता आदि पदों में व्यभिचार हो जायेगा । देवता पद स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त होता है स्वार्थक तल् प्रत्यय यहाँ पर विहित है, देव एव देवता इस अर्थ में देवता सिद्ध होता है, देवतापद से इन्द्रादि का बोध होता है, इन्द्र में प्राणित्व भी है और स्त्रीप्रत्यय (तल्) प्रकृति देवपदतात्पर्यविषयत्व है किन्तु स्त्रीत्व नहीं है। अतः व्यभिचार होगा, यह हेतु भी स्त्रीत्व साधन में असमर्थ है।

वस्तुतः तो अजवत् स्थल में भी 'अजा नास्ति' 'बकरी नहीं है' ऐसे प्रयोग होने के कारण स्त्रीत्व का नञर्थान्वयितावच्छेदकतया भान आवश्यक है (उसके मानस अनुमित्यात्मक बोध से काम नहीं चलेगा) अन्यथा पुंसाधारण जातिविशेषादि अजत्वादि से अवच्छिन्न के अभाव का उक्त स्थल में बाध होने के कारण तादृश प्रयोग के प्रामाण्य की अनुपपत्ति है। 'अजा नास्ति' प्रयोग के प्रामाण्य का अनुपपत्ति होगी । भाव यह है कि यदि यहाँ पर स्त्रीत्वविशिष्ट अजत्वजात्यवच्छिन्न का अभाव बोधित हो, तभी अजाधिकरण में ऐसी प्रतीति प्रमाण हो सकती है। यदि अजत्वावच्छिन्न का ही अभाव बोधित हो तब नहीं प्रमाण हो सकती है। इसलिए टाप् आदि प्रत्यय के अर्थभूत स्त्रीत्व का ही अजादिविशेषणतया भान स्वीकारना चाहिए ।

न च प्रातिपदिकार्थ एव स्त्रीत्वं तस्य च तदर्थ एव जात्यादिमति विशेषणत्वेनान्वयः स्त्रीप्रत्यास्तु द्योतका एव । अतएव–

"स्वार्थो द्रव्यं च लिङ्गञ्च संख्या कर्मादिरेव च ।
अमी पञ्चैव नामार्थास्त्रयः केषांचिदग्रिमाः ॥"

इति शाब्दिकानां कारिकापि सङ्गच्छते । तत्र स्वार्थः=जात्यादिरूपो गवादिपदमुख्यार्थः, द्रव्यम् = गवादिरूपस्तद्धर्मी, तन्मत औपचारिको गवादिपदार्थः लिङ्गस्य प्रातिपदिकार्थत्वमावश्यकमेव–'नात्र ब्राह्मणोऽपितु ब्राह्मणी' इत्यादौ पुँस्त्वबोधकपदान्तराभावेन तद्बोधानुपपत्तेः । ब्राह्मणादि-पदाच्च जात्यादेर्द्रव्यस्य च भानं नियतमेव, लिङ्गभानं तात्पर्ययोग्यताज्ञानाधीनं क्वाचित्कम् –'ब्राह्मणी' इत्यादौ पुंस्त्वाद्यबोधादिति वाच्यम्; उक्तयुक्त्या पुंस्त्वस्य प्रातिपदिकार्थत्वेऽप्यनन्तानां प्रातिपदिकपदानां स्त्रीत्वार्थकत्वे गौरवाल्लाघवेनाल्पीयसां स्त्रीप्रत्ययानां तदर्थकत्वकल्पनौचित्यात् । अत एव स्त्रीत्वसंग्रहाय "प्रातिपदिकार्थ" इत्यादिसूत्रे लिङ्गग्रहणम् , अन्यथा प्रातिपदिकार्थ एव तदन्तर्भावेण पृथक् तदुपादानानुपपत्तेः ।

यदि कहो कि स्त्रीत्व प्रातिपदिकार्थ ही है और उसका (स्त्रीत्वरूप प्रातिपदिकार्थ का) प्रातिपदिक के ही अर्थ अजत्वादि जातिमत् में विशेषणत्वेन अन्वय होता है स्त्रीप्रत्यय तो द्योतक हैं[1]। इसीलिए 'स्वार्थो........अग्रिमाः' 'स्वार्थ, द्रव्य, लिङ्ग, संख्या और कर्मादि ये पाँच ही प्रातिपदिकार्थ है कुछ लोगों के मत में शुरू के तीन ही प्रातिपदिकार्थ हैं' शाब्दिकों की यह कारिका भी सङ्गत होती है। (स्त्रीत्वादि को प्रातिपदिकार्थ न मानने पर शाब्दिकों की यह कारिका सङ्गत नहीं होती है) उसमें स्वार्थ है जात्यादिरूप गो आदिपदों का मुख्यार्थ। द्रव्य है गो आदि रूप जाति का आश्रय । उनके (वैयाकरणों के) मत में गो आदि पदार्थ औपचारिक (लाक्षणिक) ही हैं । लिङ्ग का प्रातिपदिकार्थत्व आवश्यक ही है क्योंकि 'नात्र

1. यह पक्ष वैयाकरणों का है। परमलघुमञ्जूषा में नागेश भट्ट कहते हैं —'लिङ्गमपि नामार्थः, प्रत्ययानां द्योतकत्वात् , अन्यथा वागुपानदादिशब्देभ्य इयं तव वागिति स्त्रीत्वबोधानापत्तेः ।

पृ. 220 परमलघुमञ्जूषा (तत्त्वप्रकाशिका सहित) चौ. सं. सी. आ. वाराणसी 1974

ब्राह्मणोऽपितु ब्राह्मणी' 'यहाँ पर ब्राह्मण नहीं ब्राह्मणी है' यहाँ पर पुंस्त्व बोधक पदान्तर न होने के कारण पुंस्त्वबोध की अनुपपत्ति होगी । भाव यह है कि यहाँ पर पुंस्त्वविशिष्ट ब्राह्मण का अभाव बोधित होता है, पुंस्त्व का बोधक यदि प्रातिपदिक नहीं है तो पुंस्त्व का बोध किसके द्वारा हो रहा है? इसलिए लिङ्ग को भी प्रातिपदिकार्थ मानो । ब्राह्मणादि पदों से ब्राह्मणत्वादि जाति और द्रव्य का भान नियत ही है तात्पर्ययोग्यताज्ञान के अधीन लिङ्ग का भान कहीं-कहीं होता है क्योंकि '**ब्राह्मणी**' इत्यादि स्थलों में पुंस्त्व का वोध नहीं होता है। तो ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि उक्तयुक्ति से '**नात्र ब्राह्मणोऽपितु ब्राह्मणी**' इस प्रयोग के प्रामाण्य के अनुरोध से पुंस्त्व की प्रातिपदिकार्थता होने पर भी अनन्त प्रातिपदिकपदों की स्त्रीत्वार्थकता स्वीकारने में गौरव होने के कारण लाघवात् थोड़े से स्त्रीप्रत्ययों की ही स्त्रीत्वार्थकता स्वीकारना उचित है। इसीलिए स्त्रीत्वादि के प्रातिपदिकार्थ न होने के कारण ही स्त्रीत्वादि का सङ्ग्रह करने के लिए '**प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा**' **पा॰सू॰ 2/3/46** सूत्र में लिङ्ग ग्रहण किया गया है। अन्यथा स्त्रीत्वदि का भी प्रातिपदिकार्थ में ही अन्तर्भाव होने के कारण अलग से उसके लिङ्ग पद के) उपादान की अनुपपत्ति होगी वैयाकरण भी उक्त सूत्र में प्रातिपदिकार्थ का अर्थ नियतोपस्थितिक करते हैं, चूँकि लिङ्ग की नियतोपस्थिति नहीं होती है। अतः वह प्रातिपदिकार्थ होते हुए भी इस प्रकार पारिभाषिक प्रातिपदिकार्थ नहीं बनता है।

क्वचित् स्त्रीप्रत्ययः स्त्रीत्वं भार्यात्वेन प्रकृत्यर्थविशेष्यतया बोधयति– 'आचार्याणी' 'मानवी' 'शूद्री' इत्यादौ । भार्यात्वं सम्बन्धविशेषः तत्रैव च निरूपकत्वेन प्रकृत्यर्थान्वयः । खट्वाटवीदेवतादिपदे च स्त्रीप्रत्यया नार्थ बोधकाः–तत्र प्रकृत्यर्थे योनिमत्त्वरूपस्त्रीत्वस्यायोग्यतयाऽनन्वयात् ।

कहीं पर स्त्रीप्रत्यय स्त्रीत्व को भार्यात्वेन प्रकृत्यर्थ विशेष्यतया बोधित करता है '**आचार्याणी**''**मानवी**''**शूद्री**' इत्यादि स्थलों में । भार्यात्व सम्बन्ध विशेष है और उसी में निरूपकत्व सम्बन्ध से प्रकृत्यर्थ का अन्वय होता है। (इस प्रकार '**आचार्यनिरूपकभार्यात्वविशिष्टा स्त्री**' का आचार्याणी पद से बोध होता है, **अजा** आदि से से स्त्रीत्वविशिष्ट अजत्वावच्छिन्न का बोध होता है) खट्वा, अटवी, देवता आदि पदों में स्त्रीप्रत्यय अर्थबोधक नहीं होते हैं (साधुत्वमात्रार्थक होते हैं) क्योंकि वहाँ पर प्रकृति के अर्थ खाट, जंगल, देव आदि में योनिमत्त्व रूप स्त्रीत्व का अयोग्य होने के कारण अन्वय नहीं ह्वोता है।

न च ''शब्दगतं स्त्रीत्वादिधर्मान्तरमेव तत्र परम्परासम्बन्धेनार्थगततया भासते'' इति श्रीपतिदतोक्तं युक्तम्; तद्भाने मानाभावात् । ''यू स्त्र्याख्यौ नदी'' इत्यत्र स्त्र्याख्यपदं स्त्रीलिङ्गशब्दपरं न तु स्त्रीत्वविशिष्टार्थकशब्दपरं तेनाटव्यादिशब्दानां स्त्रीत्वविशिष्टाबोधकत्वेऽपि न नदीसंज्ञानुपपत्तिः । अत एव श्रीभूप्रभतीनां स्त्रीप्रत्ययान्तात्वाभावेन स्त्रीत्वविशिष्टाबोधकत्वेऽपि नदीसंज्ञाप्रसक्त्या ''नेयङुवङस्थानौ'' इति निषेधसङ्गतिः ।

यदि कहो कि "शब्दगत स्त्रीत्वादि धर्मान्तर ही है जो कि उसमें (खट्वा आदि में) परम्परा सम्बन्ध से अर्थगततया भासता है[1]" यह श्रीपतिदतोक्त युक्त है तो यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि शब्दगत धर्मान्तररूप स्त्रीत्वादि का परम्परया अर्थगततया भान होने में कोई भी प्रमाण नहीं है। **'यू स्त्र्याख्यौ नदी' पा.सू.1/4/3** में स्त्र्याख्यपद स्त्रीलिङ्गकशब्दपरक है न कि स्त्रीत्वविशिष्टार्थक शब्दपरक इस कारण अटवी आदिशब्दों के स्त्रीत्वविशिष्ट का बोधक न होने पर भी नदी संज्ञा की अनुपपत्ति नहीं होती है। इसी कारण ही (स्त्र्याख्यपद के स्त्रीलिङ्गकशब्दपरक होने के कारण ही श्री, भू प्रभृति शब्दों के स्त्रीप्रत्ययान्त न होने से स्त्रीत्वविशिष्ट का बोधक न होने पर भी नदी संज्ञा की प्रसक्ति होने के कारण **'नेयङुवङ्स्थानावस्त्री' पा॰ सू॰ 1/4/4** से निषेध की सङ्गति होती है स्त्र्याख्यपद के स्त्रीत्वविशिष्टार्थक शब्दपरक होने पर तो न ही अटवी आदि की नदी संज्ञा हो पाती, न ही श्री, भू आदि की नदी संज्ञा प्राप्त होती जिससे इस सूत्र की सार्थकता हो ।

न चैवं 'सेनान्ये स्त्रियै' इत्यादावपि नदी संज्ञास्यात् सेनान्यादिशब्दस्य विशेष्यनिघ्नतया स्त्रीलिङ्गत्वादिति वाच्यम् ; प्रयोगानुसारेण विशेष्यसमभिव्याहारानधीनायाः स्त्रीलिङ्गताया विवक्षणादिति संक्षेप ।

–इति स्त्रीप्रत्ययविवेचनं समाप्तम् –

यदि कहो कि इस प्रकार से तो **'सेनान्ये स्त्रियै'** 'सेनानी स्त्री के लिए' इत्यादि स्थलों में सेनानी आदि की नदी संज्ञा होनी चाहिए क्योंकि सेनानी आदि शब्द विशेष्यनिघ्न होने के कारण स्त्रीलिङ्गक हैं । विशेष्यनिघ्न का अर्थ विशेष्याश्रित, विशेष्य के लिङ्ग के अनुसार जिनका लिङ्ग होता है यहाँ पर विशेष्य स्त्रीपद के स्त्रीलिङ्गक होने के कारण सेनानी भी स्त्रीलिङ्ग हो गया । अतः नदी संज्ञा होनी चाहिए, तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि प्रयोग के अनुसार विशेष्यसमभिव्याहारानधीन स्त्रीलिङ्गता का यहाँ पर विवक्षण है, विशेष्यसमभिव्याहारानधीन स्त्रीलिङ्गता होने पर नदी संज्ञा होगी । सेनानी की स्त्रीलिङ्गता विशेष्य समभिव्याहाराधीन है। अतः उसकी नदी संज्ञा नहीं होगी । यह संक्षेप हुआ ।

इस प्रकार श्रीमद्गदाधरभट्टाचार्य विरचित व्युत्पत्तिवाद की श्री सच्चिदानन्दमिश्र विरचित सुनन्दाव्याख्या में स्त्रीप्रत्ययविवरण समाप्त हुआ ।

-----:0:-----

---

1. कुछ ऐसा ही नागेशभट्ट का भी प्रतिपादन है–'अयमितिव्यवहारविषयत्वं पुंस्त्वं, इयमितिव्यवहारविषयत्वं स्त्रीत्वं, इदमितिव्यवहारविषयत्वं क्लीबत्वम् इति विलक्षणं शास्त्रीयं स्त्रीपुन्नपुंसकत्वम्'
पृ॰ 220 परमलघुमञ्जूषा

अथ तद्धितप्रत्ययाः

तद्धितप्रत्यया अपि नामप्रकृतिकाः क्वचित् प्रकृत्यर्थेन स्वार्थैकदेशस्य क्वचिच्च तेन स्वार्थस्यान्वयबोधं जनयन्ति । तत्र 'गार्गिः' इत्यत्रापत्यार्थ विहिततद्धितार्थस्यैकदेशे जन्यत्वे निरूपकतया प्रकत्यर्थगर्गाद्यन्वयः ।'गार्ग्यः' इत्यादौ तद्धितार्थगोत्रापत्यैकदेशपुत्रत्वघटकजन्यत्वे तथा तदन्वयः। 'गार्ग्यायणः' इत्यादौ तद्धितार्थस्य युवापत्यस्यैकदेशे जन्यत्वे गार्ग्यस्य ''जीवति तु वंशे युवा'' इति परिभाषितयुवार्थघटकजीवने च गर्गादेरन्वयस्तेन 'गर्गादिजीवनकालीनो गर्गगोत्रापत्यस्यापत्यमयम् ' इति बोधः।

तद्धित प्रत्यय भी नाम प्रकृतिक हैं (प्रातिपदिक से विहित होते हैं) कहीं पर प्रकृत्यर्थ के साथ स्वार्थैकदेश का और कहीं पर प्रकृत्यर्थ के साथ स्वार्थ का अन्वयबोध उत्पन्न करते हैं । उसमें (तद्धितप्रत्ययों में) 'गार्गिः' यहाँ पर अपत्य अर्थ में विहित तद्धित (इञ्) प्रत्यय के अर्थ अपत्य के (तज्जन्यशरीरत्व ही अपत्यत्व है, उसके) एकदेश जन्यत्व में प्रकृत्यर्थ गर्गादि का अन्वय होता है। इस प्रकार गर्गनिरूपितजन्यताश्रय शरीर का बोध गार्गि पद से होता है। 'गार्ग्यः' इत्यादि स्थलों में तद्धित (यञ्) प्रत्यय के अर्थ गोत्रापत्य के एकदेश पुत्रत्व घटक जन्यत्व में गर्ग पदार्थ का अन्वय होता है। गार्ग्यपद से गर्ग के पौत्र का बोध होता है, गोत्रापत्य का 'अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम् ' पा॰सू॰ 4/1/165 इस परिभाषा के अनुसार पौत्र आदि ही अर्थ होता है पुत्र नहीं । इस प्रकार गोत्रापत्यत्व तज्जन्यशरीरजन्यशरीरत्व ही है या पुत्रपुत्रत्व है। दोनों एक ही चीज़ें हैं । इसमें पुत्रत्व घटकजन्यत्व में गर्गपदार्थ का अन्वय होकर 'गर्गजन्यशरीरजन्यशरीर' विषयक बोध गार्ग्यपद से होता है। 'गार्ग्यायणः' इत्यादि स्थलों में तद्धित प्रत्यय (फक्) के अर्थ युवापत्य के एकदेश जन्यत्व में गार्ग्य का और 'जीवति तु वंशे युवा' पा॰ सू॰ 4/1/166 से परिभाषित युवार्थ घटकीभूत जीवन में गर्गादि का अन्वय होता है, इस प्रकार 'गर्गादिजीवनकालीन गर्गगोत्रापत्य का यह अपत्य है' ऐसा अर्थ बोधित होता है। गर्ग के जीवित रहने पर गर्ग के पौत्र का पुत्र गार्ग्यायणपद से अभिहित होता है, गर्ग के मृत होने पर तो उसे भी गार्ग्य' ही कहा जाता है। इस कारण गार्ग्यायण शब्द प्रयोग करने पर गार्ग्यपदोत्तर फक् प्रत्यय के अर्थ युवापत्य के एकदेश जन्यत्व में गार्ग्य का अन्वय होकर और गर्ग जीवन काल में ही उसे युवापत्य कहे जाने के कारण उसी अर्थ में फक् का विधान होने से गर्ग का जीवनकालीनत्व भी युवापत्य (गर्ग के प्रपौत्र) में बोधित होता है।

'माञ्जिष्ठं वासः' इत्यत्र ''तेन रक्तम् '' इत्यर्थे तद्धितो विहितः। तत्सम्बन्धाधीनतदीयरूपारोपविषयत्वं तेन-रक्तत्वम् । 'शङ्खः पीतः' इत्यारोपमादाय शङ्खादेरारोप्यपीतिमाद्याश्रयहरितालादिरक्तत्वस्य वारणायाधीनान्तमारोपे विशेषणम् । पटादेश्चक्षुरादिना रक्तत्वस्य वारणाय तदीयत्वं रूपविशेषणम्।

अत्र च रागकरणस्य मञ्जिष्ठादेः प्रकृत्यर्थस्य तद्धितार्थैकदेशसम्बन्धे प्रतियोगितया रूपे चाश्रयतयाऽन्वयः ।

'माञ्जिष्ठं वासः' इत्यादि स्थलों में **'तेन रक्तं रागात्' पा० सू० 4/2/1** इस अर्थ में तद्धित प्रत्यय विहित है। तेन रक्तत्व (उससे रक्तत्व) तत्सम्बन्धाधीन तदीयरूपारोपविषयत्व (ही) है। **'माञ्जिष्ठं वासः'** में मञ्जिष्ठ (मजीठ) के सम्बन्ध के अधीन मजीठ के रूप के आरोप का विषयत्व वस्त्र में है, अतः मञ्जिष्ठपद से रक्तार्थक तद्धित प्रत्यय होता है। **'शङ्खः पीतः'** इस आरोप को लेकर शङ्ख आदि के आरोप्यपीतिमाद्याश्रय हरिताल (पीलेरंग के कबूतर) के द्वारा रक्तत्व (रंगे होने) का वारण करने के लिए अधीनान्त विशेषण आरोप में दिया गया है। पटादि का चक्षुरादि से रक्तत्व का वारण करने के लिए तदीयत्व रूप में विशेषण है। आशय यह है कि रंग मजीठ में है, मजीठ के रूप के आरोप का विषय वस्त्र होने के कारण मञ्जिष्ठ पद से रक्तार्थक तद्धित प्रत्यय का विधान किया जाता है। किन्तु यहाँ पर प्रश्न यह है कि उससे रक्तत्व का अर्थ 'तत्सम्बन्धाधीन तदीयरूपारोपविषयत्व' क्यों किया जा रहा है, केवल तदीयरूपारोपविषयत्व क्यों नहीं किया जा रहा है? इसका समाधान यह है कि केवल इतना कहने पर चूँकि पीले कबूतर के रूप के आरोप का विषय शङ्ख होता है, इसलिए शङ्ख में हरिताल (पीले कबूतर) से रक्तत्व आ जायेगा । तथा इस कारण **'मञ्जिष्ठेन रक्तं वासः = माञ्जिष्ठं वासः'** की तरह **'हरितालेन रक्तः शङ्खः = हारितालः शङ्खः'** प्रयोग होने लगेगा । अतः तत्सम्बन्धाधीन कहा है। वस्त्र का मजीठ से रक्तत्व इस कारण है क्योंकि मजीठ सम्बन्ध के अधीन मजीठ के रूप के आरोप का विषयत्व वस्त्र में है। इसी के साथ पीलिया होने पर सफ़ेद वस्त्र भी पीला नज़र आता है, इस कारण पटादि में चक्षुरादि से रक्तत्व की आपत्ति होकर **'चाक्षुषं वासः'** प्रयोग होना चाहिए । इसलिए तदीय विशेषण दिया, चक्षु से पट के पीला दिखने पर भी चाक्षुषरूपारोपविषयत्व वस्त्र में नहीं प्रतीत होता है। इस कारण वैसा प्रयोग नहीं होता है। मजीठ से रक्तत्व स्थल में तो मञ्जिष्ठरूपारोपविषयत्व वस्त्र में प्रतीत होता है।

यहाँ पर रागकरण मञ्जिष्ठ आदि प्रकृति के अर्थ का तद्धितार्थैकदेशसम्बन्ध में प्रतियोगितया और रूप में आश्रयतया अन्वय होता है। इस प्रकार **'मञ्जिष्ठप्रतियोगिकसम्बन्धाधीन, मञ्जिष्ठाश्रितरूपारोविषयः पटः'** 'मञ्जिष्ठप्रतियोगिक सम्बन्ध के अधीन मञ्जिष्ठाश्रितरूप के आरोप का विषय पट' ऐसा बोध **'माञ्जिष्ठं वासः'** से होता है।

'शूल्यम्' 'उख्यम्' इत्यादौ तद्धितार्थसंस्कृतैकदेशे पाकादिरूपसंस्कारे शूलोखादेः प्रकृत्यर्थस्याधिकरणत्वेनान्वयः ।

'पौषी रात्रिः' इत्यादौ नक्षत्रयुक्तकालार्थे तद्धितः, कालस्य नक्षत्रयुक्तत्वञ्च च तन्नक्षत्रराशिभोगाश्रयत्वं तदेकदेशे शशिभोगे कर्मतया तन्नक्षत्रान्वयः ।

'शूल्यम्' 'उख्यम्' इत्यादि स्थलों में तद्धितार्थ संस्कृतैकदेश में पाकादिरूपसंस्कार में शूल, उखा आदि प्रकृत्यर्थ का अधिकरणत्वेन अन्वय होता है। **'शूले संस्कृतम्'** इस अर्थ में शूलपद से और **'उखायां संस्कृतम्'** अर्थ में उखापद से **'शूलोखाद्यत्' पा० सू० 4/2/17** से

यत् प्रत्यय करके शूल्य और उख्य शब्दों की निष्पत्ति होती है। शूल का अर्थ शूल और उखा का अर्थ पात्र विशेष है। उसमें संस्कृत को शूल्य और उख्य कहते हैं । इस प्रकार शूलाधिकरणक संस्कारवत् और उखाधिकरणक संस्कारवत् ऐसा बोध हुआ करता है ।

'पौषी रात्रिः' इत्यादि स्थलों में नक्षत्रयुक्त काल अर्थ में तद्धित (अण्) प्रत्यय का विधान किया गया है। तथा काल का नक्षत्रयुक्तत्व तन्नक्षत्रशशिभोगाश्रयत्व है। यहाँ पर पुष्यपद से **'नक्षत्रेण युक्तः कालः'** पा॰सू॰ 4/2/3 के द्वारा **'पुष्येण युक्तः कालः'** इस अर्थ में अण् प्रत्यय होता है। इसलिए इस प्रत्यय का अर्थ होता है नक्षत्रयुक्तकाल, तथा तन्नक्षत्रचन्द्रभोगाश्रयत्वरूप होता है काल का नक्षत्रयुक्तत्व । इसीलिए वार्तिककार ने कहा है कि **'नक्षत्रेण चन्द्रमसो योगात् तद्युक्तात् काले प्रत्ययविधानम्'** 'नक्षत्र से चन्द्रमा के योग से, चन्द्रमायुक्त नक्षत्र से काल अर्थ में प्रत्यय का विधान है'। इस प्रकार प्रत्ययार्थ हुआ शशिभोगाश्रयत्व, उसके एकदेश शशिभोग में कर्मतया नक्षत्र का अन्वय होता है। इस प्रकार **'पौषी रात्रिः'** का अर्थ होता है **'पुष्यकर्मकशशिभोगाश्रया रात्रिः'**।

'पौषो मासः' 'पौषो वर्षः' इत्यादौ ''सास्मिन् '' इत्यनेन विहितस्य तद्धितस्य पौर्णमासीघटितत्वावच्छिन्नोऽर्थः, पौर्णमास्यां प्रकृत्यर्थपौष्यादेरभेदेनान्वयः । पौषादिपदञ्च न केवलं यौगिकम् –'पौषः पक्षः' इत्यादि व्यवहारविरहात्, अतो रूढमपि । अत एव सूत्रे संज्ञाग्रहणम्। रूढिनिरूपकतावच्छेदकं च मासनिष्ठशुक्लप्रतिपदादिदर्शान्तसमुदायत्वं न तु त्रिंशत्तिथिरूपमासत्वमात्रम्–यत्किञ्चित्तिथ्यवधिकत्रिंशत्तिथिसमुदाये मासव्यवहारेऽपि चान्द्रसौरपौषादिबहिर्भूतपौष्यादिघटितत्रिंशत्तिथ्यन्तर्गततिथिषु पौषादिव्यवहारविरहात् ।

'पौषो मासः' पौषो वर्षः' इत्यादि स्थलों में **'सास्मिन् पौर्णमासीति'** पा॰ सू॰ 4/2/21 सूत्र से विहित तद्धित प्रत्यय (अण्) का पौर्णमासीघटितत्वावावच्छिन्न अर्थ होता है, पौर्णमासी में पौषी आदि का अभेदेन अन्वय होता है। पौष आदि पद केवल यौगिक नहीं हैं क्योंकि **'पौष पक्षः'** इत्यादिव्यवहार नहीं होता है। अतः पौष पद रूढ भी है । इसीलिए सूत्र में संज्ञा पद का ग्रहण किया गया है। रूढिनिरूपकतावच्छेदक तो मासनिष्ठ शुक्लप्रतिपदादिदर्शान्तसमुदायत्व है, केवल त्रिंशत्तिथिरूपमासत्व नहीं है क्योंकि यत्किञ्चित्तिथ्यवधिकत्रिंशत्तिथिसमुदाय में मासव्यवहार होने पर भी चान्द्र सौर पौषादिबहिर्भूत पौषी आदि से घटित त्रिंशत्तिथ्यन्तर्गत तिथियों में पौषादिव्यवहार नहीं होता है।

जिस प्रकार **पौषी रात्रिः, पौषमहः** प्रयोग हुआ करता है, उसी प्रकार **'पौषो मासः' 'पौषो वर्षः'** प्रयोग भी हुआ करते हैं । किन्तु दोनों प्रयोगों में एक अन्तर है। अन्तर यह है कि **'पौषी रात्रिः'** इत्यादि प्रयोगों में **'नक्षत्रेण युक्तः काल'** पा॰ सू॰ 4/2/3 से पुष्यपद से अण् प्रत्यय करके पौष पद सिद्ध होता है और पौषपद का अर्थ होता है 'पुष्यकर्मकशशिभोगाश्रय'। **'पौषो मासः' 'पौषो वर्षः'** इत्यादि स्थलों में पुष्यकर्मकशशिभोगाश्रयार्थक पौषी पद से **'सास्मिन् पौर्णमासीति'** पा॰सू॰ 4/2/21 से अण् प्रत्यय करने

से पौषपद सिद्ध होता है। तथा उस प्रत्यय का अर्थ होता है पौर्णमासीघटितत्वच्छिन्न । पौर्णमासी में पौषी पदार्थ 'पुष्यकर्मकशशिभोगाश्रय' का अभेदेन अन्वय होता है। इस प्रकार पौषपद का अर्थ होता है 'पुष्यकर्मकशशिभोगाश्रयाभिन्नपौर्णमासीघटित' । यहाँ पर गदाधर यह भी बतला रहे हैं कि **'पौषी रात्रिः'** इत्यादि स्थलों में पौषपद यौगिक है, किन्तु **'पौषो मासः'** इत्यादि स्थलों में पौषपद यौगिक भी है और रूढ भी है, अर्थात् योगरूढ है। पौषपद यदि केवल यौगिक होता तो जैसे उपर्युक्त प्रयोग होते हैं, उसी प्रकार **'पौषः पक्षः'** भी प्रयोग होता जो कि नहीं होता है। रूढ होने के कारण ही सूत्र में संज्ञा पद का ग्रहण किया गया है। वस्तुतः सूत्र में संज्ञापद का ग्रहण नहीं किया है अपितु **'संज्ञायां श्रवणाश्वत्थाभ्यां' पा०सू० 4/2/5** से संज्ञापद अनुवृत्त होता है। लेकिन अनुवृत्ति भी इसीलिए की जाती है। संज्ञा हमेशा रूढ होती है, यौगिक संज्ञा नहीं होती है। इसीलिए जगदीश ने शब्दशक्तिप्रकाशिका में कहा है **'रूढं सङ्केतवन्नाम सैव संज्ञेति कीर्त्यते ।' शब्दशक्तिप्रकाशिका का०17** इस कारण **'पौषो मासः'** इत्यादि स्थलों में पौषपद को या तो रूढ या तो योगरूढ ही होना चाहिए । यौगिकरूढ मण्डप आदि शब्द गृहविशेष में रूढ होने से उस अर्थ में संज्ञा शब्द हैं और मण्डपानकर्ता अर्थ में यौगिक होने से उस अर्थ में संज्ञा नहीं है । रूढि का निरूपकतावच्छेदक है मासनिष्ठशुक्लप्रतिपदादिदर्शान्त (अमावस्यान्त) तिथिसमुदायत्व अर्थात् मासपरक पौषपद की रूढि शुक्लप्रतिपदादिदर्शान्त तिथि समुदाय में है । यत्किञ्चित्तिथ्यवधिक त्रिंशत्तिथि समुदाय में (जिस किसी तिथि को अवधि मानकर उससे तीस तिथियों में) मासव्यवहार हुआ करता है। किसी ने यदि शुक्ल तृतीया से गिनना प्रारम्भ किया तो अग्रिम शुक्ल द्वितीया को यह व्यवहार होता है कि मास पूरा हो गया, एक महीना हो गया । इसी प्रकार अन्यतिथि को भी अवधि बनाकर मासव्यवहार होता है। किन्तु पौषी पूर्णमासी से घटित होने पर भी उक्ततिथिसमुदाय में पौषव्यवहार नहीं होता है, अतः शुक्लप्रतिपदादि दर्शान्त त्रिंशत्तिथिसमुदाय में पौषपद की रूढि स्वीकारी जाती है। इस प्रकार पौषी पूर्णमासी से घटित शुक्लप्रतिपदादिदर्शान्त त्रिंशत्तिथिसमुदाय में पौषपद योगरूढ है। इसमें पौषी पूर्णमासी से घटितत्व अर्थ योग से और शेष अर्थ रूढि से लब्ध होता है।

अथैवमपि सौरे पौषादिव्यवहारस्य निर्विवादतया धनुःस्थरविविशिष्टत्वमेव न कथं पौषादिपदशक्यतावच्छेदकमुपेयते इति चेत् ? न सौरे पौषादौ पौष्यादिपूर्णिमाया अलाभे योगरूढिलभ्यपौषपदार्थविलोपापत्तेः ।

न च तत्र रूढिमात्रमवलम्ब्यैव पौषादिव्यवहारः सौरपौषादौ मुख्य इति वाच्यम्; तथा सति योगार्थव्युत्पादनवैयर्थ्यात् ।

किन्तु प्रश्न उठता है कि इस प्रकार भी सौर पौष मास में पौषव्यवहार के निर्विवाद होने के कारण पौष आदि पदों का शक्यतावच्छेदक धनुःस्थरविविशिष्टत्व ही क्यों नहीं स्वीकार कर लिया जाता है? भाव यह है कि धनुः राशि पर जब सूर्य स्थित होता है उस काल में सौर पौष मास का व्यवहार होता है, उक्त सौर पौष मास पौषीपूर्णमासी से घटित ही नहीं होता है, अघटित भी होता है। इसकारण वहाँ पर तो मासपरक पौषपद का अर्थ

'पौषी पौर्णमासी से घटित' नहीं हो सकता है। वहाँ पर यही मानना पड़ेगा कि धनुःस्थरविविशिष्टकाल को ही पौषमास कहते हैं, फिर हर जगह पर पौषपद की शक्ति धनुःस्थरविविशिष्ट काल में ही क्यों न स्वीकार कर ली जाये ? तो ऐसा उचित नहीं है क्योंकि सौर पौषादि मास में पौषी आदि पूर्णिमा का लाभ न होने पर योगरूढि से लभ्य पौष पदार्थ का विलोप होने की आपत्ति आयेगी । योगरूढि पद की प्रकृति होती है कि योग से लभ्य अर्थ में अभेदेन रूढिलभ्य अर्थ का अन्वय होता है, जैसे— पंकज पद से योग से लभ्य अर्थ पङ्कजनिकर्तृ से अभिन्न कमल रूप रूढिलभ्य अर्थ का बोध होता है। उसी प्रकार यहाँ पर भी पौषी पूर्णमासी घटित रूप यौगिक अर्थ से अभिन्न शुक्लप्रतिपदादित्रिंशत्तिथिसमुदाय-रूप रूढ अर्थ का बोध होना चाहिए । किन्तु आप के मतानुसार तो योगलभ्य अर्थ अन्वित ही नहीं हो सकेगा । इसलिए योगरूढिलभ्य अर्थ का विलोप हो जायेगा ।

यदि कहो कि वहाँ पर रूढिमात्र का अवलम्बन कर ही पौषादिव्यवहार हो जायेगा जो कि सौरपौषादि में मुख्य है और चान्द्रपौषादि में लाक्षणिक है। लक्षणा से ही पौषी पौर्णमासी घटित शुक्लप्रतिपदादिदर्शान्त त्रिंशत्तिथिसमुदाय में पौषव्यवहार होता है। तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि ऐसा होने पर तो योगार्थव्युत्पादन ही व्यर्थ हो जायेगा । 'सास्मिन् पौर्णमासीति' सूत्र के द्वारा योगार्थव्युंत्पादन ही किया जाता है, रूढिमात्र पक्ष में वह व्यर्थ हो जायेगा ।

अथ विलुप्यतां वर्षविशेषे पौषादिपदमुख्यार्थः का क्षतिः, तत्र लक्षणया सौरमासे पौषव्यवहारस्योपगन्तव्यत्वात् स्थलपद्मादौ पङ्कजव्यवहारवदिति चेत्? तर्हि तत्र पौषादिपदमुख्यार्थमासनिमित्तकाब्दिकश्राद्धादिविलोपप्रसङ्गः।

यदि कहो कि ठीक है, वर्षविशेष में पौषादिपदों का मुख्यार्थ विलुप्त हो जाय क्या क्षति है वहाँ पर लक्षणा से सौर मास में पौषव्यवहार स्वीकार्य है? जैसे– स्थलपद्म आदि में पङ्कज पद का व्यवहार होता है। तो ऐसी स्थिति में उस साल में पौषादिपदमुख्यार्थ-मासनिमित्तक आब्दिकश्राद्धादि के विलोप का प्रसङ्ग होगा ।

यहाँ पर पूर्वपक्ष का आशय यह है कि ठीक है, पौषपद योगरूढ है ? किन्तु रूढ्यर्थतावच्छेदक धनुःस्थरविविशिष्टत्व है, इस प्रकार पौषपदार्थ होगा पौषीपौर्णमासी घटित धनुःस्थरविविशिष्टकाल । जिन वर्षों में धनुःस्थरविविशिष्टकाल पौषी पौर्णमासी घटित है, उन वर्षों में यौगिक अर्थ से अभिन्न रूढ अर्थ की प्रसिद्धि सम्भव है। इस प्रकार योगार्थव्युत्पादन हो सकता है तथा सार्थक होता है । जिन वर्षों में धनुस्थरविशिष्ट काल पौषी पौर्णमासी से घटित नहीं होता है, वहाँ पर सिर्फ़ धनुःस्थरविविशिष्ट काल को ही पौषमास कहते हैं । वहाँ पर योगार्थ का अन्वय नहीं सम्भव होता है। जैसे स्थल पद्म में पङ्कजनिकर्तृत्व रूप यौगिकार्थ का अन्वय नहीं सम्भव होता है, उस स्थिति में जब स्थलपद्म के लिए पङ्कजपद प्रयुक्त होता है तो वह लक्षणा से केवल रूढ अर्थ को बतलाता है। उसी प्रकार यहाँ पर भी जिन वर्षों में पौषी पूर्णिमा से पहले मकरसङ्क्रान्ति नहीं है, उन वर्षों में तो धनुःस्थरविविशिष्टकाल पौषी पूर्णमासी से घटित होगा । किन्तु जिन वर्षों में पौषी पूर्णिमा से पहले ही मकरसङ्क्रान्ति हो जाती है, उन वर्षों में धनुःस्थरविविशिष्ट काल पौषीपर्णिमा से घटित नहीं होगा । अतः पौषपद की लक्षणा से केवल धनुःस्थरविविशिष्टकाल

ही बोधित होगा । इसका समाधान उत्तरपक्ष से यह कहकर दिया जा रहा है कि जिस मास में जिस तिथि को जो मरा होता है, उस मास की उस तिथि को आब्दिक (वार्षिक) श्राद्ध करने का विधान किया गया है । मान लिया जाये कोई पौष शुक्ल चतुर्दशी को मरा है, किसी वर्ष पौषशुक्ल चतुर्दशी से पहले ही यदि मकरसङ्क्रान्ति है तो उस वर्ष का पौषपद का मुख्यार्थ तो विलुप्त हो जायेगा। धनुःस्थरविविशिष्टकाल ही पौषपदार्थ कहलायेगा किन्तु उसमें तो आब्दिक श्राद्ध का लोप हो जायेगा क्योंकि पौष में –पौषपद के मुख्यार्थ में –'पौषी पौर्णमासी घटित धनुःस्थरविविशिष्ट काल' में आब्दिक श्राद्ध का विधान है और उस वर्ष पौषी पौर्णमासी से घटित धनुःस्थरविविशिष्ट काल ही नहीं है और धनुः स्थरविविशिष्टकाल में आब्दिक शुक्लचतुर्दशी नहीं है।

इस प्रकार यहाँ पर समस्या यह है कि **'पौषो मासः'** यहाँ पर पौषपदार्थ क्या है? 'पौषी पौर्णमासी घटित शुक्लप्रतिपदादिदर्शान्त त्रिंशत्तिथिसमुदाय अथवा पौषी पौर्णमासी घटित धनुःस्थरविविशिष्टकाल ?

यथाश्रुतशूलपाणिग्रन्थानुसारिणस्तु– धनुरादिस्थरव्यारब्धशुक्लप्रतिपदादिदर्शान्तेषु धनुरादिस्थरविसमाप्यमकरादिस्थरविसङ्क्रान्तिमन्मासाभिन्नधनुरादिस्थरव्यधिकरणशुक्लप्रतिपदादिदर्शान्तेषु वा पौषादिपदस्य रूढत्वमेव स्वीकुर्वन्ति न तु यौगिकत्वम् –"अन्त्योपान्त्यौ त्रिभौ ज्ञेयौ" इतिवचनात् , पौषादिमासीयपौर्णमास्यां पुष्यादियोगस्यानियमात् ।

न च योगानादरे लाघवात्तत्तद्राशिस्थरविविशिष्टकालरूपसौरादिमास एव पौषादिपदशक्तिरुचितेति वाच्यम् ; "सा वैशाखस्यामावास्या या रोहिण्या सम्बध्यते" इत्यादिश्रुतिबलाच्चान्द्र एव वैशाखादिपदशक्तिसिद्धेः ।

यथाश्रुत शूलपाणि के ग्रन्थ का अनुसरण करनेवाले तो—पौषादिपद की धनुरादिस्थरव्यारब्धशुक्लप्रतिपदादिदर्शान्ततिथियों में अथवा धनुरादिस्थरविसमाप्यमकरादिस्थ रविसङ्क्रान्तिमन्मासाभिन्न धनुरादिस्थरव्यधिकरणशुक्लप्रतिपदादिदर्शान्त तिथियों में रूढि ही स्वीकारते हैं यौगिकत्व नहीं स्वीकारते हैं क्योंकि **'अन्त्य और उपान्त्य तीन नक्षत्रों वाले जानने चाहिए'** ऐसा वचन है तथा पौषादिमासीय पौर्णमासी में पुष्यादियोग का नियम नहीं है।

यदि कहो कि योग का अनादर करने में पौषादिपद को रूढ मानने में लाघव होने के कारण तत्तद्राशिस्थरविविशिष्टकालरूप सौरादि मास में ही पौषादि पदों की शक्ति स्वीकारना उचित है । तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि 'वह वैशाख की अमावस्या है जो रोहिणी से सम्बद्ध होती है' इत्यादि श्रुतियों के बल से चान्द्र मास में ही वैशाख आदि पदों की शक्ति सिद्ध होती है।

अभिप्राय यह है कि पौष आदि मास की पूर्णिमा पुष्य आदि से युक्त होगी ऐसा नियम नहीं है। कभी-कभी पौष मास की पूर्णिमा पुष्य आदि से युक्त नहीं भी होती है। इसी कारण कहा गया है–

'अन्त्योपान्त्यौ त्रिभौ ज्ञेयौ फाल्गुनश्च त्रिभो मतः ।
शेषाः मासाः द्विभाः ज्ञेयाः कृत्तिकादिव्यवस्थया ॥'

'अन्त्य और उपान्त्य (आश्विन और भाद्रपद) को त्रिभ (तीन नक्षत्रयुक्त) समझना चाहिए, इसी प्रकार फाल्गुन भी तीन नक्षत्रों से युक्त होता है, शेष सभी मासों को कृत्तिका आदि की व्यवस्था से दो नक्षत्रों से युक्त समझना चाहिए' इसका अभिप्राय यह हुआ कि **'पौषी रात्रिः'** इत्यादि स्थलों में भी पौषपद यौगिक नहीं है रूढ ही है। **'पौषी पौर्णमासी'** आदि स्थलों में भी पौषीपद यौगिक नहीं है क्योंकि पुष्यनक्षत्र से पौर्णमासी के युक्त न होने पर भी उसे पौषी पौर्णमासी कहते हैं । यदि पौर्णमासी केवल पुष्य से ही अन्वित (युक्त) होती तब तो यौगिक अर्थ सम्भव होता, किन्तु आगे या पीछे के पुनर्वसु आदि नक्षत्रों से भी युक्त होती है। इसलिए पौष पद यौगिक कहीं पर भी नहीं है। इसलिए **'पौषो मासः'** इत्यादि स्थलों में भी पौषपद रूढ ही है। किस अर्थ में रूढ है? धनुरादिस्थरव्यारब्धशुक्ल-प्रतिपदादिदर्शान्त तिथियों में पौषपद रूढ है, धनुःराशि पर रवि के स्थित रहने पर आरब्ध शुक्ल प्रतिपद् से अमावस्या तक की तिथियों में पौष पद की रूढि है। इसके अन्तर्गत आने वाली तिथियों के समुदाय को पौष मास कहते हैं । पौषशुक्ल प्रतिपत् तिथि में नियम से धनुःस्थरविसम्बन्ध होने के कारण यह लक्षण सङ्गत होता है। किन्तु इसमें समस्या यह है कि अधिक मास यदि पौष में पड़ जाये तो उसे तो पौषमास नहीं कहते हैं, अधिकमास कहते हैं, किन्तु उसमें भी धनुःस्थ रविसम्बन्ध होने के कारण उसे भी पौषमास कहा जाने लगेगा । इसलिए दूसरी परिभाषा दे रहे हैं कि धनुरादिस्थरविसमाप्यमकरादिस्थर-विसङ्क्रान्तिमन्मासाभिन्नरव्यधिकरणशुक्लप्रतिपदादिदर्शान्त तिथियों में पौषादि पदों की रूढि है। शुक्लप्रतिपदा से लेकर अमावस्यापर्यन्त जिस तिथिसमुदाय में धनुःस्थरव्यधिकरणत्व होने के साथ-साथ मकरसङ्क्रान्त्याश्रयत्व होगा उसी को पौषमास कहा जायेगा । अधिकमास किसी सूर्यसङ्क्रान्ति का आश्रय नहीं होता है। इसलिए उसमें पौषपदव्यवहार की आपत्ति नहीं है। यहाँ पर प्रथमतः 'मकरस्थरविसङ्क्रान्तिमन् मास से अभिन्न धनुःस्थरव्यधिकरण शुक्लप्रतिपदादि अमावस्यान्त तिथिसमुदाय को पौषपदार्थ कहते हैं' यह समझना चाहिए । उक्त रीति से अधिकमास के रविसङ्कान्तिमन् न होने से पौषपदार्थता नहीं है । शुक्लप्रतिपदादि दर्शान्तसमुदाय किसी न किसी अंश में धनुरादिस्थरव्यधिकरण होगा ही, साथ ही मकरसङ्क्रान्तिमन् मास से अभिन्न होगा । इसलिए लक्षणसङ्गति होती है। किन्तु इसमें भी एक मुश्किल है। पौषशुक्लप्रतिपदादि अमावस्या तक की तिथियों में यदि धनुःसङ्क्रान्ति भी हो और मकर सङ्क्रान्ति भी हो तो पौष लुप्तमास हो जाता है उस मास को पौष नहीं कहते हैं किन्तु शुक्लप्रतिपदादि अमावस्यान्त तिथि समुदाय में किञ्चिदंश में धनुःस्थरवि का अधिकरणत्व भी है और मकरसङ्क्रान्तिमन् मास से उक्त तिथि समुदाय अभिन्न भी है' इसलिए पौषव्यवहार उसके लिए होने लगेगा । इस कारण 'धनुरादिस्थरविसमाप्य' अंश भी विशेषण दिया है। उक्त मास तो धनुरादिस्थरविसमाप्य मकरसङ्क्रान्तिमन् मास नहीं है। इसलिए उसके लिए पौषव्यवहार नहीं होता है। इस प्रकार इस मत में पौर्णमासीघटितत्वरूप अर्थ की विवक्षा करने की ज़रूरत नहीं, अतः यहाँ पर पौष आदि पदों का योगरूढत्व न

होकर रूढत्व ही है।

न च प्रतीक से इसमें प्रश्न उठाते हैं कि जब योग का अनादर ही करना है तो पौषादि पदों की शक्ति धनुरादिस्थरव्यारब्धशुक्लप्रतिपदादिदर्शान्ततिथियों में या धनुरादिस्थर-विसमाप्य मकरसङ्क्रान्तिमन्मासाभिन्नधनुरादिस्थरव्यधिकरणशुक्लप्रतिपदादिदर्शान्त तिथियों में स्वीकारने की क्या ज़रूरत है? इसकी अपेक्षा शक्य, शक्यतावच्छेदकादि प्रयुक्त लाघव होने के कारण तत्तद्राशिस्थविशिष्टकालरूप सौरादिमास में ही पौषादि पदों की शक्ति क्यों न स्वीकारी जाये? इसका उत्तर दिया कि शुक्लप्रतिपदादिदर्शान्ततिथियों में पौष आदि पदों की शक्ति माननी ही पड़ेगी क्योंकि **'वह वैशाख की अमावस्या है जो रोहिणी से सम्बद्ध होती है'** इस श्रुति के बल से चान्द्र (शुक्लप्रतिपदादि दर्शान्त तिथियों) में ही वैशाखादि पदों की शक्ति सिद्ध होती है। यदि मेषस्थरविविशिष्टदिन समुदाय को ही वैशाखमास कहा जाता तो मेषस्थरविविशिष्टदिन समुदाय की अमावस्या का प्रायशः रोहिणी सम्बन्ध न होने के कारण श्रुति से विरोध हो जायेगा । यदि वैशाखशुक्लप्रतिपदादिदर्शान्त समुदाय का वैशाखमासत्व है तो उसकी अमावास्या में प्रायशः रोहिणी सम्बन्ध होने के कारण लक्षण की सङ्गति होती है श्रुतिविरोध नहीं होता है।

वस्तुतो "नक्षत्रेण युक्तः कालः" इत्यत्र नक्षत्रयोगयोग्यत्वमेव विवक्षितम् —पुष्याद्ययुक्तायामपि पौषादिपूर्णिमायां पौष्यादिव्यवहारात, अन्यथा "माघ्यां यदि मघा नास्ति" इत्यादेरसङ्गत्यापत्तेः । पुष्यादियोगयोग्यता च धनुरादिस्थ रव्यारब्धपक्षीयत्वं तद्रूपाक्रान्तपौर्णमासीघटितत्वरूपयोगलभ्यतावच्छेदकं नियतमेव पौषादेरिति नोक्तानुपपत्त्या यौगिकत्वनिराकरणसम्भवस्तत्पदानाम्।

वस्तुतः **'नक्षत्रेण युक्तः कालः'** इस सूत्र में नक्षत्रयोगयोग्यत्व ही विवक्षित है क्योंकि (पुष्यादियुक्त पूर्णिमा में पौषी पूर्णिमा के व्यवहार की तरह) पुष्यादि से अयुक्त भी पौषादिमास की पूर्णिमा में पौषी आदि व्यवहार हुआ करता है। यदि ऐसा न माना जाये तो **'माघी में यदि मघा नहीं है'** इत्यादि वाक्यों की असङ्गति हो जायेगी । मघा से युक्त होने पर उसे माघी कहा जायेगा और यदि मघा से युक्त है, तो उसमें यदि मघा नहीं है यह कहना विरुद्ध होगा । और पुष्यादियोगयोग्यता धनुरादिस्थरव्यारब्धपक्षीयत्व है, तद्रूप (धनुरादिस्थर-व्यारब्धपक्षीयत्व) से आक्रान्त (विशिष्ट) पौर्णमासी से घटितत्वरूप योगलभ्यतावच्छेदक पौषादि में नियत है, नियमतः रहेगा ही । इसकारण उक्त अनुपपत्ति से यौगिकत्व का निराकरण सम्भव नहीं है। उक्त अनुपपत्ति से आशय पुष्यादियोग के अनियम के कारण पौषपद के योगलभ्य 'पुष्यनक्षत्रयुक्त काल' रूप अर्थ की अनुपपत्ति से है। अब योगलभ्य अर्थ 'पुष्यनक्षत्रयोगयोग्यकाल' रूप है। अथः उक्त अनुपपत्ति नहीं है।

अथैवं निरुक्तरूपस्य पुष्याद्यघटिततया तेन रूपेण पूर्णिमाबोधक पौष्यादिशब्दानां यौगिकत्वप्रसक्तिरेव नास्ति, 'पौषीरात्रिः' इत्यादौ पुष्यादियोग एव प्रतीयते न तु निरुक्तं योग्यत्वम् —मकरादिस्थरव्यारब्धकृष्णपक्षीय-रात्र्यादावपि तथा व्यवहारादिति "नक्षत्रेण युक्तः कालः" इत्यत्र योग एव

विवक्षणीयो न तु योगयोग्यत्वमिति पौर्णमास्यां पौष्यादिपदस्य न यौगिकत्व सम्भव इति चेत् ? भवतु पौष्यादिपदं निरुक्तरूपावच्छिन्नपूर्णिमारूढमेव । पौषादिपदानां तु तद्योगपुरस्कारेण मासवाचकत्वे बाधकाभावाद् यौगिकत्वं कथं प्रत्याख्येयम् ?

लेकिन इस प्रकार धनुरादिस्थरव्यारब्धपक्षीयत्वरूप नक्षत्रयोगयोग्यत्व के पुष्य आदि से घटित न होने के कारण धनुरादिस्थरव्यारब्धपक्षीयत्वरूप से पूर्णिमाबोधक पौषी आदि पदों के यौगिकत्व की प्रसक्ति ही नहीं है, **'पौषी रात्रिः'** इत्यादिस्थलों में पुष्यादि का योग ही प्रतीत होता है न कि धनुरादिस्थरव्यारब्धपक्षीयत्वरूप पुष्यादियोगयोग्यत्व क्योंकि मकरादिस्थरव्यारब्ध-कृष्णपक्षीय रात्रि आदि में वैसा व्यवहार हुआ करता है। इसलिए **'नक्षत्रेण युक्तः कालः'** इस सूत्र में योग ही विवक्षणीय है न कि योगयोग्यत्व, इस कारण पौर्णमासी में पौषी आदि पदों का यौगिकत्व सम्भव नहीं है। यदि ऐसा कहो तो ठीक है पौषी आदि पद धनुरादिस्थरव्यारब्धपक्षीय पूर्णिमा में रूढ ही हों । पौष आदिपदों का तद्योगपुरस्कारेण मासवाचकत्व होने में बाधक न होने के कारण उनका यौगिकत्व कैसे प्रत्याख्येय है?

यहाँ पर गदाधर ने जो सिद्धान्त किया है कि **'नक्षत्रेण युक्तः कालः'** इस सूत्र में नक्षत्रयोगयोग्यत्व ही विवक्षित है, उस पर प्रश्न उठाया जा रहा है । कहना यह है कि यदि नक्षत्रयोगयोग्यत्व ही इस सूत्र से विवक्षित है जो कि धनुरादिस्थरव्यारब्धपक्षीयत्वरूप है, तो नक्षत्रयोगयोग्य धनुरादिस्थरव्यारब्धपक्षीय रात्रियों में ही **'पौषी रात्रिः'** व्यवहार होना चाहिए, किन्तु मकरस्थरव्यारब्धपक्षीय रात्रियों में भी **'पौषी रात्रिः'** व्यवहार होता है। इसका मतलब ये हुआ कि **'नक्षत्रेण युक्तः कालः'** से धनुरादिस्थरव्यारब्धपक्षीयत्वरूप नक्षत्रयोगयोग्यत्व विवक्षित नहीं है बल्कि नक्षत्रयोग ही विवक्षित है। इस स्थिति में पुष्यनक्षत्रयोगयोग्य पूर्णिमावाचक पौषीपद कैसे यौगिक हो सकता है? यदि वह पुष्यनक्षत्रयुक्तपूर्णिमावाचक होता तभी यौगिक हो सकता था । नक्षत्रयोगयोग्यत्व के पुष्यादि से अघटित धनुरादिस्थरव्यारब्धपक्षीयत्वरूप होने के कारण उससे विशिष्ट का बोधक होने से कैसे पौषीपद यौगिक होगा ? इसका समाधान दे रहे हैं कि ठीक है, उक्त अर्थ में पौषी पद यौगिक न हो रूढ ही हो किन्तु उक्तार्थक पौषीपद से **'सास्मिन् पौर्णमासीति'** सूत्र से अण् प्रत्यय करके पुष्यनक्षत्रयोगयोग्य पूर्णमासी घटित अर्थ में पौषपद सिद्ध होता है उसी पौष आदि पदों का **'पौषो मासः'** इत्यादि स्थलों में प्रयोग किया जाता है । उसके यौगिकत्व का निराकरण फिर भी सम्भव नहीं है।

<u>**निष्कर्ष–**</u> यहाँ पर गदाधर ने **'पौषी रात्रिः'** इत्यादि स्थलों में प्रयुक्त पौष आदि पदों का यौगिकत्व है यह प्रतिपादित किया तथा **'पौषो मासः'** इत्यादि स्थलों में प्रयुक्त पौषादि पदों का योगरूढत्व है। इनके भी यौगिकत्व का प्रत्याख्यान नहीं किया जा सकता है और न ही किया जाना चाहिए । यौगिकत्व का प्रत्याख्यान क्यों नहीं किया जा सकता है? इसीलिए क्योंकि पौषी पद से अण् प्रत्यय करके पौष शब्द निष्पन्न होता है। पौषी का अर्थ 'पुष्य

नक्षत्रयोगयोग्य' है उससे पौर्णमासी घटितत्व अर्थ में अण् हुआ है। इस तरह 'पुष्यनक्षत्रयोग योग्य' पौर्णमासी पुरस्कारेण ही पौषी आदि पदों के मास वर्षादि का वाचक होने के कारण वे यौगिक है। । जिस पौषीशब्द से उक्त पौषपद व्युत्पन्न हुआ है, उसके पुष्यनक्षत्रयोगयोग्य अर्थ में रूढ होने के कारण रूढत्व भी इस पद का है। इस तरह '**पौषो मासः**' आदि में पौष आदि पद योगरूढ है।

न च "सास्मिन् पौर्णमासी" इति सूत्रस्य 'अस्मिन् पौष्यादिपूर्णिमायोग्यता' इत्यर्थविवक्षया धनुरादिस्थरव्यारब्धशुक्लप्रतिपदादिदर्शान्ते तद्धितान्त-समुदायरूढिग्राहकतयोपपत्तौ योगरूढिस्वीकारोऽनुचित इति वाच्यम्; केवलरूढिपक्षे समुदायशक्यतावच्छेदकशरीरे आरब्धान्तविशेषणप्रक्षेपेण गौरवात् , पौषतैषमाघादिनानापदानां गुरुधर्मावच्छिन्ने नानाशक्तिकल्पन-मपेक्ष्य "सास्मिन् " इत्यर्थेऽणप्रत्ययस्यैकशक्तिकल्पनाधिक्यस्योचितत्वात्।

यदि कहो कि '**सास्मिन् पौर्णमासीति**' इस सूत्र की 'इसमें पौषी आदि पूर्णिमा के योग की योग्यता है' इस अर्थ की विवक्षा से धनुरादिस्थरव्यारब्धशुक्लप्रतिपदादि दर्शान्त तिथियों में तद्धितान्त समुदाय 'पौष पद' की रूढि की ग्राहकता से ही उपपत्ति होने के कारण योगरूढि का स्वीकार अनुचित है। भाव यह है कि '**सास्मिन् पौर्णमासीति**' सूत्र '**पौषो मासः**' इत्यादि प्रयोगीय पौष आदि पदों का पुष्यनक्षत्रयोग योग्य पौर्णमासी से घटित अर्थ में यौगिकत्व नहीं बतलाता है, अपितु 'इसमें पौषी आदि पूर्णिमा के योग की योग्यता है' इस अर्थ की विवक्षा से तद्धितान्त समुदाय पौष आदि पदों का रूढत्व ही बतलाता है यही क्यों न स्वीकार लिया जाये? तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि केवलरूढिपक्ष में पौष पदात्मक तद्धितान्तसमुदाय की शक्ति पौषीपूर्णिमा योगयोग्य में (धनुरादिस्थरव्यारब्धशुक्लप्रतिपदा-दिअमावस्यान्त तिथियों में) स्वीकारनी पड़ेगी, इस प्रकार शक्यतावच्छेदक के शरीर में धनुरादिस्थरव्यारब्ध अंश का विशेषणविधया प्रक्षेप करने से गौरव होगा । पौष, तैष, माघ आदि नाना पदों की गुरुधर्मावच्छिन्न (धनुरादिस्थरव्यारब्धशुक्लप्रतिपदादिदर्शान्त तिथित्वावच्छिन्न) में अनेक शक्तियों की कल्पना की अपेक्षा 'वह इसमें है' इस अर्थ में एक अण् प्रत्यय की शक्ति की कल्पना अधिक करने में लाघव है। सार यह है कि योगरूढि स्वीकार पक्ष में लाघव है क्योंकि पौषीपद की धनुराब्धपक्षीय अर्थ में रूढि है और शेष अंश पौर्णमासी घटितत्व अंश एक अण् प्रत्यय का अर्थ है। आपके (रूढिपक्षमें) पौष, तैष, माघ आदि अनेक पदों की धनुरादिस्थरव्याब्ध रूप शक्यतावच्छेदक से विशिष्ट अर्थ में शक्ति स्वीकारनी पड़ेगी । अतः गौरव है ।

न च योगरूढिपक्षे पौषादिपदानां योगार्थरूढ्यर्थाभेदान्वयबोधजनकत्व-कल्पनाधिक्येन गौरवमिति वाच्यम् ; भवन्मतेऽपि तत्तदर्थे यौगिकरूढत्व-भ्रमदशायां सति च तत्तदर्थाभेदान्वयपरत्वग्रहे तथान्वयबोधस्य दुरपह्नवतया तत्र तादृशबोधहेतुताकल्पनस्यावश्यकत्वादिति दिक् ।

यदि कहो कि योगरूढिपक्ष में पौषादि पदों के योगार्थ और रूढ्यर्थ के अभेदान्वयजनकत्व

की कल्पना का अधिक्य होने से गौरव होगा । अर्थात् योगरूढि शब्दों के शाब्दबोध के अवसर पर योगलभ्य अर्थ और रूढिलभ्य अर्थ का अभेदान्वय होकर बोध होता है। इस कारण योगरूढि स्वीकारनेवाले के पक्ष में योगार्थ और रूढ्यर्थ के अभेदान्वय का जनकत्व पौष आदि पदों में अतिरिक्त कल्पित करना पड़ेगा । इसलिए गौरव होगा । तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि आपके मत में (केवल रूढिपक्ष में) भी तत्तदर्थ में यौगिकरूढत्व का भ्रम हो जाने की दशा में और तत्तदर्थाभेदान्वयपरत्वग्रह हो जाने पर वैसे अन्वयबोध के दुरपह्नव होने के कारण तादृश (योगार्थ और रूढ्यर्थ के) अभेदान्वयबोध के प्रति पौषादि पदों का कारणत्व आवश्यक रूप से कल्पनीय होगा । भाव यह है कि योगरूढि स्वीकारने वाला योगार्थ और रूढ्यर्थ का अभेदान्वयबोध स्वीकारता है, योगार्थ और रूढ्यर्थ के अभेदान्वय के प्रति पौष आदि पदों का जनकत्व उसे स्वीकारना पड़ता है। किन्तु रूढिमात्र स्वीकारनेवाले को भी यदि पौष आदि पदों के यौगिकरूढत्व का भ्रम हो जाये तो उसे भी योगार्थ और रूढ्यर्थ का अभेदान्वयबोध मानना पड़ेगा और योगार्थ व रूढ्यर्थ के अभेदान्वयबोध का जनकत्व पौष आदि पदों में मानना पड़ेगा । इस कारण इस अंश में दोनों ही पक्ष समान हैं। उपर्युक्त लाघव योगरूढिपक्ष में ही होने से वही स्वीकारना उचित है।

'वैष्णवी ऋक्' 'ऐन्द्रं हविः' इत्यादौ देवतार्थविहिततद्धितस्य तद्देवताकत्वमर्थः । मन्त्रस्य तद्देवताकत्वं तदुद्देश्यकत्यागकरणत्वेन वेदबोधितत्वम्।

'वैष्णवी ऋक् ' 'वैष्णवी ऋचा' 'ऐन्द्रं हविः' 'ऐन्द्र (इन्द्रार्थक) हवि' इत्यादि स्थलों में देवता के अर्थ में विहित तद्धित का तद्देवताकत्व अर्थ होता है। मन्त्र का तद्देवताकत्व तद्देवतोद्देश्यकत्यागकरणत्वेन वेदबोधितत्व है।

देवता अर्थ में 'सास्य देवता' 4/2/24 सूत्र से अण् प्रत्यय का विधान किया गया है। उक्त प्रयोगों में वैष्णवी और ऐन्द्र शब्दों की सिद्धि विष्णु और इन्द्रपदों से उक्तार्थक अण् प्रत्यय करके ही होती है। इस अण् का (तद्धित का) तद्देवताकत्व अर्थ है तथा मन्त्र का तद्देवताकत्व तदुद्देश्यक त्यागकरणत्वेन वेदबोधितत्व ही है। विष्णूद्देश्यकत्यागकरणत्वेन उक्त ऋचा में वेदबोधितत्व होने के कारण उसे वैष्णवी ऋचा कहते हैं ।

अथ मन्त्रस्य त्यागकरणत्वं बाधितमेव—विनापि मन्त्रमिच्छाविशेषरूपस्य तस्योत्पत्त्या व्यभिचारात्, इष्टसाधनताज्ञानघटितक्लृप्तसामग्र्या अन्यथासिद्धत्वाच्चेति मन्त्रस्य करणतां कथं वेदो बोधयेत् ? बोधयन् वा प्रमाणं भवेत्? सत्यम्, मन्त्रस्य त्यागकरणत्वं त्यागाङ्गोच्चारणकत्वं न तु तज्जनकत्वमतो न दोषः। हविषस्तद्देवताकत्वञ्च तदुद्देश्यकत्यागकर्मत्वम् तत्त्यागोद्देश्यताया एव तद्देवतात्वपदार्थत्वात् ।

किन्तु भाई! मन्त्र का त्यागकरणत्व तो बाधित ही है क्योंकि विना मन्त्र के भी इच्छाविशेषरूप त्याग की उत्पत्ति होने से व्यभिचार होता है और इष्टसाधनताज्ञान से घटित क्लृप्तसामग्री के द्वारा अन्यथासिद्धत्व है। (अर्थात् आप मन्त्र का तद्देवताकत्व तदुद्देश्यक त्यागकरणत्वेन वेदबोधितत्व है, यह बतला रहे हैं। किन्तु मन्त्र तो त्याग का करण नहीं हो

सकता है, मन्त्र त्यागकरण तभी हो सकता है, यदि त्याग के प्रति कारण हो, किन्तु त्याग विना मन्त्र के भी सम्भव होता है, इस कारण मन्त्र त्याग का कारण ही नहीं है त्याग की इष्ट साधनता ज्ञान आदि से घटित सामग्री के बल से ही त्याग सम्भव होने के कारण मन्त्र अन्यथासिद्ध है। अतः कारण नहीं है) इस कारण मन्त्र की करणता वेद कैसे बोधित करेगा? और बोधित करे भी तो बोधित करता हुआ प्रमाण कैसे होगा? सच है, (आपका कहना सही है इसीलिए) मन्त्र का त्यागकरणत्व त्यागाङ्गोच्चारणकत्व है न कि त्यागजनकत्व इसलिए दोष नहीं है। मन्त्र में त्यागजनकत्व न होने पर भी त्यागाङ्गोच्चारणकत्व तो है ही इसलिए त्यागकरणत्व उपपन्न है। उसका बोधन वेद कर सकता है और बोधन करता हुआ प्रमाण हो सकता है। हवि का तद्देवताकत्व तदुद्देश्यकत्यागकर्मत्व है क्योंकि तत्त्यागोद्देश्यता का ही तद्देवतात्वपदार्थत्व है। हवि में इन्द्रोद्देश्यक त्यागकर्मत्व रूप इन्द्रदेवताकत्व है, अतः इन्द्र पद से उस अर्थ में अण् प्रत्यय उक्त सूत्र से होता है।

न चैवं घृतादिसम्प्रदानब्राह्मणस्य घृतादिदेवतात्वापत्तिः; उद्देश्यपदेन वेदबोधितद्रव्यस्वामित्वप्रकारेणेच्छाविषयताया एव विवक्षितत्वात् सम्प्रदाने च स्वामित्वस्याबोधितत्वात् ।

यदि कहो कि इस प्रकार तो घृतादिसम्प्रदान ब्राह्मण की घृतादिदेवतात्वापत्ति होगी, तो ऐसा नहीं है क्योंकि उद्देश्य पद से वेदबोधितद्रव्यस्वामित्व को प्रकार बनाते हुए इच्छा की विषयता ही विवक्षित है, सम्प्रदान में स्वामित्व का बोध नहीं होता है।

पूर्वपक्ष का आशय यह है कि आपने तत्त्यागोद्देश्यता ही तद्देवतात्व है ऐसा बताया, इस प्रकार तो ब्राह्मण को घृतादि देने पर घृतादित्यागोद्देश्यता ब्राह्मण की होने के कारण ब्राह्मण का घृतदेवतात्व होना चाहिए। इसका उत्तर यह है कि उद्देश्य पद से वेदबोधित द्रव्य स्वमित्वप्रकारेण इच्छा विषयता विवक्षित है, सम्प्रदान ब्राह्मणादि की स्वामित्वप्रकारेण इच्छाविषयता नहीं होती है क्योंकि सम्प्रदान में स्वामित्व नहीं बोधित होता है। अतः ब्राह्मण की घृतादिदेवतात्वापत्ति नहीं है।

न च त्यागोद्देश्यतायाश्चतुर्थ्याऽपि बोधनात् तद्धितचतुर्थ्योर्देवतात्व-बोधकतायामविशेषात् "तद्धितेन चतुर्थ्या वा मन्त्रलिङ्गेन वा पुनः। देवता सङ्गतिस्तत्र दुर्बलन्तु परं परम् ॥" इत्यनेन विरोध इति वाच्यम्; त्यागोद्देश्यतायां वेदमेयत्वस्याधिकस्य निवेशनीयतया चतुर्थ्या तदंशाबोधनेन तस्योपायान्तर बोध्यतया चतुर्थ्यधीनदेवतात्वबोधस्य विलम्बिततया तद्धितापेक्षया चतुर्थ्या जघन्यतोपपत्तेः। देवतार्थविहिततद्धितेन तु देवतात्वघटकतदंशस्यापि बोधनात्।

यदि कहो कि चतुर्थी के द्वारा भी त्यागोद्देश्यता का ही बोधन होने के कारण तद्धित और चतुर्थी के देवतात्वबोधकता में अविशेष होने के कारण 'तद्धित के द्वारा या चतुर्थी के द्वारा अथवा मन्त्रलिङ्ग से जहाँ पर देवता सङ्गति है उसमें पर पर दुर्बल हैं' इससे विरोध होगा। भाव यह है कि 'तद्धितेन....परम्' के द्वारा बतलाया गया है कि तद्धित, चतुर्थी

और मन्त्रलिङ्ग से देवतासङ्गति होने पर उत्तरोत्तर दुर्बल होते हैं। तद्धित से चतुर्थी और चतुर्थी से मन्त्रलिङ्ग द्वारा देवतासङ्गति दुर्बल होती है। यह तभी उपपन्न हो सकता है, यदि तद्धित के द्वारा कुछ और बोधित हो और चतुर्थी के द्वारा कुछ और, दोनों से एक ही चीज़ का बोध होने पर एक के प्रति दूसरे का दुर्बलत्व सङ्गत नहीं हो सकता है। आप तद्धित और चतुर्थी दोनों से त्यागोद्देश्यता का ही बोधन स्वीकार रहे हो, इसलिए एक का सबलत्व और दूसरे का दुर्बलत्व उपपन्न नहीं होता है।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि त्यागोद्देश्यता में वेदमेयत्व अंश का अधिक निवेश करणीय होने के कारण, चतुर्थी के द्वारा उस अंश का बोधन न करने के कारण उसके उपायान्तरबोध्य होने से चतुर्थी के अधीन देवतात्वबोध के विलम्बित होने के कारण तद्धित की अपेक्षा चतुर्थी के जघन्यता की उपपत्ति होती है। देवतार्थविहिततद्धित के द्वारा तो देवतात्व घटक तदंश 'वेदमेयत्व अंश' का भी बोधन होता है।

समाधान का सार यह है कि तद्धित और चतुर्थी के द्वारा एक ही तरह की त्यागोद्देश्यता नहीं बोधित होती है। तद्धित के द्वारा देवतात्व के अन्तर्गत वेदमेयत्व अंश भी बोधित होता है, 'वेदमेय तत्त्यागोद्देश्यता' ही तद्देवतात्व पदार्थ है। चतुर्थी के द्वारा 'तत्त्यागोद्देश्यता' रूप ही तद्देवतात्व बोधित होता है। वेदमेयत्वांश उपायान्तर से वेद्य होता है। इस कारण तद्धित के अधीन तद्देवतात्व बोध चतुर्थी के अधीन तद्देवतात्व बोध की अपेक्षा पहले हो जाता है, शीघ्रता से हो जाता है। इसलिए चतुर्थी का दुर्बलत्व है।

अथ चतुर्थ्या वेदमेयत्वांशस्य साक्षादबोधनेऽपि त्यागोद्देश्यत्वस्य साक्षाद्बोधनेन पित्रादीनां साहित्यावच्छिन्नानां ''पितृभ्यो दद्यात्'' इति चतुर्थ्यधीनत्यागोद्देश्यताबोधस्य ''पितरो देवताः'' इति तद्धितसमानार्थक देवतापदाधीननिरपेक्षत्यागोद्देश्यत्वबोधापेक्षयाऽविलम्बितत्वेन ''साहित्यावच्छिन्नानां निरपेक्षाणां वा श्राद्धोद्देश्यत्वम्'' इत्यत्र चतुर्थ्यपेक्षया देवता पदस्य बलवत्त्वरूपं शूलपाणिपर्यालोचितं विनिगमकं न सङ्गच्छते इति चेत् ?

न, ''पितृभ्यो दद्यात्'' इति चतुर्थ्या साहित्यावच्छिन्नस्य त्यागोद्देश्यता बोधे तत्र वेदसमानार्थकस्मृतिवाक्यजन्यत्वग्रहे सत्येवाप्रामाण्यशङ्कानुदयः तादृशग्रहश्च विलम्बितः। देवतापदात् त्यागोद्देश्यताबोधश्च तदुद्देश्यतांशे वेदबोधितत्वावगाही स्वस्मिन्नप्रामाण्यशङ्काव्युदासाय न ज्ञानान्तरमपेक्षते स्वस्यैव स्वात्मकोद्देश्यताबोधांशेऽप्रामाण्यव्यावर्तकवेदजन्यत्वावगाहनात्, अप्रामाण्यशङ्काकलङ्कितश्च बोधो जातोऽप्यकिञ्चित्कर इति देवतापदस्य झटिति निश्चीयमानप्रामाण्यबोधजनकतया बलवत्त्वेन विनिगमनाया उपपत्तेः।

लेकिन चतुर्थी के द्वारा वेदमेयत्व अंश का साक्षाद् बोधन न करने पर भी त्यागोद्देश्यत्व का साक्षाद् बोधन करने के कारण-'**पितृभ्यो दद्यात्**' इस चतुर्थी के अधीन त्यागोद्देश्यता बोध के 'पितरो देवताः' इस तद्धित समानार्थक देवतापदाधीन निरपेक्ष

त्यागोद्देश्यता बोध की अपेक्षा अविलम्बित होने के कारण 'साहित्य से अवच्छिन्न पितरों का श्राद्धोद्देश्यत्व है अथवा साहित्य से अनवच्छिन्न निरपेक्ष पितरों का श्राद्धोद्देश्यत्व है?' इसमें चतुर्थी की अपेक्षा देवता पद का बलवत्त्व रूप शूलपाणि द्वारा पर्यालोचित विनिगमक सङ्गत नहीं होता है। अभिप्राय यह है कि '**पितृभ्यो दद्यात्**' और '**पितरो देवताः**' इन दोनों से ही पितरों का श्राद्धोद्देश्यत्व ही प्रतिपादित किया गया है। अन्तर सिर्फ़ ये है कि चतुर्थी घटित प्रथम वाक्य से साहित्यावच्छिन्न पितरों का श्राद्धोद्देश्यत्व बोधित होता है और दूसरे से निरपेक्ष पितरों का श्राद्धोद्देश्यत्व प्रतिपादित होता है। इसमें कौन सा पक्ष माना जाये? यह सन्देह है? इस सन्देह का निवारण करते हुए शूलपाणि ने बतलाया है कि देवता पद का चतुर्थी की अपेक्षा बलवत्त्व है। किन्तु चतुर्थी के द्वारा वेदमेयत्व अंश का साक्षात् बोधन न होने पर भी पितरों का श्राद्धात्मक त्यागोद्देश्यत्व तो '**पितृभ्यो दद्यात्**' से साक्षात् ही बोधित होता है। '**पितरो देवताः**' से बोधित होने वाले पितरों के त्यागोद्देश्यत्व की अपेक्षा इसका विलम्बितत्व तो है नहीं। दोनों से पितरों का त्यागोद्देश्यत्व साक्षात् ही बोधित होता है। वेदमेयत्व अंश के साक्षाद्अबोधन और साक्षाद् बोधन से क्या अन्तर पड़ता है? इस कारण देवता पद का बलवत्त्व कैसे सङ्गत होगा? नहीं ही सङ्गत होगा।

तो ऐसा नहीं है क्योंकि '**पितृभ्यो दद्यात्**' इस चतुर्थी के द्वारा साहित्यावच्छिन्न के त्यागोद्देश्यताबोध होने पर यदि उसमें वेदसमानार्थक स्मृतिजन्यत्वग्रह हो तभी अप्रामाण्यशङ्का का उदय नहीं होगा और वेदसमानार्थक स्मृतिजन्यत्वग्रह विलम्बित होगा। देवता पद से होने वाला त्यागोद्देश्यताबोध तो तदुद्देश्यतांश में वेदबोधितत्व का अवगाहन करने वाला है, इस कारण अपने में अप्रामाण्यशङ्का का निरास करने के लिए ज्ञानान्तर की अपेक्षा नहीं करता है क्योंकि स्व के (अपने) द्वारा ही स्वात्मक उद्देश्यताबोधांश में अप्रामाण्यव्यावर्तक वेदजन्यत्वावगाहन किया जा रहा है। अप्रामाण्यशङ्का कलङ्कित बोध उत्पन्न होने पर भी अकिञ्चित्कर ही होता है। इस कारण देवता पद के झटिति निश्चीयमान प्रामाण्य बोध जनक होने के कारण बलवान होने से विनगमना की उपपत्ति होती है।

सार यह है कि पितरों के त्यागोद्देश्यत्व का बोध भले ही दोनों वाक्यों से अविलम्बित ही होता हो, किन्तु चतुर्थी के द्वारा वेदमेयत्व अंश का उपायान्तर से बोध होने के कारण उसमें प्रामाण्य निश्चय बाद में होता है, विलम्ब से होता है, शीघ्र नहीं तद्धितसमानार्थक देवता पद से वेदमेयत्वांश भी बोधित होता है। अतः उससे पितरों के त्यागोद्देश्यत्वबोध में प्रामाण्यनिश्चय भी शीघ्र ही होता है। गृहीत प्रामाण्य और संदिग्ध प्रामाण्य बोधों में गृहीत प्रामाण्य का ही बलवत्त्व होता है। अतः देवता पद का निश्चीयमानप्रामाण्य बोधजनकत्व होने के कारण बलवत्त्व होता है। यही कारण है कि निरपेक्ष पितरों के श्राद्धोद्देश्यत्व बोध को बलवान् माना जाता है।

एवं श्राद्धार्थावाहनप्रकाशकात् "पितरः" इत्यादिमन्त्राद् बहुवचनोपस्थापितसाहित्यावच्छिन्नावाहनबोधेन साहित्यावच्छिन्नानां श्राद्धदेवतात्वलाभेऽपि मन्त्रलिङ्गस्य विपक्षबाधकतर्कादिसापेक्षव्याप्ति निश्चयाधीनतया सुतरां "पितरो देवताः" इत्यतो दुर्बलतेति बोध्यम्।

अभी गदाधर ने तद्धित की अपेक्षा चतुर्थी के दुर्बलत्व का प्रतिपादन किया, अब तद्धित की अपेक्षा मन्त्रलिङ्ग के दुर्बलत्व का प्रतिपादन कर रहे है—

इसी प्रकार श्राद्धार्थ (श्राद्ध के लिए) आवाहन के प्रकाशक **'आयन्तु नः पितरः'** इत्यादि मन्त्रों से बहुवचनोपस्थापित साहित्यावच्छिन्न के आवाहन का बोध होने के कारण साहित्यावच्छिन्न पितरों के श्राद्धदेवतात्व का लाभ होने पर भी मन्त्रलिङ्ग के विपक्षबाधकतर्कादि सापेक्ष व्याप्तिनिश्चयाधीन होने के कारण निश्चित तौर पर **'पितरो देवताः'** की अपेक्षा दुर्बलत्व है।

यहाँ पर अनुमान होता है कि **'श्राद्धे साहित्यावच्छिन्नानां पितृणामावाहनं भवति बहुवचनकपितृपदघटितमन्त्रप्रयोगात्'** 'श्राद्ध में साहित्यावच्छिन्न पितरों का आवाहन होता है क्योंकि बहुवचन पितृपद से घटित मन्त्र का प्रयोग हैं'। यदि साहित्यावच्छिन्न पितरों का आवाहन है तो साहित्यावच्छिन्न पितरों का श्राद्धदेवतात्व भी लब्ध होता है। **'पितरो देवताः'** से निरपेक्ष पितरों का श्राद्धदेवतात्व प्रतिपादित है तो कौन सा पक्ष उचित है? बलवान् है? इसमें समाधान यही है कि उक्त अनुमान विपक्षबाधकतर्कादिसापेक्ष व्याप्तिनिश्चय के अधीन है, **'पितरो देवताः'** को किसी की अपेक्षा नहीं है, अतः उसे ही बलवान माना जाना चाहिए और बलवान माना जाता है।

'कापोतम्' 'राजतम्' 'जनता' इत्यादौ समूहार्थविहितस्य तद्धितस्य पर्याप्तसमुदायत्वावच्छिन्नोऽर्थः। पर्याप्तौ प्रकृत्यर्थकपोतत्वाद्यवच्छिन्न-स्यान्वयः कपोतशुकसारिकादिपर्याप्तसमुदायत्वस्य पर्याप्तिश्च न न्यूनवृत्ति-कपोतत्वादिनाऽवच्छिद्यते, अतो न तादृशसमुदाये कापोतादिव्यवहारः। पर्याप्त्यवच्छेदकत्वे चान्यूनवृत्तित्वमेव तन्त्रं न त्वनतिरिक्तवृत्तित्वमपि, अन्यथाऽऽकाशादेरिव घटत्वादेरपि द्वित्वादिपर्याप्त्यवच्छेदकता न स्यात् 'आकाशौ' इतिवत् 'घटौ' इत्यपि न स्यात्। इत्थञ्च कपोतमात्रवृत्तिशतत्वादिपर्याप्तावतिरिक्तवृत्तिकपोतत्वाद्यवच्छिन्नत्वनिर्वाहात् कपोतशतादावपि कापोतादिव्यवहारोपपत्तिः।

अतिप्रसक्तधर्मस्य तदनवच्छेदकत्वे गत्यन्तरं चिन्तनीयम् ।

–इति तद्धितप्रत्ययार्थविवेचनं समाप्तम्–

'कापोतम्' 'कपोतों का समुदाय' **'राजतम्'** 'रजत समुदाय' **'जनता'** जनसमुदाय' इत्यादि स्थलों में समूह अर्थ में विहित तद्धित प्रत्ययों (अण्, तल् आदि) का पर्याप्त समुदायत्वावच्छिन्न अर्थ है। पर्याप्ति में प्रकृति पद के अर्थ कपोतादि का अन्वय हुआ करता है। कपोत, शुक, सारिका आदि में पर्याप्त समुदायत्व की पर्याप्ति न्यूनवृत्तिकपोतत्वादि से अवच्छिन्न नहीं होती है, इसलिए कपोत, शुक, सारिका आदि के मिले हुए समुदाय में कापोत आदि व्यवहार नहीं होते है। भाव यह है कि यदि केवल कबूतरों का समुदाय है तो समुदायत्व की पर्याप्ति कपोतत्व से अवच्छिन्न हो जाती है। तथा कपोतत्वावच्छिन्न पर्याप्त समुदायत्वावच्छिन्न आदि अर्थ का **'कापोतम्'** आदि से बोध होता है। किन्तु यदि समुदाय

कपोत, शुक, सारिका आदि का मिला जुला है, तो समुदायत्व की पर्याप्ति के कपोतत्व आदि से अवच्छिन्न न होने के कारण उक्त प्रयोग नहीं हुआ करते हैं। पर्याप्ति के अवच्छेदकत्व में अन्यूनवृत्तित्व ही तन्त्र है अर्थात् अन्यून वृत्ति धर्म पर्याप्ति का अवच्छेदक होता है, अनतिरिक्त वृत्तित्व भी उसमें आवश्यक नहीं है। नहीं तो जैसे आकाशत्व की द्वित्वादिपर्याप्त्यवच्छेदकता द्वित्वादि की अपेक्षा न्यूनवृत्ति होने के कारण नहीं होती है,वैसे ही घटत्व की भी द्वित्वादि पर्याप्त्यवच्छेदकता द्वित्वादि की अपेक्षा अतिरिक्तवृत्ति होने के कारण नहीं हो सकेगी। इस प्रकार जैसे '**आकाशौ**' प्रतीति नहीं होती है,वैसे ही '**घटौ**' प्रतीति भी नहीं हो सकेगी। इस प्रकार कपोतमात्रवृत्तिशतत्वादि की पर्याप्ति में अतिरिक्त वृत्तिकपोतत्वाद्यवच्छिन्नत्व का निर्वाह हो जाता है (क्योंकि अवच्छेदकत्व में अन्यूनवृत्तित्व ही अपेक्षित होता है) इस कारण कपोतशतादि में भी कापोत आदि व्यवहारों की उपपत्ति हो जाती है। आशय यह है कि कपोतत्व शतत्व से अतिरिक्त वृत्ति होने पर भी न्यून वृत्ति न होने के कारण शतत्वपर्याप्ति का अवच्छेदक बन जाता है और सौ कबूतरों के रहने पर '**कापोतम्**' प्रयोग उपपन्न होता है क्योंकि उसके द्वारा कपोतत्वावच्छिन्न पर्याप्त समुदायत्वावच्छिन्न (कपोतत्व से अवच्छिन्न में पर्याप्त समुदायत्व से अवच्छिन्न अर्थ) बोधित होता है, वह अबाधित है।

पर्याप्ति से अतिप्रसक्त धर्म को पर्याप्ति का अवच्छेदक न स्वीकारने पर दूसरी गति चिन्तनीय है। दूसरी गति का आशय यह है कि पर्याप्ति मे तद्धर्म से विशिष्ट का अन्वय करने पर धर्मिपारतन्त्र्येण तद्धर्म का भी स्वव्याप्यत्व सम्बन्ध से अन्वय स्वीकारना चाहिए। ऐसा गूढार्थतत्त्वालोककार श्रीबच्चा झा जी का कहना है। यहाँ पर कपोत का आधेयत्व (वृत्तित्व) सम्बन्ध से पर्याप्ति में अन्वय होता है, कपोत के धर्म कपोतत्व का भी स्वव्याप्यत्व सम्बन्ध से पर्याप्ति में अन्वय करना चाहिए। उक्तस्थल में पर्याप्ति कपोतत्व से व्याप्य है, अतः '**कापोतम्**' व्यवहार होता है। कपोत, शुक, सारिका आदि का समुदाय होने पर समुदायत्व की पर्याप्ति में कपोतत्व आदि का व्याप्यत्व न होने से '**कापोतम्**' आदि प्रयोग नहीं होते हैं।

इस प्रकार महामहोपाध्याय श्रीमद्गदाधरभट्टाचार्यविरचित व्युत्पत्तिवाद की श्रीसच्चिदानन्द मिश्रविरचित सुनन्दा व्याख्या में तद्धितार्थविवरण पूरा हुआ।

------:0:------

अथ धातुप्रत्ययाः

धातुप्रकृतिकाश्च लकारकृत्सन्यङ्णिच्प्रभृतयः प्रत्ययाः, केचिद्धात्वर्थान्वितमधिकमर्थं ब्रुवते। अर्थान्तरमनभिदधानाश्च केचिदाकाङ्क्षानिर्वाहकतया प्रकृतिभिः स्वीयार्थबोधन एवोपकुर्वते। तत्र लडादिदशलकाराणां "लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः" इति सूत्रेण कर्तृकर्मभावेष्वनुशिष्टानां कर्तृत्वसामान्यमर्थः– तावन्मात्राभिधानेनैव प्रथमान्तपदोपस्थाप्ये विशेषणतया तदन्वयेन कृतिविशिष्टस्य कर्तुर्बोधनिर्वाहात् । लकारस्य तद्बोधकतया न "लः कर्मणि" इति सूत्रविरोधः, बोधकताया एव तत्र सप्तम्यर्थत्वात् न तु वाचकतायाः, गौरवेण विशिष्टधर्मिणि शक्तेर्बाधात्।' 'मैत्रः पचति' इत्यादौ लकारे प्रथमान्तपदसामानाधिकरण्यप्रवादस्याभेदेन तदर्थान्वितस्वार्थबोधपरत्वाभावेऽपि कथञ्चिदुपपादनसम्भवात् ।

धातुप्रकृतिक लकार, कृत्, सन्, यङ्, णिच् प्रभृति प्रत्यय हैं। कुछ प्रत्यय (इनमें से कुछ प्रत्यय) धात्वर्थ से अन्वित अधिक अर्थ (अपने अर्थ) को बताते हैं। कुछ प्रत्यय अर्थान्तर का अभिधान न करते हुए प्रकृतियों (धातुओं) के द्वारा अपने अर्थ (धात्वर्थ मात्र) बोधन में ही आकाङ्क्षानिर्वाहक होने के कारण उपकार करते हैं। उसमें से लडादि (लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लेट्, लोट् लङ्, लिङ्, लुङ्, लृङ्) दस लकारों का जो कि '**लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः**' पा0सू0 3/4/69 के द्वारा कर्तृ, कर्म और भाव में अनुशिष्ट हैं, कर्तृत्वसामान्य अर्थ है, लकार के द्वारा केवल कर्तृत्व का अभिधान करने से ही प्रथमान्त पदोपस्थाप्य में विशेषणतया उस कर्तृत्व के अन्वय के द्वारा कृतिविशिष्ट कर्ता के बोध का निर्वाह हो जाता है, लकार के कर्तृत्व के अन्वय के द्वारा कृतिविशिष्ट कर्ता के बोध का निर्वाह हो जाता है। लकार के कर्तृत्व का बोधक होने के कारण '**लः कर्मणि**' इस सूत्र से विरोध नहीं होता है। क्योंकि उस सूत्र में सप्तमी का अर्थ बोधकता ही है, वाचकता नहीं है क्योंकि गौरव होने के कारण विशिष्ट धर्मी में शक्ति का बाध हो जाता है।

भाव यह है कि सूत्रकार ने '**लः कर्मणि ...**' सूत्र के द्वारा कर्म, कर्ता और भाव में लकारों का विधान किया है, गदाधर यहाँ पर लकारों का अर्थ कर्तृत्वसामान्य स्वीकार रहे हैं। इस प्रकार सूत्रकार द्वारा कर्ता को और गदाधर द्वारा कर्तृत्व को लकार का अर्थ बतलाया जा रहा है। इसलिए दोनों में विरोध दिख रहा है। गदाधर इसी विरोध के बारे में कह रहे हैं कि विरोध नहीं है। उक्त सूत्र में कर्तृ आदि पदोत्तर सप्तमी का अर्थ वाचकता नहीं है क्योंकि कर्ता में लकारों की शक्ति स्वीकारने पर कृतिमत्त्व के ही कर्तृत्व होने के कारण शक्यतावच्छेदक कोटि में अनन्त कृतियों का प्रवेश होगा, साथ ही कृतित्व रूप शक्यतावच्छेदकतावच्छेदक के द्वारा कृति रूप शक्यतावच्छेदकों का अनुगम करना पड़ेगा। इसमें गौरव है। इसकी अपेक्षा लकारों की शक्ति कर्तृत्व (कृति) में स्वीकारने में लाघव है क्योंकि कृतित्व को शक्यतावच्छेदक माना जायेगा जो कि जाति है। इसलिए लकारों की

कर्तृवाचकता नहीं है बल्कि कर्तृबोधकता है, यही सूत्रकार ने बतलाया है। लकार के द्वारा मात्र कर्तृत्व का अभिधान होने पर भी प्रथमान्तपदोपस्थाप्य में विशेषणतया लकारोपस्थाप्य कर्तृत्व का अन्वय हो जाने से लकार के द्वारा कर्तृत्वविशिष्ट (कर्ता) के बोध का निर्वाह हो जाता है। सूत्र भी यही तो बता रहा है कि लकार कर्ता के बोधक होते हैं।

'मैत्रः पचति' 'मैत्र पका रहा है' इत्यादि स्थलों में लकार में प्रथमान्त पद सामानाधिकरण्य के प्रवाद का अभेदेन तदर्थान्वितस्वार्थबोधपरत्वाभाव होने पर भी कथंचित् उपपादन सम्भव है। **'मैत्रः पचति'** ही प्रयोग होता है **'मैत्रः पचसि मैत्रः पचतः'** नहीं, ऐसा किस कारण से है? इसके लिए बताया जाता है कि लकार में प्रथमान्त पद का सामानाधिकरण्य एक अर्थ वाचकत्व ही है। जैसे **'नीलो घटः'** में नील और घट पदों का सामानाधिकरण्य होता है क्योंकि नील पद भी उसी नीले घड़े को बताता है जिसे घट पद बताता है। यहाँ **'मैत्रः पचति'** में मैत्रपद मैत्र (कर्ता) को बताता है और पचतिपद मैत्रनिष्ठकर्तृत्व को । इस कारण एकार्थवाचकत्व रूप सामानाधिकरण्य मैत्र और पचति पदों में नहीं है। इसके लिए गदाधर समाधान देते हैं कि वह भी कथंचित् उपपादित किया जा सकता है। कथंचित् उपपादन का आशय यह है कि एकार्थ बोधकत्व को सामानाधिकरण्य मान लेने पर मैत्र और पचति दोनों के कर्तृत्वविशिष्ट एक अर्थ का बोधक होने के कारण इन दोनों पदों का सामानाधिकरण्य उपपन्न होता है।

तृतीयायाः साधुतानियामकं लकारादिना कर्तुरनभिधानमपि कर्तृत्वविशिष्टाबोधनमेव न तु विशिष्टशक्त्या विशिष्टाबोधनपर्यन्तम् । अतो विशिष्टस्य लकारावाच्यत्वेऽपि 'चैत्रः पचति' इत्यादौ न तृतीयापत्तिः- अन्वयबलेन विशिष्टबोधत्। 'चैत्रः पक्ता' इत्यादौ कृत्प्रत्ययस्य धर्मिणि शक्तावपि न क्षतिः, शक्त्यधीनविशिष्टबोधसाधारणबोधस्यैवानभिधान पदार्थप्रतियोगित्वात्; ''अनभिहिते कर्तरि तृतीया'' इत्यनुशासनेऽपि सप्तम्यर्थो बोधकत्वमेव तथा च 'चैत्रेण पच्यते' इत्यादौ तृतीयार्थकर्तृत्वस्य प्रकृत्यर्थविशेष्यतयैव भानान्न कर्तृत्वविशिष्टधर्मिबोधकत्वमिति सूत्राविरोधः।

तृतीया की साधुता का नियामक लकारादि के द्वारा कर्ता का अनभिधान भी कर्तृत्वविशिष्टाबोधन ही है, विशिष्ट शक्ति (कर्ता में शक्ति) से विशिष्टाबोधन (कर्ता के अबोधन) पर्यन्त नहीं। अर्थात् लकार आदि यदि कर्तृत्व विशिष्ट का बोधन नहीं कर रहे होंगे तो कर्तृवाचक पद से तृतीया होगी। यही कर्ता का अनभिधान है। लकार यदि कर्ता का बोधन न कर रहे हों तो कर्तृवाचक पद से तृतीया का विधान नहीं है। इसलिए लकार के द्वारा विशिष्ट (कर्ता) के वाच्य नहीं होने पर भी **'चैत्रः पचति'** इत्यादि स्थलों में कर्तृवाचक चैत्र आदि पदों से तृतीया की आपत्ति नहीं है क्योंकि यहाँ पर लकार के द्वारा अन्वय के बल से कर्तृत्वविशिष्ट का बोध हुआ करता है। **'चैत्रः पक्ता'** 'चैत्र पाक कर्ता है' इत्यादिस्थलों में कृत्प्रत्यय (तृच्) की धर्मी में (कर्ता में) शक्ति होने पर भी क्षति नहीं है क्योंकि शक्त्यधीनविशिष्टबोधसाधारण बोध का ही अनभिधानपदार्थ का प्रतियोगित्व है। **'अनभिहिते कर्तरि तृतीया'** 'अनभिहित कर्ता में तृतीया होती है' इस अनुशासन में भी

सप्तमी का अर्थ बोधकत्व ही है, इस प्रकार **'चैत्रेण पच्यते'** 'चैत्र के द्वारा पकाया जा रहा है' इत्यादि स्थलों में तृतीयार्थकर्तृत्व का प्रकृत्यर्थविशेष्यतया ही भान होने के कारण कर्तृत्वविशिष्ट धर्मी का बोधकत्व नहीं है, इसलिए सूत्र से अविरोध है।

कर्ता का लकार, कृत् आदि के द्वारा अनभिधान होने पर कर्तृवाचक पद से तृतीया होती है। अभिधान का अभाव ही अनभिधान है। कर्ता का अभिधान 'कर्तृत्वविशिष्ट बोध का जनकत्व' है। इस प्रकार अनभिधान 'कर्तृत्वविशिष्टबोध का अजनकत्व' है। यह अजनकत्व दो तरह से हो सकता है कर्तृत्वविशिष्ट में शक्ति न होने पर भी कर्तृत्वविशिष्ट बोध का अजनकत्व लकार, कृत् आदि में आ जायेगा और अन्वयबलेन कर्तृत्वविशिष्ट बोध का अजनक होने पर भी उक्त कर्तृत्वविशिष्टबोधाजनकत्व आ जायेगा। **'चैत्रः पचति'** में अन्वय के बल से कर्तृत्वविशिष्टबोध का जनकत्व है, अतः चैत्रादिपदोत्तर तृतीया नहीं होती है। **'चैत्रः पक्ता'** में तृच् प्रत्यय की कर्ता में शक्ति होने के कारण शक्त्यधीनकर्तृत्वविशिष्ट बोध का जनकत्व ही है, अतः चैत्र पद से तृतीया नहीं होती है। **'चैत्रेण पच्यते'** में कर्तृत्वविशिष्ट का बोध ही नहीं होता है। चैत्रवृत्तिकर्तृत्व का (चैत्रविशिष्ट कर्तृत्व का) बोध होता है। **'चैत्रवृत्तिकर्तृतानिरूपकः पाकः'** बोध होता है। इसलिए कर्तृत्वविशिष्ट धर्मी का बोधकत्व लकार में नहीं आ रहा है। इस कारण चैत्र पद से तृतीया होती है।

यदि च तत्र कर्त्रादिपदं धर्मपरं तथा च समभिव्याहृतलकाराद्यनभिहितं कर्तृत्वं तृतीयार्थ इति सूत्रार्थः 'चैत्रेण पच्यते' इत्यादौ कर्तृत्वस्य तृतीया मात्रार्थत्वाल्लकारेण तदनभिधानं सुघटमित्युच्यते? तदा तत्रानभिधानशब्दार्थो भवतैव निर्वक्तव्यः।

और यदि "वहाँ पर **'अनभिहिते कर्तरि तृतीया'** में कर्ता आदि पद धर्मपरक हैं, कर्तृत्वार्थक हैं, तथा इस प्रकार समभिव्याहृत लकारादि से अनभिहित कर्तृत्व तृतीया का अर्थ है, यह सूत्रार्थ होगा **'चैत्रेण पच्यते'** इत्यादि स्थलों में कर्तृत्व के सिर्फ़ तृतीया का अर्थ होने के कारण लकार के द्वारा उस कर्तृत्व का अनभिधान सुघट होगा" ऐसा कहते हैं तो वहाँ पर अनभिधानशब्द का क्या अर्थ है? यह आपको ही बताना पड़ेगा।

गदाधर ने अपने मत के अनुसार यह व्युत्पादित किया कि **कर्तृत्व विशिष्ट का लकारादि के द्वारा बोधन न होने पर कर्तृवाचक पद से तृतीया होती है।** इस मत में लकारादि के द्वारा कर्तृत्वविशिष्ट का बोधन न करना ही लकारादि के द्वारा कर्ता का अनभिधान है। कुछ अन्य लोग लकारादि के द्वारा कर्तृत्व का अनभिधान होने पर तृतीया होती है। ऐसा कहते हैं। इनके ऊपर गदाधर प्रश्न उठा रहे हैं कि अनभिधान पद का अर्थ आपको ही बतलाना पड़ेगा, आप कैसे अनभिधान को परिभाषित करेंगे? (इसमें तीन विकल्प दिखा रहे हैं और खण्डन कर रहे हैं)

न तावदवाचकत्वं तदर्थः— लकारसामान्यस्यैव कर्तृत्वशक्तत्वेनानुक्त्य सम्भवात्, कर्तरि यकोऽसाधुत्वादेव 'चैत्रः पच्यते' इत्यादिप्रयोगवारणात्, यगाद्यनुत्तरत्वस्य कर्तृत्वशक्ततावच्छेदककोटावनिवेशात्, तत्र तन्निवेशे

'पच्यते माषाः' 'भिद्यते कुसूलः' 'लूयते केदारः' इत्यादौ कर्मकर्तुर्माषकुसूलकेदारादेः कर्तृत्वबोधानुपपत्तिः।

यदि कर्तृत्वावाचकत्व कर्तृत्वानभिधानपदार्थ है तो यह तो कर्तृत्वानभिधान का अर्थ नहीं हो सकता है क्योंकि लकार सामान्य की ही कर्तृत्व में शक्ति होने के कारण लकार के द्वारा कर्तृत्व की अनुक्ति (लकार के द्वारा कर्तृत्व अनभिधान) असम्भव है। (किन्तु इसमें प्रश्न उठता है कि यदि सभी लकारों के द्वारा कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य व भाववाच्य के द्वारा कर्तृत्व का अभिधान होता है तो **'चैत्रः पचति'** की तरह **'चैत्रः पच्यते'** प्रयोग भी होना चाहिए। तो -) कर्ता में यक् के असाधु होने के कारण ही **'चैत्रः पच्यते'** इत्यादि प्रयोगों का वारण सम्भव है। (यदि कहो कि कर्तृत्वशक्ततावच्छेदक कोटि में यगाद्यनुत्तरत्व का निवेश है, यगाद्यनुत्तर लकार की ही कर्तृत्व में शक्ति है तो-) यगाद्यनुत्तरत्व का कर्तृत्व शक्ततावच्छेदक कोटि में निवेश नहीं है। कर्तृत्वशक्ततावच्छेदक कोटि में यगाद्यनुत्तरत्व का निवेश करने पर- यगाद्यनुत्तर लकार की कर्तृत्व में शक्ति मानने पर **'पच्यते माषाः'** 'माष (उड़द) पक रहे हैं' **'भिद्यते कुसूलः'** 'कुसूल भिद रहा है' **'लूयते केदारः'** 'खेत कट रहा है' इत्यादि स्थलों में कर्मकर्ता माष, कुसूल, केदार आदि के कर्तृत्वबोध की अनुपपत्ति होगी। ये प्रयोग कर्मकर्ता के हैं। माषादि के कर्मकर्तृत्व की विवक्षा होने से इस प्रकार का प्रयोग किया जाता है। जब सौकर्यातिशय द्योतित करने के लिए कर्ता का व्यापार विवक्षित नहीं होता है तो कारकान्तर भी कर्तृसंज्ञा को प्राप्त करते हैं। यहाँ पर पाक, भेदन, लवन आदि के सौकर्यातिशय को द्योतित करने के लिए कर्ता के व्यापार की विवक्षा नहीं है। अतः कर्म भूत माष, कुसूल, केदार आदि कर्तृसंज्ञा को प्राप्त करते है। इसमें वैयाकरणों का कथन है कि 'जब जिसका व्यापार धातु से अभिहित होता है, तब वह कर्ता होता है' इन स्थलों पर माषादि का व्यापार ही धातु के द्वारा अभिहित होने के कारण माष आदि का कर्तृत्व होता है। वस्तुतः तो वे पाक आदि के कर्म हैं, इन स्थलों में लकार के द्वारा माष आदि के कर्तृत्व का अभिधान होता है। यदि आपने यह नियम बना लिया कि यगाद्यनुत्तर लकार के द्वारा ही कर्तृत्व का अभिधान होता है तो यहाँ पर लकार के यगुत्तर होने के कारण लकार के द्वारा माषादिकर्तृत्व का बोध नहीं हो सकेगा। पच्यन्ते इत्यादि में लकार स्थानीय ते आदि के पूर्व और पच् आदि धातुओं के बाद यक् विकरण बैठा है।

न च तत्र 'स्वयमेव' इत्यस्याध्याहारेणाव्ययस्वयंपदोत्तर तृतीयया कर्तृत्वं बोध्यते न तु लकारेणेति वाच्यम्; 'स्वयम्' इत्यस्याध्याहारं विनापि तत्र कर्तृत्वबोधाभ्युपगमात्। तत्र लकारेण कर्तृत्वाबोधने कर्मकर्तुः "कर्मवत् कर्मणा तुल्यक्रियः" इत्यतिदेशसूत्रवैयर्थ्यापातात्, लकारस्य कर्मत्वबोधकतयैव यगात्मनेपदचिण्चिण्वद्भावरूपातिदेशफलनिर्वाहात्।

यदि कहो कि वहाँ पर **'पच्यन्ते माषाः'** इत्यादि स्थलों में 'स्वयमेव' का अध्याहार होने के कारण अव्यय स्वयं पदोत्तर तृतीया से कर्तृत्व बोधित होता है लकार के द्वारा नहीं अर्थात् उक्त स्थलों में स्वयमेव का अध्याहार होता है, स्वयं पद अव्यय है, उसके उपरान्त आयी हुई विभक्तियाँ लुप्त हो जाती हैं, इसलिए यह माना जा सकता है कि उसके

बाद तृतीया विभक्ति थी जो कि लुप्त हो गयी है। उसी का अर्थ कर्तृत्व है लकार का नहीं। तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि स्वयं इसका अध्याहार किये बिना भी वहाँ पर कर्तृत्व का बोध स्वीकारा जाता है। वहाँ पर लकार के द्वारा कर्तृत्व का बोधन न करने पर कर्मकर्ता के लिए **'कर्मवत् कर्मणा तुल्यक्रियः'** पा0 सू0 3/1/87 इस अतिदेश सूत्र के वैयर्थ्य की आपत्ति आयेगी क्योंकि लकार के कर्मत्व का वोधक होने के कारण ही यक्, आत्मनेपद, चिण्, चिण्वद्भाव रूप अतिदेशफलों (प्रयोजनों) का निर्वाह हो जायेगा।

आशय यह है कि कर्मकर्तृस्थलीय उक्त प्रयोगों के द्वारा यदि लकार से कर्तृत्व नहीं बोधित होता है, कर्मत्व ही बोधित होता है तो यक्, आत्मनेपद, चिण्, चिण्वद्भाव आदि सभी लकार के कर्मत्ववाचक होने के कारण ही हो सकते हैं जैसे भाव, कर्मवाच्य में होते हैं। सूत्र ही है **'चिण्भावकर्मणोः'** पा0 सू0 3/1/66। फिर तो **'कर्मवत् कर्मणा तुल्यक्रियः'** पा0 सू0 3/1/87 व्यर्थ हो जायेगा। इस सूत्र में तुल्यशब्द एक का पर्याय है। इस सूत्र का अर्थ है कि कर्मस्थ क्रिया से अभिन्न क्रियावान् कर्ता कर्मवत् होता है। तात्पर्यार्थ है कि ऐसे कर्ता में लकार होने पर यक्, आत्मनेपद, चिण्, चिण्वद्भाव आदि सभी कार्य कर्म में लकार की तरह होते हैं। जब कर्ता में लकार है ही नहीं, कर्म में ही लकार है तो ये सब तो अपने-आप हो जायेंगे। आप यगाद्यनुत्तर लकार की कर्ता में शक्ति मान रहे हैं। इसका मतलब है कि यहाँ उस कर्ता में लकार नहीं है क्योंकि यहाँ पर यगुत्तर लकार है। इस स्थिति में इस सूत्र **'कर्मवत् कर्मणा तुल्यक्रियाः'** का वैयर्थ्य हो जायेगा। इसलिए यगाद्यनुत्तर लकार की कर्ता में शक्ति नहीं स्वीकारी जा सकती है।

न च कर्मकर्तरि लकाराधीनकर्मत्वबोधस्याप्यावश्यकता वस्तुगत्या कर्तुः कर्मत्वातिदेशे 'चैत्रः स्वं पश्यति, स्वं हन्ति' इत्यादावपि यगात्मने पदादिप्रसङ्गाल्लकारेण कर्मत्वविवक्षायामेव कर्मत्वातिदेशस्य स्वीकरणीयत्वात् तथा च त्वन्मतेऽपि कर्मत्वातिदेशासङ्गतिरिति वाच्यम्; कर्मत्वविवक्षायामपि कर्तृत्वविवक्षणे कर्तृकर्मादिसंज्ञासमावेशविरोधेन परत्वात् कर्तृसंज्ञया कर्मसंज्ञाया बाधेनात्मनेपदचिण्वद्भावाद्यनुपपत्तेः, ''कर्तरि शप्'' इत्यपवादविषयतया यकोप्यनिर्वाहादतिदेशसार्थकत्वात्।

यदि कहो कि कर्मकर्ता में लकार के अधीन कर्मत्वबोध की भी आवश्यकता होती है, वस्तुगत्या कर्ता के कर्मत्व का अतिदेश होने पर तो **'चैत्रः स्वं पश्यति, स्वं हन्ति'** 'चैत्र खुद को देखता है, खुद को मारता है' इत्यादि स्थलों मे भी यक् आत्मने पद आदि का प्रसङ्ग होगा, इस कारण लकार के द्वारा कर्मत्व की विवक्षा होने पर ही कर्मत्वातिदेश स्वीकरणीय होगा। इस प्रकार तुम्हारे मत में भी कर्मत्वातिदेश की असङ्गति होगी। तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि कर्मत्वविवक्षा होने पर भी कर्तृत्वविवक्षा होने पर कर्तृकर्म आदि संज्ञाओं के समावेश से विरोध होने के कारण परत्वात् (पर होने के कारण) कर्तृ संज्ञा से कर्म संज्ञा का बाध होने के कारण आत्मनेपद, चिण्वद् भाव आदि की अनुपपत्ति होगी और **'कर्तरि शप्'** पा० सू० 3/1/68 इस अपवाद का विषय होने के कारण यक् का भी निर्वाह न होने के कारण अतिदेश सार्थक होता है।

यहाँ पर पूर्वपक्ष का अभिप्राय यह है कि **'कर्मवत् कर्मणा तुल्यक्रियाः'** सूत्र का अर्थ आप यही बता रहे हो कि कर्मस्थ क्रिया से अभिन्न क्रिया वाला कर्ता कर्मवत् होता है। **'चैत्रः स्वं पश्यति'** यहाँ पर कर्म भी खुद चैत्र ही है और कर्ता भी। कर्मस्थ क्रिया से अभिन्न क्रियावाला कर्ता है चैत्र, उसे कर्मवत् होना चाहिए। उस कर्ता में लकार होने पर यक् आत्मनेपद आदि होना चाहिए। अतः **'चैत्रः स्वं पश्यति'** में दृश् धातु से यक् आत्मनेपद आदि होने चाहिए। इसलिए आपको उक्त सूत्र का अर्थ यही करना पड़ेगा कि 'लकार के द्वारा कर्मत्व की विवक्षा होने पर कर्मस्थ क्रिया से अभिन्न क्रिया वाला कर्ता कर्मवत् होता है' किन्तु यदि कर्मत्व की लकार के द्वारा विवक्षा होने पर ही कर्मत्वातिदेश स्वीकारना है उक्त सूत्र के द्वारा, तब तो कर्मत्वातिदेश निरर्थक ही है। लकार के द्वारा कर्मत्व की विवक्षा होने पर तो कर्मवाच्यवत् स्वतः ही यक् आत्मनेपद आदि हो जायेंगे।

उत्तरपक्ष यह है कि कर्मकर्ता स्थल में लकार के द्वारा कर्मत्व की भी विवक्षा होती है और कर्तृत्व की भी विवक्षा होती है। एक ही व्यक्ति में कर्तृसंज्ञा और कर्मसंज्ञा दोनों संज्ञाओं के समावेश में विरोध है। इस कारण पर में (बाद में) विहित कर्तृसंज्ञा से कर्मसंज्ञा का बाध हो जायेगा, कर्तृसंज्ञा ही होगी कर्म संज्ञा नहीं। कर्मसंज्ञा न होने के कारण कर्मत्व प्रयुक्त आत्मनेपद, चिण्वद्भाव आदि की अनुपपत्ति है। इसके साथ ही **'सार्वधातुके यक्'** पा० सू० 3/1/67 के अपवाद **'कर्तरि शप्'** पा० सू० 3/1/68 से शप् की प्राप्ति होने के कारण यक् भी नहीं हो सकेगा। इसलिए **'कर्मवत् कर्मणा तुल्यक्रियः'** सूत्र के द्वारा कर्मत्वातिदेश सार्थक होता है।

सार रूप में कहना यह है कि जो यगाद्यनुत्तर लकार की ही शक्ति कर्तृत्व में स्वीकारता है, उसके मत में **'पच्यन्ते माषाः'** इत्यादि स्थलों में लकार के द्वारा कर्तृत्व का अभिधान ही नहीं होने के कारण कर्तृसंज्ञा की प्राप्ति न होने से **'कर्मवत् कर्मणा तुल्य क्रियाः'** यह अतिदेश व्यर्थ होता है। जो लकार मात्र की कर्तृत्व में शक्ति मानते हैं उनके मत में तो उपर्युक्त रीति से इस अतिदेश की सार्थकता है। अतः यगाद्यनुत्तरलकार की शक्ति कर्तृत्व में नहीं मानी जा सकती है।

न च कर्मत्वकर्तृत्वयोरुभयोस्तत्र बोधस्वीकारे तदेकतरस्याख्यातार्थतयोद्देश्यतावच्छेदकतया भानासम्भवात् समूहालम्बनबोध एव स्वीकरणीय इति वाक्यभेदापत्तिरिति वाच्यम्; एकत्र द्वयमितिरीत्या तदुभयबोधस्य समूहालम्बनविलक्षणस्य स्वीकारात् ।

यदि च विधेयद्वयज्ञानं समूहालम्बनात्मकमेव, अत एव 'विधेयभेदे वाक्यभेदः' इति मीमांसकसिद्धान्तोऽपीत्युच्यते ? तदाऽस्तु धातोरेव स्वकर्मकक्रियायां लक्षणा कर्तृत्वसम्बन्धमध्य एव वा स्वनिरूपक क्रियाकर्मत्वस्याप्यन्तर्भावः। स्नुनमोरकर्मकत्वेऽपि 'प्रस्नुते गौः' 'प्रास्नोष्ट गौः' 'नमते दण्डः' 'अनंस्त दण्डः' इत्यादौ ण्यर्थान्तर्भावेणैव कर्मकर्तृतानिर्वाहेण "न दुहस्नुनमां यक्चिणौ" इति यक्चिण्निषेधोपपत्तिः।

एवं 'चैत्रेण पक्ष्यते' इत्यादौ कर्तृत्ववाचकताया दुरपह्नवतया तृतीयानुपपत्तिः–'चैत्रः पक्ष्यते' इत्यादौ लकारेण कर्तृत्वबोधनात् स्याद्युत्तर लकारसाधारणरूपस्य तद्वाचकतावच्छेदकताध्रौव्याच्च।

कर्मत्व और कर्तृत्व दोनों का वहाँ (कर्मकर्तृस्थल में) बोध स्वीकारने पर उनमें से एक का आख्यातार्थ होने के कारण उद्देश्यतावच्छेदकतया भान असम्भव होने के कारण समूहालम्बन बोध ही स्वीकारना पड़ेगा, इसलिए वाक्यभेद की आपत्ति है। भाव यह है कि कर्मकर्तृ स्थल में कर्मत्व और कर्तृत्व दोनों ही लकार (आख्यात) के अर्थ हैं, आख्यात स्वार्थविधेयताक बोध में ही साकाङ्क्ष होता है। इसकारण आख्यातार्थ कर्तृत्व का और कर्मत्व का दोनों का ही विधेयतया ही बोध सम्भव है। एक का उद्देश्यतावच्छेदकतया और दूसरे का विधेयतया नहीं। आप कर्मत्वविशिष्ट माष में कर्तृत्व का आख्यात के द्वारा भान स्वीकार रहे हैं या कर्तृत्वविशिष्ट माष में कर्मत्व का भान स्वीकार रहे हैं यह तो सम्भव ही नहीं है। क्योंकि आख्यात के एक अर्थ का उद्देश्यतावच्छेदकतया और दूसरे का विधेयतया अन्वयबोध स्वीकारने पर ही यह सम्भव है, अन्यथा नहीं, जोकि असम्भव है। यदि ऐसा कहो तो नहीं कहना चाहिए क्योंकि 'एक ही जगह पर दोनों हैं' इस रीति से उन दोनों आख्यातार्थों का समूहालम्बनबोध से विलक्षणवोध स्वीकारा जाता है। न तो एक का (कर्तृत्व या कर्मत्व का) उद्देश्यतावच्छेदकतया और दूसरे का (कर्मत्व या कर्तृत्व या कर्तृत्व का) विधेयतया बोध स्वीकारा जाता है और न तो दोनों का ही विधेयतया समूहालम्बन बोध स्वीकारा जाता है बल्कि दोनों का विधेयतया समूहालम्बनविलक्षणबोध स्वीकारते हैं।

और यदि विधेयद्वयज्ञान नियमतः समूहालम्बनात्मक ही होता है, इसीलिए 'विधेयभेद होने पर वाक्यभेद होता है' ऐसा मीमांसक सिद्धान्त भी है। आप ऐसा कहते हैं तो धातु की ही स्वकर्मकक्रिया में लक्षणा हो जाये अथवा कर्तृत्व के सम्बन्ध के मध्य में ही स्वनिरूपकक्रिया-कर्मत्व का भी अन्तर्भाव कर लिय जाये। यदि धातु की स्वकर्मकक्रिया में लक्षण कर ली जाये तो उस स्वकर्मक क्रिया का कर्तृत्व ही आख्यात का अर्थ होगा कर्मत्व नहीं । इस कारण आख्यात के अर्थ कर्तृत्व मात्र का विधान माष में हो रहा है, कर्मत्व का नहीं। इसी प्रकार यदि कर्तृत्व के सम्बन्ध के अन्तर्गत स्वनिरूपकक्रियाकर्मत्व का भी निवेश कर दिया जाये अर्थात् आश्रयत्व, स्वनिरूपकक्रियाकर्मत्व इन दोनों सम्बन्धों से कर्तृत्व का माष में अन्वयबोध होता है। इस प्रकार **'पच्यन्ते माषाः'** से **'आश्रयत्वस्वनिरूपकक्रिया-कर्मत्वोभयसम्बन्धेन पाकानुकूलकृतिविशिष्टाः माषाः'** 'आश्रयत्व स्वनिरूपक-क्रियाकर्मत्वोभयसम्बन्ध से पाकानुकूल कृति से विशिष्ट माष है' ऐसा बोध होता है। स्नु और नम के अकर्मक होने के बावज़ूद भी **'प्रस्नुते गौः'** 'गौ प्रस्नुत हो रही है' **'प्रास्नोष्ट गौः'** 'गौ प्रस्नुत हुई' **'नमते दण्डः'** 'दण्ड झुक रहा है' **'अनंस्त दण्डः'** 'दण्ड झुका' इत्यादि स्थलों में ण्यर्थ का अन्तर्भाव करके ही कर्मकर्तृता निर्वाह होने के कारण **'न दुहस्नुनमां यक्चिणौ'** पा॰ सू॰ 3/1/89 इस सूत्र से यक् और चिण् के निषेध की उपपत्ति होती है। भाव यह है यदि स्नु, नम सकर्मक हों, तब उनका योग होने पर कर्मकर्तृता हो सकती है और कर्मकर्तृता यदि हो तब इस सूत्र से यक् और चिण् का निषेध सार्थक हो सकता है। वह कर्मकर्तृता का निर्वाह ण्यर्थ का अन्तर्भाव करके ही सम्भव होता

है। ण्यर्थ के अन्तर्भाव से कर्ता की ही कर्मता हो जायेगी।

इसी प्रकार **'चैत्रेण पक्ष्यते'** चैत्र के द्वारा पकाया जायेगा इत्यादि स्थलों में कर्तृत्ववाचकता के दुरपह्नव होने के कारण तृतीया की अनुपपत्ति होगी। **'चैत्रः पक्ष्यते'** 'चैत्र पकायेगा' इत्यादि स्थलों में लकार के द्वारा कर्तृत्व का बोधन होने के कारण स्याद्युत्तरलकारसाधारणरूप की तद्वाचकतावच्छेदकता की निश्चितता है। भाव यह है कि यहाँ पर तो स्याद्युत्तरलकार ही दोनों वाच्यों में है कर्मवाच्य में भी है और कर्तृवाच्य में भी है। इसलिए आप जिसे कर्तृत्व का वाचक मानेंगे, वही कर्मत्व का भी वाचक होगा। ऐसी स्थिति में आपने तृतीया के लिए जो नियम बनाया है कि लकार के कर्तृत्त्व का अवाचक होने पर कर्तृवाचक पद से तृतीया होती है। वह यहाँ तो लग नहीं रहा है। अतः **चैत्रेण पक्ष्यते** में भी चैत्रपदोत्तर तृतीया नहीं हो सकेगी।

सार–यहाँ पर **न तावदवाचकत्वं तदर्थः** से जो कल्प उठाया था उसमें मूलतः निम्नलिखित दोष उठाया है। प्रथमतः लकार सामान्य के कर्तृत्व का वाचक होने के कारण कर्तृत्व का अवाचकत्व लकार में कभी नहीं आयेगा, अतः कभी भी कर्तृवाचक पदों से तृतीया नहीं हो सकेगी। द्वितीयतः यदि लकारसामान्य को कर्तृत्व का वाचक न माना जाये तो भी **पक्ष्यते** में जिसे (जैसे आख्यात को) आप कर्तृत्व का वाचक मानेंगे वह **चैत्रेण पक्ष्यते** में भी मौजूद है, अतः कर्तृत्व का अवाचक लकार न होने से चैत्रपद से तृतीया नहीं ही हो सकेगी।

नापि तदबोधकत्वं तदनभिधानम्– 'चैत्रेण पच्यते' इति वाक्यजबोधे कर्तृत्वविषयके तादृशवाक्यघटकसकलपदानामेव जनकतया तद्घट-कलकारस्यापि कर्तृत्वबोधकताया वाङ्मात्रेणाप्रत्याख्येयत्वात्।

कर्तृत्वाबोधकत्व भी कर्तृत्व का अनभिधान नहीं है क्योंकि **'चैत्रेण पच्यते'** इस वाक्य से जन्य कर्तृत्वविषयक बोध में तादृशवाक्यघटक समस्त पदों के ही जनक होने के कारण तादृशवाक्य घटक लकार की भी कर्तृत्व बोधकता है जो कि वाणी मात्र से खण्डित नहीं की जा सकती है।

भाव यह है कि कर्तृत्वानभिधान का अर्थ कर्तृत्वाबोधकत्व हुआ, बोधकत्व के बोधजनकत्व रूप होने के कारण कर्तृत्वबोधाजनकत्व ही कर्तृत्वाबोधकत्व हुआ। **'चैत्रेण पच्यते'** से जो कर्तृत्वविषयक बोध पैदा होता है, उस बोध का जनकत्व जैसे बाकी पदों में है, उसी प्रकार लकार (आख्यात) में भी है। इस कारण लकार में कर्तृत्वबोधाजनकत्व कर्तृत्वाबोधकत्व रूप कर्तृत्वानभिधान न होने के कारण चैत्र पद से इस पक्ष में तृतीया नहीं हो सकती है।

तद्विषयत्वाप्रयोजकत्वं लादीनां तदनभिधायकत्वम् 'चैत्रेण पच्यते' इत्यादौ धात्वर्थविशेषणतया कर्तृत्वविषयता तृतीयाप्रयोज्यैव नत्वाख्यात प्रयोज्या आख्यातस्याश्रयतासम्बन्धावच्छिन्नकर्तृत्वप्रकारताया एव कार्यता वच्छेदकत्वात्, इत्यपि न सम्यक्– 'पचति' इत्यवान्तरवाक्यार्थबोध-

सङ्ग्राहकतया प्रकारताया एवाख्यातजन्यतावच्छेदकत्वासम्भवात्, प्रथमान्तपदसमभिव्याहारज्ञानस्य योग्यताज्ञानादेर्वा जन्यतायामुक्तप्रकारताया अवच्छेदकत्वात्।

कर्तृत्वविषयत्वाप्रयोजकत्व लादि का कर्तृत्वानभिधायकत्व है, **'चैत्रेण पच्यते'** इत्यादि स्थलों में धात्वर्थविशेषणतया कर्तृत्वविषयता तृतीया से प्रयोज्य ही होती है आख्यात प्रयोज्य नहीं क्योंकि आख्यात आश्रयतासम्बन्धावच्छिन्न कर्तृत्वप्रकारता का ही प्रयोजक होता है। भाव यह है कि कर्तृत्वविषयता का अप्रयोजकत्व ही लादि का कर्तृत्वानभिधायकत्व है। **'चैत्रेण पच्यते'** से जो बोध होता है **'चैत्रवृत्तिकृतिजन्यः पाकः'** इस बोध में धात्वर्थ पाक में चैत्र का कर्तृत्व (कृति) विशेषण बनता है। धात्वर्थविशेषणतया कर्तृत्व में बोध की विषयता आती है। धात्वर्थविशेषणतया कर्तृत्वविषयता लकार से प्रयोज्य नहीं होती है क्योंकि आख्यात के द्वारा कर्तृत्वनिष्ठा आश्रयत्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रकारताख्या विषयता ही प्रयोज्य हुआ करती है। आख्यातजन्यकर्तृत्वोपस्थिति होने पर कर्तृत्व आश्रयता सम्बन्ध से प्रकार बन कर ही भासता है। यहाँ पर तो कर्तृत्व (कृति) पाक में जन्यत्व सम्बन्ध से प्रकार बन रहा है। इसलिए उक्त विषयता तृतीया से ही प्रयोज्य है। इस प्रकार यहाँ पर लकार (आख्यात) का कर्तृत्वविषयत्वाप्रयोजकत्व नहीं हैं। इस कारण लकार के कर्तृत्वविषयत्वाप्रयोजक (कर्तृत्वानभिधायक) होने के कारण चैत्र पद से तृतीया होती है।

यह भी ठीक नहीं है क्योंकि **'पचति'** इस अवान्तर वाक्यार्थबोध का असङ्ग्राहक होने के कारण प्रकारता का ही आख्यातजन्यतावच्छेदकत्व असम्भव है, प्रथमान्तपदसमभिव्याहार ज्ञान की अथवा योग्यताज्ञान आदि की जन्यता में ही उक्त प्रकारता का अवच्छेदकत्व है। आशय यह है कि आप **'आश्रयत्वसम्बन्धावच्छिन्नकर्तृत्वप्रकारताशालि बोध के प्रति आख्यातपदज्ञान कारण है'** ऐसा कार्यकारणभाव मान रहे हैं। इसी के आधार पर चूँकि **'चैत्रेण पच्यते'** में जन्यत्व सम्बन्ध से अवच्छिन्न कर्तृत्व प्रकारताशालि बोध होता है, इसलिए उसके प्रति आख्यात की प्रयोजकता ही नहीं होने के कारण आख्यात में कर्तृत्वविषयत्वाप्रयोजकत्वरूप कर्तृत्वानभिधायकत्व है। ऐसा कह रहे हैं। किन्तु यह तो कार्यकारणभाव ही सम्भव नहीं है। **'पचति'** से **'पाकानुकूला कृतिः'** बोध होता है। यहाँ पर कृति रूप कर्तृत्व में आनेवाली विषयता का प्रयोजक लकार ही हो सकता है दूसरा कोई नहीं। किन्तु आपने तो कार्यकारणभाव बनाया है कि **आश्रयत्वसम्बन्धावच्छिन्नकर्तृत्व-प्रकारताशालि बोध के प्रति आख्यातपदज्ञान कारण है।** इसलिए यदि कर्तृत्व में आश्रयत्वसम्बन्धावच्छिन्न प्रकारता आये, तो उसी प्रकारता के प्रति आख्यात की प्रयोजकता हो सकती है। यहाँ पर तो कृतिरूपी कर्तृत्व विशेष्य बन कर बोधित हो रहा है। इस प्रकार इस वाक्य से जन्य बोध का संग्रह न हो सकेगा। इस कारण आप आश्रयतासम्बन्धावच्छिन्न कर्तृत्वप्रकारताशालिबोध के प्रति आख्यातपदज्ञान की कारणता नहीं स्वीकार सकते, अन्ततः कर्तृत्वविषयताक बोध के प्रति ही आख्यात की कारणता स्वीकारनी पड़ेगी और आश्रयत्व-सम्बन्धावच्छिन्नकर्तृत्वप्रकारताशालि बोध के प्रति प्रथमान्तपद समभिव्याहार ज्ञान की अथवा योग्यताज्ञानादि की कारणता स्वीकारनी पड़ेगी। ऐसी स्थिति में **'चैत्रेण पच्यते'** में पुनः

चैत्र पदोत्तर तृतीया की अनुपपत्ति होगी। क्योंकि कर्तृत्व विषयक बोध के प्रति आख्यात ज्ञान की कारणता होने के कारण यहाँ पर कर्तृत्वविषयक बोध में आख्यात प्रयोजक नहीं है आप ऐसा नहीं कह सकते हैं। आख्यात में कर्तृत्वविषयत्वाप्रयोजकत्व रूप कर्तृत्वानभिधायकत्व नहीं आया, अतः तृतीया नहीं हो सकेगी।

यदि च प्रथमान्तसमभिव्याहृताख्यातपदजन्यतावच्छेदकतयैव धर्मिविषयतानिरूपितकर्तृत्वविषयताया आख्यातप्रयोज्यत्वं कर्तृत्वविषयतासामान्यञ्च नाख्यातपदज्ञानसामान्याजन्यतावच्छेदकं तादृशसामान्यकार्यकारणभावे मानाभावादित्युच्यते? तदापि 'चैत्रेण पच्यते तण्डुलः' इत्यादिवाक्यार्थबोधस्य परस्परसमभिव्याहृतपदसमूहरूपवाक्यज्ञानहेतुकतया तद्वाक्यार्थविषयतान्तःपातिकर्तृत्वविषयताया वाक्यघटकाख्यातप्रयोज्यत्वं दुर्वारमेवेति।

और यदि प्रथमान्तपदसमभिव्याहृत आख्यातपदजन्यतावच्छेदकतया ही धर्मिविषयतानिरूपित कर्तृत्वविषयता का आख्यातप्रयोज्यत्व है, कर्तृत्वविषयतासामान्य तो आख्यातपदज्ञानजन्यतावच्छेदक नहीं है क्योंकि वैसे सामान्य कार्यकारणभाव में कोई प्रमाण नहीं है– ऐसा कहते हैं?

इस पूर्वपक्ष का अभिप्राय यह है कि सामान्यतया कर्तृत्वविषयताशालिबोध के प्रति आख्यातपदज्ञान कारण है ऐसा कार्यकारण भाव नहीं माना जा सकता है क्योंकि इसमें कोई प्रमाण नहीं है। '**पचति**' से भी '**पाकानुकूला कृतिः**' बोध नहीं होता है। अपितु प्रथमान्त पद का अध्याहार करके ही बोध होता है। इस कारण '**धर्मिविषयतानिरूपित कर्तृत्वविषयताशालि बोध के प्रति प्रथमान्तपदसमभिव्याहृत आख्यात पद ज्ञान कारण है**' ऐसा कार्यकारणभाव मानना पड़ेगा। **चैत्रः पचति** में आख्यातपदज्ञान कारण हुआ करता है कर्तृत्वप्रकारताशालि बोध के प्रति; धर्मी चैत्र विषयता निरूपित कर्तृत्व निष्ठ विषयता (प्रकारता) शालिबोध के प्रति आख्यातपदज्ञान कारण होता है; अतः आख्यात में कर्तृत्वाभिधायकत्व ही आता है अनभिधायकत्व नहीं। इसलिए चैत्र पद से तृतीया नहीं होती है। '**चैत्रेण पच्यते**' विषयक ज्ञान प्रथमान्त पद समभिव्याहृत आख्यात पदज्ञान नहीं है, अतः तादृश कर्तृत्वानभिधायकत्व आख्यात में होने से चैत्रपदोत्तर तृतीया उपपन्न होती है।

तो भी (ऐसी कहने पर भी) '**चैत्रेण पच्यते तण्डुलः**' इत्यादि वाक्यार्थबोध के परस्पर समभिव्याहृत पदसमूहरूपवाक्यज्ञानहेतुक होने के कारण तद्वाक्यार्थविषयतान्तःपातिकर्तृत्वविषयता का वाक्यघटकाख्यातप्रयोज्यत्व दुर्वार ही है। भाव यह कि आपने धर्मिविषयतानिरूपित कर्तृत्वविषयताशालि बोध के प्रति प्रथमान्तपदसमभिव्याहृत आख्यात पदज्ञान की कारणता स्वीकारी है। यहाँ पर प्रथमान्तपदसमभिव्याहृत आख्यातपदज्ञान है ही, इसलिए इस वाक्य से धर्मिविषयतानिरूपित कर्तृत्वविषयताशालि बोध जन्य होगा, धर्मिविषयतानिरूपित कर्तृत्वविषयता आख्यात पद से प्रयोज्य होगी। इस स्थिति में जब धर्मिविषयता निरूपित (धात्वर्थ पाकनिष्ठ विशेष्यता निरूपित) कर्तृत्वविषयता (कर्तृत्व

प्रकारता) का प्रयोजकत्व रूप कर्तृत्वाभिधायकत्व आख्यात में है तो चैत्रपद से तृतीया कैसे हो सकती है? तृतीयाप्रयोजक कर्तृत्वानभिधायकत्व के होने पर ही तृतीया उपपन्न हो सकती है।

मैवम्– "अनभिहिते कर्तरि तृतीया" इत्यस्य 'कर्तृत्वविशेष्यतया प्रातिपदिकार्थेऽविवक्षिते सति तृतीया' इत्यर्थः 'प्रातिपदिकार्थविशेषणतयैव कर्तृत्वेऽविवक्षिते' इति यावत्, अवधारणतया च 'प्रातिपदिकार्थविशेष्यतया कर्तृत्वे विवक्षिते तदुत्तरं तृतीया' इति पर्यवसितम् ।

तो ऐसा ठीक नहीं है। उक्त रीति से निर्वचन सम्भव नहीं है। **'अनभिहिते कर्तरि तृतीया'** 'अनभिहित कर्ता में तृतीया होती है' इसका 'कर्तृत्व विशेष्यतया प्रातिपदिकार्थ के विवक्षित न होने पर (प्रातिपदिक से) तृतीया होती है' यह अर्थ है। इसी को ऐसे भी कहा जा सकता है कि 'प्रातिपदिकार्थविशेषणतया ही कर्तृत्व के विवक्षित न होने पर तृतीया होती है' (प्रतिपदिकार्थ विशेषणतया कर्तृत्व का विवक्षित होना और कर्तृत्वविशेष्यतया प्रातिपदिकार्थ का विवक्षित होना एक ही चीज़ है। प्रातिपदिकार्थ का विशेषण बनाकर कर्तृत्व विवक्षित होगा तो प्रातिपदिकार्थ कर्तृत्व का विशेष्य बनाकर विवक्षित हो ही गया) अवधारण होने के कारण (एव पद प्रयोग से) यही बात 'प्रातिपदिकार्थ विशेष्यतया कर्तृत्व के विवक्षित होने पर उसके बाद तृतीया होती है' तक पहुँच गई।

विमर्श– गदाधर ने प्रथमतः कर्तृत्वविशिष्टावोधन ही लकार आदि का कर्त्रानभिधायकत्व है यह व्युत्पादित किया। तदुपरान्त **यदि च तत्र कर्त्रादिपदं धर्मपरं** से शुरुआत करते हुए कर्तृत्व को कर्तापद का अर्थ **'अनभिहिते कर्तरि तृतीया'** में स्वीकारने पर किस प्रकार कर्तृत्वानभिधायकत्व का निर्वचन किया जा सकता है? इसमें तीन विकल्प **कर्तृत्वावाचकत्व, कर्तृत्वाबोधकत्व, कर्तृत्वविषयत्वाप्रयोजकत्व** करके उसका खण्डन कर दिया। अंततः **मैवम्** प्रतीक से शुरू करते हुए कैसा कर्त्रनभिधान अपेक्षित है यह बतलाया कि प्रातिपदिकार्थविशेष्यतया कर्तृत्व के विवक्षित होने पर तदुत्तर तृतीया होती है।

अत्रैवं 'चैत्रः पचति' इत्यादावाख्यातेन कर्तृत्वबोधनात् "उक्तार्थानाम प्रयोगः" इतिन्यायात् तृतीयापत्तिविरहात् 'प्रातिपदिकार्थान्वयितया कर्तृत्वविवक्षायाम्' इत्येव सम्यक् किं विशेष्यतयान्वयित्वपर्यन्तनिवेशनेनेति "अनभिहिते" इत्यनुवृत्तिरफला–तावत्पर्यन्तलाभस्यैव तदनुवृत्तिफलत्वादिति नाशङ्क्यम् 'सङ्ख्यातिरिक्तसुबर्थस्य प्रकृत्यर्थविशेष्यतयैवान्वयः' इति व्युत्पत्तिसूचकत्वेन विशेष्यतयाऽन्वयित्वपर्यन्तस्यावश्यं विवक्षणीयत्वात्। यथाश्रुतसूत्रार्थानुरोधेन कर्तरि लकारतृतीयाविभक्त्योः शक्तिवादिभिर्वैया-करणैरपि 'प्रातिपदिकार्थविशेष्यतया कर्तरि विवक्षिते तृतीया' इत्येव सूत्रार्थो वाच्यः, अन्यथा 'चैत्रेण पच्यते' इत्यादौ कर्तुरनभिधानस्योक्तक्रमेण कर्तृत्वानभिधानवत् दुर्वचत्वापत्तेरित्यलमधिकेन।

यहाँ पर **'चैत्रः पचति'** 'चैत्र पका रहा है' इत्यादि स्थलों में आख्यात के द्वारा कर्तृत्व का बोधन होने के कारण 'उक्त अर्थों का प्रयोग नहीं होता है' इस न्याय से तृतीया की आपत्ति नहीं होने के कारण 'प्रातिपदिकार्थान्वयितया कर्तृत्वविवक्षा होने पर प्रातिपदिक से तृतीया होती है' इतना ही ठीक है, विशेष्यतया अन्वयित्व पर्यन्त निवेश की क्या ज़रूरत है? (कोई ज़रूरत नहीं है) अतः **'अनभिहिते' पा0सू0 2/3/1** की अनुवृत्ति निष्फल ही है क्योंकि तावत् पर्यन्त लाभ ही उस अनुवृत्ति का फल है। भाव यह है कि **'अनभिहिते कर्तरि तृतीया'** का अर्थ आपने यह किया कि **'प्रातिपदिकार्थ विशेष्यतया कर्तृत्व विवक्षित होने पर प्रातिपदिक से तृतीया होती है'** यदि इसमें **'अनभिहिते'** सूत्र की अनुवृत्ति न की जाये तो अर्थ होगा **'प्रातिपदिकार्थान्वयितया कर्तृत्व विवक्षित होने पर प्रातिपदिक से तृतीया होती है'** ऐसी स्थिति में भी **'चैत्रः पचति'** में चूँकि आख्यात के द्वारा प्रातिपदिकार्थ चैत्रान्वयितया (चैत्रविशेषणतया) कर्तृत्व विवक्षित है, बोधित हो रहा है। अतः तृतीया के द्वारा चैत्रान्वयितया कर्तृत्व नहीं विवक्षित हो सकता है क्योंकि 'उक्तार्थों का प्रयोग नहीं होता है' ऐसा न्याय है। इसलिए चैत्र पद से तृतीया नहीं हो सकती है। **'अनभिहिते'** इस सूत्र की अनुवृत्ति का प्रयोजन **'चैत्रः पचति'** में चैत्र पद से तृतीया की आपत्ति का वारण ही है। चैत्र पद से तृतीया की आपत्ति स्वतः वारित हो जा रही है। फिर उक्त सूत्र की अनुवृत्ति की ज़रूरत क्या है? उक्त अनुवृत्ति का फल तो यही है कि अर्थ निकले 'प्रातिपदिकार्थ विशेष्यतया कर्तृत्व विवक्षित होने पर तृतीया होती है' यह अर्थ न निकलने पर भी जब **'चैत्रः पचति'** तृतीया नहीं हो रही है तो यह अनुवृत्ति तो व्यर्थ ही है।

तो ऐसी आशङ्का नहीं करनी चाहिए क्योंकि **'संख्यातिरिक्त सुबर्थ का प्रकृत्यर्थ विशेष्यतया ही अन्वय होता है'** इस व्युत्पत्ति का सूचक होने के कारण विशेष्यतया अन्वयित्व पर्यन्त की विवक्षा अवश्य करनी पड़ेगी। भाव यह है कि उक्त सूत्र की अनुवृत्ति के द्वारा ही अर्थ निकलता है कि 'प्रातिपदिकार्थविशेष्यतया कर्तृत्व विवक्षित होने पर तृतीया होती है' तथा 'प्रातिपदिकार्थान्वयितया कर्तृत्व विवक्षित होने पर तृतीया होती है' इतनी विवक्षा मात्र करने पर भी **'चैत्रः पचति'** आदि में तृतीया की आपत्ति वारित होने पर भी उतने अर्थ की विवक्षा से यही व्युत्पत्ति सूचित होती है कि 'संख्यातिरिक्त सुवर्थ का प्रकृत्यर्थ विशेष्यतया ही अन्वय होता है'।

यथाश्रुत (जैसा सूत्र में सुना गया है वैसे) सूत्र के अर्थ के अनुरोध से लकार और तृतीया विभक्ति की शक्ति कर्ता में मानने वाले वैयाकरणों को भी 'प्रातिपदिकार्थविशेष्यतया कर्ता के विवक्षित होने पर तृतीया होती है' यही सूत्र का अर्थ बतलाना पड़ेगा। अन्यथा **'चैत्रेण पच्यते'** इत्यादि स्थलों में उक्त क्रम से कर्तृत्वानभिधान की तरह कर्ता के अनभिधान की भी दुर्वचत्वापत्ति है अधिक कहने से क्या। भाव यह है कि जैसे कर्तृत्वानभिधान का निर्वचन नहीं किया जा सकता है, उसी प्रकार कर्त्रनभिधान भी दुर्वच है। अतः उपर्युक्त रीति से ही कर्ता में लकार और तृतीया की शक्ति मानने वाले वैयाकरणों को भी सूत्र का अर्थ करना पड़ेगा।

अथ "अनभिहिते कर्तरि तृतीया" इत्यस्योक्तार्थकत्वे चैत्रादिकर्तृकत्वविशेषितपाकादिविवक्षया 'चैत्रेण पचति' इत्यादिप्रयोगापत्तिः।

न च परस्मैपदार्थकर्तृत्वान्वयिविशेष्यविरहान्न तथा प्रयोगः; विशेष्यतयाऽपि कर्तृत्वबोधसम्भवात्, चैत्रमैत्रोभयकर्तृकपाकस्थले 'चैत्रकर्तृकपाककर्ता मैत्रः' इत्यन्वयतात्पर्येण 'चैत्रेण पचति मैत्रः' इति प्रयोगस्य दुर्वारत्वाच्च।

न च कर्तृत्वातिरिक्ते विशेषणतापन्नायां कर्तृत्वे वा विशेषणतापन्नायामेव क्रियायां तृतीयार्थकर्तृत्वान्वयो व्युत्पन्न इति वाच्यम्; 'चैत्रेण पाचयति मैत्रः' इत्यादौ ण्यर्थकर्तृत्वविशेषणतापन्ने पाकादौ चैत्रादिकर्तृकत्वान्वयेन तादृशव्युत्पत्तेरसिद्धेः।

न च लकारार्थकर्तृत्वविशेषणतानापन्नक्रियाविशेषणतया कर्तृत्वबोधकत्वं सुपां व्युत्पन्नमिति न कश्चिद्दोष इति वाच्यम्; उक्तस्थले 'चैत्रेण पक्ववान् मैत्रः' इति प्रयोगापत्तेः।

लेकिन 'अनभिहिते कर्तरि तृतीया' के उक्तार्थक होने पर 'प्रातिपदिकार्थविशेष्यत्वेन कर्तृत्व की विवक्षा होने पर तृतीया होती है' यह अर्थ होने पर चैत्रादिकर्तृकत्वविशेषित पाकादि विवक्षा से 'चैत्रेण पचति' इत्यादि प्रयोगों की आपत्ति है। भाव यह है कि यदि 'अनभिहिते कर्तरि तृतीया' का उक्त अर्थ ही होता है तो यह अर्थ तो विवक्षा पर आधारित है। जैसे– 'चैत्रेण पच्यते' यहाँ पर चैत्रकर्तृकत्वविशेषित पाक की विवक्षा है तो चैत्र पद से तृतीया होती है, वैसे 'चैत्रः पचति' में भी यदि किसी की चैत्रकर्तृकत्वविशेषित पाक की विवक्षा है तो चैत्रपद से तृतीया होकर 'चैत्रेण पचति' प्रयोग होना चाहिए। विवक्षा तो अपने अधीन है, इसलिए यहाँ पर भी वैसी विवक्षा हो सकती है।

यदि कहो कि परस्मैपद के अर्थ कर्तृत्व (कृति) का अन्वयी विशेष्य न होने के कारण वैसा प्रयोग नहीं होता है तो यह नहीं कहा जा सकता है क्योंकि विशेष्यतया भी कर्तृत्व का बोध सम्भव ही हैऔर चैत्रमैत्रोभयकर्तृक पाक स्थल में 'चैत्रकर्तृक पाककर्ता मैत्र है' ऐसे अन्वय बोध की विवक्षा से, ऐसे अन्वय बोध के तात्पर्य से 'चैत्रेण पचति मैत्रः' इस प्रयोग की दुर्वारता है।

यदि कहो कि कर्तृत्वातिरिक्त में विशेषणतापन्न क्रिया में ही या कर्तृत्व में विशेषणतानापन्न क्रिया में ही तृतीयार्थकर्तृत्व का अन्वय व्युत्पन्न होता है, तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि 'चैत्रेण पाचयति मैत्रः' 'चैत्र के द्वारा मैत्र पकवाता है' इत्यादि स्थलों में ण्यर्थ कर्तृत्व में विशेषणतापन्न पाकादि में ही चैत्रादिकर्तृत्व का अन्वय होने के कारण तादृश व्युत्पत्ति- 'कर्तृत्वातिरिक्त में विशेषणतापन्न क्रिया में ही अथवा कर्तृत्व में विशेषणतानापन्न क्रिया में ही तृतीयार्थ कर्तृत्व का अन्वय होता है' यह व्युत्पत्ति- असिद्ध है।

यदि कहो कि लकारार्थ कर्तृत्व विशेषणतानापन्न क्रियाविशेषणतया कर्तृत्वबोधकत्व सुपों का व्युत्पन्न है, इसलिए कोई भी दोष नहीं है, तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि उक्त

स्थल में—चैत्रमैत्रोभयकर्तृक पाकस्थल में—**'चैत्रेण पक्ववान् मैत्रः'** ऐसा प्रयोग होने लगेगा।

यहाँ पर जो अभी चैत्रादिकर्तृकत्वविशेषित पाक आदि की विवक्षा से **'चैत्रेण पचति'** इत्यादि प्रयोगों की आपत्ति दी थी उसे वारित करने के लिए युक्तियाँ उठा रहे हैं और उन युक्तियों में दोष दिखा रहे हैं । पहली युक्ति यह है कि परस्मैपद प्रयोग **पचति** में है, परस्मैपद का अर्थ कर्तृत्व होता है, परस्मैपदार्थ कर्तृत्वान्वयी विशेष्य होने पर ही वैसा प्रयोग सम्भव हो सकता है चूँकि परस्मैपदार्थ कर्तृत्व का अन्वयी प्रथमान्तपदोपस्थाप्य विशेष्य नहीं है इसलिए परस्मैपदार्थ कर्तृत्वविशेष्यतया बोध ही उक्त प्रयोग से सम्भव होगा यदि चैत्ररूपप्रातिपदिकार्थविशेष्यत्वेन कर्तृत्व की विवक्षा हो तो। परस्मैपदार्थ कर्तृत्व मुख्यविशेष्यक-बोध सम्भव नहीं है और परस्मैपदार्थ कर्तृत्वान्वयी विशेष्य है नहीं। अतः **चैत्रेण पचति** प्रयोग नहीं होता है। इस युक्ति में प्रथमतः दोष दे रहे हैं कि भई! कर्तृत्व का विशेष्यतया बोध भी सम्भव है, केवल **पचति** प्रयोग से **'पाकानुकूला कृतिः'** बोध होता है, इसमें परस्मैपदार्थ कृति (कर्तृत्व) विशेष्य है। जब कर्तृत्व का मुख्यविशेष्यतया बोध भी सम्भव है तो यहाँ पर भी **'चैत्रेण पचति'** से भी कर्तृत्व का मुख्यविशेष्यतया बोध क्यों नहीं हो सकता है? यदि **'पचति'** यहाँ पर भी कर्ता का अध्याहार करके ही बोध स्वीकारो तो कर्तृत्व मुख्यविशेष्यक बोध कहीं पर भी प्रसिद्ध न होने के कारण यहाँ पर भी कर्तृत्व मुख्यविशेष्यक बोध नहीं सम्भव है। अतः **'चैत्रेण पचति'** प्रयोग की आपत्ति नहीं है। तो दूसरी समस्या है कि **'चैत्रेण पचति मैत्रः'** प्रयोग चैत्रमैत्रोभयकर्तृक पाक स्थल में होना चाहिए। चैत्रविशेष्यत्वेन कर्तृत्व की विवक्षा यहाँ पर कर ली गयी है, चैत्रविशेष्यत्वेन कर्तृत्व की विवक्षा करने पर चैत्र पद से तृतीया और उक्त वाक्य से **'चैत्रकर्तृकपाककर्ता मैत्रः'** ऐसा शाब्दबोध सम्भव है। शाब्दबोध अबाधितविषयक है। चैत्रमैत्रोभयकर्तृक पाक में चैत्रकर्तृकत्व भी है और मैत्रकर्तृकत्व भी। पाक की चैत्रकर्तृकत्वेन विवक्षा कर लें और मैत्र की चैत्रकर्तृकपाककर्तृत्वेन विवक्षा कर लें। उपर्युक्त शाब्दबोध तो सम्भव ही है।

इस प्रयोग की आपत्ति वारित करने के लिए यदि कहें कि 'कर्तृत्वातिरिक्त में विशेषणीभूत क्रिया या कर्तृत्व में अविशेषणीभूत क्रिया में ही तृतीयार्थ कर्तृत्व का अन्वय व्युत्पन्न होता है' तो **'चैत्रेण पचति मैत्रः'** प्रयोग की आपत्ति निवारित हो जाती है क्योंकि यहाँ पर जो पाकक्रिया मैत्रनिष्ठकर्तृत्व में विशेषणीभूत है, उसी पाकक्रिया में चैत्रपदोत्तर तृतीया के अर्थ कर्तृत्व का अन्वय करना आप चाह रहे हैं तथा उक्तान्वय अव्युत्पन्न है। इस वाक्य से जो शाब्दबोध आप स्वीकार कर रहे हैं वह **'चैत्रकर्तृकपाकानुकूलकृतिमान् मैत्रः'** पाक अनुकूलत्व सम्बन्ध से कृति में विशेषण है और पाक में चैत्र कर्तृकत्व (तृतीयान्तार्थ) का अन्वय करना तात्पर्यविषय है। यह अव्युत्पन्न है। नहीं हो सकता है। किन्तु ऐसी व्युत्पत्ति ही असिद्ध है क्योंकि **'चैत्रेण पाचयति मैत्रः'** इत्यादि स्थलों में **'चैत्रकृतिजन्यपाककर्तृत्वनिर्वाहकव्यापारानुकूलकृतिमान् मैत्रः'** ऐसा शाब्दबोध होता है। यहाँ पर पाक धात्वर्थ है, कर्तृत्वनिर्वाहक व्यापार ण्यर्थ है, कृति आख्यातार्थ है। पाक (धात्वर्थ) में तृतीयार्थकर्तृत्व (कृति) का जन्यत्व सम्बन्ध से अन्वय होता है। वह पाक कर्तृत्व (ण्यर्थ में) विशेषणीभूत है। इस प्रकार कर्तृत्व में विशेषणतानापन्न क्रिया में ही या

कर्तृत्वातिरिक्त में विशेषणतापन्नक्रिया में ही तृतीयार्थ कर्तृत्वान्वय का नियम नहीं है।

यदि व्युत्पत्ति यह स्वीकारें कि 'लकारार्थ कर्तृत्व में विशेषणतानापन्न क्रिया में ही तृतीयार्थ कर्तृत्व का अन्वय होता है' **'चैत्रेण पाचयति मैत्रः'** से जिस कर्तृत्व में विशेषणतापन्न पाकक्रिया में तृतीयार्थ कर्तृत्व का अन्वय होता है, वह कर्तृत्व लकारार्थ नहीं होकर ण्यर्थ है। **'चैत्रेण पचति मैत्रः'** में लकारार्थ (आख्यातार्थ) कर्तृत्व (कृति) में विशेषणतापन्न पाक क्रिया में चैत्रपदोत्तर तृतीया के अर्थ कर्तृत्व का अन्वय करना तात्पर्यविषय है, अतः व्युत्पत्तिविरोध होगा। इस कारण ऐसा प्रयोग होने की आपत्ति नहीं है। तो उक्त स्थल में **'चैत्रेण पक्ववान् मैत्रः'** ऐसा प्रयोग **'चैत्रकर्तृकपाककर्त्रभिन्नो मैत्रः'** ऐसे शाब्द बोध के तात्पर्य से होना चाहिए। यहाँ पर जिस कर्ता में पाक विशेषणीभूत है वह लकारार्थ नहीं है, कृदर्थ है, कृत्प्रत्यय का अर्थ है। लकारार्थ कर्तृत्व में विशेषणतानापन्न पाक क्रिया में तृतीयार्थ कर्तृत्व का अन्वय हो सकता है। इसमें तो कोई भी व्युत्पत्तिविरोध नहीं है।

इस प्रकार **'अनभिहिते कर्तरि तृतीया'** का 'प्रातिपदिकार्थविशेष्यतया कर्तृत्व विवक्षा होने पर तृतीया होती है' यह अर्थ होने पर ''चैत्रकर्तृकपाककर्ता मैत्रः' इस बोध के तात्पर्य से **'चैत्रेण पक्ववान् मैत्रः'** प्रयोग की आपत्ति तो है ही।

मैवम्- आश्रयातिरिक्ताविशेषणतापन्नकर्तृत्वविशेषणतानापन्न क्रियायामेव विशेषणतया कर्तृत्वं तृतीयया बोध्यते इति नियमः। 'चैत्रेण पाचयति' इत्यादौ कर्तृत्वनिर्वाहकव्यापारो णिजर्थस्तत्राश्रयातिरिक्ते व्यापारे विशेषणं कर्तृत्वमिति तद्विशेषणतापन्नक्रियायां तृतीयार्थकर्तृत्वविशेषणत्वे न किञ्चिद्बाधकम् । 'चैत्रेण पचति मैत्रः' इत्यादयश्च न प्रयोगाः- तत्राश्रय एव कृतेर्विशेषणतया तद्विशेषणतापन्नक्रियायां तृतीयया कर्तृत्त्वबोधना सम्भवात् । कृतिविशेष्यकबोधाभिप्रायेण 'चैत्रेण पचति' इति वारणाया-श्रयविशेषणत्वमुपेक्ष्याश्रयातिरिक्ताविशेषणत्वं निवेशितम् । ''अनभिहिते कर्तरि तृतीया'' इत्यस्यापि 'निरुक्तक्रियाविशेषणतया प्रातिपदिकार्थान्वयि कर्तृत्वविवक्षायां तदुत्तरं तृतीया भवति' इत्येवार्थ इति दिक्।

ऐसा नहीं है **'चैत्रेण पचति' 'चैत्रेण पचति मैत्रः' 'चैत्रेण पक्ववान् मैत्रः'** इत्यादि प्रयोगों की आपत्ति नहीं हैं। क्योंकि आश्रयातिरिक्त में अविशेषणतापन्न कर्तृत्व में विशेषणतानापन्न क्रिया में ही विशेषणतया कर्तृत्व तृतीया के द्वारा बोधित होता है ऐसा नियम है। **'चैत्रेण पाचयति मैत्रः'** इत्यादि स्थलों में णिच् का अर्थ है कर्तृत्व निर्वाहक व्यापार, वहाँ पर आश्रय से अतिरिक्त व्यापार में कर्तृत्व विशेषण है, उस कर्तृत्व में विशेषणतापन्न क्रिया में तृतीयार्थ कर्तृत्त्व के विशेषण बनने में विशेषणत्वेन अन्वय होने में कोई भी बाधक नहीं है। (आश्रयातिरिक्तव्यापारविशेषणीभूतकर्तृत्वविशेषणतापन्न पाक क्रिया में तृतीया के अर्थ कर्तृत्व का अन्वय होने के कारण आश्रयतिरिक्ताविशेषणतापन्न कर्तृत्व में विशेषणतापन्न क्रिया पाक क्रिया नहीं होती है, आश्रयातिरिक्ताविशेषणतापन्नक- र्तृत्वविशेषणतानापन्न

ही होती है, उसमें तृतीयार्थ कर्तृत्व का अन्वय होने में कोई समस्या नहीं है) **'चैत्रेण पचति मैत्रः'** इत्यादि प्रयोग तो नहीं होते हैं क्योंकि वहाँ पर आश्रय में ही कृति के विशेषण होने के कारण तद्विशेषणतापन्न क्रिया में कर्तृत्व बोधन तृतीया के द्वारा असम्भव है। (चैत्रकर्तृकपाककृतिमान् मैत्रः बोध तात्पर्यविषय होने पर मैत्ररूप आश्रय में विशेषणतापन्न कृति (कर्तृत्व) में विशेषणतापन्न पाक क्रिया में तृतीया के द्वारा विशेषणतया कर्तृत्व बोधित हो सकता है, जो कि उक्त व्युत्पत्ति से विरुद्ध है) कृतिविशेष्यक बोध के अभिप्राय से **'चैत्रेण पचति'** प्रयोग की आपत्ति वारित करने के लिए आश्रय विशेषणत्व की उपेक्षा करके आश्रयातिरिक्ताविशेषणत्व निवेशित किया है। भाव यह है कि आश्रयातिरिक्त में अविशेषणतापन्न कहने के बजाय आश्रयविशेषणतापन्न कह देते, इस प्रकार 'आश्रयविशेषणतापन्न कर्तृत्व में विशेषणतानापन्न क्रिया में ही विशेषणतया कर्तृत्व तृतीया के द्वारा बोधित होता है' ऐसी व्युत्पत्ति बनती। किन्तु ऐसा कहने पर कृति विशेष्यक बोध के अभिप्राय से **'चैत्रेण पचति'** प्रयोग होने की आपत्ति आयेगी क्योंकि कृतिविशेष्यक बोध तात्पर्य विषय हो तो कृति आश्रयविशेषणतापन्न नहीं है, इसलिए आश्रयविशेषणतापन्नकर्तृत्वविशेषणतानापन्न पाक क्रिया हो जायेगी, जिस कर्तृत्व में पाकक्रिया विशेषणतापन्न है वह आश्रय विशेषणतापन्न तो है नहीं । अतः आश्रयविशेषणतापन्नकर्तृत्व में विशेषणतानापन्न पाकक्रिया है। उसमें विशेषणतया तृतीया के द्वारा कर्तृत्व बोधित किया जा सकता है। इसलिए आश्रयातिरिक्ताविशेषणतापन्न कर्तृत्व में विशेषण दिया । यहाँ पर कर्तृत्व विशेष्यतया विवक्षित होने पर आश्रयातिरिक्ताविशेषणतापन्न है। आश्रयातिरिक्ताविशेषणतापन्न कर्तृत्व में विशेषणतानापन्न क्रिया में ही तृतीया के द्वारा कर्तृत्व बोधित हो सकता है। यहाँ तो पाक क्रिया आश्रयातिरिक्तविशेषणतानापन्न कर्तृत्व विशेषणतापन्न है। उसमें तृतीया के द्वारा कर्तृत्व नहीं बोधित हो सकता है।

'अनभिहिते कर्तरि तृतीया' इसका भी 'निरुक्त—आश्रयातिरिक्ताविशेषणतापन्न कर्तृत्व विशेषणतापन्न—क्रियाविशेषणतया प्रातिपदिकार्थान्वयिकर्तृत्व विवक्षा होने पर प्रातिपदिकोत्तर तृतीया होती है' यही अर्थ होता है। इस प्रकार दिशा प्रदर्शित की गयी ।

यहाँ पर इतना समझ लेना चाहिए आश्रयातिरिक्ताविशेषणतापन्नकर्तृत्वविशेषणतानापन्न क्रिया में विशेषण है, ऐसी क्रिया में ही तृतीया के द्वारा कर्तृत्व बोधित हो सकता है। इस विशेषणांश में आश्रयातिरिक्ताविशेषणतापन्न कर्तृत्व का विशेषण है। इस प्रकार अर्थ यह होता है कि आश्रयातिरिक्ताविशेषणतापन्न कर्तृत्व में विशेषणतानापन्न क्रिया में ही तृतीयार्थ कर्तृत्व का विशेषणतया अन्वय होता है।

कर्तृत्वञ्च 'चैत्रः पचति' इत्यादौ क्रियानुकूला कृतिरेव तस्याश्चानुकूल-कृतित्वेन कृतित्वमात्रेण वाऽऽख्यातवाच्यता । 'रथो गच्छति' 'काष्ठं पचति' इत्यादौ च क्रियानुकूलव्यापाररूपे कर्तृत्वे निरूढलक्षणा, कृतित्वजातेः प्रवृत्तिनिमित्तत्वे लाघवात् ।

कर्तृत्व तो **'चैत्रः पचति'** इत्यादि स्थलों में क्रियानुकूला कृति ही है और उसकी अनुकूलकृतित्वेन अथवा कृतित्वेन आख्यातवाच्यता है। **'रथो गच्छति' 'काष्ठं पचति'**

इत्यादि स्थलों में आख्यात की क्रियानुकूलव्यापाररूप कर्तृत्व में निरूढलक्षणा है। क्योंकि कृतित्व जाति को प्रवृत्तिनिमित्त मानने में लाघव है।

आख्यात की शक्ति कृति में या अनुकूलकृति में है। अनुकूलकृति में आख्यात की शक्ति मानने की अपेक्षा कृति में शक्ति मानने में लाघव है क्योंकि अनुकूलकृति में आख्यात की शक्ति मानने पर अनुकूलकृतित्व को शक्यतावच्छेदक मानना पड़ेगा, उसकी अपेक्षा कृतित्व को शक्यतावच्छेदक मानने में लाघव है। इसमें कुछ अन्य का मत है कि आख्यात की शक्ति व्यापार में माननी चाहिए क्योंकि **'रथो गच्छति' 'काष्ठं पचति'** प्रयोग होते हैं। रथ का कर्तृत्व गमनानुकूलकृतिमत्त्व रूप नहीं हो सकता है। रथ के अचेतन होने के कारण रथ में कृति नहीं रह सकती है। इसी प्रकार काष्ठ में भी कृति नहीं रह सकती है। ऐसी स्थिति में आख्यात का अर्थ कृति मानने पर रथ काष्ठ आदि में आख्यातार्थान्वय बाधित होने से अयोग्यता होगी। शाब्दबोध नहीं हो सकेगा। इस कारण आख्यात की शक्ति व्यापार में माननी चाहिए। इस पर नैयायिकों का कहना है कि **'रथो गच्छति'** आदि स्थलों में आख्यात के मुख्यार्थ का बाध होने के कारण क्रियानुकूलव्यापार रूप कर्तृत्व में आख्यात की लक्षणा होती है और रथ आदि का गमनक्रियाद्यनुकूलव्यापाररूप कर्तृत्व बोधित होता है। **'चैत्रः पचति'** आदि में कृतिमत्त्वरूप कर्तृत्व बोधित होता है। व्यापार में आख्यात की शक्ति मानने पर व्यापारों का अनुगम नहीं होने के कारण व्यापारत्व जाति प्रवृत्तिनिमित्त (शक्यतावच्छेदक) नहीं हो सकती है। अनेक ऐसे व्यापार हैं जिनमें व्यापारत्व की प्रतीति नहीं होती है। अथवा व्यापार अनेक प्रकार के हैं, कृति उस प्रकार अनेक प्रकार की नहीं है। इसलिए व्यापारत्वेन व्यापार में आख्यात की शक्ति मानने पर गौरव होगा और कृतित्वेन कृति में शक्ति मानने पर लाघव होगा। इस कारण आख्यात की शक्ति कृतित्वेन कृति में माननी चाहिए।

मीमांसकास्तु—व्यापारत्वेनैव शक्तिः 'पचति' इत्यादावपि तेनैव रूपेण बोधोपगमात् । एवञ्चाचेतनेऽपि प्रयोगो मुख्य एव कृतित्वस्य लाघवमकिञ्चित्करम् । यत्र लघुगुरुरूपाभ्यां बोधो निर्विवादस्तत्रैव लघुरूपावच्छिन्ने शक्त्युपगमात् , प्रकृते च कृतित्वेन बोधस्य सविवादत्वात् । तथापि तदवच्छिन्ने शक्त्युपगमे तत्राऽमुख्यार्थेऽनादितात्पर्यकल्पनायां गौरवात्। एवं 'बीजेनाङ्कुरः कृतः' इत्यादौ विनापि यत्नं कृञः प्रयोगात् तस्यापि व्यापारसामान्यार्थकता अतः करोतिविवरणीयार्थकत्वेऽपि नाख्यातस्य यत्नत्वावच्छिन्नवाचकता, न वा 'किं करोति?' 'पचति' इति प्रश्नोत्तरयोः समानप्रकारकबोधजनकत्वानुरोधेन तथात्वम् ।

मीमांसक लोग तो— व्यापारत्वेन व्यापार में ही आख्यात की शक्ति है क्योंकि मीमांसक **'चैत्रः पचति'** इत्यादि स्थलों में भी व्यापारत्वेन रूपेण ही चैत्रादि के कर्तृत्व का बोध स्वीकारते हैं। अर्थात् उनके मत में चैत्र का कर्तृत्व भी तत्तत्क्रियानुकूलव्यापार ही है। रथादि का भी कर्तृत्व तत्तत्क्रियानुकूलव्यापार ही है। इस प्रकार अचेतन में भी पचति इत्यादि प्रयोग मुख्य ही है, मुख्यार्थ परक ही है, लाक्षणिक नहीं है। कृतित्व का लाघव तो

अकिञ्चित्कर है। (कृतित्व को प्रवृत्तिनिमित्त मानने पर लाघव होने पर भी उक्त लाघव के बल से आख्यात की शक्ति कृतित्वावच्छिन्न कृति में नहीं स्वीकारी जा सकती है) क्योंकि जहाँ पर लघु गुरु दोनों रूपों के द्वारा बोध निर्विवाद होता है, वही पर लघुरूप से अवच्छिन्न में शक्ति स्वीकारी जाती है प्रकृत स्थल में तो कृतित्वेन बोध ही सविवाद है। उदाहरण के रूप में घटपद से घट का बोध कम्बुग्रीवादिमत्त्वरूप से भी होता है और घटत्व रूप से भी होता है। इसलिए कम्बुग्रीवादिमत्त्वरूप से अवच्छिन्न में घट पद की शक्ति स्वीकारने में गौरव और घटत्व रूप से अवच्छिन्न में शक्ति स्वीकारने में लाघव होने के कारण घटपद की शक्ति घटत्वावच्छिन्न में स्वीकारी जाती है, कम्बुग्रीवादिमत्त्वावच्छिन्न में नहीं। आख्यात के द्वारा कृतित्वेन रूपेण बोध ही विवादित है क्योंकि **'रथो गच्छति'** में कृतित्वेन रूपेण बोध ही नहीं हो सकता है।

व्यापारत्वेन रूपेण बोध तो सिद्ध है क्योंकि **'रथो गच्छति'** में कृतित्वेन रूपेण बोध ही नहीं हो सकता है। यहाँ पर नैयायिक भी व्यापारत्वेन ही आख्यात से बोध स्वीकारते हैं। फिर भी–कृतित्वेन रूपेण आख्यात से बोध के विवादित होने पर भी-कृतित्वावच्छिन्न में आख्यात की शक्ति का उपगम करने पर वहाँ पर-**रथो गच्छति** इत्यादि स्थलों में-अमुख्य अर्थ में-लाक्षणिक अर्थ में-आख्यात के अनादितात्पर्य की कल्पना करने में गौरव होगा। इस कारण आख्यात की शक्ति व्यापार में ही माननी चाहिए कृति में नहीं।

इस प्रकार **'बीजेनाङ्कुरः कृतः'** 'बीज के द्वारा अङ्कुर किया गया' इत्यादि स्थलों में विना यत्न के भी बीज में यत्न न रहने पर भी- कृञ् धातु का प्रयोग होने के कारण कृञ् धातु की भी व्यापारसामान्यार्थकता है। कृञ् धातु का भी अर्थ व्यापार मात्र होता है कृति (प्रयत्न) नहीं। इस कारण करोति के द्वारा जिसके अर्थ का विवरण किया जाता है, ऐसे आख्यात की भी यत्नत्वावच्छिन्नवाचकता नहीं होती है और न ही **'किं करोति' 'पचति'** इन प्रश्नोत्तरों के समानप्रकारकबोधजनकत्व के अनुरोध से आख्यात की यत्नत्वावच्छिन्न-वाचकता होती है।

नैयायिक आख्यात को यत्नत्वावच्छिन्नवाचक मानते हैं। इसमें नैयायिकों की मूल रूप से दो युक्तियाँ है। प्रथम युक्ति यह है कि आख्यात का अर्थ यत्न है क्योंकि यत्नार्थक कृञ् धातु से आख्यात का विवरण किया जाता है। सभी प्रामाणिक जन आख्यात का विवरण कृञ् धातु से करते हैं **'पचति'** का **'पाकं करोति'** विवरण किया जाता है। ऐसे हीं अन्यत्र भी होता है। दूसरी युक्ति यह है कि **'किं करोति'** के द्वारा जब यत्न के बारे में पूछा जाता है तो उत्तर **'पचति'** इत्यादि के द्वारा दिया जाता है। प्रश्न यदि यत्नार्थक (यत्नविषयक) है तो उत्तर भी यत्न विषयक ही होना चाहिए। **पचति** में यत्न को बतलाने वाला आख्यात ही हो सकता है धातु नहीं हो सकता है। इस कारण आख्यात का अर्थ यत्न मानना चाहिए[1]। मीमांसक इन दोनों युक्तियों का खण्डन करते हैं । उनका कहना है कि

---

1. आख्यातस्य यत्नो वाच्यः, पचति पाकं करोतीत्यादियत्नार्थककरोतिना सर्वाख्यातविवरणात् । व्यवहारादिव बाधकं विना विवरणादपि व्युत्पत्तेः, किं करोतीति यत्नप्रश्ने पचतीत्युत्तरस्य यत्नार्थकत्वं विनाऽनुपपत्तेश्च।

कृञ् धातु यत्नार्थक नहीं है व्यापारार्थक है क्योंकि '**बीजेनाङ्कुरः कृतः**' प्रयोग कृञ् धातु को व्यापारार्थक मानने पर ही हो सकता है। इसलिए व्यापारार्थक कृञ् धातु से आख्यात का विवरण किया जाने के कारण आख्यात का अर्थ व्यापार ही मानना चाहिए। इसी प्रकार **किं करोति** से जब व्यापार के विषय में पूछा जाता है तो **पचति** से व्यापार विषयक उत्तर दिया जाता है।इस तरह आख्यात का अर्थ व्यापार ही मानना चाहिए।

अत्र केचित्– 'पचति' इतिवाक्यजन्यबोधे सति यत्नत्वावच्छिन्ने वर्तमानत्वसंशयानुदयात्तत्र यत्नत्वावच्छिन्ने वर्तमानत्वबोधकत्वसिद्धौ तदवच्छिन्ने शक्तिर्लाघवात् सिद्ध्यति, नहि यत्नाविनाभूतक्रियाविशेष लिङ्गकानुमानलभ्येन यत्नत्वावच्छिन्नेन समं वर्तमानत्वान्वयबोधकत्वमाख्या-तस्यार्थाध्याहारमतेऽपि सम्भवति—लडादिजन्यवर्तमानत्वान्वयबोधे लडादि-तत्समभिव्याहृतधात्वन्यतरजन्यविशेष्योपस्थितेः कारणतायाः आवश्यकत्वात् अन्यथा निकाराङ्क्षयत्नादिपदमात्राद् यत्नाद्युपस्थितावपि तत्र वर्तमानत्वा-देर्लडादितो बोधप्रसङ्गात्।

यहाँ पर कुछ लोग कहते हैं कि- **पचति** इस वाक्य से जन्य बोध के रहने पर यत्नत्वावच्छिन्न में वर्तमानत्व संशय का उदय न होने के कारण उस वाक्य में यत्नत्वावच्छिन्न में वर्तमानत्वबोधकत्व सिद्धि हो जाने पर कृतित्वावच्छिन्न (यत्नत्वावच्छिन्न) में आख्यात की शक्ति लाघवात् सिद्ध होती है, अर्थाध्याहार मत में भी यत्नाविनाभूतक्रियाविशेषालिङ्गक अनुमान से लभ्य यत्नत्वावच्छिन्न के साथ आख्यात का वर्तमानत्वान्वयबोधकत्व नहीं सम्भव है क्योंकि लडादिजन्य वर्तमानत्वान्वयबोध में लडादि और लडादिसमभिव्याहृत धातु दोनों में से किसी एक से जन्य विशेष्य की उपस्थिति की कारणता आवश्यक है अन्यथा निराकाङ्क्षयत्नादिपदमात्र से यत्नादि की उपस्थिति होने पर भी उसमें वर्तमानत्वादि का लडादि से बोध का प्रसङ्ग होगा।

अत्रकेचित् प्रतीक से नैयायिकैकदेशी के द्वारा मीमांसकों के खण्डन में युक्ति दिखायी जा रही है। कहना यह है कि **पचति** इस वाक्य से जन्य बोध रहने पर '**यत्नो वर्तमानो न वा**' 'यत्न वर्तमान है या नहीं' ऐसा संशय नहीं होता है। इसका मतलब ये है कि पचति यह वाक्य यत्न के वर्तमानत्व का बोधक है। जब यत्न का वर्तमानत्व इस वाक्य से बोधित होता है तो उचित यही है कि आख्यात की शक्ति यत्न में ही मान लिया जाये। आख्यात से ही यत्न की उपस्थिति होती है और वर्तमानत्व की भी तथा अन्वय होकर यत्न का वर्तमानत्व बोधित होता है। यही स्वीकरना उचित प्रतीत होता है। इसी में लाघव भी है।

यदि मीमांसक यह कहें कि हम अर्थाध्याहारवादी है, पद से अनुपस्थित अध्याहृत अर्थ में भी पद से उपस्थित अर्थ का अन्वय हम कर लेते हैं। क्रियाविशेष (पाकादि) यत्न के विना नहीं हो सकते हैं, इस कारण क्रियाविशेष पाकादि को हेतु बनाकर हम यत्न का अनुमान कर लेते हैं। इस प्रकार अनुमान से लभ्य यत्न में लट् से उपस्थित वर्तमानत्व का

अन्वय कर लिया जायेगा। तो इस पर नैयायिकैकदेशी का कहना है कि अनुमान से लभ्य यत्न में लट् से उपस्थित वर्तमानत्व का अन्वय आप नहीं कर सकते हैं क्योंकि लडादि जन्यवर्तमानत्वान्वय बोध में- लडुपस्थित वर्तमानत्व के अन्वयबोध में-लडादि तत्समभिव्याहृत धात्वन्यतरजन्यविशेष्योपस्थिति की कारणता आवश्यक है। लडादि से उपस्थित वर्तमानत्व का यत्न में अन्वय लडादि से विशेष्य (यत्न) की उपस्थिति होने पर हो सकती है या तो लडादि समभिव्याहृत धातु से विशेष्य (यत्न) की उपस्थिति होने पर हो सकती है। यहाँ पर आप यत्न का अनुमान कर रहे हैं। उसकी उपस्थिति न तो लडादि से और न ही लडादिसमभिव्याहृत धातु से हो रही है। इसलिए उस अनुमान लभ्य यत्न में लडुपस्थित वर्तमानत्व का अन्वय होकर बोध नहीं हो सकता है। लडादिजन्यवर्तमानत्वान्वयबोध में लडादितत्समभिव्याहृतधात्वन्यतरजन्य विशेष्योपस्थिति की कारणता न स्वीकारने पर आकाङ्क्षारहित यत्नादि पदमात्र से यत्नादि की उपस्थिति होने पर भी यत्नादि में लडादि से वर्तमानत्व का अन्वयबोध होने लगेगा। भाव यह है कि जब निराकाङ्क्ष पदों से उपस्थित यत्नादि में लडादि से वर्तमानत्व का अन्वय होकर बोध नहीं होता है तो जो अर्थ पद से उपस्थित ही नहीं है अनुमान से लभ्य है उस यत्नादि में लडादि से वर्तमानत्व का अन्वय बोध कैसे हो सकता है ? इसीलिए '**शाब्दी ह्याकाङ्क्षा शब्देनैव प्रपूर्यते**' ऐसा नियम है। इस कारण यत्न की उपस्थिति आख्यात से होनी ही चाहिए।

न चार्थाध्याहारवादिनां 'द्वारं पिधानं कृतिः' इत्यादौ द्वारकर्मककृतेरिव 'पचति यत्नः' इत्यादितः 'पाकयत्नो वर्तमानः' इत्याद्याकारको वर्तमानत्वादेर्बोध इष्ट एवेति वाच्यम्; परस्परसाकाङ्क्षपदार्थद्वयान्वयबोध एवाध्याहृतस्येव निराकाङ्क्षपदादुपस्थितस्यार्थस्य विषयतायास्तैरुपगमात्, तत्रान्वयानुभावकसाकाङ्क्षपदसत्त्वात् । प्रकृते चान्वयबोधस्याकाङ्क्षानुपयोगिपदार्थान्वयविषयकत्वेन तेषामप्यसम्मतत्वात् । तत्स्वीकारे निराकाङ्क्षस्याप्यनुभावकत्वस्वीकारापत्तेः शाब्दबोधे आकाङ्क्षानुपयोगप्रसङ्गाच्चेति।

अत्र केचित् से उठाये गये आरोप का यदि कोई इस तरह समाधान करे कि अर्थाध्याहारवादियों के मत में '**द्वारं पिधानं कृतिः**' इत्यादि से द्वारकर्मककृति के बोध की तरह '**पचति यत्नः**' इत्यादि से 'पाकयत्न वर्तमान है' ऐसा वर्तमानत्व आदि का बोध इष्ट ही है (लड् आदि और लडादि समभिव्याहृत धातु अन्यतर दोनों में से किसी एक से यत्न की उपस्थिति न होने पर भी यत्न के वर्तमानत्व का अन्वयवोध होता है, स्वीकार ही किया जाता है) उसी प्रकार अनुमानलभ्य यत्नादि के वर्तमानत्व का भी लडादि के द्वारा बोध हो सकता है। तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि अर्थाध्याहारवादियों के द्वारा भी परस्पर साकाङ्क्ष पदार्थों के अन्वयबोध में ही अध्याहृत अर्थ की विषयता की तरह निराकाङ्क्ष पदों से उपस्थित अर्थों की विषयता स्वीकारी जाती है क्योंकि वहाँ पर अन्वयानुभावक साकाङ्क्ष पद है। प्रकृत स्थल में अन्वय बोध के आकाङ्क्षानुपयोगि पदार्थद्वयविषयक होने के कारण

उन लोगों के मत में भी असम्मत है। क्योंकि आकाङ्क्षानुपयोगिपदार्थद्वयविषयक अन्वयबोध स्वीकारने पर निराकाङ्क्ष के भी अनुभावकत्व स्वीकार की आपत्ति होगी और शाब्दबोध में आकाङ्क्षा के अनुपयोग का भी प्रसङ्ग होगा।

यहाँ पर कहना यह है कि अर्थाध्याहारवादी यही स्वीकारते हैं कि परस्पर साकाङ्क्ष पदार्थ के अन्वयबोध में जैसे अध्याहृत अर्थ विषय होते हैं वैसे ही निराकाङ्क्ष पदों के द्वारा उपस्थित अर्थ भी विषय होते हैं। इसलिए **'द्वारं पिधानं कृतिः'** **'पचति यत्नः'** आदि से तो द्वारकर्मककृति, पाकयत्न के वर्तमानत्व आदि का अन्वयबोध हो सकता है यहाँ पर अर्थों में परस्पर साकाङ्क्षता है। भाव यह है कि पदों में परस्पर साकाङ्क्षता होने पर उन साकाङ्क्षपदों के द्वारा उपस्थित अर्थों का अन्वयबोध होता है, उसी प्रकार पदों में साकाङ्क्षता न होने पर भी अर्थों में साकाङ्क्षता होने पर उन अर्थों की शाब्दबोध में विषयता होती है, वे अर्थ शाब्दवोध में विषय होते हैं। भले ही वे साकाङ्क्ष अर्थ अध्याहृत हों या निराकाङ्क्ष पदोपस्थाप्य हों। किन्तु **पचति** इस वाक्य से जन्य बोध में यत्न रूपी अर्थ व्यापार से साकाङ्क्ष नहीं है, उसे व्यापार की आकाङ्क्षा नहीं है। इस प्रकार निराकाङ्क्ष जो यत्न अर्थ है उसका वर्तमानत्व के साथ कैसे अन्वयबोध हो सकता है? यदि अर्थों के भी निराकाङ्क्ष रहने पर शाब्दबोधविषयता होने लगे तब तो शाब्दबोध में आकाङ्क्षा की कोई आवश्यकता ही नही रह जायेगी। इस कारण **अत्र केचित्** प्रतीक से प्रदर्शित आरोप का इस रीति से समाधान सम्भव नहीं है।

तन्न, तत्र तात्पर्यलिङ्गेन यत्नत्वावच्छिन्ने वर्तमानत्वानुमितेरेवोपगमात् तादृशवर्तमानत्वप्रतीतौ शाब्दत्वप्रतीतेः सविवादत्वादित्याहुः।

नैयायिकैकदेशी के द्वारा उठाये गये आक्षेप का मीमांसकों की ओर से समाधान प्रस्तुत कर रहे हैं कि—उक्तापत्ति नहीं है क्योंकि वहाँ **पचति** प्रयोग स्थल में तात्पर्यलिङ्ग से यत्नत्वावच्छिन्न में वर्तमानत्वानुमिति का ही उपगम किया जाता है क्योंकि तादृशवर्तमानत्व प्रतीति में शाब्दत्वप्रतीति सविवाद है- ऐसा कहते हैं। यहाँ पर आये हुए **आहुः** का पूर्व में आये हुए **मीमांसकास्तु** के साथ अन्वय होता है।

नैयायिकैकदेशी के द्वारा **अत्र केचित्** प्रतीक से प्रश्न उठाया गया था कि यत्नत्वावच्छिन्न में वर्तमानत्व **पचति** इस वाक्य जन्यबोध के द्वारा कैसे बोधित होता है? इसका मीमांसक समाधान दे रहा है कि यत्नत्वावच्छिन्न में जो वर्तमानत्व की प्रतीति होती है। वह प्रतीति शाब्द प्रतीति नहीं है। वह प्रतीति शब्दजन्य है, इसका उपपादन आप नहीं कर सकते हैं क्योंकि यह विवादित है। तात्पर्यरूपी हेतु के द्वारा यत्न के वर्तमानत्व की अनुमिति ही होती है लडुपस्थापित वर्तमानत्व का अनुमानलभ्य यत्न में अन्वय होकर बोध नहीं होता है। इस कारण आख्यात की व्यापारत्वेन व्यापार में ही शक्ति स्वीकारनी चाहिए यत्नत्वावच्छिन्न में आख्यात की शक्ति नहीं स्वीकारनी चाहिए।

अत्र नैयायिकाः— 'रथो गच्छति' इत्यादावाश्रयत्वमेवाख्यातार्थो न तु व्यापारः—अन्यदीयगमनानुकूलनोदनादिव्यापारवति 'गच्छति' इत्यप्रयोगात्।

एवञ्च काष्ठं पचति' इत्यादिप्रयोग एव व्यापारशक्तिमाख्यातस्य साधयेद् यदि स्वारसिकः स्यात्, तदेव न; नहि 'चैत्रः पचति' इत्यादिप्रयोगेण 'काष्ठं पचति' इत्यादिप्रयोगस्याविशेषः। एवमचेतने स्वरसतः कर्तृपदाप्रयोगात् कृञोऽपि यत्नत्वविशिष्टोऽर्थः। एवं 'चैत्र एव पचति पाककर्ता न त्वचेतनं काष्ठादिः' इत्यादिप्रयोगाल्लकारस्य कृञश्च यत्नत्वविशिष्टार्थकताया आवश्यकत्वाल्लाघवात् तत्रैव शक्तिः व्यापारे लक्षणेति।

यहाँ पर नैयायिक कहते हैं कि- **'रथो गच्छति'** इत्यादि स्थलों में आख्यात का अर्थ आश्रयत्व ही है व्यापार नहीं क्योंकि अन्यदीय गमन के अनुकूल नोदनादिव्यापार वाले के लिए **गच्छति** ऐसा प्रयोग नहीं होता है। इस प्रकार **'काष्ठं पचति'** इत्यादि प्रयोग ही आख्यात की व्यापारशक्ति को सिद्ध कर सकता है यदि यह स्वारसिक हो तो । (यदि यह प्रयोग शक्त्याधारित हो तो यही आख्यात की शक्ति व्यापार में सिद्ध कर सकता है) किन्तु वही तो नहीं है अर्थात् **'काष्ठं पचति'** यह प्रयोग शक्ति को आधार बनाकर नहीं होता है। क्योंकि **'चैत्रः पचति'** इत्यादि प्रयोगों से **'काष्ठं पचति'** इत्यादि प्रयोगों का अविशेष नहीं है, एक ही आशय से दोनों वाक्य प्रयोग नहीं होते हैं। चैत्र में जैसा पाककर्तृत्व है, ठीक वैसा ही पाककर्तृत्व काष्ठ में नहीं है। इसी प्रकार अचेतन में स्वरस से- शक्ति को आधार बनाकर-कर्ता पद का प्रयोग नहीं होने के कारण कृञ् का भी यत्नत्वविशिष्ट अर्थ है। इसी प्रकार **'चैत्र एव पचति पाककर्ता न त्वचेतनं काष्ठादि'** 'चैत्र ही पका रहा है पाककर्ता है न कि अचेतन काष्ठादि' इत्यादि प्रयोग होने के कारण लकार और कृञ् की यत्नत्वविशिष्टार्थकता आवश्यक होने के कारण लाघव होने से यत्नत्वविशिष्ट अर्थ में शक्ति है और व्यापार में लक्षणा है।

नैयायिकों की ओर से मीमांसकमत का खण्डन किया जा रहा है। इसमें प्रथमतः नैयायिकों का कहना है कि **'रथो गच्छति'** को आधार बनाकर आप आख्यात की शक्ति व्यापार में नहीं मान सकते हैं क्योंकि केवल गमनानुकूलव्यापार का आश्रय होने के कारण ही **गच्छति** प्रयोग नहीं होता है, कोई यदि अन्यदीय गमन के अनुकूल व्यापारवाला हो तो उसमें **गच्छति** प्रयोग नहीं होता है। इस कारण **रथो गच्छति** से रथ में गमनानुकूलव्यापार नहीं बोधित होता है अपितु गमन का आश्रयत्व ही बोधित होता है। इस कारण यहाँ पर तो आख्यात का अर्थ आश्रयत्व ही है, व्यापार नहीं । इससे आख्यात की शक्ति व्यापार में नहीं सिद्ध होती है। अब स्थिति यह है कि **काष्ठं पचति** में ज़रूर काष्ठ में पाकक्रियानुकूल व्यापार बोधित होता है, आख्यात द्वारा व्यापार बोधित होता है। यदि यह शक्त्याधारित है तब तो इससे आख्यात की शक्ति व्यापार में सिद्ध हो सकती है, किन्तु यह शक्त्याधारित प्रयोग नहीं है, यह तो लाक्षणिक प्रयोग है। **'चैत्रः पचति'** से चैत्र का जैसा पाककर्तृत्व बोधित होता है, वैसा काष्ठ का नहीं। इसी प्रकार अचेतन में कर्ता पद का भी शक्ति के आधार पर प्रयोग नहीं होता है। इस कारण कृञ् का भी अर्थ यत्नत्वविशिष्ट ही है। इसी प्रकार **'चैत्र एव पचति पाककर्ता नत्वचेतनं काष्ठादि'** यह प्रयोग होता है, यदि

काष्ठादि अचेतन का भी पाककर्तृत्व हो तब तो यह प्रयोग बाधितार्थक होगा। इसका आशय यही है कि अचेतन काष्ठादि में मुख्य पाककर्तृत्व नहीं है लाक्षणिक ही है। इस कारण आख्यात और कृञ् धातु की दोनों की ही शक्ति यत्नत्वावच्छिन्न में ही माननी चाहिए व्यापार में इनकी शक्ति नहीं है, लक्षणा ही होती है।

न च यत्नत्वस्याख्यातावाच्यनिवृत्तिजीवनयोनियत्नसाधारणतया लकारशक्यतावच्छेदकत्वासम्भव इति वाच्यम्, निवृत्त्यादियत्नस्याख्यात वाच्यतोपगमे क्षतिविरहात्, निवृत्त्यादेः पाकानुकूलताविरहेण तत्काले 'पचति' इति प्रयोगविरहात् ।

इष्टसाधनताज्ञानजन्यतावच्छेदकप्रवृत्तित्वजातेरेव वाख्यातपद प्रवृत्तिनिमित्तत्वमुपगम्यते, अत एवेश्वरकृतेर्जन्यमात्रजनकत्वेऽपि 'ईश्वरः पचति' 'ईश्वरो भुङ्क्ते' इत्यादयो न प्रयोगाः।

यदि कहो कि यत्नत्व के आख्यातावाच्य निवृत्ति और जीवनयोनि यत्नसाधारण होने के कारण लकार का शक्यतावच्छेदकत्व असम्भव है। भाव यह है कि यत्न तीन तरह का होता है प्रवृत्ति, निवृत्ति और जीवनयोनि के भेद से (द्रष्टव्य प्रशस्तपादभाष्य, तर्कसंग्रह आदि) यत्नत्व इन तीनों में रहेगा, अतः आख्यात शक्यता का अवच्छेदक यत्नत्व नहीं हो सकता है क्योंकि शक्यता केवल प्रवृत्ति यत्न में है और यत्नत्व तीनों में है,आख्यातशक्यता का अतिरिक्तवृत्ति होने के कारण यत्नत्व आख्यातशक्यतावच्छेदक नहीं हो सकता है।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि निवृत्त्यादि साधारण यत्न को भी आख्यात का वाच्य स्वीकारने पर भी कोई क्षति नहीं है। निवृत्ति रूप यत्न की पाकानुकूलता न होने के कारण निवृत्तिरूप यत्न के काल में **पचति** ऐसा प्रयोग नही होता है। यहाँ पर आदर्शव्याख्याकार का कहना है कि **जीवति** यहाँ पर जीवनयोनि जीवनानुकूल यत्न की ही प्रतीति होती है, **न पचति** आदि स्थलों में निवृत्ति रूप यत्न की प्रतीति होती है। मेरा मत तो यह है कि **जीवति** में जीवनयोनि यत्न की प्रतीति होने पर भी **न पचति** से निवृत्ति रूप यत्न की प्रतीति सामान्यतया नहीं ही होती है, पाकानुकूल कृति (प्रवृत्ति) का अभाव ही बोधित होता है।

अथवा इष्टसाधनताज्ञानजन्यतावच्छेदक प्रवृत्तित्व जाति का ही आख्यात पद का प्रवृत्तिनिमित्तत्व स्वीकारा जाता है अर्थात् आख्यात की शक्ति इष्टसाधनताज्ञानजन्ययत्न में स्वीकारी जाती है, इस प्रकार आख्यातशक्यतावच्छेदक प्रवृत्तित्व ही है, निवृत्तित्व, यत्नत्व आदि नहीं । क्योंकि निवृत्ति और जीवनयोनि यत्न इष्टसाधनताज्ञान से जन्य नहीं होता है। इसी कारण ईश्वर कृति के जन्यमात्र का जनक होने पर भी 'ईश्वरः पचति' 'ईश्वरो भुङ्क्ते' प्रयोग नहीं होते हैं। ईश्वर के पाकानुकूलकृतिमान्, भोजनानुकूलकृतिमान् होने पर भी उक्त प्रयोग इसी कारण नहीं होते हैं क्योंकि ईश्वरकृति नित्य होने के कारण इष्ट साधनता ज्ञान से जन्य नहीं है और इन वाक्यों से 'पाकानुकूल जो इष्टसाधनताज्ञान जन्य कृति तादृश कृतिमत्ता' 'भोजनानुकूल जो इष्टसाधनताज्ञानजन्यकृति तादृशकृतिमत्ता' ईश्वर में बोधित होती

है। ईश्वरकृति के इष्टसाधनता ज्ञान से जन्य न होने के कारण ईश्वरकृति आख्यात के द्वारा नहीं बोधित हो सकती है।

न चैवम् 'ईश्वरो वेदं वक्ति' 'मथुरायां कृष्णो विहरति' इत्यादि प्रयोगानुपपत्तिः; अत्राख्यातस्य लक्ष्यार्थव्यापारबोधकतोपगमात् । ईश्वरकृति-साधारणधर्मस्याख्यातप्रवृत्तिनिमित्तत्वेऽपि तत्र व्यापारलक्षणाया आवश्यकत्वात् तथाहि-'आत्मा पचति' 'शरीरं पचति' इत्यादिस्वारसिकप्रयोगविरहादाख्या-तार्थकृतेरुद्देश्यतावच्छेदकशरीरविशेषावच्छेदेन समवायेनान्वयनियमः स्वीकरणीयः— चैत्रादिपदस्य शरीरविशेषविशिष्टात्मपरतया 'चैत्रः पचति' इत्यादौ शरीरविशेषात्मकोद्देश्यतावच्छेदकावच्छेदेनात्मनि समवायेना-न्वयसम्भवात् ।'गौरः पचति' इत्यादावपि गौरादिपदस्य गौरशरीराद्यवच्छिन्नात्मनि आख्यातस्यैव वा व्यापारे लक्षणोपगमात् । एवं चेश्वरकृतेः शरीरानवच्छिन्न-त्वादुक्तस्थले कृतेस्तथान्वयासम्भव इति व्यापारलक्षणावश्यकी।

यदि कहो कि इस प्रकार इष्टसाधनताज्ञानजन्य यत्न में आख्यात की शक्ति स्वीकारने पर **'ईश्वरो वेदं वक्ति' 'मथुरायां कृष्णो विहरति'** 'ईश्वर वेद कहता है' 'मथुरा में कृष्ण विहार करते है' इत्यादि प्रयोगों की अनुपपत्ति होगी, तो ऐसा नहीं है क्योंकि यहाँ उक्त स्थलों **'ईश्वरो वेदं वक्ति' 'मथुरायां कृष्णो विहरति'** इत्यादि में आख्यात की लक्ष्यार्थ व्यापार बोधकता स्वीकार की जाती है। अर्थात् उक्त स्थलों में ईश्वर में वेदोच्चारणानुकूलकृति-मत्त्व आदि नहीं बोधित होता है बल्कि वेदोच्चारणानुकूलव्यापार ही बोधित होता है।

ईश्वरकृतिसाधारण धर्म को आख्यात का प्रवृत्तिनिमित्त मानने पर भी– आख्यात की शक्ति इष्टसाधनताज्ञानजन्य कृति में न मानकर कृति मात्र में मानने पर भी- उक्त स्थलों में आख्यात की व्यापार में लक्षणा- लक्ष्यार्थव्यापारवाचकता आवश्यक ही है (क्योंकि वेदोच्चारणाद्यनुकूलकृतिमत्त्व ईश्वर में नहीं बोधित किया जा सकता) वह इस प्रकार से- **'आत्मा पचति' 'शरीरं पचति'** इत्यादि स्वारसिक प्रयोग नहीं होने के कारण आख्यातार्थ कृति का शरीरविशेषावच्छेदेन समवाय सम्बन्ध से अन्वय होने का नियम स्वीकारना चाहिए। चैत्रः पचति इत्यादि स्थलों में शरीरविशेषात्मक उद्देश्यतावच्छेदकतावच्छेदेन आत्मा में समवाय सम्बन्ध से कृति का अन्वय सम्भव है। गौरः पचति इत्यादि स्थलों में भी गौर आदि पदों की गौरशरीराद्यवच्छिन्न आत्मा में अथवा आख्यात की ही व्यापार में लक्षणा स्वीकारी जाती है। इस प्रकार ईश्वरकृति के शरीरविशेष से अवच्छिन्न न होने के कारण उक्त स्थल में कृति का शरीरविशेषात्मक उद्देश्यतावच्छेदकावच्छेदेन आत्मा में समवाय सम्बन्ध से अन्वय सम्भव नहीं है इस कारण व्यापार में लक्षणा आवश्यक है।

यहाँ पर गदाधर 'आख्यात की शक्ति कृति मात्र में मानने पर भी **'ईश्वरो वेदं वक्ति'** इत्यादि स्थलों में आख्यात की व्यापार में लक्षणा आवश्यक होने के कारण इष्टसाधनताज्ञानजन्य कृति में आख्यात की शक्ति मानने पर भी आख्यात की व्यापार में लक्षणा होती है' ऐसा कह रहे हैं। आख्यात की शक्ति कृति मात्र में मानने पर भी लक्षणा

क्यों आवश्यक है? इसका कारण यह है– आख्यात की शक्ति कृति मात्र में मानने पर उसका कर्ता में समवाय सम्बन्ध से अन्वय करना पड़ेगा। ऐसी स्थिति में '**आत्मा पचति**' ऐसा स्वारसिक प्रयोग होना चाहिए क्योंकि कृति का समवाय सम्बन्ध से आत्मा में अन्वय हो ही सकता है, मुख्यार्थान्वयबोध अबाधित है। किन्तु इस प्रकार स्वारसिक मुख्यार्थ परक प्रयोग नहीं होता है। इसी प्रकार केवल शरीर को आधार बनाकर '**शरीरं पचति**' ऐसा प्रयोग भी नहीं होता है। इस कारण आख्यातार्थ कृति का उद्देश्यतावच्छेदकशरीरविशेषावच्छेदेन समवाय सम्बन्ध से अन्वय हुआ करता है, यही स्वीकारना चाहिए। चैत्र आदि पद शरीरविशेष विशिष्ट आत्मा के बोधक होते हैं, अतः शरीरविशेषात्मक उद्देश्यतावच्छेदक से अवच्छिन्न आत्मा में समवाय सम्बन्ध से कृति का अन्वय सम्भव होता है और तद्बोधक '**चैत्रः पचति**' ऐसा मुख्यार्थपरक प्रयोग हुआ करता है। **गौरः पचति** इत्यादि मुख्यार्थपरक प्रयोग नहीं है क्योंकि गौर पदार्थ गौर शरीर में पाकानुकूलकृति का समवाय सम्बन्ध से अन्वय बाधित है। यहाँ पर या तो गौरपद की गौरशरीरावच्छिन्न आत्मा में लक्षणा कर ली जाती है अथवा आख्यात की ही व्यापार में लक्षणा स्वीकार ली जाती है। इसी प्रकार **आत्मा पचति** में शरीरविशेषात्मक उद्देश्यतावच्छेदक उपस्थित नहीं है, अतः आत्मापद शरीरविशेषावच्छिन्न आत्मा में लाक्षणिक हो जाता है। उसमें समवाय सम्बन्ध से कृति का अन्वय होता है। चूँकि ईश्वरकृति शरीर से अवच्छिन्न है नहीं, इस कारण शरीरविशेषावच्छेदेन आत्मा में समवाय सम्बन्ध से कृति का अन्वय बाधित है। अतः आख्यात की व्यापार में लक्षणा कर ली जाती है, इस प्रकार ईश्वर में वेदोच्चारणानुकूलव्यापारवत्ता ही उक्त वाक्य से बोधित होती है।

इसी प्रकार तो आख्यात की शक्ति इष्टसाधनताज्ञानजन्य कृति में मानने पर भी आख्यात की व्यापार में लक्षणा करके बोध स्वीकारा जा सकता है। दोनों पक्षों में एक ही लक्षणा का मार्ग है।

ईश्वरकृतिसाधारणयत्नत्वावच्छिन्न एव वाख्यातार्थः, असाधारणानुकूलत्वं हि यत्ने क्रियायाः सम्बन्धतया भासते नत्वनुकूलतामात्रम्- असाधारणानुकूलताया एवाकाङ्क्षानिरूपकत्वोपगमात्। अतोऽस्मदादिकर्तृक पाकादिक्रियानुकूलकृतिमादाय न 'ईश्वरः पचति' इति प्रयोगः। वेदवचनादौ चेश्वरकृतेरेवासाधारणकारणत्वात् 'ईश्वरो वेदं वक्ति' इत्यादयः प्रयोगाः इत्यपि केचित्।

अथवा ईश्वरकृतिसाधारण यत्नत्वावच्छिन्न ही आख्यातार्थ है (आख्यात का अर्थ कृति मात्र है) यत्न में क्रिया का सम्बन्ध बनकर केवल अनुकूलत्व नहीं भासता है, बल्कि असाधारण अनुकूलत्व भासता है क्योंकि असाधारण अनुकूलता का ही आकाङ्क्षानिरूपकत्व स्वीकार किया जाता है। इस कारण अस्मदादिकर्तृक- हम लोगों द्वारा की जाने वाली- पाकादि क्रिया के अनुकूल कृति को लेकर '**ईश्वरः पचति**' ऐसा प्रयोग नहीं होता है। (हम लोगों द्वारा किये जाने वाले पाक का असाधारण अनुकूलत्व ईश्वरीय कृति में नहीं है,

साधारण अनुकूलत्व ही है। इस कारण '**ईश्वरः पचति**' से बोध्य पाकासाधारणानुकूलकृतिमत्त्व ईश्वर में बाधित है। अतः हम लोगों द्वारा किये जाने वाले पाक को विषय बनाकर ऐसा प्रयोग नहीं होता है) वेदवचन आदि में चूँकि ईश्वर कृति का ही असाधारणकारणत्व है, इस कारण (वेदवचनासाधारणानुकूलकृतिमत्त्वबोध के ईश्वर में अबाधित होने के कारण) '**ईश्वरो वेदं वक्ति**' इत्यादि प्रयोग होते हैं, ऐसा भी कुछ लोगों का कहना है।

विमर्श– यहाँ पर गदाधर ने **केचित्** पद प्रयोग से अपनी असहमति ही दर्शायी है। असहमति का कारण पूर्वोक्त ही है कि **आत्मा पचति** इत्यादि स्वारसिक प्रयोग नहीं होते हैं। यत्न में क्रिया का असाधारण अनुकूलत्व सम्बन्धतया भासने पर भी इस प्रयोग के स्वारसिक होने की आपत्ति पूर्ववत् ही है।

अथ कृतेराख्यातस्य कृञश्च वाच्यत्वे 'करोति' इत्यादौ कृतेर्द्विधा भानं स्यात्– धातुप्रत्यययोर्द्वयोः कृतिबोधकत्वादिति चेत् ? न, 'एकः' 'द्वौ' इत्यादावेकत्वद्वित्वादिबोधकप्रकृतिप्रत्ययोभयसत्त्वेऽप्येकधैवैकत्वादिधीवत् प्रकृतेऽपि बाधकाभावात् तत्र विभक्तेः साधुत्वार्थकत्वे प्रकृतेऽपि तथात्वात्।

लेकिन कृति के आख्यात और कृञ् धातु का वाच्य होने पर '**करोति**' इत्यादि स्थलों में कृति का दो बार भान होना चाहिए क्योंकि कृञ् धातु और तदुत्तर प्रत्यय आख्यात दोनों ही कृति के ही बोधक हैं? तो ऐसा नहीं है '**एकः**' '**द्वौ**' इत्यादि स्थलों में एकत्व, द्वित्व आदि के बोधक प्रकृति और प्रत्यय दोनों के रहने पर भी (एक द्वि शब्दों का अर्थ भी एकत्व, द्वित्व है और तदुत्तर एकवचन और द्विवचन का भी अर्थ एकत्व, द्वित्व है, इस प्रकार प्रकृति और प्रत्यय दोनों के ही एक ही अर्थ का बोधक होने पर भी) एक ही बार एकत्व, द्वित्व आदि का बोध होने की तरह प्रकृत स्थल **करोति** में भी एक ही बार कृति का बोध होने में कोई बाधक नहीं है। (जैसे– वहाँ पर प्रकृति, प्रत्यय दोनों के ही एक ही अर्थ एकत्व, द्वित्व का बोधक होने पर भी एक ही बार एकत्व, द्वित्व का भान होता है, वैसे ही यहाँ पर भी धातु और प्रत्यय दोनों के कृति का बोधक होने पर भी कृति का एक ही बार भान होता है) वहाँ पर एक द्विपदोत्तर एकवचन, द्विवचन विभक्ति को साधुत्वार्थक मानने पर यहाँ पर भी विभक्ति को साधुत्वार्थक मान लेंगे।

अथ तर्हि 'करोति चैत्रः' इत्यादौ प्रातिपदिकार्थे साक्षादेव कृत्यन्वयः स्यात् स च नामार्थधात्वर्थयोः साक्षादन्वयस्याव्युत्पन्नत्वात् न सम्भवति, नामार्थधात्वर्थयोः साक्षादन्वयोपगमे कर्मतादिबोधकविभक्तेरसत्त्वेऽपि 'तण्डुलः पचति' इत्यादौ कर्मतादिसम्बन्धेन तण्डुलादेः पाकादावन्वयसम्भवेन तादृशवाक्यात्तण्डुलकर्मकपाकादिबोधापत्तेः।

न च प्रातिपदिकार्थप्रकारकक्रियान्वयबोध एवाव्युत्पन्नो न तु क्रिया-प्रकारकप्रतिपदिकार्थविशेष्यकबोधोऽपीति वाच्यम्; 'घटः करोति' इत्यादितः कर्मतादिसम्बन्धेन कृत्यादेर्घटादावन्वयाभावात् क्रियाप्रकारकनामार्थविषयक बोधस्याव्युत्पन्नत्वादिति चेत् ?

न, उक्तातिप्रसङ्गवारणाय धातोः कर्मतादिसम्बन्धेन क्रियान्वयाबोधकत्वव्युत्पत्तेरुपगमात् न त्वाश्रयतासम्बन्धेन कृत्यादिरूपक्रियान्वयाबोधकत्वव्युत्पत्तेरित्यदोषात् ।

लेकिन फिर तो (करोति में आख्यात को साधुत्वार्थक मानने पर तो) **'करोति चैत्रः'** इत्यादि स्थलों में प्रातिपदिकार्थ में साक्षात् ही कृति का (धात्वर्थ का) अन्वय होगा और वह तो प्रातिपदिकार्थ में धात्वर्थ कृति का साक्षात् अन्वय तो नामार्थ धात्वर्थ के साक्षादन्वय के अव्युत्पन्न होने के कारण सम्भव नही है। नामार्थ और धात्वर्थ का साक्षात् अन्वय स्वीकारने पर कर्मतादिबोधक विभक्ति के न रहने पर भी **'तण्डुलः पचति'** इत्यादि स्थलों में कर्मता आदि सम्बन्धों से तण्डुल आदि का पाक आदि में अन्वय सम्भव होने के कारण तादृशवाक्य से– **तण्डुलः पचति** से– तण्डुलकर्मकपाकादिबोध की आपत्ति आयेगी। इसलिए आप नामार्थ और धात्वर्थ का साक्षादन्वयबोध नहीं स्वीकार कर सकते हैं।

यदि आप कहें कि प्रातिपदिकार्थ प्रकारकक्रियान्वयबोध ही अव्युत्पन्न होता है न कि क्रियाप्रकारक प्रातिपदिकार्थविशेष्यक बोध भी। (इस कारण प्रातिपदिकार्थ तण्डुल प्रकारक पाकक्रियाविशेष्यक अन्वयबोध अव्युत्पन्न होने से नहीं हो सकेगा, धात्वर्थ कृति प्रकारक प्रातिपदिकार्थचैत्रविशेष्यक बोध अव्युत्पन्न न होने से हो सकता है) तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि **'घटः करोति'** इत्यादि से कर्मता आदि सम्बन्धों से कृति आदि का घट आदि में अन्वय नहीं होने के कारण क्रियाप्रकारक नामार्थविषयक बोध का भी अव्युत्पन्नत्व है। भाव यह है कि यदि क्रियाप्रकारक नामार्थविषयक बोध अव्युत्पन्न नहीं होता तो **'घटः करोति'** से धात्वर्थकृतिप्रकारक कर्मतासंसर्गक घटविषयक बोध होना चाहिए क्योंकि कृति का कर्मता सम्बन्ध से घट में अन्वय हो ही सकता है, अबाधित है। किन्तु कर्मता आदि सम्बन्धों से धात्वर्थ कृति का घट आदि में अन्वय नहीं होता है। अतः यही मानना चाहिए कि नामार्थप्रकारक क्रियाविषयक साक्षात् अन्वयबोध भी अव्युत्पन्न है और क्रियाप्रकारक नामार्थविषयक भी साक्षादन्वयबोध अव्युत्पन्न है।

तो ऐसा नहीं है। उक्त अतिप्रसङ्ग का वारण करने के लिए– **घटः करोति** में कृति का कर्मतासम्बन्ध से घट में अन्वयबोध की आपत्ति वारित करने के लिए– धातु के कर्मता आदि सम्बन्धों से क्रियान्वयाबोधकत्व व्युत्पत्ति ही स्वीकारी जाती है न कि आश्रयता-सम्बन्ध से कृत्यादिरूपक्रियान्वयाबोधकत्वव्युत्पत्ति इस कारण कोई दोष नहीं है।

इस समाधान का आशय यह है कि प्रातिपदिकार्थप्रकारक धात्वर्थान्वयबोध तो अव्युत्पन्न होता ही है। किन्तु धात्वर्थप्रकारक प्रातिपदिकार्थान्वय बोध सभी सम्बन्धों से अव्युत्पन्न नहीं होता है। बल्कि आश्रयत्वातिरिक्त सम्बन्धों से धात्वर्थप्रकारक प्रातिपदिकार्थान्वय बोध अव्युत्पन्न होता है। इस कारण **'चैत्रः करोति'** आदि स्थलों में धात्वर्थ कृतिप्रकारक आश्रयतासंसर्गक चैत्रान्वयबोध हो जाता है, सम्भव होता है। **'घटः करोति'** से धात्वर्थ कृतिप्रकारक कर्मतासंसर्गक घटान्वयबोध नहीं होता है।

न च तादृशातिप्रसङ्गवारणाय धातुजन्यकृत्यादिप्रकारकान्वयबोधे प्रत्ययजन्यविशेष्योपस्थितेर्हेतुता वाच्या तादृशकारणाभावात् प्रातिपदिकार्थ-विशेष्यकबोधोपि न सम्भवतीति वाच्यम्; कर्मत्वादिसम्बन्धेन कृत्यादि-प्रकारकबोधस्याप्रसिद्ध्या सामग्र्यकल्पनेनापादकाभावात् तादृशकारणताया अकल्पनात् ।

यदि कहो कि तादृशातिप्रसङ्ग वारण करने के लिए **'घटः करोति'** में कृति का कर्मतासम्बन्ध से घट से अन्वयवोध की आपत्ति वारित करने के लिए धातुजन्य कृत्यादि प्रकारक अन्वयबोध में प्रत्ययजन्य उपस्थिति की कारणता माननी चाहिए। घट की उपस्थिति प्रत्ययजन्य न होने के कारण घटविशेष्यक कर्मतासंसर्गक धात्वर्थकृतिप्रकारक अन्वयबोध न हो सकेगा। तादृशकारण- प्रत्ययजन्य चैत्राद्युपस्थिति रूप कारण-न होने के कारण प्रातिपदिकार्थ चैत्रविशेष्यक कृतिप्रकारक आश्रयतासंसर्गक बोध भी नहीं सम्भव हो सकेगा।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि कर्मता आदि सम्बन्ध से कृत्यादिप्रकारकबोध की अप्रसिद्धि होने के कारण उसके प्रति सामग्री की कल्पना ही नहीं है, आपादक ही न होने के कारण तादृशकारणता की कल्पना नहीं है। भाव यह है कि जैसा फल कहीं पर प्रसिद्ध होता है, वैसे फल की ही क्लृप्त सामग्री के बल से आपत्ति दी जा सकती है। जैसा फल अप्रसिद्ध है, वैसे फल की सामग्री भी अप्रसिद्ध है। इसलिए वैसे फल की कारणीभूत सामग्री ही नहीं होने के कारण वैसे फल की आपत्ति नहीं दी जा सकती है। कर्मतासंसर्गक धात्वर्थप्रकारक प्रातिपदिकार्थविशेष्यकबोध अप्रसिद्ध है, इसलिए वैसे बोध की तो आपत्ति ही नहीं दी जा सकती है। इस कारण वैसी तो आपत्ति ही नहीं है। इसलिए उस आपत्ति का वारण करने के लिए प्रत्ययजन्योपस्थिति की धातुजन्यकृत्यादिप्रकारकबोध में कारणता मानने की ही ज़रूरत नहीं है।

न च 'क्रियते चैत्रः' इत्यादौ कृत्यादिप्रकारकान्वयबोधवारणायैवोक्त कारणताकल्पनमावश्यकमिति वाच्यम्; सति तात्पर्ये इष्टत्वात् । कर्तृविशेष्य-कान्वयबोधपरधातूत्तरयकोऽसाधुत्वादेव प्रामाणिकानां न तथाप्रयोगः।'करणं चैत्रः' इत्यादौ चैत्रादौ धात्वर्थकृतेराश्रयतासम्बन्धेनान्वयबोधवारणाय तादृशकार्यकारणभावकल्पनमित्यपि न तादृशान्वयबोधे आख्यातान्त-धातुनामसमभिव्याहारज्ञानहेतुतयैवोक्तस्थले तादृशबोधवारणसम्भवात्।

यदि कहो कि **'क्रियते चैत्रः'** इत्यादि स्थलों में कृत्यादिप्रकारक अन्वयबोध का वारण करने के लिए उक्त कारणता– धातुजन्यकृत्यादिप्रकारक अन्वयबोध में प्रत्ययजन्य उपस्थिति की कारणता– की कल्पना आवश्यक है । भाव यह है । कि यदि आप धातुजन्य कृत्यादिप्रकारक अन्वयबोध में प्रत्ययजन्योपस्थिति को कारण नहीं मानेंगे तो **'क्रियते चैत्रः'** यहाँ पर धात्वर्थ कृति का सीधे-सीधे चैत्र में आश्रयता सम्बन्ध से अन्वय होकर **'कृतिविशिष्टश्चैत्रः'** बोध होना चाहिए। यह बोध तो इष्ट नहीं हो सकता है। इसलिए 'धात्वर्थप्रकारक अन्वयबोध में प्रत्ययजन्य विशेष्योपस्थिति कारण है' ऐसा कार्यकारण भाव

माननां चाहिए । चैत्र की प्रत्यय से उपस्थिति न होने के कारण चैत्रविशेष्यक धात्वर्थ कृतिप्रकारक अन्वयबोध नहीं होगा।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि 'क्रियते चैत्रः' यहाँ पर यदि कृतिप्रकारक चैत्रविशेष्यक शाब्दबोध में तात्पर्य है तो ऐसा शाब्दबोध इष्ट ही है। कर्तृविशेष्यक अन्वय बोध पर– आश्रयतासम्बन्ध से कृतिप्रकारक चैत्रादिविशेष्यक अन्वयबोधपरक –धातु के बाद यक् के असाधु होने के कारण ही वैसा प्रयोग नहीं होता है।

'करणं चैत्रः' इत्यादि स्थलों में चैत्रादि में धात्वर्थ कृति के अन्वयबोध की आपत्ति वारित करने के लिए वैसे कार्यकारणभाव– धात्वर्थप्रकारक अन्वयबोध में प्रत्ययजन्य विशेष्योपस्थिति के कारणत्व– की कल्पना करनी होगी, ऐसा भी नहीं है क्योंकि धात्वर्थप्रकारक अन्वयबोध में आख्यातान्त धातुनामसमभिव्याहारज्ञान हेतुता से ही उक्त स्थल 'करणं चैत्रः' में धात्वर्थकृतिप्रकारक चैत्रविशेष्यक अन्वयबोध का वारण सम्भव है। भाव यह है कि 'धात्वर्थप्रकारक प्रातिपदिकार्थविशेष्यक अन्वयबोध में आख्यातान्त धातु प्रातिपदिक समभिव्याहारज्ञान कारण है' ऐसा कार्यकारणभाव मानेंगे। 'करोति चैत्रः' में आख्यातान्त कृञ् धातु और प्रातिपदिक चैत्र का समभिव्याहार ज्ञान है, अतः वैसा बोध होता है। 'करणं चैत्रः' में आख्यातान्त धातु समभिव्याहार नहीं है। अतः वैसा बोध नहीं होता है।

दीधितिकृतस्तु– 'गच्छति' 'करोति' इत्यादावाख्यातस्याश्रयत्वे निरूढलक्षणायाः स्वीकारान्न नामार्थे क्रियायाः साक्षादन्वयः इत्याहुः। तन्मते यद्यप्याश्रयत्वसम्बन्धस्याधिकस्य 'जानाति चैत्रः' इत्यादिवाक्यजन्य-बोधविषयताकल्पनेन गौरवं तथापि यत्र ज्ञाधातोर्ज्ञानाद्याश्रयत्वे लक्षणाग्रहः शक्तिभ्रमो वा तत्र चैत्रादिविशेष्यको ज्ञानाद्याश्रयत्वप्रकारको बोध आश्रय-तायाः संसर्गतावादिनामप्यनुमतः। चैत्रादिविशेष्यकाश्रयतासंसर्गक ज्ञानादि-प्रकारकशाब्दबोधस्तु दीधितिकारमते क्वचिदपि न प्रसिद्ध्यतीति तादृश-शाब्दबोधे योग्यताज्ञानादेर्हेतुताकल्पनं तथाविधशाब्दबोधाङ्गी-कर्तुर्मणिकारस्य मते आवश्यकमिति गौरवम् ।

दीधितिकार तो– 'गच्छति' 'जानाति' 'करोति' इत्यादि स्थलों में आख्यात की आश्रयत्व में निरूढलक्षणा का स्वीकार करने के कारण नामार्थ में क्रिया का साक्षात् अन्वय बोध नहीं ही होता है, ऐसा कहते हैं। उनके मत में यद्यपि आश्रयत्व के सम्बन्ध की 'जानाति चैत्रः' इत्यादि वाक्यों से जन्य अन्वयबोधों की अधिक विषयता की कल्पना होने से गौरव होगा तथापि जहाँ पर ज्ञा धातु की ज्ञानाद्याश्रयत्व में लक्षणाग्रह हो जाये या शक्तिभ्रम हो जाये वहाँ पर चैत्रादिविशेष्यक ज्ञानाद्याश्रयत्वप्रकारक बोध आश्रयता की संसर्गतावादियों के मत में भी अनुमत होगा। चैत्रादिविशेष्यक, आश्रयतासंसर्गक, ज्ञानादिप्रकारक शाब्दबोध तो दीधितिकार के मत में कहीं पर भी प्रसिद्ध नहीं है। इसलिए तादृश

चैत्रादिविशेष्यक आश्रयतासंसर्गक ज्ञानादिप्रकारक शाब्दबोध में योग्यताज्ञान आदि की हेतुता की कल्पना वैसे शाब्दबोध का अङ्गीकार करने वाले मणिकार के मत में आवश्यक होगा, इसकारण गौरव है।

चिन्तामणिकार के अनुसार- धात्वर्थ कृति, ज्ञान आदि का नामार्थ में साक्षात् ही अन्वयबोध होता है। इस प्रकार साधारणतया **'चैत्रो जानाति'** आदि से 'ज्ञानादि प्रकारक आश्रयत्वसंसर्गक चैत्रादिविशेष्यक बोध' होगा। किन्तु यदि ज्ञा धातु की लक्षणा या शक्ति भ्रम ज्ञानाश्रयत्व में हो जाये तो ऐसी स्थिति में चिन्तामणिकार को भी 'ज्ञानाश्रयत्व प्रकारक, स्वरूपसम्बन्धसंसर्गक चैत्रादिविशेष्यक बोध' स्वीकारना पड़ेगा। इस प्रकार चिन्तामणिकार के मत में ज्ञानादिप्रकारक और ज्ञानाद्याश्रयत्वप्रकारक दोनों तरह के बोधों का स्वीकार होने से दोनों प्रकार के बोधों के प्रति योग्यताज्ञान आदि की कारणता स्वीकारनी पड़ेगी।

दीधितिकार के अनुसार-आख्यात की आश्रयत्व में निरूढलक्षणा होने के कारण ज्ञानाद्याश्रयत्व का ही चैत्रादि में अन्वयबोध स्वीकारा जाता है। इसलिए साधारणतया बोध में दीधितिकार के अनुसार आश्रयत्व का सम्बन्ध भी भासेगा, आश्रयत्व स्वरूप सम्बन्ध से चैत्रादि में प्रकार होगा। यह एक गौरव इस मत में है। किन्तु इस मत में एक ही तरह का शाब्दबोध हर जगह होगा। ज्ञानादिप्रकारक अन्वयबोध कहीं पर नहीं होगा। अतः एक ही प्रकार के शाब्दबोध के प्रति योग्यताज्ञान आदि की कारणता स्वीकारनी पड़ेगी। यह लाघव है।

वस्तुतस्तु- 'चैत्रेण ज्ञायते घटः' इत्यादौ कर्मप्रत्ययस्थले यावतां पदार्थानां प्रकारता तावताम् 'चैत्रो जानाति घटम्' इत्यादिकर्तृप्रत्ययस्थले तथात्वम्। परन्तु विशेषणविशेष्यभाववैपरीत्यम्। एवं कर्मप्रत्ययस्थले यस्य ससम्बन्धिकपदार्थस्य यदंशे विशेष्यता कर्तृप्रत्ययस्थले तन्निरूपकतायास्तदंशे प्रकारतेत्यनुभवस्य दुरपह्नवत्वाभिप्रायेणाश्रयत्वस्याख्यातार्थतां दीधितिकार उरीचकार। 'चैत्रेण ज्ञायते' इत्यत्राधेयत्वरूपतृतीयार्थस्य चैत्रविशेष्यत्वात् 'चैत्रो जानाति' इत्यत्राधेयतानिरूपकत्वरूपाधारतायाश्चैत्रांशेऽप्रकारत्वे तादृशानुभवविरोधात्।

वस्तुतः तो- **'चैत्रेण ज्ञायते घटः'** इत्यादि कर्मप्रत्ययस्थल में जितने पदार्थों की प्रकारता होती है, उतने पदार्थों की 'चैत्रो जानाति घटम् ' इत्यादि कर्तृप्रत्ययस्थल में भी प्रकारता होती है परन्तु विशेषणविशेष्यभाववैपरीत्य हो जाता है। इसी प्रकार कर्मप्रत्ययस्थल में जिस ससम्बन्धिक[1] पदार्थ की यदंश में विशेष्यता होती है, कर्तृप्रत्ययस्थल में तन्निरूपकता की तदंश में प्रकारता होती है ऐसे अनुभव के दुरपह्नवत्व के अभिप्राय से दीधितिकार ने आश्रयत्व की आख्यातार्थता स्वीकारी है। **'चैत्रेण ज्ञायते'** यहाँ पर आधेयत्व रूप तृतीयार्थ का चैत्रविशेष्यत्व होने के कारण **'चैत्रो जानाति'** यहाँ पर आधेयतानिरूपकत्व रूप

1. ससम्बन्धिक का अभिप्राय उस पदार्थ से जिसका सम्बन्धी अवश्य होता हो। सम्बन्धी के साथ हो जिसका ज्ञान हो। जैसे आधेयता, आधेयताशब्द सुनते हो किसकी आधेयता ऐसे सम्बन्धी का प्रश्न होता है।

आधारता के चैत्रांश में अप्रकार होने पर वैसे अनुभव का विरोध होगा।

यहाँ पर गदाधर अपने पक्ष से दीधितिकार का मत सुदृढ़ कर रहे हैं। दीधितिकार ने जो आख्यात की निरूढलक्षणा आश्रयत्व में स्वीकारी है उसके मूल में ऊपर प्रदर्शित गौरव नहीं है। अपितु अनुभवविरोध है। यह अनुभव है कि कर्म प्रत्ययस्थल में जितने पदार्थ प्रकार बनते हैं उतने कर्तृप्रत्ययस्थल में भी प्रकार बनते हैं, सिर्फ़ विशेषणविशेष्यभाव परिवर्तित हो जाता है। जो पहले विशेष्य रहते हैं वे विशेषण बन जाते हैं और विशेषण विशेष्य बन जाते हैं। ऐसा नहीं होता कि जो कर्म प्रत्ययस्थल में प्रकारतया भास रहे हों वे कर्तृप्रत्ययस्थल में संसर्गतया भासे। इसी प्रकार जिस अंश में जो ससम्बन्धिक पदार्थ कर्म प्रत्ययस्थल में विशेष्य होता है, कर्तृप्रत्यय स्थल में उस ससम्बन्धिकपदार्थ की निरूपकता उस अंश में प्रकार बनती है। यह भी अनुभव है। '**चैत्रेण ज्ञायते**' यहाँ पर चैत्र अंश में (चैत्र के प्रति) तृतीयार्थ आधेयत्व रूप ससम्बन्धिक पदार्थ विशेष्य बनता है, इस कारण कर्तृप्रत्यय स्थल '**चैत्रो जानाति**' में आधेयत्वनिरूपकता (आधारता आश्रयत्व) को चैत्र अंश में प्रकार बनना चाहिए। यदि मणिकार के अनुसार यहाँ पर आश्रयत्व का संसर्गतया भान माना जाये तो चैत्र अंश में आश्रयत्व प्रकार नहीं बनेगा ज्ञान ही प्रकार बनेगा। इस प्रकार उक्त अनुभव से विरोध होगा। इसी कारण दीधितिकार ने आख्यात की आश्रयत्वार्थकता स्वीकारी है।

न च 'चैत्रेण ज्ञायते' इत्यत्राप्याधेयत्वं संसर्ग एव न तु विशेष्यमिति वाच्यम्; तथा सति 'आत्मना ज्ञायते न घटेन' इत्यादौ घटादिवृत्तित्वाभाव बोधानुपपत्तेः– आधेयत्वस्य तृतीयार्थताविरहेण तृतीयान्ताद् घटादिवृत्तित्वरूप प्रतियोग्यनुपस्थितेः, आधेयत्वसम्बन्धस्याभावप्रतियोगितानवच्छेदकतया च तत्सम्बन्धावच्छिन्नघटाभावबोधस्य तत्रोपगमासम्भवात् । तादृश-सम्बन्धस्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वे 'ज्ञाने न घटः' इत्यादिवाक्यजन्य प्रत्यये ज्ञानाद्यधिकरणकतादृशसम्बन्धावच्छिन्नघटाद्यभावस्याप्यवगाहन सम्भवाद् 'घटे ज्ञानं न वा' इत्यादिसंशयनिरासाय कदाचित् 'ज्ञाने न घटः' इत्यादिकमपि प्रयुज्यते। अत एवानुकूलकृतिमत्त्वादिरूपकर्तृत्वादेरपि 'चैत्रः पचति' इत्यादौ प्रकारता मणिकृतापि स्वीक्रियते न तु संसर्गता- 'न पचति' इत्यादावन्वयबोधानिर्वाहात्, तादृशसम्बन्धस्य वृत्त्यनियामकतयाऽभाव-प्रतियोगितानवच्छेदकत्वेन तत्सम्बन्धावच्छिन्नक्रियाविरहप्रत्ययस्य तत्रोपगमासम्भवात् ।

यदि कहो कि '**चैत्रेण ज्ञायते**' यहाँ पर भी आधेयत्व संसर्ग ही है विशेष्य नहीं है। इस प्रकार ज्ञान में चैत्र आधेयत्व सम्बन्ध से प्रकार बनता है, कर्तृप्रत्ययस्थल '**चैत्रो जानाति**' में विशेष्यविशेषणभाव वैपरीत्य होकर चैत्र में ज्ञान प्रकार बनेगा। तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि आधेयत्व के संसर्ग होने पर '**आत्मना ज्ञायते न घटेन**' इत्यादि स्थलों में घटादिवृत्तित्वाभाव के बोध की अनुपपत्ति होगी क्योंकि आधेयत्व की तृतीयार्थता

न होने के कारण घटादिवृत्तित्व रूप प्रतियोगी की अनुपस्थिति है और आधेयत्वसम्बन्ध के वृत्त्यनियामक होने के कारण अभावीयप्रतियोगितानवच्छेदक होने से आधेयत्वसम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिताक घटाभाव के बोध का उपगम असम्भव है। आधेयत्व सम्बन्ध के अभाव प्रतियोगितावच्छेदक होने पर **'ज्ञाने न घटः'** 'ज्ञान में घट नहीं है' इत्यादि वाक्य से जन्य बोध में ज्ञानाद्यधिकरणक आधेयत्वसम्बन्धावच्छिन्न घटाद्यभाव का भी अवगाहन सम्भव होने के कारण **'घटे ज्ञानं न वा'** 'घट में ज्ञान है या नहीं' इस सन्देह का निरास करने के लिए कदाचित् **'ज्ञाने न घटः'** इत्यादिक प्रयोग भी किये जाते । इसीलिए अनुकूल कृतिमत्त्वादि रूप कर्तृत्वादि की **'चैत्रः पचति'** इत्यादि स्थलों में मणिकार के द्वारा भी प्रकारता ही स्वीकार की जाती है। संसर्गता नहीं क्योंकि तादृशसम्बन्ध के वृत्त्यनियामक होने के कारण अभाव प्रतियोगितानवच्छेदक होने से तत्सम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिताक क्रियाभाव के प्रत्यायन का स्वीकार असम्भव है । **'न पचति'** इत्यादि स्थलों में अन्वयबोध का निर्वाह नहीं हो सकता है।

'चैत्रेण ज्ञायते' इत्यादि स्थलों में आधेयत्व का प्रकारतया ही भान होता है संसर्गतया नहीं इसमें यहाँ पर निम्नलिखित युक्तियाँ प्रदर्शित की जा रही है। प्रथमतः **'आत्मना ज्ञायते न घटेन'** इस वाक्य प्रयोग से ज्ञान में घटवृत्तित्वाभाव बोधित होता है, यह नहीं हो सकेगा क्योंकि आप आधेयत्व को तृतीया का अर्थ नहीं मान रहे हैं संसर्ग मान रहे हैं, यदि आधेयत्व (वृत्तित्व) तृतीया का अर्थ होता तो ही घटवृत्तित्वाभाव ज्ञान में बोधित हो सकता था। द्वितीयतः यदि आप कहो कि घट का आधेयत्वसम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिताक अभाव ही ज्ञान में बोधित होता है, तो ऐसा भी नहीं कहा जा सकता है क्योंकि आधेयत्व के वृत्त्यनियामक होने के कारण तत्सम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक अभाव अप्रसिद्ध होने से नहीं बोधित हो सकता है। तृतीयततः यदि वृत्तिता के अनियामक सम्बन्ध को भी अभावीय प्रतियोगितावच्छेदक मान लिया जाये तो **'घटे ज्ञानं न वा'** इस संशय का निवारण करने के लिए **'ज्ञाने न घटः'** ऐसा प्रयोग भी होना चाहिए क्योंकि **'घटे ज्ञानं न वा'** इस वाक्य से ज्ञान में आधेयत्व सम्बन्ध से घटवत्ता और आधेयत्व सम्बन्ध से घटाभाववत्ता का ही सन्देह बोधित होता है। **'ज्ञाने न घटः'** से भी ज्ञान में आधेयत्व सम्बन्ध से घट का अभाव निश्चय के रूप में बोधित हो सकता है। इसे इस तरह से समझ सकते हैं **'भूतलेः घटानः'** से **'भूतलवृत्तिः घटाभावः'** बोध भी होता है तात्पर्य रहने पर और तात्पर्यवशात् **'घटो भूतलावृत्तिः'** बोध भी होता है। वृत्तित्व (आधेयत्व) की सम्बन्ध मानने पर **'ज्ञाने न घटः'** से उपर्युक्तरीति से **'आधेयत्वसम्बन्धेन ज्ञानविशिष्टो घटाभावः'** या **'आधेयत्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकज्ञानाभावविशिष्टो घटः'** बोध तात्पर्यवशात् हो सकता है। **'आधेयत्वसम्बन्धेन ज्ञानविशिष्टो घटाभावः'** ऐसा बोध तात्पर्यवशात् सम्भव है। तथा इस बोध में ज्ञान में घटाभाव ही आधेयत्वसम्बन्ध से विषय होगा । इसलिए **'घटे ज्ञानं न वा'** इस सन्देह के निवारण के लिए **'ज्ञाने न घटः'** प्रयोग होने की पाली आ जायेगी । जबकि **'घटे ज्ञानं न वा'** इस सन्देह का निवारण करने के लिए कोई भी **'ज्ञाने न घटः'** प्रयोग नहीं करता है। वृत्त्यनियामक सम्बन्ध के अभावीय

प्रतियोगितावच्छेदक न होने पर तो '**ज्ञाने न घटः**' से ज्ञान में घट का आधेयत्व सम्बन्ध से अभाव नहीं बोधित हो सकता है। इसलिए '**घटे ज्ञानं न वा**' इस सन्देह का निवारण के लिए '**ज्ञाने न घटः**' प्रयोग की आपत्ति नहीं है। इसकारण वृत्त्यनियामक सम्बन्ध को अभावीयप्रतियोगितावच्छेदक और '**चैत्रेण ज्ञायते**' इत्यादि स्थलों में आधेयत्व का संसर्गतया भान नहीं स्वीकारा जा सकता । वृत्त्यनियामक सम्बन्ध के अभावीयप्रतियोगितावच्छेदक न होने के कारण ही मणिकार भी **चैत्रः पचति**' इत्यादि स्थलों में अनुकूलकृतिमत्त्वादिरूप कर्तृत्व की संसर्गता नहीं स्वीकारते है, प्रकारता ही स्वीकारते हैं क्योंकि संसर्गता स्वीकारने पर '**न पचत्ति**' इत्यादि स्थलों में अनुकूलकृतिमत्त्वसम्बन्ध से पाक का चैत्र में अभाव अनुकूलकृतिमत्त्व सम्बन्ध के वृत्त्यनियामक होने से तत्सम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिताक अभाव अप्रसिद्ध होने के कारण नहीं बोधित हो सकता है। इसलिए अन्वय बोध का निर्वाह नहीं सम्भव है।

एवम् – 'चैत्रेण ज्ञायते' इत्यादावाधेयत्वस्य तृतीययाऽविवक्षणे प्रातिपदिकार्थमात्रविवक्षया तद्विषयानुशिष्टप्रथमैव स्यात् ।

इसी प्रकार '**चैत्रेण ज्ञायते**' इत्यादि स्थलों में आधेयत्व की तृतीया से विवक्षा न होने पर प्रातिपदिकार्थमात्र विवक्षा होने के कारण प्रातिपदिकार्थ विषय में अनुशिष्ट प्रथमा ही होगी। भाव यह है कि यदि तृतीया केवल साधुत्वार्थक होगी, आकाङ्क्षानिर्वाहकतया ही उपयुक्त होगी तो '**प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा**' पा० सू० 2/3/46 से प्रथमा ही होगी तृतीया नहीं हो सकेगी। इसलिए आधेयत्व को तृतीया का ही अर्थ मानना चाहिए और उसका प्रकारतया ही भान स्वीकारना चाहिए संसर्गतया नहीं ।

'जानाति चैत्रः' इत्यादौ चाख्यातेन कर्तृत्वाविवक्षणे धात्वर्थ रूपभावमात्रपरतया परस्मैपदस्य श्नादिविकरणस्य चासाधुतापत्तिः– ''भावकर्मणोः'' इत्यात्मनेपदविधायकानुशासनविषयत्वात्, ''कर्तरि'' इत्यधिकारीयक्र्यादिभ्यः श्नेत्यनुशासनाविषयत्वाच्चेति तत्राख्यातस्य कर्तृत्व बोधकतायुक्तिस्तु न साधीयसी- इतराविशेषणतया क्रियाबोधपरत्वरूप भावविवक्षाया आत्मनेपदानुशासनविषयतोपगमादुक्तस्थले परस्मैपद-साधुतायाः तादृशभावविवक्षाविरहस्य श्नाद्यनुशासनविषयत्वोपगमेन श्नादिविकरणस्य साधुतायाश्च निर्वाहसम्भवात् ।

कुछ लोग अन्य युक्तियों से आख्यात का कर्तृत्वबोधकत्व सिद्ध करना चाहते हैं। गदाधर यहाँ पर उन युक्तियों को उठाकर उनका खण्डन करेंगे।

'**जानाति चैत्रः**' इत्यादि स्थलों में आख्यात के द्वारा कर्तृत्व की विवक्षा न करने पर आख्यात (आख्यातान्त '**जानाति**' आदि) के धात्वर्थरूपभावमात्रपरक होने के कारण परस्मैपद के श्नाविकरण आदि के असाधुत्व की आपत्ति होगी क्योंकि '**भावकर्मणोः**' पा० सू० 1/3/13 इस आत्मनेपदविधायक अनुशासन का विषय होगा (अतः आत्मनेपद ही होना चाहिए) और '**कर्तरि**' के अधिकार में आये हुए '**क्र्यादिभ्यः श्ना**' पा० सू० 3/1/81 इस अनुशासन

का विषय न होगा (अतः श्नाविकरण नहीं हो सकेगा) इसलिए वहाँ **'जानाति चैत्रः'** आदि स्थलों में आख्यात का कर्तृत्वबोधकत्व है, यह युक्ति तो ठीक नहीं है क्योंकि इतराविशेषणतया क्रियाबोधपरत्वरूप भाव की विवक्षा होने पर आत्मनेपदानुशासन की विषयता स्वीकारने से उक्त स्थल में परस्मैपद की साधुता का और तादृश- इतराविशेषणतया क्रियाबोधपरत्वरूप भाव की विवक्षा के अभाव की श्ना आदि अनुशासन की विषयता स्वीकारने से श्ना आदि विकरणों की साधुता का निर्वाह सम्भव है।

यहाँ पर आख्यात की कर्तृत्व बोधकता में युक्ति यह बतायी जा रही है कि यदि आख्यात कर्तृत्व का बोधक नहीं होगा तो **'जानाति चैत्रः'** यहाँ पर परस्मैपद और श्नाविकरण साधु नहीं हो सकेगा। आख्यात के धात्वर्थरूप भावमात्र परक होने के कारण **'भावकर्मणोः'** सूत्र से आत्मनेपद होना चाहिए, अतः परस्मैपद असाधु होगा। **'कर्तरि'** के अधिकार में **'क्र्यादिभ्यः श्ना'** सूत्र पढ़ा गया है, अतः आख्यात के द्वारा कर्तृत्व या कर्ता का बोध न होने पर श्नाविकरण असाधु हो जायेगा।

गदाधर ने इस युक्ति का खण्डन करते हुए कहा कि हम 'इतराविशेषणतया धात्वर्थ बोधपरत्व रूप भाव विवक्षा होने पर आत्मनेपद का विधान और इतराविशेषणतया धात्वर्थ बोधपरत्व रूप भाव की विवक्षा न होने पर **'कर्तरि'** के अधिकार में आये विकरणों का विधान है' ऐसा मान लेंगे। इस प्रकार **'जानाति चैत्रः'** में चैत्रविशेषणतया धात्वर्थज्ञान बोधपरत्व विवक्षा होने से परस्मैपद ही होगा और श्नाविकरण भी साधु होगा। इसलिए इस युक्ति से आप आख्यात का कर्तृत्वबोधकत्व नहीं सिद्ध कर सकते है।

'पचन् पचति' इत्यादाविवोद्देश्यतावच्छेदकविधेयाभेदेन 'जानन् जानाति' इत्यादेर्निराकाङ्क्षतानिर्वाहायापि 'जानाति' इत्यादावाख्यात स्याश्रयतार्थकतोपगम आवश्यकः, अन्यथा कृदन्तप्रतिपाद्यतावच्छेदक ज्ञानाश्रयत्वरूपोद्देश्यतावच्छेदकस्य ज्ञानादिरूपविधेयभिन्नतया निराका-ङ्क्षताविरहेण तथाप्रयोगापत्तेः।

'पचन् पचति' 'पकाता हुआ पका रहा है' इत्यादि स्थलों की तरह उद्देश्यतावच्छेदक और विधेय का अभेद होने के कारण **'जानन् जानाति'** 'जानता हुआ जानता है' इत्यादि की निराकाङ्क्षता का निर्वाह करने के लिए भी **'जानाति'** इत्यादि स्थलों में आख्यात की आश्रयत्वार्थकता का उपगम आवश्यक है अन्यथा कृदन्तप्रतिपाद्यतावच्छेदक ज्ञानाश्रयत्व रूप उद्देश्यतावच्छेदक के ज्ञानादि रूप विधेय से भिन्न होने के कारण निराकाङ्क्षता न होने के कारण वैसे प्रयोग की आपत्ति होगी।

'जानाति' यहाँ पर आख्यात के आश्रयत्वार्थक होने में एक और युक्ति दे रहे हैं। कहना है कि **'पचन् पचति'** ऐसा प्रयोग निराकाङ्क्ष होने के कारण नहीं होता है। पचन् के द्वारा पाकानुकूलकृतिमान् उपस्थित होता है और उसमें पचति के द्वारा पाकानुकूल कृति विधेय होता है, उद्देश्यतावच्छेदक भी पाकानुकूल कृति ही है। इस प्रकार उद्देश्यतावच्छेदक और विधेय का अभेद होने के कारण यह वाक्य निराकाङ्क्ष होता है। इसी प्रकार **'जानन् जानाति'** की भी निराकाङ्क्षता होनी चाहिए किन्तु यदि आख्यात का अर्थ आश्रयत्व न हो

तो उद्देश्यतावच्छेदक और विधेय का अभेद नहीं हो सकेगा क्योंकि जानन् का अर्थ ज्ञानाश्रय होगा, ज्ञानाश्रय में जानाति के द्वारा ज्ञान विधेय होगा। इस प्रकार उद्देश्यतावच्छेदक होगा ज्ञानाश्रयत्व और विधेय होगा ज्ञान । इस तरह उद्देश्यतावच्छेदक और विधेय का अभेद न होने से 'जानन् जानाति' की निराकाङ्क्षता न होने के कारण ऐसे प्रयोग की आपत्ति होगी, आख्यात का अर्थ आश्रयत्व मानने पर तो उद्देश्यतावच्छेदक भी ज्ञानाश्रयत्व होगा और विधेय भी वही होगा। अतः इस वाक्य के निराकाङ्क्षता का निर्वाह होता है।

एतेन तत्राश्रयतायाः प्रकारतोपगमे 'जानाति चैत्रः' इत्यादिवाक्य ज्ञानघटितशाब्दसामग्र्याः भिन्नविषयकप्रत्यक्षादिप्रतिबन्धकतायामाख्यात जन्याश्रयत्वोपस्थित्यादिरूपाधिककारणानां निवेशे गौरवेणाश्रयतायाः संसर्ग त्वमेवोचितमित्यादिकमनुपादेयम् ।

इसी से– वहाँ पर आश्रयता की प्रकारता का उपगम होने पर 'जानाति चैत्रः' इत्यादि वाक्यज्ञानघटित शाब्दसामग्री की भिन्नविषयकप्रत्यक्ष आदि की प्रतिबन्धकता में आख्यातजन्य आश्रयत्वोपस्थिति आदि रूप अधिक कारणों का निवेश करने पर गौरव होने से आश्रयता का संसर्गत्व ही उचित है– इत्यादिक भी अनुपादेय है ।

आश्रयत्व का प्रकारतया भान मानने पर शाब्दबोध सामग्री के अन्तर्गत आश्रयत्वोपस्थिति का भी प्रवेश करना पड़ेगा। आश्रयत्व का संसर्गतया भान मानने पर आश्रयत्व का संसर्गमर्यादा से भान होने के कारण आश्रयत्वोपस्थिति का शाब्दसामग्री में प्रवेश नहीं करना पड़ेगा। इसलिए भिन्नविषयकप्रत्यक्ष, समानविषयक अनुमिति आदि के प्रति शाब्दसामग्री की प्रतिबन्धकता में शाब्दसामग्री के अन्तर्गत आश्रयत्वोपस्थिति का भी प्रवेश करने के कारण गौरव होगा। इसलिए आश्रयत्व का संसर्गतया ही भान मानना चाहिए । ऐसा कहा जाता है, यह कथन अनुचित है क्योंकि यहाँ पर अन्य आपत्तियों की वज़ह से आश्रयत्व का प्रकारतया भान स्वीकार रहे हैं, लाघव की वज़ह से नही।

'नश्यति' इत्यादौ प्रतियोगित्वरूपकर्तृत्वमाख्यातार्थः, तादृशसम्बन्धस्य वृत्त्यनियामकतयाऽभावप्रतियोगितानवच्छेदकत्वेन 'न नश्यति' इत्यादौ नाश-प्रतियोगित्वाभावबोधस्यैव स्वीकरणीयतया न संसर्गतासम्भवः।

'नश्यति' इत्यादि स्थलों में प्रतियोगित्वरूपकर्तृत्व आख्यात का अर्थ है, प्रतियोगित्व रूप सम्बन्ध के वृत्त्यनियामक होने के कारण अभावप्रतियोगितानवच्छेदक होने से 'न नश्यति' इत्यादि स्थलों में नाशप्रतियोगित्वाभाव बोध ही स्वीकरणीय होने से संसर्गता सम्भव नहीं है। भाव यह है कि नश्यति यहाँ पर प्रतियोगित्वरूप कर्तृत्व आख्यात का अर्थ है, इस प्रकार 'घटो नश्यति' से 'नाशप्रतियोगित्वाश्रयो घटः' ऐसा बोध होता है। यहाँ पर नाशप्रतियोगित्व घट में प्रकार बनता है और आश्रयत्व संसर्गतया भासता है। यहाँ पर घट में नाश रूप धात्वर्थ को प्रतियोगित्व सम्बन्ध से प्रकार नहीं मान सकते हैं क्योंकि ऐसा मानने पर 'प्रतियोग्यभावान्वयौ तुल्ययोगक्षेमौ' के अनुसार 'घटो न नश्यति' से घट में नाश का प्रतियोगित्वसम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिताक अभाव भासना चाहिए, परन्तु

प्रतियोगित्व के वृत्त्यनियामक होने के कारण प्रतियोगित्वसम्बन्धावच्छिन्न' नाशाभाव घट में नहीं बोधित हो सकता है। इस कारण प्रतियोगित्व को आख्यातार्थ मान कर उसका प्रकारतया ही भान मानना चाहिए।

पृ. 762 से गदाधर ने जो मुद्दा उठाया था कि कर्तृत्व क्रियानुकूल कृति ही है, वही आख्यातार्थ है और 'रथो गच्छति' 'काष्ठं पचति' इत्यादि स्थलों में आख्यात की अनुकूलव्यापाररूप कर्तृत्व में लक्षणा हो जाती है। उसको यहाँ पर पूरा किया। तथा सिद्धान्तित किया कि कर्तृत्व ही आख्यातार्थ होता है कहीं पर मुख्य कर्तृत्व और कहीं पर लाक्षणिक कर्तृत्व। सिद्धान्तरूप में दीधितिकार के मत को ही गदाधर ने पुष्ट किया कि कहीं पर भी आख्यात निरर्थक नहीं होता और कहीं पर भी धात्वर्थ का नामार्थ में साक्षात् अन्वय नहीं होता है। दीधितिकार के पक्ष को मणिकार के मत में अनुभव का विरोध ही पुष्ट करता है।

अथाख्यातस्य कर्तृत्वशक्ततावच्छेदकं रूपं दुर्वचम्।

न च तिङ्त्वं तथा–तिप्तसादिसाधारणतिङ्त्वस्य दुर्वचत्वात्।

न च पाणिनीयसङ्केतसम्बन्धेन तिङ्पदवत्त्वमेव तिङ्त्वं तिबाद्यष्टादशसु तत्पदसङ्केतग्राहकञ्च "आदिरन्त्येन" इति सूत्रमेव तत्सङ्केतमविदुषामनधीत-पाणिनीयतन्त्राणां तिप्त्वादिना शक्तिभ्रमादेव शाब्दबोध इति वाच्यम्; एवं सति घटादिवाचकघटादिपदेष्वपि कस्यचिच्छब्दस्य पुरुषविशेषीय सङ्केतसम्भवेन तुल्ययुक्त्या तत्रापि तच्छब्दस्यैव शक्ततावच्छेदकतापत्त्या तिबादिषु पाणिनेस्तिङ्पदसङ्केतवत् तत्र शब्दान्तरसङ्केतस्याप्यन्यपुरुषीयस्य सम्भवात् तत्तच्छब्दानामपि प्रवृत्तिनिमित्ततायाः सुवचत्वाद् विनिगमनानुपपत्तेः।

उपर्युक्त रीति से आख्यात की शक्ति कर्तृत्व में होने पर भी आख्यात का कर्तृत्व शक्ततावच्छेदक रूप दुर्वच है। अर्थात् आख्यात किस रूप से कर्तृत्व में शक्त है ? यह दुर्वच है।

यदि कहो कि तिङ्त्व ही आख्यात का कर्तृत्व शक्ततावच्छेदक रूप है। तो नहीं कह सकते क्योंकि तिप्, तस्, झि आदि सभी में रहने वाला तिङ्त्व क्या है? यह बतलाना बहुत ही मुश्किल है। यदि यह ज्ञात हो सके कि सभी तिप् तस् आदि में रहने वाला तिङ्त्व क्या चीज़ है? तभी तो उस तिङ्त्व से अवच्छिन्न की शक्ति कर्तृत्व में मानी जाये किन्तु वही जानना मुश्किल है।

यदि कहो कि पाणिनीयसङ्केत सम्बन्ध से तिङ्पदवत्त्व ही तिङ्त्व है और तिप् आदि अठारह विभक्तियों में तिङ्पद का सङ्केत ग्राहक 'आदिरन्त्येन सहेता' पा॰ सू॰ 1/1/71 सूत्र ही है। उस पाणिनीय सङ्केत को न जाननेवालों को पाणिनीय व्याकरण न पढे हुए लोगों को तिप्त्व, तस्त्व आदि के द्वारा कर्तृत्व में शक्ति का भ्रम होने के कारण ही शाब्द बोध होता है। उक्त पाणिनीय सङ्केत को न जानने वालों को 'तिप्त्वावच्छिन्नं कर्तृत्वे शक्तम्' इस प्रकार शक्ति भ्रम हो जाने के कारण ही कर्तृत्व का तिबादि के द्वारा बोध होता है। वस्तुतः तो तिङ्त्वावच्छिन्न की ही कर्तृत्व में शक्ति है। तो ऐसा नहीं कहना चाहिए

क्योंकि ऐसा होने पर घटादिवाचक घटादिपदों में भी किसी शब्द का पुरुषविशेषीयसङ्केत सम्भव होने के कारण समान युक्ति से वहाँ पर भी उसी शब्द की ही शक्ततावच्छेदकतापत्ति होने के कारण (क्योंकि तिबादियों में पाणिनि के तिङ्पद सङ्केत की तरह वहाँ पर अन्य पुरुषीय शब्दान्तर सङ्केत भी सम्भव है) अतः उन उन शब्दों की भी प्रवृत्तिनिमित्तता सुवच होने के कारण विनिगमना की अनुपपत्ति होती है।

भाव यह है कि सुनायी तो तिप् तस् आदि की पड़ते हैं इसलिए तिप्त्वादि से अवच्छिन्न की ही शक्ति कर्तृत्व में माननी चाहिए। पाणिनीयसङ्केत सम्बन्ध से तिङ्पदवत्त्व रूप तिङ्त्व से अवच्छिन्न में कर्तृत्व की शक्ति स्वीकारने पर तो इसी युक्ति से पुरुषविशेषीयसङ्केत सम्बन्ध से पटपदवत्त्वादि से अवच्छिन्न में घट की शक्ति स्वीकारनी चाहिए। क्योंकि किसी पुरुष विशेष का सङ्केत तो यह हो ही सकता है। कोई पुरुष आपस में सहमति से यह संकेत कर सकता है कि मैं जब पट पद बोलूँ तो घट समझना । इस पुरुषविशेषीय सङ्केत सम्बन्ध से पटपदवत्त्व को ही क्यों न घट का शक्ततावच्छेदक मान लिया जाये? पाणिनीय सङ्केत सम्वन्ध से तिङ्पदवत्त्व से अवच्छिन्न की शक्ति कर्तृत्व में स्वीकारी जाये पुरुषविशेषीय सङ्केत सम्बन्ध से पटपदवत्त्व से अवच्छिन्न की शक्ति घट में न स्वीकारी जाये। इसमें कोई भी साधिका युक्ति नहीं है।

अत्र केचित्– तिबादिस्थानिनो लकारस्यैव लत्वजातिपुरस्कारेण कृतिवाचकता 'पचति' इत्यादौ लकाराश्रवणेऽप्यादेशेन तिबादिना स्थानिनः स्मरणात् तत एवार्थोपस्थितिः; आदेशादेशिभावमविदुषान्तु तिप्त्वादिना शक्ति भ्रमादेवार्थोपस्थितिः। यत्र तिबादेर्लादेशत्वज्ञानं नास्ति श्रुतलकाराच्चार्थो पस्थितिस्तत्र 'पचति' इत्यादिवाक्याच्छाब्दबोधवारणाय 'पचति' इत्यानुपूर्वी-ज्ञानजन्यबोधे तिबादेर्लादेशत्वज्ञानमपि हेतुः

यहाँ पर कुछ लोग कहते हैं— तिवादिस्थानी लकार की ही लत्वजातिपुरस्कारेण कृतिवाचकता है **'पचति'** इत्यादि स्थलों में लकार का श्रवण न होने पर भी आदेश भूत तिबादि के द्वारा स्थानी लकार का स्मरण होने के कारण उसी स्मृत लकार से ही अर्थ की उपस्थिति होती है, कृति की उपस्थिति होती है। आदेशादेशिभाव को न जानने वालों को तो (लकार आदेशी है और तिबादि आदेश है इस बात को न जानने वालों को तो) तिप्त्वादि रूप से कृति में शक्ति का भ्रम होने के कारण ही अर्थ की उपस्थिति होती है। जहाँ पर तिप् आदि के लादेशत्व का ज्ञान नहीं है। सुने हुए लकार से ही अर्थ की उपस्थिति होती है वहाँ पर **'पचति'** इत्यादि वाक्यों से शाब्दबोध का वारण करने के लिए **'पचति'** इस आनुपूर्वी ज्ञान से जन्य बोध में तिबादि का लादेशत्व ज्ञान भी कारण है।

अत्र केचित् प्रतीक से दिये जा रहे समाधान के अनुसार लकार की ही शक्ति कृति में है तिबादि की नहीं। फिर तिबादि के द्वारा तो कृति का बोध नही होना चाहिए? इसपर कहा कि तिबादि के द्वारा कृति कीं उपस्थिति या कृति का बोध नहीं ही होता है। अपितु आदेश तिबादि के द्वारा स्थानी लकार का स्मरण होता है और लकार से ही कृति रूप अर्थ

की उपस्थिति होती है। किन्तु इसमें दो मुश्किलें हैं, पहली यह कि आदेशादेशिभाव न जानने वालों को कृति की उपस्थिति तिबादिं से नहीं होनी चाहिए जब कि होती है। दूसरी यह कि जहाँ पर तिबादि के लादेशत्व का ज्ञान नहीं है और लकार के श्रवण से अर्थ की उपस्थिति हो रही है, वहाँ पर कृति विषयक शाब्दबोध होने की आपत्ति है। इस पर समाधान दिया कि आदेशादेशिभाव न जानने वालों को शक्ति भ्रम से ही कृति आदि अर्थों की उपस्थिति होती है। तथा 'पचति' इस आनुपूर्वीज्ञानजन्य बोध में तिबादि के लादेशत्वज्ञान के भी कारण होने के कारण जहाँ पर लकार से अर्थ की उपस्थिति हुई है और तिबादि के लादेशत्व का ज्ञान नहीं है वहाँ पर शाब्दबोध नहीं होता है।

न चोक्तस्थले धातुसाकाङ्क्षत्वज्ञाने भवत्येव शाब्दबोधस्तदसत्त्वे च कारणाभावादेव नापत्तिरिति वाच्यम्; 'पचति' इत्यादौ तिबादिना लकार-स्योपस्थापनेऽपि तत्तद्धातुसाकाङ्क्षतया तत्स्मारकाभावेन तच्छा ब्दबोधानुपपत्तेः— लकारे धातुसाकाङ्क्षत्वग्रहस्य शाब्दबोधहेतुत्वासम्भवात् नहि तत्तद्धातुसाकाङ्क्षत्वेन लस्तिबादिस्थानिता येन तद्रूपावच्छिन्नमेव तिबादिः स्मारयेत्, अपितु लत्वेनैव तथात्वमिति। एवं तत्तद्धातुपदाव्यवहितोत्तर त्वरूपतत्साकाङ्क्षत्वेन येन पुंसा न लकारः श्रुतस्तस्य तेन रूपेण तत्तत्स्मरणासम्भव इति।

यदि कहो कि उक्त स्थल में, जहाँ पर तिबादि के लादेशत्व का ज्ञान नहीं है और सुने हुए लकार से अर्थोपस्थिति होती है वहाँ पर, धातुसाकाङ्क्षत्व ज्ञान होने पर शाब्दबोध होता है और धातुसाकाङ्क्षत्वज्ञान न रहने पर शाब्दबोध की आपत्ति कारण के न रहने से ही नहीं है। इसलिए 'पचति' इस आनुपूर्वीज्ञान से जन्य बोध में तिबादि के लादेशत्वज्ञान को कारण मानने की ज़रूरत नहीं है। तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि 'पचति' इत्यादि स्थलों में तिबादि के द्वारा लकार का उपस्थापन होने पर भी तत्तद्धातुसाकाङ्क्षतया लकार का स्मारक न होने के कारण शाब्दबोध की अनुपपत्ति होने के कारण लकार में धातुसाकाङ्क्षत्व ग्रह का शाब्दबोधहेतुत्व असम्भव है, लकार की तत्तद्धातुसाकाङ्क्षत्वेन तिबादिस्थानिता नहीं है कि तद्रूपावच्छिन्नतत्तद्धातुसाकाङ्क्षत्वावच्छिन्न–को ही तिबादि स्मरण कराये। अपितु लत्वेन ही लकार की तिबादिस्थानिता है। इसी प्रकार तत्तद्धातुपदाव्यवहितोतरत्वरूप-तत्साकाङ्क्षत्वेन जिस पुरुष के द्वारा लकार नहीं सुना गया उस पुरुष को उस रूप से तत्तत्स्मरण असम्भव है।

यहाँ पर पूर्वपक्ष का कहना है कि आप तिबादि के लादेशत्व ज्ञान को कारण क्यों मान रहे हैं 'पचति' इत्यादि वाक्य से जन्य बोध में? तिबादि के लादेशत्व ज्ञान को 'पचति' इत्यादि वाक्यजन्य बोध में कारण न मानकर लकार के धातुसाकाङ्क्षत्व ज्ञान को ही कारण मानना चाहिए। अन्य स्थलों में श्रुतपदों के अर्थों का उपस्थापक होने के कारण श्रुत पदों का साकाङ्क्षत्व ज्ञान कारण होता है, यहाँ पर स्मृत लकार के कृति का उपस्थापक होने के कारण स्मृतलकार का धातुसाकाङ्क्षत्व ज्ञान कारण होगा। इस पक्ष में अतिरिक्त कार्यकारणभाव की कल्पना नहीं है। लादेशत्वज्ञान को कारण मानने पर तो अतिरिक्त कार्य

कारणभाव होता है।

इस पर उत्तर पक्षी का समाधान है कि लकार के धातुसाकाङ्क्षत्व ज्ञान को कारण मानने पर तो बहुत उलटफेर हो जायेगी। '**पचति**' यहाँ पर तिबादि के लकार का स्मारक होने पर भी तिबादि लकार का स्मरण तत्तद्धातुसाकाङ्क्षत्वेन नहीं कराता है क्योंकि तत्तद्धातु साकाङ्क्ष लकार की तिबादिस्थानिता नहीं है जिससे कि तिबादि तत्तद्धातुसाकाङ्क्षत्वेन लकार का स्मरण कराये। केवल लत्वेन ही लकार की तिबादिस्थानिता है। अतः तत्तद्धातु साकाङ्क्षत्वेन लकार की उपस्थिति न होने से लकार में धातुसाकाङ्क्षत्व ज्ञान नहीं रहा, फलतः तिबादि से लकार का स्मरण होने पर भी शाब्दबोध नहीं हो सकेगा। इसी प्रकार जिस पुरुष के द्वारा तत्तद्धातुपदाव्यवहितोत्तरत्वरूप तत्तद्धातुपदसाकाङ्क्षत्वेन लकार सुना ही नहीं गया, उस पुरुष को तत्तद्धातुपदाव्यवहितोत्तरत्वेन रूपेण लकार का स्मरण ही असम्भव है। इसलिए लकार में धातुसाकाङ्क्षत्वज्ञान शाब्दबोधकारण नहीं माना जा सकता है, तिबादि के लादेशत्व ज्ञान को ही '**पचति**' इत्यादि वाक्य से जन्य बोध में कारण मानना चाहिए।

अत्रेदं चिन्त्यते– लकारतिबाद्योरनतिप्रसक्तस्थान्यादेशभावस्य दुर्वचत्वात् तिबादिस्मारितलकारस्य वाचकत्वं न विचारसहम्, तिबादेरेव यत्र वाचकताभ्रमस्तदनुरोधेन 'पचति' इत्याद्यनुपूर्वीज्ञानस्य तिबादिज्ञान जन्योपस्थितिसहकारेण शाब्दबोधोपधायकताकल्पनस्यावश्यकत्वात् लकार जन्योपस्थितिसहकृततादृशानुपूर्वीज्ञानतिबादिधर्मिकलादेशत्वज्ञानघटित सामग्र्यन्तरकल्पने गौरवेण लाघवात्तिबादेरेव ताद्रूप्येण शक्तिकल्पनाया उचितत्वं चेति दिक्।

यहाँ पर यह सोचा जाता है कि लकार और तिबादि के अनतिप्रसक्त स्थान्यादेशभाव के दुर्वच होने के कारण तिबादि से स्मारित लकार का वाचकत्व विचारसह नहीं है। क्योंकि जहाँ पर तिबादि की ही वाचकता का भ्रम होता है उसके अनुरोध से '**पचति**' इत्यादि आनुपूर्वीज्ञान का तिबादिजन्य उपस्थिति के सहकार से शाब्दबोधोपधायकता कल्पन आवश्यक है। तथा लकारजन्य उपस्थिति से सहकृत तादृशानुपूर्वीज्ञान तिबादिधर्मिक लादेशत्वज्ञान घटित सामग्र्यन्तर की कल्पना में गौरव होने के कारण लाघव होने के कारण तिबादि की ही तिप्त्वादि रूप से कृति में शक्ति की कल्पना का औचित्य है ।

गदाधर यहाँ पर स्वीयसिद्धान्त बतला रहे हैं कि तिबादि की तिप्त्वादि रूप से ही कृति में शक्ति स्वीकारनी चाहिए, तिबादिस्मारित लकार का वाचकत्व नहीं स्वीकारा जा सकता है क्योंकि (1) लकार और तिबादि का अनतिप्रसक्त स्थान्यादेशभाव दुर्वच है। एक ही लट्लकार की जगह पर अठारहों किसी-किसी (उभयपदी) धातु से होते हैं कहीं पर नौ होते हैं। इसी प्रकार लुट्, लृट्, आदि की जगह पर भी यही आदेश होते हैं। कहीं पर तिप् आदि की जगह पर कुछ और आदेश भी लुट्, लिट् आदि लकारों में हो जाते हैं। इस प्रकार अनतिप्रसक्त स्थान्यादेशभाव का निर्वचन बहुत मुश्किल है।

(2) जहाँ पर तिबादि की ही वाचकता का भ्रम हो गया उसके अनुरोध से शाब्दबोध हो गया, वहाँ पर तिबादिजन्य उपस्थिति के सहकार से **पचति** इत्यादि आनुपूर्वीज्ञान की शाब्दबोध के प्रति कारणता स्वीकारनी ही पड़ेगी क्योंकि शाब्दबोध उसी से हो रहा है। इस प्रकार लकार को कृति का वाचक मानने वाले के मत में लकारजन्योपस्थिति सहकृत तादृशानुपूर्वीज्ञान– **पचति** इत्याद्यानुपूर्वी ज्ञान– तथा तिबादिधर्मिक लादेशत्वज्ञान घटित सामग्र्यन्तर को भी शाब्दबोध में कारण मानना पड़ेगा। साथ ही तिबादि की वाचकता भ्रम के अनुरोध से तिबादिजन्योपस्थिति सहकार से '**पचति**' इत्याद्यानुपूर्वीज्ञान की कारणता भी माननी पड़ेगी। इसलिए गौरव होगा। तिप्त्वादिना तिबादि को ही कृति का वाचक मानने वाले के मत में तो दोनों ही स्थलों में तिप्त्वादिना तिबादिजन्योपस्थिति सहकार से **पचति** इत्यादि आनुपूर्वीज्ञान की ही कारणता स्वीकारनी पड़ती है। अतः लाघव है।

आख्यातसामान्यस्य कर्तृत्व इव तद्विशेषस्यात्मनेपदस्य कर्मत्वे शक्तिः न तु यथाश्रुतग्राहिवैयाकरणमत इव कर्मरूपधर्मिवाचकत्वं गौरवात्, प्रथमान्तपदार्थे कर्मत्वान्वयबलादेव कर्मताविशिष्टधर्मिलाभसम्भवात्।

आख्यातसामान्य की कर्तृत्व में शक्ति की तरह आख्यातविशेष आत्मनेपद की कर्मत्व में शक्ति है। यथाश्रुतग्राहि वैयाकरणमत की तरह आख्यात का कर्मरूप धर्मिवाचकत्व नहीं है क्योंकि गौरव होता है और प्रथमान्त पदार्थ में कर्मत्वान्वय के बल से ही कर्मताविशिष्ट धर्मी का लाभ सम्भव है।

वैयाकरण '**लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः**' पा० सू० 3/4/69 में जैसा पढ़ा गया है उसको ग्रहण करते हुए आख्यात की कर्ता, कर्म और भाव में शक्ति मानते हैं। नैयायिक कर्तृत्व, कर्मत्व और भाव में आख्यात की शक्ति मानते हैं। आख्यात की कर्तृत्व में शक्ति का निरूपण कर चुके। यहाँ पर यह बता रहे हैं कि यदि आख्यातविशेषरूप आत्मनेपद की शक्ति आप कर्म में स्वीकारेंगे तो कर्मत्व तो फल ही है, उसके अननुगत होने के कारण शक्यतावच्छेदकतावच्छेदक कल्पना करनी पड़ेगी, अतः गौरव है। इसलिए कर्मत्व में ही आख्यातविशेष की शक्ति मानो जैसे आख्यातसामान्य की कर्तृत्व में शक्ति आपने मानी है। प्रथमान्तपदार्थ में कर्मत्वान्वय के बल से ही कर्मताविशिष्ट धर्मि का वाचकत्व आख्यात में लब्ध हो जाता है।

न चात्मनेपदस्य शानच्प्रत्ययस्य धर्मिणि शक्तेः 'पच्यमानमानय' इत्यादौ पच्यमानादिनिष्ठानयनकर्मत्वान्वयानुरोधेनावश्यकत्वात् तत एवोपपत्तावाख्यातरूपात्मनेपदस्य धर्मवाचकत्वं निर्युक्तिकमिति वाच्यम्; तङ्शानच्साधारणस्यात्मनेपदत्वस्य शक्ततावच्छेदत्व एव तथोक्तिसम्भवात्, तादृशात्मनेपदत्वस्य चागुरोर्निर्वचनासम्भवात्, पाणिन्यादिसङ्केतवत्त्वसम्बन्धेनात्मनेपदवत्त्वस्य शक्ततावच्छेदकताया उक्तरीत्याऽनवकाशात्। अतस्तादीनां तद्रूपेण शक्तिकल्पनस्यावश्यकतया लाघवात् कर्मत्व एव तत्कल्पनात्।

यदि कहो कि **'पच्यमानमानय'** 'जो पका रहा है उसे लाओ' इत्यादि स्थलों में पच्यमानादिनिष्ठ आनयनकर्मत्व के अन्वय के अनुरोध से आत्मनेपद शानच् प्रत्यय की धर्मी में शक्ति आवश्यक होने के कारण उतने से ही उपपत्ति होने से आख्यात रूप आत्मनेपद का धर्मवाचकत्व निर्युक्तिक है। भाव यह है कि **'पच्यमानमानय'** प्रयोग करने पर पच्यमान में आनयनकर्मत्व का अन्वय होता हैं, आत्मनेपद की शक्ति कर्मत्व में मानने पर पाककर्म पच्यमान का आनयनकर्मत्व नहीं बोधित हो सकता है, पाककर्मत्व का ही आनयनकर्मत्व बोधित हो सकेगा। इसलिए शानच् की शक्ति कर्म में ही माननी पड़ेगी। जब आपने आत्मनेपद शानच् की शक्ति कर्म में मान ली तो सभी आत्मनेपदों की शक्ति कर्म में मान लो। आत्मनेपद शानच् की शक्ति कर्म में और आत्मनेपद तङ् आदि की शक्ति कर्मत्व में यह अर्धजरतीयन्याय उचित नहीं है।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि यदि तङ् शानच् साधारण (दोनों में रहने वाले) आत्मनेपदत्व का शक्ततावच्छेदकत्व हो, तभी उस प्रकार की उक्ति सम्भव है, आप जैसा कह रहे हैं वैसा कहना सम्भव है और वैसे अगुरुभूत आत्मनेपदत्व का निर्वचन असम्भव है। पाणिनीयसङ्केतवत्त्व सम्बन्ध से आत्मनेपदवत्त्व की शक्ततावच्छेदकता का तो उक्त रीति से– कर्तृत्व में पाणिनीयसङ्केतवत्त्व सम्बन्ध से तिङ्पदवत्त्व का शक्ततावच्छेदकत्वासम्भव जैसे बतलाया गया उस रीति से– अवकाश ही नहीं है। इस कारण त आदि का तत्तद्रूप (तत्वादि) से शक्तिकल्पन आवश्यक होने के कारण लाघवात् कर्मत्व में ही शक्ति कल्पना करनी चाहिए। भाव यह है कि यदि आत्मनेपदत्व का लघुभूत निर्वचन सम्भव होता तब तो शानच् की शक्ति कर्म में मानने पर आत्मनेपद मात्र की शक्ति कर्म में मान ली जाती किन्तु ऐसे आत्मनेपदत्व का निर्वचन असम्भव है। यदि पाणिनीयसङ्केतसम्बन्ध से आत्मनेपदवत्त्व को ही आत्मनेपदत्व मानें कर्म का शक्ततावच्छेदक माने तो मुश्किल यह है कि इस प्रकार तो घटादिवाचक घटादिपदों में भी पुरुषविशेषीयसङ्केत सम्भव होने के कारण समान युक्ति से वहाँ पर भी घट का शक्ततावच्छेदक घटपदत्व को न मानकर पुरुषविशेषीय सङ्केत सम्बन्ध से पटादिपदवत्त्व आदि के शक्ततावच्छेदकत्व की पाली आ जायेगी। इसके अतिरिक्त उस पाणिनीयसङ्केत को न जानने वाले को आत्मनेपदत्वादिना शक्तिभ्रम से ही शाब्दबोध स्वीकारना पड़ेगा। इस प्रकार कर्म में आत्मनेपद की शक्ति मानने पर गौरव और कर्मत्व में शक्ति मानने पर लाघव होने के कारण कर्मत्व में ही आत्मनेपद की शक्ति माननी चाहिए। शानच् की शक्ति अवश्य धर्मी कर्म में स्वीकारनी चाहिए।

कर्मत्वञ्च 'त्यज्यते ग्रामः' 'गम्यते ग्रामः' इत्यादौ धात्वर्थतावच्छेदकीभूतसंयोगविभागादिरेव विशेष्यतया तङ्वाच्यः। 'चैत्रेण गम्यते ग्रामः' इत्यत्र तृतीयार्थस्तत्कर्तृकत्वरूपमाधेयत्वं तस्य धात्वर्थे संयोगात्मकफलावच्छिन्ने स्पन्दलक्षणे व्यापारे तस्य च जन्यतासम्बन्धेनात्मनेपदार्थसंयोगरूपफले तस्य चाश्रयतासम्बन्धेन प्रथमान्तपदोपस्थाप्यग्रामेऽन्वय इति चैत्रवृत्तिर्यः संयोगावच्छिन्नस्पन्दस्तज्जन्यसंयोगवान् ग्राम इत्याकारकः शाब्दबोधः। 'चैत्रेण त्यज्यते ग्रामः' इत्यत्र संयोगस्थाने विभागमन्तर्भाव्य

बोध उपपादनीयः।

और कर्मत्व 'त्यज्यते ग्रामः' 'गम्यते ग्रामः' इत्यादि स्थलों में धात्वर्थतावच्छेदकीभूत संयोग विभाग आदि ही हैं, जो कि विशेष्यतया तङ् से वाच्य होते हैं। 'चैत्रेण गम्यते ग्रामः' 'चैत्र के द्वारा गाँव जाया जाता है' यहाँ पर तृतीया का अर्थ है तत्कर्तृकत्व रूप आधेयत्व उसका धात्वर्थ– संयोगात्मक फल से अवच्छिन्न स्पन्दरूपी व्यापार– में, उस व्यापार का जन्यतासम्बन्ध से आत्मनेपदार्थ संयोग रूप फल में और उस फल का आश्रयतासम्बन्ध से प्रथमान्तपदोपस्थाप्य ग्राम में अन्वय होता है। इस प्रकार 'चैत्रवृत्तिर्यः संयोगावच्छिन्नस्पन्दस्तज्जन्यसंयोगवान् ग्रामः' 'चैत्रवृत्ति जो संयोगावच्छिन्न स्पन्द उससे जन्य संयोगवाला ग्राम है' ऐसा शाब्दबोध होता है। 'चैत्रेण त्यज्यते ग्रामः' 'चैत्र के द्वारा गाँव छोड़ा जाता है' यहाँ पर उपर्युक्त शाब्दबोध में संयोग की जगह पर विभाग का अन्तर्भाव करके बोध का उपपादन करना चाहिए।

कर्मप्रत्यय आख्यात विशेष आत्मनेपद की शक्ति कर्मत्व में है यह बतला चुके हैं। कर्मत्व फल ही है क्योंकि फलाश्रय को ही कर्म कहा जाता है। इस प्रकार आख्यातविशेष से संयोग विभागादि रूप फल ही उपस्थित होते हैं। धातु से फलावच्छिन्नव्यापार उपस्थित होता है। उस व्यापार में तृतीयान्तार्थ का अन्वय होता है, व्यापार का आख्यातार्थ में अन्वय होता है और आख्यातार्थ का प्रथमान्त पदोपस्थाप्य कर्म में। इस प्रकार उपर्युक्त शाब्दबोध होता है। 'चैत्रेण त्यज्यते ग्रामः' से 'चैत्रवृत्तिर्यः विभागावच्छिन्नस्पन्दस्तज्जन्यविभागवान् ग्रामः' ऐसा शाब्दबोध होता है।

अथ चैत्रनिष्ठक्रियाजन्यसंयोगविभागादेर्ग्रामादाविव चैत्रादावपि सत्त्वात् 'चैत्रेण त्यज्यते गम्यते चैत्रः' इत्यपि स्यात्, न स्याच्च 'चैत्रेण न गम्यते न त्यज्यते चैत्रः' इत्यादीति चेत् ? अत्र दीधितिकारप्रभृतयः– फलमिव तत्र क्रियान्वयिपरसमवेतत्वमपि कर्माख्यातार्थः, परत्वे च भेदरूपे प्रतियोगितया फले आश्रयतयान्वयिनः प्रथमान्तपदोपस्थाप्यस्यान्वयः–चैत्रे चैत्रान्यसमवेत-क्रियाजन्यसंयोगादिमत्त्वस्यान्वयायोग्यत्वात् तादृशसंयोगा-द्यभावस्य च तत्रान्वययोग्यत्वान्न तत्रापत्त्यनुपपत्त्योरवकाश इत्याहुः।

लेकिन चैत्रनिष्ठ क्रिया से जन्य संयोग विभाग आदि के ग्रामादि की तरह चैत्र आदि में भी रहने के कारण ('चैत्रेण त्यज्यते ग्रामः' 'चैत्रेण गम्यते ग्रामः' की तरह) 'चैत्रेण गम्यते चैत्रः' 'चैत्रेण त्यज्यते चैत्रः' ऐसा प्रयोग भी होना चाहिए और 'चैत्रेण न गम्यते चैत्रः, न त्यज्यते चैत्रः' इत्यादि प्रयोग नहीं होने चाहिए। भाव यह है कि 'चैत्रेण गम्यते चैत्रः' से क्या शाब्दबोध होगा? 'चैत्रवृत्तिर्यः संयोगावच्छिन्न स्पन्दस्तज्जन्यसंयोगवान् चैत्रः' ऐसा शाब्दबोध ही होगा। ऐसा शाब्दबोध अबाधित है। स्पन्द में चैत्रवृत्तित्व, संयोग में स्पन्दजन्यत्वं और चैत्र में संयोगाश्रयत्व विद्यमान होने के कारण अन्वयायोग्यता नहीं है। इसी प्रकार 'चैत्रेण त्यज्यते चैत्रः' ऐसा प्रयोग भी होना चाहिए। इसमें भी अन्वयायोग्यता नहीं है। इसलिए ऐसे प्रयोग भी होने चाहिए। क्यों नहीं होते हैं?

इस पर दीधितिकार प्रभृति— फल की तरह वहाँ पर परसमवेतत्व भी कर्माख्यात का अर्थ है जो कि क्रिया में अन्वित होता है, भेदरूप परत्व में प्रतियोगितासम्बन्ध से विशेषणतया फल में आश्रयतासम्बन्ध से विशेष्यतया अन्वित होने वाले प्रथमान्त पदोपस्थाप्य का अन्वय होता है। चैत्र में चैत्रान्यसमवेत क्रियाजन्य संयोगादिमत्त्व के अन्वयायोग्य होने के कारण और चैत्रान्यसमवेतक्रियाजन्य संयोगाद्यभाव के अन्वययोग्य होने के कारण वहाँ पर **'चैत्रेण गम्यते चैत्रः'** आदि में आपत्ति और अनुपपत्ति का अवकाश नहीं है– ऐसा कहते हैं। दीधितिकार फल के अलावा परसमवेतत्व को भी कर्माख्यात का अर्थ मानते हैं। इस प्रकार कर्माख्यात के अर्थ दो हुए फल और परसमवेतत्व। परसमवेतत्व पद का अर्थ हुआ भेदाश्रयसमवेतत्व। इसमें भेद में प्रतियोगिता सम्बन्ध से प्रथमान्तपदोपस्थाप्य का अन्वय होता है। तथा फल का आश्रयत्व सम्बन्ध से प्रथमान्त पदोपस्थाप्य में अन्वय होता है। इस प्रकार **'चैत्रेण ग्रामो गम्यते'** से बोध होता है- **'चैत्र वृत्तिर्यः ग्रामभेदाश्रयसमवेतः संयोगावच्छिन्नस्पन्दस्तज्जन्यसंयोगवान् ग्रामः'** 'चैत्र वृत्ति जो ग्रामभेदाश्रयसमवेत संयोगावच्छिन्नस्पन्द उससे जन्य संयोग वाला ग्राम है' इस स्थिति में **'चैत्रेण गम्यते चैत्रः'** से बोध होगा **'चैत्रवृत्तिर्यः चैत्रभेदाश्रयसमवेतः संयोगावच्छिन्न-स्पन्दस्तज्जन्यसंयोगवान् चैत्रः'** 'चैत्रवृत्ति जो चैत्रभेदाश्रय समवेत संयोगावच्छिन्न स्पन्द उससे जन्य संयोगवाला चैत्र है' किन्तु यह तो बाधितविषयक है चैत्र वृत्ति संयोगावच्छिन्नस्पन्द चैत्रभेदाश्रयसमवेत नहीं हो सकता है। इसलिए यह बाधितार्थक हो जायेगा, फलतः ऐसा प्रयोग नहीं होता है। इसी प्रकार चैत्रवृत्ति विभागावच्छिन्नस्पन्द के भी चैत्रभेदाश्रयसमवेत न होने के कारण बाधितार्थक होने से **'चैत्रेण त्यज्यते चैत्रः'** प्रयोग नहीं होता है। चैत्रवृत्ति चैत्रभेदाश्रयसमवेत संयोगावच्छिन्नस्पन्द से जन्य संयोग का चैत्र में अभाव होने के कारण उसको बोधित करने के लिए **'चैत्रेण न गम्यते चैत्रः'** ऐसे प्रयोग की अनुपपत्ति नहीं है। इसी प्रकार **'चैत्रेण न त्यज्यते चैत्रः'** प्रयोग की भी अनुपपत्ति नहीं है।

तत्रेदं चिन्तयन्ति— प्रथमान्तपदोपस्थाप्यकर्मणोऽन्वयितावच्छेदकावच्छिन्नत्वाविशेषितप्रतियोगितया भेदांशेऽन्वयोपगमेऽपि चैत्रेऽपि चैत्रस्य द्वित्वादिना भेदसम्भवेन तत्समवेतक्रियायां परसमवेतत्वाक्षतेरुक्तदोषोद्धारासम्भवः। अन्वयितावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगितया तत्र तद्भानस्वीकारे 'चैत्रेण द्रव्यं गम्यते' इत्यादावनुपपत्तिः— द्रव्यत्वावच्छिन्नभिन्नसमवेतत्वादेः क्रियादौ बाधात् ।

यहाँ पर ऐसा सोचते हैं– प्रथमान्तपदोपस्थाप्य कर्म का अन्वयितावच्छेदकावच्छिन्नत्व से अविशेषित प्रतियोगिता सम्बन्ध से भेदांश में अन्वय स्वीकारने पर चैत्र में भी चैत्र का द्वित्वादिना भेद सम्भव होने के कारण चैत्रसमवेत क्रिया में परसमवेतत्व अक्षत होने से उक्त दोष से- **'चैत्रेण गम्यते चैत्रः'** प्रयोग की आपत्ति से- उद्धार असम्भव है। अन्वयितावच्छेदकावच्छिन्न प्रतियोगिता सम्बन्ध से भेदांश में प्रथमान्तपदोपस्थाप्य कर्म का अन्वय स्वीकार करने पर **'चैत्रेण द्रव्यं गम्यते'** इत्यादि स्थलों में अनुपपत्ति होगी क्योंकि द्रव्यत्वावच्छिन्न भिन्न समवेतत्व आदि का क्रियादि में बाध है।

यहाँ पर गदाधर दीधितिकार के मत में दोष उठा रहे हैं। दीधितिकार ने आख्यातार्थ परसमवेतत्व को मानकर उसका क्रिया में अन्वय स्वीकार किया है। परसमवेतत्व का अर्थ भेदाश्रयसमवेतत्व है। इसमें भेद में प्रथमान्तपदोपस्थाप्य कर्म का अन्वय प्रतियोगिता सम्बन्ध से होता है। ऐसा स्वीकार रहे हैं। गदाधर का प्रश्न है कि प्रथमान्तपदोपस्थाप्य कर्म का सामान्यतः प्रतियोगिता सम्बन्ध से भेद में अन्वय होता है? या अन्वयितावच्छेदक से अवच्छिन्न प्रतियोगिता सम्बन्ध से अन्वय होता है? यदि सामान्यतः प्रतियोगिता सम्बन्ध से अन्वय होता है तो '**चैत्रेण चैत्रो गम्यते** से शाब्दबोध होगा '**चैत्रवृत्तिः चैत्रप्रतियोगिक भेदाश्रयसमवेतः यः संयोगावच्छिन्नस्पन्दस्तज्जन्यसंयोगवान् चैत्रः**' 'चैत्रवृत्ति जो चैत्रप्रतियोगिकभेदाश्रयसमवेत संयोगावच्छिन्नस्पन्द उससे जन्य संयोगवाला चैत्र है।' चैत्रवृत्ति भी स्पन्द चैत्रप्रतियोगिकभेदाश्रय समवेत है क्योंकि चैत्रप्रतियोगिक भेद '**चैत्र घटोभयं न**' यह भेद भी है। यह भेद चैत्र में रहता है, इस भेद का आश्रय चैत्र, उसमें समवेत क्रिया संयोगावच्छिन्नस्पन्दात्मक क्रिया, उससे जन्य संयोगवाला चैत्र है। इस प्रकार शाब्दबोध के अबधित होने के कारण ऐसा प्रयोग होना चाहिए।

यदि अन्वयितावच्छेदकावच्छिन्न प्रतियोगितासम्बन्ध से भेद में प्रथमान्तपदोपस्थाप्य कर्म का अन्वय होता है तो इस वाक्य से '**चैत्रवृत्तिः चैत्रत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक भेदाश्रयसमवेतः यः संयोगावच्छिन्नस्पन्दस्तज्जन्यसंयोगवान् ग्रामः**' 'चैत्रवृत्ति चैत्रत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदाश्रयसमवेत जो संयोगावच्छिन्नस्पन्द उससे जन्य संयोग वाला ग्राम है' ऐसा शाब्दबोध बोगा। चैत्रवृत्ति स्पन्द चैत्रत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक भेदाश्रयसमवेत नहीं हो सकता है। इसलिए शाब्दबोध के बाधितार्थक होने के कारण ऐसा प्रयोग '**चैत्रेण गम्यते चैत्रः**' नहीं होता है, किन्तु मुश्किल आयेगी '**चैत्रः द्रव्यं गच्छति**' यहाँ पर। यहाँ पर शाब्दबोध होना चाहिए '**चैत्रवृत्तिः द्रव्यत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक भेदाश्रयसमवेतः यः संयोगावच्छिन्नस्पन्दस्तज्जन्यसंयोगवद् द्रव्यम्**' 'चैत्रवृत्ति द्रव्यत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदाश्रयसमवेत जो संयोगावच्छिन्नस्पन्द उससे जन्य संयोग वाला द्रव्य है'। यह शाब्दबोध तभी सम्भव है यदि चैत्रवृत्ति स्पन्द द्रव्यत्वावच्छिन्न प्रतियोगिताकभेदाश्रय-समवेत हो। किन्तु चैत्रवृत्ति स्पन्द तो द्रव्यसमवेत ही है क्योंकि चैत्र भी द्रव्य ही है। इस कारण इस शाब्दबोध के बाधितविषयक होने के कारण '**चैत्रो द्रव्यं गम्यते**' ऐसा प्रयोग नहीं हो सकेगा, इस प्रयोग की अनुपपत्ति होगी।

न च तत्र द्रव्यपदं लक्षणया चैत्रान्यद्रव्यपरमिति वाच्यम्; 'मल्लेन गम्यते मल्लः' इत्यादौ मल्लपदस्य मल्लान्यमल्लपरत्वासम्भवात्, मल्लान्यसमवेतमल्लवृत्तिक्रियाया अप्रसिद्ध्याऽनुपपत्तितादवस्थ्यात्, अननुगतमल्लगततत्तद्व्यक्तित्वोपस्थित्यनैयत्यात्, कर्मव्यक्तिभिन्नमल्लत्वेन लक्षणाग्रहस्य तादृशवाक्यजन्यधीपूर्वं नियमतोऽसम्भवात् ।

यदि कहो कि वहाँ- **चैत्रेण द्रव्यं गम्यते**' में- द्रव्यपद लक्षणा से चैत्रान्यद्रव्य परक है। यदि द्रव्य पद को चैत्रान्यद्रव्यपरक मान लें तो अन्वयितावच्छेदक चैत्रान्यद्रव्यत्व होगा, अतः शाब्दबोध में चैत्रवृत्ति संयोगावच्छिन्नस्पन्द में चैत्रान्यद्रव्यत्वावच्छिन्न प्रतियोगिताक-

भेदाश्रयसमवेतत्व भासेगा और चैत्रवृत्ति संयोगावच्छिन्नस्पन्द में चैत्रान्यद्रव्यत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदाश्रयसमवेतत्व है। अतः उसके बोधित होने पर शाब्दबोध अबाधितविषयक होने के कारण सम्भव है। अतः उक्त प्रयोग की अनुपपत्ति नहीं है।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि **'मल्लेन गम्यते मल्लः'** 'मल्ल के द्वारा मल्ल (के प्रति) जाया जाता है' इत्यादि स्थलों में मल्लपद का मल्लान्यपरत्व असम्भव होने के कारण मल्लान्यसमवेत मल्लवृत्ति क्रिया की अप्रसिद्धि होने के कारण अनुपपत्ति तादवस्थ्य है। अननुगतमल्लवृत्ति तत्तद्व्यक्तित्वोपस्थिति के अनियत होने के कारण कर्मव्यक्तिभिन्न-मल्लत्वेन लक्षणाग्रह तादृशवाक्य से जन्य शाब्दबोध के पूर्व में नियम से होना असम्भव है।

भाव यह है कि यदि आप **'द्रव्यं गम्यते चैत्रेण'** में द्रव्य पद से लक्षणा के द्वारा चैत्रान्यद्रव्य का बोध स्वीकार करें तो उक्त स्थलीय प्रयोग की अनुपपत्ति तो न रहेगी किन्तु **'मल्लो मल्लेन गम्यते'** इत्यादि स्थलों में शाब्दबोधानुपपत्ति से प्रयोगानुपपत्ति फिर भी रहेगी। क्योंकि वहाँ पर मल्ल वृत्ति संयोगानुकूल स्पन्द में मल्लत्वावच्छिन्न प्रतियोगिताक भेदाश्रयसमवेतत्व बाधित है। उपर्युक्त रीति से लक्षणा के आधार पर मल्ल पद को आप मल्लान्यमल्लपरक तो मान नहीं सकते हैं क्योंकि मल्ल तन्मल्ल से अन्य तो हो सकता है मल्ल से अन्य नहीं हो सकता है। इस प्रकार मल्लवृत्ति मल्लान्यसमवेत क्रिया ही अप्रसिद्ध है। आपके अनुसार इस वाक्य से शाब्दबोध में- 'मल्लवृत्ति मल्लान्यसमवेत क्रिया से जन्य संयोगाश्रयत्व' ही मल्ल में बोधित हो सकता है। जो कि बाधित है। यदि आप लक्षणा से कर्मभूत तन्मल्लव्यक्ति से भिन्न मल्लपरक तृतीयान्तपदोपस्थाप्य मल्लपद को मानना चाहें तो यह भी नहीं सम्भव है क्योंकि वैसे वाक्य से जन्य शाब्दबोध से पूर्व कर्मव्यक्तिभिन्न-मल्लत्वेन तृतीयान्त मल्लपद का लक्षणाग्रह होने के लिए आवश्यक है कि नियम से अननुगत मल्लगत तत्तद्व्यक्तित्वोपस्थिति हो, किन्तु अननुगत मल्लगत तत्तद्व्यक्तित्व की उपस्थिति अनियत है। नियम से अननुगत मल्लगत तत्तद्व्यक्तित्व की उपस्थिति नहीं हो सकती है। इसलिए यह भी कहना सम्भव नहीं है।

न च फलविशेष्यव्यक्तीनां तत्तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नप्रतियोगितासम्बन्धेन परत्वेऽन्वयात् सम्बन्धोपस्थितेश्चानपेक्षणान्नानुपपत्तिरिति वाच्यम्; संसर्ग तात्पर्यज्ञानानुरोधेन तदुपस्थितेरपि शाब्दबुद्धावपेक्षणीयत्वात्। 'तद्व्यक्त्या तद्व्यक्तिर्न गम्यते' इत्यादावभावकोटिप्रविष्टतत्तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नभिन्न समवेततद्व्यक्तिसमवेतक्रियाया अप्रसिद्धेः।

यदि कहो कि फलविशेष्य व्यक्तियों का तत्तद्व्यक्तित्वावच्छिन्न प्रतियोगिता सम्बन्ध से परत्व में अन्वय होने के कारण और शाब्दबोध में सम्बन्धोपस्थिति की अपेक्षा न होने के कारण अनुपपत्ति नहीं है। भाव यह है कि केवल प्रतियोगिता सम्बन्ध से परत्व में (भेद में) हम प्रथमान्त पदोपस्थाप्य का अन्वय नहीं करेंगे अपितु तत्तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नप्रतियोगिता सम्बन्ध से अन्वय करेंगे। ऐसा कहने पर कहीं पर कोई समस्या नहीं रह जायेगी क्योंकि **'चैत्रेण द्रव्यं गम्यते'** यहाँ पर भी द्रव्य का तत्तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नप्रतियोगिता सम्बन्ध से भेद में अन्वय हो सकता है तथा तादृशभेदाश्रय चैत्रसमवेत स्पन्दक्रिया से जन्य संयोग

वाला द्रव्य है। अतः शाब्दबोध अबाधित है। इसी प्रकार **'मल्लो मल्लेन गम्यते'** आदि स्थलों में भी अन्वबोध अबाधित है क्योंकि मल्ल में मल्ल से तत्तद्व्यक्तित्वावच्छिन्न प्रतियोगिता सम्बन्ध से विशिष्ट भेद मौज़ूद है। तत्तद्व्यक्तित्व के सम्बन्ध कुक्षि में प्रविष्ट होने के कारण उसकी उपस्थिति शाब्दबोध के लिए अपेक्षित नहीं है।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि संसर्गतात्पर्यज्ञान के अनुरोध से तत्तद्व्यक्तित्वेन तद्व्यक्तियों की उपस्थिति भी शाब्दबुद्धि में अपेक्षणीय होती है। (भाव यह है कि आपका कहना तो तब सही होता यदि शाब्दबोध के लिए संसर्गकोटिप्रविष्ट पदार्थों की उपस्थिति अपेक्षित नहीं होती, किन्तु संसर्ग का भी तात्पर्यज्ञान अपेक्षित होने के कारण संसर्ग की पदजन्य उपस्थिति के अनपेक्षित होने पर भी उपस्थिति तो अपेक्षित ही होती है) **'तद्व्यक्त्या तद्व्यक्तिर्नगम्यते'** 'उस व्यक्ति से वह व्यक्ति नहीं जाया जाता है' इत्यादि स्थलों में अभावप्रतियोगिकोटिप्रविष्ट तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नभिन्नसमवेत तद्व्यक्तिवृत्तिक्रिया से जन्य संयोग का अभाव प्रतीत होना चाहिए। किन्तु इसके लिए आवश्यक है कि तद्व्यक्तिभिन्नसमवेत तद्व्यक्तिवृत्ति क्रिया और उससे जन्य संयोग की प्रसिद्धि हो क्योंकि अप्रसिद्धव्यक्ति का अभाव नहीं स्वीकृत है। परन्तु ऐसी क्रिया और क्रिया से जन्य संयोग ही अप्रसिद्ध है।

इस प्रकार दीधितिकार के मत में यह अनुपपत्तियाँ हैं। प्रथम अनुपपत्ति तो यह है कि न तो अन्वयितावच्छेदकावच्छिन्नत्वाविशेषित प्रतियोगितासम्बंन्ध से ही प्रथमान्त कर्म का भेदांश में अन्वय हो सकता है, न तो अन्वयितावच्छेदकावच्छिन्न प्रतियोगितासम्बन्ध से ही अन्वय हो सकता है। दूसरी यह कि **'चैत्रेण चैत्रो न गम्यते'** इत्यादि स्थलों में चैत्रवृत्ति चैत्रान्यसमवेत संयोगाद्यवच्छिन्नस्पन्दादि की अप्रसिद्धि होने के कारण उस स्पन्द से जन्य संयोग का अभाव चैत्रादि में नहीं प्रत्याय्यित हो सकता है।

ये तु फलं भेदश्च कर्मप्रत्ययार्थः। फले जन्यतासम्बन्धेन भेद च स्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धेन क्रियाया अन्वयः, भेदफलयोश्च कर्मण्याश्रयतासम्बन्धेनान्वयः, चैत्रसमवेतक्रियावच्छिन्नभेदस्य चैत्रो नाश्रय इति तादृशक्रियाजन्यफलाश्रयत्वेऽपि तस्य 'चैत्रेण चैत्रो गम्यते' इति न प्रयोगः। 'मल्लो मल्लेन गम्यते' इत्यादेरेकमल्लादिनिष्ठक्रियावच्छिन्न भेदसहितस्य तज्जन्यफलस्य मल्लान्तरे सत्त्वान्नानुपपत्तिरिति ब्रुवते। तन्मतेऽपि 'चैत्रेण चैत्रो न गम्यते' इत्यादेरनुपपत्तिर्दुर्वारैव चैत्रे चैत्रसमवेतक्रियावच्छिन्न भेदाभावसत्त्वेऽपि तादृशक्रियाजन्यफलाभावस्य बाधात् ।

जो लोग– फल और भेद कर्म प्रत्यय का अर्थ है, फल में जन्यता सम्बन्ध से और भेद में स्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्व सम्बन्ध से क्रिया का अन्वय होता है, भेद और फल का आश्रयत्व सम्बन्ध से कर्म में अन्वय होता है। चैत्रसमवेतक्रियावच्छिन्न भेद का चैत्र आश्रय नहीं है, इसलिए उसके तादृशक्रियाजन्य फल का आश्रय होने पर भी **'चैत्रेण चैत्रो गम्यते'** ऐसा प्रयोग नहीं होता है। **'मल्लो मल्लेन गम्यते'** इत्यादि के एक मल्लादिनिष्ठ क्रिया से अवच्छिन्न भेद से सहित तज्जन्य फल के मल्लान्तर में रहने के कारण शाब्दबोध

की अनुपपत्ति नहीं है– ऐसा कहते हैं। उनके मत में भी **'चैत्रेण चैत्रो न गम्यते'** इत्यादि की अनुपपत्ति दुर्वार ही है क्योंकि चैत्र में चैत्रसमवेतक्रियावच्छिन्न भेद का अभाव रहने पर भी तादृशक्रियाजन्यफलाभाव का बाध है।

दीधितिकार के मत में उपदर्शित दोष होने के कारण परसमवेतत्व को कर्माख्यातार्थ नहीं माना जा सकता है। कुछ अन्य लोग इसके विपरीत सम्मति देते हुए फल के साथ-साथ भेद को कर्माख्यात का अर्थ मानते हैं। क्रिया का फल में जन्यता सम्बन्ध से और भेद में स्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्व सम्बन्ध से अन्वय होता है। भेद और फल दोनों ही कर्माख्यातार्थों का प्रथमान्तपदोपस्थाप्य कर्म में अन्वय होता है। इस प्रकार **'चैत्रेण ग्रामो गम्यते'** इत्यादि से **'चैत्रवृत्तिर्यःसंयोगावच्छिन्नस्पंदः तज्जन्यफलाश्रयः तदवच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदाश्रयो ग्रामः'** 'चैत्रवृत्ति संयोगावच्छिन्नस्पन्द से जन्य फल और तादृशस्पन्दावच्छिन्नप्रतियोगिताक भेद का आश्रय ग्राम है' ऐसा शाब्दबोध होगा। **'चैत्रेण चैत्रो गम्यते'** से शाब्दबोध अपेक्षित होगा **'चैत्रवृत्तिर्यः संयोगावच्छिन्नस्पन्दस्तज्जन्यफलाश्रयः तदवच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदाश्रयश्चैत्रः**, किन्तु चैत्रवृत्ति संयोगावच्छिन्नस्पन्द से अवच्छिन्न प्रतियोगिताक 'संयोगावच्छिन्नस्पन्दवान् न भेद' भेद का आश्रय चैत्र के न होने के कारण ऐसा शाब्दबोध बाधित, अतः ऐसा प्रयोग नहीं हो सकता है। **'मल्लो मल्लेन गम्यते'** इत्यादि से मल्ल में मल्लवृत्ति संयोगावच्छिन्नस्पन्द से जन्य फलाश्रयत्व और 'तादृशस्पन्दवान् न' इस भेद का आश्रयत्व बोधित होता है। मल्लान्तर (मल्ल) में एकमल्लनिष्ठ क्रियावच्छिन्न भेद और उस क्रिया से जन्य फल दोनों ही होने के कारण शाब्दबोध अबाधित है। अतः ऐसा प्रयोग होता है।

इस मत में गदाधर दोष उठा रहे हैं कि **'चैत्रेण चैत्रो न गम्यते'** इत्यादि प्रयोगों की इस मत में अनुपपत्ति है। क्योंकि चैत्र में चैत्रसमवेतक्रियाजन्य फल का अभाव नहीं है और इससे चैत्र में चैत्रसमवेतक्रियाजन्यफल का अभाव बोधित होता है।

न च फलाभावो नञा तत्र न प्रत्यायतेऽपितु भेदाभाव एव कर्मणीति वाच्यम्; यदा चैत्रेण ग्रामो न गम्यते तदापि तादृशप्रयोगानुपपत्तेः– तादृशभेदाभावस्य ग्रामे बाधात् ।

यदि कहो कि वहाँ **'चैत्रो चैत्रेण न गम्यते'** में फल का अभाव नञ् के द्वारा नहीं प्रत्याय्यित होता है, कर्म में- प्रथमान्तपदोपस्थाप्य चैत्र में- भेद का अभाव ही प्रत्याय्यित होता है। प्रथमान्तपदोपस्थाप्य चैत्र में चैत्रवृत्ति संयोगावच्छिन्नस्पन्द से जन्य फल संयोग के रहने पर भी 'संयोगावच्छिन्नस्पन्दवान् न' इस भेद के चैत्र मे न रहने के कारण क्रियावच्छिन्न भेद के अभाव का प्रत्यायन तो चैत्र में सम्भव ही है।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि जब चैत्र के द्वारा गाँव नहीं जाया जाता है तब भी **'चैत्रेण ग्रामो न गम्यते'** प्रयोग की अनुपपत्ति होगी क्योंकि क्रियावच्छिन्न भेद का अभाव तो गाँव में बाधित है। भाव यह है कि **'चैत्रो चैत्रेण न गम्यते'** और **'चैत्रेण ग्रामो न गम्यते'** ये दोनों ही प्रयोग एक जैसे हैं। यदि प्रथम में नञ् के द्वारा प्रथमान्त पदोपस्थाप्य में क्रियावच्छिन्न भेदाभाव बाधित होता है तो द्वितीय में भी नञ् के द्वारा

प्रथमान्तपदोपस्थाप्य में क्रियावच्छिन्न भेद का अभाव ही बोधित होना चाहिए। जब चैत्र ग्राम नहीं जा रहा होता है तब **'चैत्रेण ग्रामो न गम्यते'** प्रयोग होता है। किन्तु आपके अनुसार न हो सकेगा क्योंकि आपके अनुसार इससे प्रथमान्तपदोपस्थाप्य ग्राम में 'चैत्रवृत्ति संयोगावच्छिन्न-स्पन्दवान् न' ऐसे भेद का अभाव बोधित होगा क्योंकि **'चैत्रेण चैत्रः न गम्यते'** यहाँ पर प्रथमान्तपदोपस्थाप्य चैत्र में 'चैत्रवृत्तिस्पन्दवान् न' इस भेद का अभाव ही आपके अनुसार बोधित हो रहा है किन्तु ग्राम में तो उक्त भेद ही है। उस भेद का अभाव नहीं है। इसलिए **'चैत्रेण ग्रामो न गम्यते'** यहाँ पर प्रथमान्तपदोपस्थाप्य ग्राम में चैत्र वृत्तिसंयोगावच्छिन्न-स्पन्दजन्य संयोगात्मक फल का अभाव ही प्रत्याय्यित होता है यह मानना पड़ेगा। तुल्ययुक्ति से **'चैत्रेण चैत्रो न गम्यते'** में भी उसी का प्रत्यायन स्वीकारना होगा और प्रथमान्तपदोपस्थाप्य चैत्र में चैत्रवृत्तिसंयोगावच्छिन्न स्पन्द से जन्य संयोग का अभाव बाधित है। अतः इस प्रयोग की अनुपपत्ति होगी।

न च भेदस्य सामानाधिकरण्यसम्बन्धेन फलेऽन्वयस्तादृशसम्बन्धेन क्रियावच्छिन्नभेदविशिष्टस्य क्रियाजन्यफलस्यैव चाभावो नञा कर्मणि प्रत्याय्यते इति न दोषः– विशिष्टाभावस्योभयत्र सत्त्वादिति वाच्यम्; एव मपि मल्लेन यत्रापरमल्लो न गम्यतेऽपितु ग्रामादिरेव तत्र ग्रामादिगन्तरि मल्ले मल्लान्तरनिष्ठक्रियावच्छिन्नभेदसहितस्य स्वात्मकमल्लनिष्ठक्रियाजन्य-ग्रामादिसंयोगस्य सत्त्वेन विशिष्टाभावबाधात् 'मल्लेन मल्लो न गम्यते' इत्यादेरनुपपत्तिः।

यदि कहो कि भेद का सामानाधिकरण्य सम्बन्ध से फल में अन्वय होता है और तादृशसम्बन्ध से क्रियावच्छिन्न भेद से विशिष्ट क्रियाजन्य फल का ही अभाव नञ् के द्वारा कर्म में प्रत्याय्यित होता है, इस कारण कोई दोष नहीं है क्योंकि विशिष्टाभाव दोनों स्थलों में है। अभिप्राय यह है कि भेद और फल दोनों का आश्रयत्व सम्बन्ध से प्रथमान्तपदोपस्थाप्य कर्म में अन्वय नहीं होता है। बल्कि भेद का सामानाधिकरण्य सम्बन्ध से फल में और फल का आश्रयत्व सम्बन्ध से कर्म में अन्वय होता है। **'चैत्रेण ग्रामो गम्यते'** से अब शाब्द बोध होता है **'चैत्रवृत्तिर्यः संयोगावच्छिन्नस्पन्दः तदवच्छिन्नप्रतियोगिताकभेद <u>समानाधिकरण</u>तज्<u>जन्यसंयोग</u>वान्<u> ग्रामः'</u>** 'चैत्रवृत्ति जो संयोगावच्छिन्नस्पन्द तदवच्छिन्न प्रतियोगिताक भेद 'संयोगावच्छिन्नस्पन्दवान् न' भेद के समानाधिकरण और संयोगावच्छिन्नस्पन्द से जन्य संयोग वाला ग्राम है'। **'चैत्रेण चैत्रो न गंम्यते'** में भी चैत्र में चैत्रवृत्ति संयोगावच्छिन्नस्पन्दावच्छिन्नप्रतियोगिताक भेदसमानाधिकरण तादृशस्पन्दजन्य संयोग का अभाव बोधित होता है। चैत्र में तादृशस्पन्दजन्य संयोग के रहने पर भी उस संयोग के स्पन्दावच्छिन्नप्रतियोगिताक भेद समानाधिकरण न होने के कारण भेदसमानाधिकरण संयोग का अभाव चैत्र में बोधित होने में कोई बाधक नहीं है। **'चैत्रेण ग्रामो न गम्यते'** में ग्राम में तादृशसंयोग न होने के कारण तादृश संयोगाभाव बोधित होने में कोई बाधक नहीं है।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि इस प्रकार भी जहाँ पर मल्ल के द्वारा अपर

मल्ल नहीं जाया जाता बल्कि गाँव आदि जाया जाता है, वहाँ पर गाँव आदि जाने वाले मल्ल में मल्लान्तरनिष्ठक्रिया से अवच्छिन्न भेद भी है और उस भेद के साथ स्वात्मक मल्लनिष्ठ क्रिया से जन्य संयोग (ग्रामादि संयोग) भी रहने के कारण विशिष्टाभाव का बाध होने से '**मल्लो मल्लेन न गम्यते**' इत्यादि प्रयोगों की अनुपपत्ति होगी। भाव यह है कि इस वाक्य से आपके अनुसार क्या शाब्दबोध होगा? '**मल्लवृत्तिर्यः संयोगावच्छिन्नस्पन्दस्तदवच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदसमानाधिकरणतज्जन्यसंयोगाभाववान् मल्लः**' इसके अनुसार मल्ल में संयोगावच्छिन्नस्पन्दावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदसमानाधिकरण और तादृश-स्पन्दजन्य संयोग का अभाव भासना चाहिए। मुश्किल ये है कि मल्ल में रहने वाला ग्रामादिसंयोग 'मल्लवृत्ति (मल्लान्तरवृत्ति) स्पन्दवान् न' इस भेद का समानाधिकरण ही है। इस प्रकार तादृशभेद समानाधिकरण संयोग के मल्ल में वृत्ति होने के कारण वैसे संयोग का अभाव मल्ल में नहीं बोधित हो सकता है। अतः शाब्दबोध असम्भव होने से उक्त प्रयोग न हो सकेगा।

यदि च फलमेवाख्यातार्थस्तस्याश्रयत्वस्वानुकूलक्रियावच्छिन्नभेदवत्त्वोभयसम्बन्धेन कर्मण्यन्वयः नञ्समभिव्याहारे च तदुभयसम्बन्धावच्छिन्नक्रियाजन्यफलाभाव एव तत्रान्वेतीत्युच्यते? तदापि यत्र चैत्रमैत्रयोरुभयकर्मजसंयोगस्तत्र चैत्रनिष्ठतादृशसंयोगस्य चैत्र आश्रयत्वस्वानुकूलक्रियावच्छिन्नभेदवत्त्वोभयसम्बन्धेन सत्त्वात् 'चैत्रो न गम्यते' इत्यस्यानुपपत्तिः, 'चैत्रेण चैत्रो गम्यते' इत्यापत्तिश्च।

और यदि फल ही आख्यातार्थ है (परसमवेतत्व या भेद नहीं) उस फल का आश्रयत्व स्वानुकूलक्रियावच्छिन्नभेदवत्त्व इन दोनों सम्बन्धों से कर्म में अन्वय होता है। नञ्समभिव्याहार होने पर उक्त उभय सम्बन्धों से अवच्छिन्न प्रतियोगिताक क्रिया जन्य फल का अभाव ही वहाँ पर प्रथमान्तपदोपस्थाप्य कर्म में अन्वित होता है– ऐसा कहते हैं। ऐसा कहने पर '**चैत्रेण ग्रामो गम्यते**' इत्यादि से '**चैत्रवृत्तिर्यः संयोगावच्छिन्नस्पन्द आश्रयत्वस्वानुकूलक्रियावच्छिन्नभेदवत्त्वोभयसम्बन्धेन तज्जन्यसंयोगवान् ग्रामः**' 'चैत्र वृत्ति जो संयोगावच्छिन्न स्पन्द, आश्रयत्व स्वानुकूलक्रियावच्छिन्नभेदवत्त्वोभय सम्बन्धों से तादृशस्पन्दजन्य संयोग वाला ग्राम है' चैत्र के आश्रयत्व सम्बन्ध से संयोगवान होने पर भी स्वानुकूलक्रियावच्छिन्नभेदवत्त्व सम्बन्ध से संयोगवान् न होने से '**चैत्रश्चैत्रेण गम्यते**' प्रयोग नहीं होता और '**चैत्रश्चैत्रेण न गम्यते**' प्रयोग होता है। ये दोष वारित किये जा सकते हैं।

तो भी जहाँ पर चैत्र मैत्र दोनों का उभयकर्मज (दोनों की क्रिया से जन्य) संयोग हुआ वहाँ पर चैत्रनिष्ठ उभयकर्मज संयोग के चैत्र में आश्रयत्व स्वानुकूलक्रियावच्छिन्न भेदवत्त्व इन दोनों ही सम्बन्धों से रहने के कारण '**चैत्रेण चैत्रो न गम्यते**' इसकी अनुपपत्ति है और '**चैत्रेण चैत्रो गम्यते**' की आपत्ति है। क्योंकि '**चैत्रेण चैत्रो गम्यते**' से चैत्र में चैत्रवृत्ति संयोगावच्छिन्नस्पन्द से जन्य संयोग आश्रयत्व स्वानुकूलक्रियावच्छिन्न

भेदवत्त्व सम्बन्ध से भासेगा। आश्रयत्व सम्बन्ध से चैत्र में संयोग के रहने में तो कोई शंका ही नही है। स्वानुकूल क्रियावच्छिन्न भेदवत्त्व सम्बन्ध से भी चैत्र में संयोग है क्योंकि स्व माने संयोग उससे अनुकूल क्रिया मैत्रक्रिया तद्वान् न ऐसा भेद चैत्र में है। इसलिए 'चैत्र श्चैत्रेण गम्यते' प्रयोग की आपत्ति है। इसी कारण 'चैत्रेण चैत्रो न गम्यते' की भी अनुपपत्ति है।

अत्रोच्यते— भेदः फलञ्च कर्माख्यातार्थः, स्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्व सम्बन्धेन चैत्रादिनिष्ठक्रियाविशेषितभेदस्य स्वसामानाधिकरण्यस्वप्रति-योगितावच्छेदकजन्यत्वोभयसम्बन्धेन फलेऽन्वयः। विशिष्टफलस्य नञसमभिव्याहारे विशिष्टफलाभावस्य नञ्समभिव्याहारे च कर्मण्यन्वयः।

यहाँ पर कहा जाता है— भेद और फल कर्माख्यात के अर्थ हैं। चैत्रादिनिष्ठ क्रिया से स्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्व सम्बन्ध से विशेषित भेद का फल में स्वसामानाधिकरण्य स्वप्रतियोगितावच्छेदकजन्यत्व उभयसम्बन्ध से अन्वय होता है। नञ् असमभिव्याहार होने पर विशिष्ट फल का और नञसमभिव्याहार होने पर विशिष्टफलाभाव का कर्म में अन्वय हुआ करता है।

गदाधर ने यहाँ पर अपना सिद्धान्त बतलाया है कि भेद और फल आख्यातार्थ हैं। क्रिया का भेद में स्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्व सम्बन्ध से और भेद का स्वसामानाधिकरण्य स्वप्रतियोगितावच्छेदकजन्यत्व उभयसम्बन्ध से फल में अन्वय होता हैं। इस प्रकार 'चैत्रेण ग्रामो गम्यते' से '**चैत्रवृत्तिक्रियावच्छिन्नप्रतियोगिताको यो भेदः (चैत्रवृत्तिक्रियावान् न इत्याकारकः भेदः) तत्समानाधिकरणः तत्प्रतियोगितावच्छेदकीभूतक्रियाजन्यश्च यः संयोगः तदाश्रयो ग्रामः**' 'चैत्रवृत्ति क्रियावच्छिन्न प्रतियोगिताक भेद समानाधिकरण और तादृश भेद प्रतियोगितावच्छेदकीभूत क्रिया से जन्य संयोग का आश्रय है ग्राम' ऐसा बोध होता है। 'चैत्रवृत्ति क्रियावान् न' यह भेद चैत्रवृत्ति क्रियावच्छिन्न प्रतियोगिताक है क्योंकि इसका प्रतियोगी चैत्रवृत्तिक्रियावान् और प्रतियोगितावच्छेदक चैत्रवृत्तिक्रिया है। ग्राम में चैत्र संयोग भी है और यह भेद भी, इस कारण इस भेद से समानाधिकरण ग्रामवृत्ति संयोग हुआ, साथ ही वह संयोग इसकी प्रतियोगितावच्छेदकीभूत चैत्र क्रिया से भी जन्य है। इस कारण स्वसामानाधिकरण्य और स्वप्रतियोगितावच्छेदक क्रियाजन्यत्व दोनों ही सम्बन्धों से संयोग भेद से विशिष्ट है और वह संयोग ग्राम में है। नञ् से घटित इसी वाक्य से तादृश संयोग का ग्राम में अभाव प्रत्यायित होता है।

चैत्रमैत्रयोरुभयकर्मजसंयोगस्थले चैत्रवृत्तिक्रियावच्छिन्नभेदस्य चैत्रेऽसत्त्वेन विशिष्टफलाभावोऽक्षतः। यत्र मल्लेन ग्रामो गम्यते न तु मल्लान्तरं तत्र मल्लनिष्ठग्रामसंयोगे मल्लान्तरनिष्ठक्रियावच्छिन्नभेदसामानाधिकरण्यस्य तन्मल्लान्तर्भावेन सत्त्वेऽपि तादृशभेदप्रतियोगितावच्छेदकमल्लान्तरनिष्ठ क्रियाजन्यत्वस्यासत्त्वात् तद्घटितोभयसम्बन्धेन मल्लनिष्ठक्रियावच्छिन्नभेद विशिष्टस्य फलस्याभावो मल्लेऽक्षत एवेति न कश्चिद्दोषः।

चैत्र और मैत्र के उभय कर्मजसंयोग स्थल में चैत्रवृत्तिक्रिया से अवच्छिन्न भेद के चैत्र में न रहने से विशिष्ट फलाभाव अक्षत है। जहाँ पर मल्ल के द्वारा गाँव जाया जाता

है, मल्लान्तर नहीं जाया जाता। वहाँ पर मल्लनिष्ठ ग्रामसंयोग में मल्लान्तरनिष्ठक्रियावच्छिन्न भेदसामानाधिकरण्य के तन्मल्लान्तर्भाव से रहने पर भी तादृशभेदप्रतियोगितावच्छेदक मल्लान्तरनिष्ठक्रियाजन्यत्व न रहने से तद्घटितोभय सम्वन्ध से मल्लनिष्ठ क्रियावच्छिन्न भेद से विशिष्ट फल का अभाव मल्ल में अक्षत ही है इसलिए कोई दोष नहीं है।

यहाँ पर गदाधर चैत्र मैत्र के उभय कर्मजसंयोग स्थल में '**चैत्रेण चैत्रो न गम्यते**' इस प्रयोग की अनुपपत्ति और जहाँ पर मल्ल के द्वारा गाँव जाया जाता है वहाँ पर '**मल्लो मल्लेन न गम्यते**' की अनुपपत्ति वारित कर रहे हैं। '**चैत्रेण चैत्रो न गम्यते**' से क्या शाब्दबोध इस मत से होगा? '**चैत्रवृत्तिक्रियावच्छिन्नप्रतियोगिताको यो भेदस्तत्समानाधिकरणतत्प्रतियोगितावच्छेदकक्रियाजन्यसंयोगाभाववान् चैत्रः**' ऐसा बोध होगा। चैत्रवृत्तिक्रियावच्छिन्न प्रतियोगिताक भेद हुआ 'चैत्रवृत्तिक्रियावान् न' ऐसा भेद, इस भेद का अधिकरण चैत्र नहीं होता है। इस कारण इस भेद से समानाधिकरण और इसभेद की प्रतियोगितावच्छेदकीभूत क्रिया से जन्य संयोग चैत्र में नहीं रह सकता है, संयोगाभाव ही रह सकता है। उसी का भान हो रहा है। '**मल्लो मल्लेन न गम्यते**' से शाब्दबोध होगा '**मल्लवृत्तिक्रियावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदसमानाधिकरणतादृशभेदप्रतियोगितावच्छेदकक्रियाजन्यसंयोगाभाववान् मल्लः**' 'मल्लवृत्तिक्रियावच्छिन्न प्रतियोगिताकभेद-समानाधिकरण और तादृशभेदप्रतियोगितावच्छेदकीभूतक्रियाजन्य संयोग के अभाव वाला मल्ल है'। यहाँ पर मल्लवृत्ति क्रियावच्छिन्नप्रतियोगिताक भेद करके आपने भेद लिया 'मल्लान्तरनिष्ठक्रियावान् न' इसके मल्ल (तन्मल्ल) में रहने से मल्ल में रहने वाला ग्राम-संयोगतादृशभेद समानाधिकरण तो हो गया किन्तु तादृशभेद प्रतियोगितावच्छेदकीभूतमल्लान्तर-निष्ठ क्रिया से जन्य नहीं हुआ। इस कारण इन दोनों सम्बन्धों से भेद से विशिष्ट संयोग मल्ल में नहीं है और उसी विशिष्ट संयोग का अभाव मल्ल में प्रत्याय्यित होने के कारण कोई अनुपपत्ति नहीं है।

कर्तृप्रत्ययस्थले चाधेयतया प्रकृत्यर्थान्वितस्य फलस्य भेदरूपापरार्थे सामानाधिकरण्यस्वजनकक्रियावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वोभयसम्बन्धेनान्वयः, तादृशभेदस्य च स्वप्रतियोगितावच्छेदकत्वसम्बन्धेन क्रियायाम् ।

तथा कर्तृप्रत्ययस्थल में आधेयतया प्रकृत्यर्थ से अन्वित फल का भेदरूप दूसरे अर्थ में सामानाधिकरण्य स्वजनकक्रियावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्व उभयसम्बन्ध से अन्वय हुआ करता है और तादृशभेद का क्रिया में स्वप्रतियोगितावच्छेदकत्व सम्बन्ध से अन्वय हुआ करता है।

कर्माख्यातस्थल में जैसे '**चैत्रेण चैत्रो गम्यते**' की आपत्ति आती है, उसी प्रकार कर्त्राख्यातस्थल में भी '**चैत्रो चैत्रं गच्छति**' की आपत्ति आती है। क्योंकि चैत्रवृत्ति संयोगानुकूलव्यापारानुकूलकृतिमत्त्व चैत्र में अबाधित है, यही इस वाक्य से बोध्य है। इसलिए कर्त्राख्यातस्थल में भेद और फल को द्वितीयार्थ माना जाता है। आधेयता सम्बन्ध से प्रकृत्यर्थ से अन्वित फल का भेद में स्वसामानाधिकरण्य स्वजनकक्रियावच्छिन्न प्रतियोगिताकत्व

उभयसम्बन्ध से अन्वय होता है। उस भेद का क्रिया में स्वप्रतियोगितावच्छेदकत्व सम्बन्ध से अन्वय होता है। इस प्रकार '**चैत्रो ग्रामं गच्छति**' से '**ग्रामनिष्ठसंयोगसमानाधिकरणः तादृशसंयोगजनकक्रियावच्छिन्नप्रतियोगिताकश्च यो भेदः तत्प्रतियोगितावच्छेदकीभूतसंयोगावच्छिन्नस्पन्दानुकूलकृतिमान् चैत्रः**' 'ग्रामनिष्ठ संयोग का समानाधिकरण और तादृशसंयोग जनकक्रियावच्छिन्नप्रतियोगिताक जो भेद उसके प्रतियोगितावच्छेदकीभूत क्रिया (संयोगावच्छिन्न स्पन्द) के अनुकूल कृति वाला चैत्र हैं' ऐसा बोध होता है। ग्रामनिष्ठ संयोग का समानाधिकरण और तादृशसंयोगजनकीभूत चैत्र क्रिया से अवच्छिन्नप्रतियोगिताक भेद है 'चैत्रवृत्तिक्रियावान् न' यह भेद। यह भेद ग्राम में है, अतः ग्रामनिष्ठ संयोग समानाधिकरण हुआ और संयोगजनकीभूत चैत्र क्रिया से इस भेद की प्रतियोगिता अवच्छिन्न है। अतः तादृशसंयोगजनकक्रियावच्छिन्नप्रतियोगिताक भी यह भेद हुआ। इस भेद का प्रतियोगितावच्छेदक संयोगावच्छिन्न स्पन्द है, तदनुकूलकृतिमान् चैत्र है। अतः ऐसा प्रयोग होता है।

यत्र चैत्रक्रियया ग्रामे न संयोगः अपित्वन्यत्र, तत्र 'ग्रामं गच्छति चैत्रः' इति प्रयोगवारणाय स्वजनकक्रियावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वस्य, 'चैत्रो ग्रामं गच्छति' इत्यादौ 'चैत्रः चैत्रं गच्छति' इति प्रयोगवारणाय सामानाधिकरण्यस्य सम्बन्धमध्ये निवेशः। चरमस्थले चैत्रग्रामसंयोगस्य ग्रामनिष्ठचैत्रक्रियावच्छिन्नभेदे सम्बन्धद्वयसत्त्वेऽपि चैत्रवृत्तित्वविशिष्टस्य तत्संयोगस्य तादृशभेदे सामानाधिकरण्यविरहाच्चैत्रक्रियायां तद्भेद प्रतियोगितावच्छेदकत्वसत्त्वेऽपि नातिप्रसङ्गः।

यहाँ पर गदाधर फल का भेद में सामानाधिकरण्य स्वजनकक्रियावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वोभय सम्बन्ध से अन्वय की विवक्षा का प्रयोजन बता रहे हैं। एक-एक सम्बन्ध देने का उद्देश्य क्या है?

जहाँ पर चैत्र क्रिया से ग्राम में संयोग नहीं हुआ अपितु अन्यत्र संयोग हुआ है, वहाँ पर '**ग्रामं गच्छति चैत्रः**' इस प्रयोग का वारण करने के लिए सम्बन्ध के मध्य स्वजनक क्रियावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्व का निवेश किया गया है। यदि इस सम्बन्ध को न देते तो इस वाक्य से '**ग्रामनिष्ठसंयोगसमानाधिकरणभेदप्रतियोगितावच्छेदकीभूतक्रियानुकूलकृतिमान् चैत्रः**' ऐसा बोध होता और ऐसा बोध उस समय भी अबाधित है, जब चैत्र ग्राम नहीं जा रहा है, कहीं अन्यत्र जा रहा है। ग्रामनिष्ठसंयोग का समानाधिकरण ग्राम में रहने वाला 'चैत्रवृत्तिक्रियावान् न' भेद होगा, इसकी प्रतियोगितावच्छेदकीभूताक्रिया चैत्रक्रिया, तदनुकूलकृतिमत्त्व चैत्र में अबाधित है। दूसरा सम्बन्ध भी दे देने पर तो उक्त भेद ग्रामनिष्ठसंयोग से विशिष्ट नहीं होता है क्योंकि उस भेद की प्रतियोगितावच्छेदकीभूता क्रिया ग्रामनिष्ठसंयोगजनक नहीं होती है।

'**चैत्रो ग्रामं गच्छति**' प्रयोग की स्थिति रहने पर '**चैत्रः चैत्रं गच्छति**' इस

प्रयोग का वारण करने के लिए सम्बन्धों के अन्तर्गत सामानाधिकरण्य का निवेश किया गया है। चरमस्थल में— जहाँ पर चैत्र ग्राम जा रहा है उस स्थिति में— चैत्रग्रामसंयोग का ग्रामनिष्ठ चैत्रक्रियावच्छिन्न भेद 'चैत्र क्रियावान् न' भेद में सम्बन्ध द्वय रहने पर भी (इस प्रकार चैत्रग्रामसंयोग से सामानाधिकरण्य और स्वजनकक्रियावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्व सम्बन्ध से भेद के विशिष्ट होने पर भी) चैत्रवृत्तित्वविशिष्टतत्संयोग का तादृशभेद— 'चैत्रवृत्ति क्रियावान् न' इस भेद— में सामानाधिकरण्य न होने के कारण चैत्र क्रिया में तद्भेदप्रतियोगितावच्छेदकत्व रहने पर भी कोई अतिप्रसङ्ग नहीं है। **'चैत्रश्चैत्रं गच्छति'** से चैत्र में चैत्र वृत्तित्वविशिष्टसंयोग से सामानाधिकरण्य स्वजनकक्रियावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्व सम्बन्ध से विशिष्ट जो भेद, तद्भेदप्रतियोगितावच्छेदकत्वाश्रय क्रियानुकूल कृतिमत्त्व बोधित होता है और तादृश क्रियानुकूल कृतिमत्त्व चैत्र में बाधित है। अतः ऐसा प्रयोग नहीं होता है।

'चैत्रश्चैत्रं न गच्छति' इत्यादौ च तादृशभेदान्वितक्रियाकर्तृत्वाभाव एव प्रतीयते न तु क्रियायां द्वितीयार्थविशिष्टभेदस्य प्रतियोगितावच्छेदकत्व सम्बन्धावच्छिन्नाभावः– तादृशसम्बन्धस्य वृत्त्यनियामकत्वात् । यदि तात्पर्यविशेषवशात् क्रियानुयोगिकोऽप्यभावः क्वचित् प्रतीयत इत्यनुभव सिद्धम्? तदा प्रतियोगितावच्छेदकत्वेऽपि द्वितीयाद्यर्थत्वमुपगम्य विशिष्ट भेदप्रतियोगितावच्छेदकत्वाभावान्वय एव तत्रोपगन्तव्य इति दिक्।

चैत्रश्चैत्रं न गच्छति' इत्यादिस्थलों में तो तादृशभेदान्वित क्रियाकर्तृत्वाभाव ही— तादृशभेदान्वितक्रियानुकूलकृति का अभाव ही— चैत्रादि में प्रतीत होता है, न कि क्रिया में द्वितीयार्थविशिष्ट भेद का प्रतियोगितावच्छेदकत्वसम्बन्धावच्छिन्नाभाव क्योंकि तादृश सम्बन्ध— प्रतियोगितावच्छेदकत्व सम्बन्ध-—वृत्त्यनियामक है। यदि तात्पर्यविशेषवशात् क्रियानुयोगिक भी अभाव कहीं पर प्रतीत होता है ऐसा अनुभवसिद्ध है, तो प्रतियोगितावच्छेदकत्व में भी द्वितीयाद्यर्थत्व स्वीकारते हुए विशिष्टभेदप्रतियोगितावच्छेदकत्वाभाव का अन्वय ही उसमें स्वीकारना चाहिए।

'चैत्रश्चैत्रं न गच्छति' इस प्रकार के स्थलों में प्रथमतः तो गदाधर का कहना है कि चैत्र में- चैत्रवृत्तित्वविशिष्ट संयोग से सामानाधिकरण्य स्वजनकक्रियावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्व इन दोनों सम्बन्धों से विशिष्ट जो भेद उस भेद से प्रतियोगितावच्छेदकत्व सम्बन्ध से विशिष्ट जो क्रिया, तदनुकूल कृति का अभाव ही बोधित होता है। क्रिया में प्रतियोगितावच्छेदकत्व सम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक भेदाभाव और तादृशक्रियानुकूलकृतिमत्त्व चैत्र में नहीं बोधित हो सकता है। क्योंकि प्रतियोगितावच्छेदकत्व वृत्त्यनियामक होने के कारण अभावीय प्रतियोगिता का अवच्छेदक नहीं हो सकता है। किन्तु इसमें मुश्किल यह है कि **'चैत्रो ग्रामं गच्छति न चैत्रम्'** यहाँ पर चैत्र में तादृश क्रियानुकूलकृतिमत्त्वाभाव के बजाय भेद का प्रतियोगितावच्छेदकत्वसम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिताक अभाव भासना बेहतर होगा। इसलिए यहाँ पर कहा कि भेदप्रतियोगितावच्छेदकत्व को फिर द्वितीया का अर्थ मानो भेद को नहीं

और व्युत्पत्ति वैचित्र्यात् भेद में फल का उक्त दोनों सम्बन्धों से अन्वय करो। ऐसी स्थिति में क्रिया में तादृशभेदप्रतियोगितावच्छेदकत्वाभाव और तादृशक्रियानुकूल कृतिमत्त्व चैत्र में बोधित होता है।

फलावच्छिन्नव्यापारबोधकधातूनां फले व्यापारे च शक्तिद्वयम्। कर्त्राख्यातस्थले फलं धात्वर्थविशेषणतया भासते तत्र द्वितीयार्थाधेयत्वान्वयः। कर्माख्यातस्थले फलं धात्वर्थव्यापारस्य विशेष्यतया भासते। तस्य विशेष्यतयाऽऽख्यातार्थ आश्रयत्वं (भासते) तद्विशेष्यतया कर्म (भासते) इति दीधितिकृतः।

फलावच्छिन्नव्यापार बोधक धातुओं की फल और व्यापार में दो शक्तियाँ है। कर्त्राख्यातस्थल में फल धात्वर्थविशेषणतया भासता है, उसमें द्वितीया के अर्थ आधेयत्व का अन्वय होता है। कर्माख्यात स्थल में फल धात्वर्थ व्यापार का विशेष्यतया भासता है उसमें विशेष्यतया आख्यातार्थ आश्रयत्व भासता है, उसमें विशेष्यतया कर्म भासता है। 'चैत्रो ग्रामं गच्छति' से 'ग्रामनिष्ठसंयोगानुकूलव्यापारानुकूलकृतिमान् चैत्रः' और 'चैत्रेण ग्रामो गम्यते' से 'चैत्रवृत्तिव्यापारजन्यसंयोगाश्रयतावान् ग्रामः' ऐसा बोध होता है।

केचित्तु संयोगादिरूपफलावच्छिन्नव्यापारबोधकानां गमिप्रभृतीनां कर्मप्रत्ययापेक्षया बहूनां फले शक्तिकल्पनामपेक्ष्य कर्मप्रत्ययानां फले शक्तिकल्पनमेव लघीयः, धातूनां च व्यापारमात्रवाचिता। धातोः फलबोधकतामते नामार्थधात्वर्थयोराधाराधेयभावसम्बन्धेन साक्षादन्वयासम्भवात् फलाश्रयत्वस्य कर्मणि प्रकारतया भानस्योपगन्तव्यतया तत्संसर्गस्याधिकस्य भानकल्पनेनापि गौरवम्, फलस्य प्रत्ययार्थत्वे च तदाश्रयत्वं सम्बन्ध एवेति लाघवम् ।

कुछ लोग तो— संयोगादिरूप फल से अवच्छिन्नव्यापार के बोधक कर्म प्रत्यय की अपेक्षा बहुत सी गमि आदि धातुओं की फल में शक्ति की कल्पना करने की अपेक्षा कर्म प्रत्ययों की फल में शक्ति की कल्पना करना ही लघुभूत है और धातुओं की व्यापार मात्रवाचिता है। धातु की फलबोधकतामत में नामार्थ और धात्वर्थ का आधाराधेयभाव सम्बन्ध से साक्षात् अन्वय असम्भव होने के कारण फलाश्रयत्व का कर्म में प्रकारतया भान के स्वीकरणीय होने से उसके (फलाश्रयत्व के) संसर्ग के भान की अधिक कल्पना करने के कारण भी गौरव होगा, फल के प्रत्यय का अर्थ होने पर तो उसका (फल का) आश्रयत्व सम्बन्ध होगा। इस तरह लाघव होगा।

यहाँ पर गदाधर व्यापार मात्र की धात्वर्थता मानने वालों का मत दे रहे हैं। व्यापार मात्र की धात्वर्थता में उनकी युक्ति है कि फल और व्यापार दोनों को (फलावच्छिन्न व्यापार) को धात्वर्थ मानने पर समस्त सकर्मक धातुओं की शक्ति तत्तत् अनेक फलों में स्वीकारनी पड़ेगी इस कारण गौरव है। इसकी अपेक्षा यदि धातुओं को व्यापारमात्रवाचक मानें तो कर्मप्रत्ययों की शक्ति ही फलों में स्वीकारनी होगी, कर्मप्रत्यय तो गिने हुए थोड़े से हैं। इस

कारण कर्मप्रत्ययों (द्वितीया, कर्मख्यात आदि) की शक्ति फल में मानने पर लाघव है। इसके अलावा दूसरी युक्ति भी गौरव के आधार पर है कि फल को धात्वर्थ मानने पर धात्वर्थ और नामार्थ का साक्षादन्वयबोध व्युत्पत्तिविरुद्ध है। अतः धात्वर्थ फल का कर्माख्यातस्थल में प्रथमान्तपदोपस्थाप्य कर्म में साक्षादन्वय नहीं हो सकता है। फलतः आश्रयत्व को आख्यातार्थ मान कर फलाश्रयत्व का प्रथमान्तपदोपस्थाप्य कर्म में प्रकारतया भान स्वीकारना आवश्यक होने से फलाश्रयत्व का संसर्ग संसर्गमर्यादा से भासेगा। फल को कर्मप्रत्यय का अर्थ मानने पर तो उसका अन्वय प्रथमान्तपदोपस्थाप्य कर्म में प्रकारतया हो सकता है और उस फल का आश्रयत्व संसर्गमर्यादा से भासित हो जायेगा। इस मत में फलाश्रयत्व के संसर्ग का भान किसी भी तरह नहीं होता है। अतः यह भी लाघव है।

न च धातूनां व्यापारमात्रवाचित्वे 'ग्रामं त्यजति' इत्यादितोऽपि 'ग्रामं गच्छति' इत्यादित इव संयोगादिरूपफलावच्छिन्नस्पन्दबोधापत्तिः, 'ग्रामस्त्यज्यते' इत्यादितोऽपि 'ग्रामो गम्यते' इत्यत इव जन्यसंयोगादिमत्त्वेन भानप्रसङ्ग इति वाच्यम्; कर्मप्रत्ययस्य संयोगविभागादिरूपनानाफल वाचित्वेऽपि तत्तत्फलबोधे धातुविशेषसमभिव्याहारज्ञानस्यापेक्षयाऽति प्रसङ्गविरहात् । 'त्यजति 'गच्छन्ति' 'स्पन्दते' 'त्यागः' गमनम्' 'स्पन्दः' इत्यादौ कर्मासमभिव्याहृते बोधवैलक्षण्यं च तत्तद्धातूनां फलविशेषावच्छिन्न व्यापारलक्षणोपगमेनोपपादनीयम् । फलान्वितस्वार्थव्यापारबोधकत्वं सकर्मकत्वं गम्यतादेः स्वभावाधीनं तदभावात्स्पन्दिप्रभृतिष्वकर्मकत्वव्यवहार इत्याहुः।

यदि कहो कि धातुओं की व्यापारमात्रवाचिता होने पर 'ग्रामं त्यजति' इत्यादि से भी 'ग्रामं गच्छति' इत्यादि वाक्यों की तरह संयोगादिरूपफलावच्छिन्नस्पन्दबोध की आपत्ति है। 'ग्रामस्त्यज्यते' इत्यादि से भी 'ग्रामो गम्यते' की तरह ही ग्राम का स्पन्दजन्य संयोगादिमत्त्वेन भान का प्रसङ्ग है। भाव यह है कि 'ग्रामं त्यजति' व 'ग्रामं गच्छति' इन दोनों से एक जैसा बोध नहीं होता है एक से विभागावच्छिन्नस्पन्द बोधित होता है, दूसरे से संयोगावच्छिन्न स्पन्द बोधित होता है। इसी प्रकार 'ग्रामो गम्यते' और 'ग्रामस्त्यज्यते' से एक जैसा बोध नहीं होता है एक से ग्राम स्पन्दजन्यसंयोगवत्त्वेन भासता है। और दूसरे से स्पन्दजन्यविभागवत्त्वेन बोधित होता है। किन्तु यदि आपने धातुओं को व्यापारमात्र वाचक माना और कर्म प्रत्ययों को फलवाचक तो चूँकि त्यजति, गच्छति आदि के द्वारा केवल व्यापार बोधित हो रहा है। और अन्य अंश तो उभयत्र समान है। अतः 'ग्रामं गच्छति 'ग्रामं त्यजति' से एक जैसा और 'ग्रामस्त्यज्यते' 'ग्रामो गम्यते' से एक जैसा बोध होने की आपत्ति है।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि कर्म प्रत्यय के संयोग विभाग आदि रूप नाना फलवाची होने पर भी तत्तत्फल संयोगविभागादि बोध में धातुविशेषसमभिव्याहार ज्ञान की अपेक्षा होने के कारण अतिप्रसङ्ग नहीं है। भाव यह है कि कर्म प्रत्यय का अर्थ संयोग भी है, विभाग भी है। इसी प्रकार अन्य भी अर्थ कर्म प्रत्यय के हैं तथापि कर्मप्रत्ययार्थ संयोग

के बोध के प्रति गम्‌धातुसमभिव्याहार ज्ञान कारण है और कर्मप्रत्ययार्थ विभाग बोध के प्रति त्यज्‌ धातु समभिव्याहार ज्ञान कारण है। इसलिए **'ग्रामं गच्छति'** से ग्रामसंयोगावच्छिन्न स्पन्द बोधित होता है। और **'ग्रामं त्यजति'** से ग्रामविभागावच्छिन्न स्पन्द बोधित होता है। दोनों से एक जैसा बोध नहीं होता है। इसी कारण **'ग्रामो गम्यते' 'ग्रामस्त्यज्यते'** से भी एक जैसा बोध नहीं होता है।

'त्यजति' 'गच्छति' 'स्पन्दते' 'त्यागः' 'गमनम्' 'स्पन्दः' इत्यादि कर्मा समभिव्याहृत स्थलों में बोध का वैलक्षण्य तो तत्तद्धातुओं की फलविशेषावच्छिन्न व्यापार में लक्षणा स्वीकार करके ही उपपादित करना चाहिए। फलान्वित स्वार्थव्यापारबोधकत्व रूप सकर्मकत्व गमि आदि का स्वभावाधीन है, उसका अभाव होने के कारण स्पन्दि आदि धातुओं में अकर्मकत्व व्यवहार होता है। ऐसा कहते हैं। यहाँ पूर्व में आये हुए **'केचित्तु'** के साथ **'इत्याहुः'** का अन्वय होता है। **'त्यजति' 'गच्छति'** आदि में कर्म प्रत्यय का समभिव्याहार न होने से और धातु के व्यापारमात्रवाची होने के कारण समानाकारक बोध होना चाहिए, यह भी आपत्ति है इसका समाधान धात्वर्थव्यापारमात्र मानने वालों के द्वारा दिया जा रहा है कि इन स्थलों में धातुओं की फलावच्छिन्नव्यापार में निरूढलक्षणा होती है इसलिए समानाकारक बोध नहीं होता है। इस मत में सकर्मकत्व फलान्वितस्वार्थव्यापार बोधकत्व है। स्पन्दि आदि धातुओं में फलान्वितस्वार्थव्यापारबोधकत्व न होने से उनका अकर्मकत्व होता है।

तन्न– यागमिप्रभृतीनामिव त्यजिगमिप्रभृतीनामपि पर्यायतेति भ्रमदशायां 'याति' 'गच्छति' इत्यादाविव 'त्यजति' 'गच्छति' इत्यादितोप्यविलक्षण-बोधोत्पत्त्या धातुविशेषसमभिव्याहारस्य फलविशेषबोधनियामकताकल्पना-सम्भवात् ।

वह ठीक नहीं है क्योंकि या,गमि आदि की (वास्तविक पर्यायता) की तरह ही त्यजि, गमि आदि की भी पर्यायता है ऐसा भ्रम हो जाने की दशा में **'याति' 'गच्छति'** इत्यादि स्थलों की तरह **'त्यजति' 'गच्छति'** इत्यादि से भी अविलक्षण बोध की उत्पत्ति होने के कारण धातुविशेषसमभिव्याहार की फलविशेषबोध नियामकता की कल्पना असम्भव है।

गदाधर **'केचित्तु'** प्रतीक से उठाये गये मत को खण्डित कर रहे हैं। धात्वर्थ व्यापारमात्रतावादियों ने **'ग्रामं गच्छति' 'ग्रामं त्यजति'** इत्यादि से समानाकारक बोध की आपत्ति वारित करते हुए कहा कि तत्तत् फलबोध में धातुविशेषसमभिव्याहारज्ञान कारण है। गदाधर का कहना है कि तत्तत् फल बोध में धातुविशेष समभिव्याहार ज्ञान को कारण नहीं माना जा सकता है क्योंकि या, गमि की पर्यायता होने से जैसे **'ग्रामं याति' 'ग्रामं गच्छति'** से समानाकारक बोध होता है, उसी प्रकार त्यजि, गमि आदि की पर्यायता का भ्रम होने पर **'ग्रामं त्यजति' 'ग्रामं गच्छति'** से भी समानाकारक बोध होता है। इस प्रकार त्यज् धातु समभिव्याहार संयोगावच्छिन्नस्पन्दबोध के प्रति कारण है, अतः आप यह नहीं कह सकते हैं कि त्यज् धातु समभिव्याहार के संयोगावच्छिन्नस्पन्दबोध के प्रति कारण

नहीं होने के कारण सामान्यतः 'ग्रामं त्यजति' से 'ग्रामं गच्छति' के समानविषयक बोध होने की आपत्ति नहीं है। इस प्रकार धातुविशेषसमभिव्याहार का फलविशेषान्वयबोध के प्रति कारण मानना सम्भव न होने से 'ग्रामं त्यजति' और 'ग्रामं गच्छति' से समानाकरक बोध होने की आपत्ति है ही।

न च 'ग्रामं त्यजति' इत्यादितः संयोगावच्छिन्नव्यापारबोधस्तात्पर्यसत्त्व इष्यत एव–त्वन्मतेऽपि तात्पर्यानुरोधेन लक्षणया तद्बोधोत्पत्तेरावश्यकत्वात्, परन्तु तत्र विभागादिरूपफल एव प्रत्ययतात्पर्यस्यानादितया संयोगादिरूपफल प्रत्यायनेच्छया स्वरसतो न तादृशप्रयोग इति वाच्यम्; विना शक्तिभ्रमं लक्षणाग्रहञ्च 'ग्रामं त्यजति' इत्यादितः सत्यपि तात्पर्ये संयोगावच्छिन्नव्यापारा-प्रतीतेरानुभविकतया धातोः फलविशेषवाचितताया आवश्यकत्वात् ।

यदि कहो कि 'ग्रामं त्यजति' इत्यादि से संयोगावच्छिन्न व्यापार बोध तात्पर्य रहने पर इष्ट ही है क्योंकि तुम्हारे मत में भी धातु की फलावच्छिन्न व्यापारवाचित्व मानने वाले के मत में भी तात्पर्य के अनुरोध से लक्षणा से 'ग्रामं त्यजति' इत्यादि से संयोगावच्छिन्न व्यापार बोध की उत्पत्ति आवश्यक है, परन्तु (ये और बात है कि) वहाँ पर विभागादि रूप फल में ही फल प्रत्यय के तात्पर्य के अनादि होने के कारण संयोगादिरूपफलबोधन की इच्छा से स्वरसतः (शक्त्याधारित) वैसा प्रयोग नहीं होता है।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि विना शक्तिभ्रम और लक्षणाग्रह के 'ग्रामं त्यजति' इत्यादि से तात्पर्य रहने पर भी संयोगावच्छिन्न व्यापार की प्रतीति नहीं होती है, यह अनुभव सिद्ध होने के कारण धातु की फलविशेषवाचकता आवश्यक है।

यहाँ पर व्यापारमात्र धात्वर्थतावादी के द्वारा यह समाधान देने का प्रयास किया जा रहा है कि 'ग्रामं त्यजति' से तात्पर्य रहने पर संयोगावच्छिन्नव्यापार की प्रतीति होती है। आप भी मानते हो। इससे क्या अन्तर पड़ता है कि आप लक्षणा के आधार पर संयोगावच्छिन्न व्यापार की प्रतीति मान रहे हो क्योंकि विभागादिरूप फल में फल प्रत्यय का तात्पर्य अनादि है। हमारे (व्यापारमात्र धात्वर्थतावादी के) मत में विना लक्षणा के संयोगावच्छिन्न व्यापार की प्रतीति 'ग्रामं त्यजति' से होती है। इसका गदाधर खण्डन करते हैं कि भई! यह अनुभव में आता है कि विना शक्तिभ्रम या लक्षणाग्रह के 'ग्रामं त्यजति' इत्यादि से तात्पर्य रहने पर भी संयोगावच्छिन्न व्यापार की प्रतीति नहीं होती है। अतः व्यापार मात्र की धात्वर्थता मानने वाले आपके मत का अनुभव से विरोध है। इसलिए फल विभागादि को भी धात्वर्थ ही मानना चाहिए।

'ज्ञायते इष्यते क्रियते घटः' इत्यादौ विषयत्वरूपं कर्मत्वं तङर्थः।

न च कृतिविषयतायाः फलतत्साधनतदुपादानसाधारणतया यत्र 'घटः क्रियते' इत्यादि प्रयुज्यते तत्र 'जलाहरणं क्रियते' 'कपालं क्रियते' इत्यादि प्रयोगस्यापत्तिरिति वाच्यम्; कृत्यर्थकधातुसमभिव्याहृतकर्मप्रत्ययस्य चिकीर्षाप्रयोज्यसाध्यताख्यविलक्षणविषयत्वमेवार्थः, उक्तस्थले च कपालादौ

कृतेस्तादृशविषयत्वाभावान्नोक्तप्रयोगप्रसङ्गः।

'ज्ञायते घटः' 'इष्यते घटः' 'क्रियते घटः' इत्यादि स्थलों में विषयत्व रूप कर्मत्व तङ् का (कर्माख्यात का) अर्थ है।

यदि कहो कि कृतिविषयता के फल, फलसाधन और उपादानसाधारण होने के कारण—फल, साधन, उपादान तीनों में समान रूप से कृति विषयता के रहने के कारण— जहाँ पर **'घटः क्रियते'** ऐसा प्रयोग किया जाता है वहाँ पर **'जलाहरणं क्रियते' 'कपालं क्रियते'** इत्यादि प्रयोग की आपत्ति है क्योंकि घट का फल जलाहरण है और उपादान कपाल है। घट विषयक कृति समानरूप से घट, जलाहरण और कपाल को विषय करेगी। इसलिए **'कृतिविषयं जलाहरणम्' 'कृतिविषयं कपालम्'** इत्यादि शाब्दबोध अबाधित हैं तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि कृत्यर्थक धातु समभिव्याहृत कर्म प्रत्यय का चिकीर्षाप्रयोज्यसाध्यताख्यविलक्षणविषयता ही अर्थ होता है (विषयता मात्र नहीं) उक्त स्थल में— जहाँ पर **'घटः क्रियते'** ऐसा प्रयोग किया जाता है वहाँ पर— कपाल, जलाहरण आदि में कृति की वैसी विषयता चिकीर्षाप्रयोज्यसाध्य ताख्यविलक्षणविषयता— का अभाव होने के कारण उक्त प्रयोग **'जलाहरणं क्रियते' 'कपालं क्रियते'** प्रयोग का प्रसङ्ग नहीं है। इन प्रयोगों से जलाहरण और कपाल में चिकीर्षाप्रयोज्य साध्यताख्यविलक्षणविषयता बोधित होती है। जलाहरण और कपाल में वैसी विषयता न होने के कारण शाब्दबोध बाधित विषयक है, योग्यता ही नहीं है।

'काशाः कटाः क्रियते' इत्यादौ साध्यताख्यविषयताश्रयकर्मान्तर समभिव्याहृतकर्मप्रत्ययेन व्यापार्यतारूपविषयता प्रत्याय्यतेऽत उपादानतया कृतिविषयकाशादौ साध्यतारूपकृतिविषयताविरहेऽपि न तादृश प्रयोगानुपपत्तिः। तादृशकर्मसमभिव्याहाररूपतत्प्रयोजकविरहात् 'काशाः क्रियन्ते' इत्यादौ काशादौ व्यापार्यताबोधानुपपत्तेर्न तादृशप्रयोग इति।

'काशाः कटाः क्रियन्ते' इत्यादि स्थलों में साध्यताख्यविषयताश्रय कर्मान्तर कट से समभिव्याहृत कर्म प्रत्यय के द्वारा व्यापार्यता रूप विषयता भी प्रत्याय्यित होती है इसलिए उपादानता होने से कृतिविषय काश आदि में साध्यतारूप कृति विषयता न रहने पर भी **'काशाः कटाः क्रियन्ते'** ऐसे प्रयोगों की अनुपपत्ति नहीं है। (यहाँ पर कट में चिकीर्षाप्रयोज्य साध्यताख्य विलक्षणविषयता बोधित होती है और उसी आख्यात से चिकीर्षाप्रयोज्यसाध्यताख्यविलक्षणविषयताश्रय कर्म कट का समभिव्याहार होने के कारण काश की व्यापार्यतारूपा विषयता भी बोधित होती है) तादृशकर्मसमभिव्याहार रूपी व्यापार्यतारूपविषयता प्रयोजक नहीं होने के कारण **'काशाः क्रियन्ते'** इत्यादि स्थलों में काशादि में व्यापार्यता के बोध की अनुपपत्ति होने के कारण वैसे प्रयोग नहीं होते हैं। भाव यह है कि सामान्यतः कर्म प्रत्यय के द्वारा चिकीर्षाप्रयोज्यसाध्यताख्यविलक्षणविषयता ही बोधित होती है। किन्तु चिकीर्षाप्रयोज्य साध्यताख्यविलक्षणविषयताश्रय कर्म के साथ यदि कर्मान्तर का भी समभिव्याहार हो तो कर्म प्रत्यय के द्वारा व्यापार्यतारूपा विषयता भी बोधित होती है। **'काशाः क्रियन्ते'**

में चिकीर्षाप्रयोज्यसाध्यताख्यविलक्षणविषयताश्रय कर्म का समभिव्याहार न होने से केवल व्यापार्यतारूपा विषयता का प्रत्यायन कर्म प्रत्यय के द्वारा नहीं किया जा सकता है। अतः ऐसा प्रयोग नहीं होता है।

'काशाः कटाः क्रियन्ते' इत्यादावपि विशेष्यभेदेन वाक्यार्थभेदात् कर्मद्वयवाचकपदयोः समभिव्याहारे व्यापार्यताबोधानुपपत्तिः, एवम् 'क्रियते' इत्यत्र विषयतायाः कर्मप्रत्ययार्थत्वे पाकानुपधायककृतिमादाय 'पाकोऽकारि' इत्यादिप्रयोगापत्तिरित्यादिकं तु दूषणं निराकृतमधस्तात् ।

इस स्थिति में- **'काशाः कटाः क्रियन्ते'** इत्यादि स्थलों में विशेष्य भेद होने के कारण वाक्यार्थ भेद होने से कर्मद्वयवाचक पदों के समभिव्याहार की स्थिति में व्यापार्यता बोध की अनुपपत्ति है, इसी प्रकार **'क्रियते'** यहाँ पर विषयता के कर्म प्रत्यय का अर्थ होने पर पाकानुपधायक कृति को लेकर **'पाकोऽकारि'** 'पाक किया गया' ऐसे प्रयोग की आपत्ति है, इत्यादि दूषण तो पीछे ही निराकृत कर दिये गये हैं।

विशेष्यभेद से वाक्य भेद होता है ऐसा नियम है। आख्यात के दो अर्थ हुए यहाँ पर-चिकीर्षाप्रयोज्यसाध्यताख्यविषयता और व्यापार्यतारूपा विषयता। एक का अन्वय कट में और एक का काश में, इस प्रकार दो विशेष्य हुए काश और कट। विशेष्यभेद से वाक्य भेद की आपत्ति है, अतः व्यापार्यता का बोध नहीं हो सकता है। इसी प्रकार विषयता यदि कर्मप्रत्यय का अर्थ है तो पाकानुपधायक कृति को लेकर भी **'पाकोऽकारि'** प्रयोग होने की आपत्ति है क्योंकि पाकानुपधायक कृति की विषयता के पाक में होने में तो कोई सन्देह है नहीं । अतः शाब्दबोध अबाधित है।

इन आपत्तियों में प्रथम का समाधान गदाधर ने द्वितीया कारक में कृत्यर्थनिरूपण के अवसर पर दिया था कि एक की कर्मता ही आख्यात से वाच्य होती है दूसरे की कर्मता का धात्वर्थ में संसर्गतया भान होता है, लकार के द्वारा उसकी कर्मता का अभिधान न होने पर भी धात्वर्थ में उसका संसर्गतया भान होने के कारण तादृशकर्मोत्तर प्रथमा ही साधु होती है क्योंकि प्रातिपदिकार्थ विशेष्यतया कर्मत्वादि विवक्षा होने पर ही द्वितीयादि विभक्तियों की साधुता होती है। **'काष्ठं भस्म क्रियते' इत्यादौ भस्मादिनिर्वर्त्यकर्मताया लकारेणानभिधानेऽपि तत्कर्मताया धात्वर्थे संसर्गतया भानोपगमेन तादृशकर्मोत्तरं प्रथमायाः साधुता। प्रातिपदिकार्थविशेष्यतया कर्मत्वादिविवक्षायामेव द्वितीयादि-विभक्तिसाधुत्वात्'** (पृ. 467) द्वितीय आपत्ति का समाधान गदाधर ने यह दिया था कि यत्न में क्रिया का असाधारण अनुकूलत्व सम्बन्धतया भासता है। **'असाधारणानुकूलत्वं हि यत्ने क्रियायाः सम्बन्धतया भासते'** पाकानुपधायक कृति में असाधारण अनुकूलत्व न होने से पाकानुपधायक कृति को लेकर **'पाकोऽकारि'** प्रयोग नहीं होता ।

कर्तृकर्मवत् कालविशेषेऽनुशिष्टा लडादयः कालविशेषमपि बोधयन्ति। तत्र लट्प्रत्ययस्य वर्तमानकाले शक्तिः। 'पचति' इत्यादौ कृत्यादिरूपव्यापार

बोधकप्रत्ययोपस्थाप्यकालस्तादृशव्यापार एवान्वेति न तु क्रियायाम्– यदा पुरुषो यत्नशून्यस्तदधीनाग्निसंयोगादिरूपः पच्यादेरर्थो विद्यते तदा 'अयं न पचति' इति प्रयोगात्, 'अयं पचति' इत्युक्ते 'इदानीयमं पाकयत्नवान् न वा' इति संशयनिवृत्तेः पूर्वापरीभावापन्नस्थाल्यारोपणादिव्यापाराणां विशिष्य पच्याद्यर्थघटकत्वेन प्रत्येकं तद्व्यापारेषु कालान्वयबोधापेक्षया कृत्यादि रूपैकार्थे तदन्वयस्यैव लाघवेनोचितत्वाच्च।

कर्तृकर्मवत् काल विशेष में भी अनुशिष्ट लडादि कालविशेष को भी बोधित करते हैं। उसमें लट् प्रत्यय की वर्तमान काल में शक्ति है। **'पचति'** इत्यादि स्थलों में कृत्यादि रूप व्यापारबोधक प्रत्यय (लडादि) से उपस्थाप्य काल तादृश कृत्यादि व्यापार में ही अन्वित होता है, क्रिया में नहीं अन्वित होता है क्योंकि जब पुरुष यत्न शून्य है और तदधीन पुरुषयत्नाधीन अग्निसंयोगादिरूप पच् धातु का अर्थ विद्यमान है उस समय **'अयं न पचति'** ऐसा प्रयोग नहीं होता है, **'अयं पचति'** ऐसा कहने पर ऐसा प्रयोग होने पर **'अयं पाकयत्नवान् न वा'** ऐसे संदेह का निवारण हो जाता है, और पूर्वापरीभावापन्न स्थाल्यारोपण आदि व्यापारों के विशेष करके (एक-एक करके) पचि आदि धातु के अर्थ के घटक होने के कारण प्रत्येक पाकानुकूलव्यापार में काल का अन्वय करने की अपेक्षा कृत्यादि रूप एक अर्थ में काल का अन्वय करने में लाघव होने से यही उचित है।

लकार सामान्य का कर्तृ और कर्म में विधान है, इसी प्रकार लकार विशेष लट् आदि का **'वर्तमाने लट्'** पा॰ सू॰ 3/2/23 आदि के द्वारा वर्तमान काल आदि में भी विधान है। अतः लडादि की वर्तमान आदि कालों में शक्ति है। किन्तु लडाद्यर्थ वर्तमानत्व का अन्वय किसमें किया जाये? लकारार्थ यत्न (कृति) में या धात्वर्थ व्यापार में। इसमें गदाधर का कहना है कि कृति में ही अन्वय करना चाहिए या किया जाता है इसमें तीन युक्तियाँ हैं, पहली पाकानुकूलव्यापार अग्निसंयोगादि के रहने पर भी पाकानुकूलव्यापारानुकूल कृति के वर्तमान न रहने पर **'अयं न पचति'** प्रयोग होता है। पाकानुकूलव्यापार के वर्तमान रहने के कारण वर्तमानत्व का व्यापार में अन्वय करने पर तो ऐसा प्रयोग नहीं हो सकता है। दूसरी यह कि **'अयं पचति'** प्रयोग करने पर **'इदानीमयं पाकानुकूल यत्नवान् न वा'** ऐसा सन्देह निवृत्त हो जाता है। वर्तमानत्व का व्यापार में अन्वय होने पर यह सन्देह नहीं निवृत्त होता। तीसरी यह है कि पाकानुकूलव्यापार अनेक हैं उन अनेक व्यापारों में एक-एक कर आख्यातार्थ वर्तमानत्व का अन्वय स्वीकारने की अपेक्षा कृति में अन्वय स्वीकारने में लाघव है। इस कारण आख्यातार्थ वर्तमानत्व का अन्वय आख्यातार्थ कृति में ही करना चाहिए।

वर्तमानकालश्च तत्तच्छब्दप्रयोगाधिकरणरूपस्तत्तच्छब्दार्थः, अतो नैककालप्रयुक्तलडादितोऽपरलडादिप्रयोगाधिकरणकालीनत्वस्य कृत्यादा-वन्वयः। स्वप्रयोगाधिकरणकालत्वेन स्ववाच्यत्वे स्वत्वाननुगमाच्छक्त्यानन्त्यं सामान्यतो व्युत्पत्तेर्दुर्घटतयाऽपूर्वव्यक्तिबोधानुपपत्तिः सङ्क्रमामविचार–

दर्शितरीत्या समाधास्यते। विशिष्य तत्तत्कालत्वावच्छिन्नबोधस्यानुभवसिद्धतया सर्वनामशक्तौ बुद्धिस्थत्ववच्छब्दप्रयोगाधिकरणत्वमुपलक्षणविधया व्यावर्तकं वाच्यम् । न च तत्तत्कालत्वस्यैवमप्यवाच्यत्वे तद्भानानुपपत्तिरसमाधेयैवेति वाच्यम्; शब्दप्रयोगाधिकरणवृत्तिकालत्वव्याप्यधर्मत्वेन तत्तत्कालत्वानामेवोपलक्षणीयत्वात् ।

वर्तमानकाल तो तत्तच्छब्दप्रयोगाधिकरणरूप है और तत्तत्शब्द (तत्तदाख्यात) का अर्थ है। इस कारण एककालप्रयुक्तलडादि से अपरलडादिप्रयोगाधिकरणकालीनत्व का कृति आदि में अन्वय नहीं होता है। स्वप्रयोगाधिकरणकालत्वेन काल को स्व का वाच्य मानने पर स्वत्व का अननुगम होने के कारण शक्ति की अनन्तता होगी और सामान्यतः व्युत्पत्ति के दुर्घट होने के कारण अपूर्व (पूर्वाननुभूत) व्यक्ति के बोध की अनुपपत्ति होगी, इसका समाधान सर्वनाम विचार में दिखाये गये मार्ग से किया जायेगा। विशेष कर के तत्तत्कालत्वावच्छिन्न बोध के अनुभवसिद्ध होने के कारण सर्वनामशक्ति में बुद्धिस्थत्व की तरह लडादि की शक्ति में लट्प्रयोगाधिकरणत्व का उपलक्षण विधया प्रवेश करना चाहिए। यदि कहो कि इस प्रकार भी तत्तत् कालत्व के अवाच्यं होने के कारण तत्तत्कालत्व के भान की अनुपपत्ति असमाधेय ही है, तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि शब्दप्रयोगाधिकरणवृत्तिकालत्वव्याप्यधर्मत्वेन तत्तत्कालत्व ही उपलक्षणीय हैं।

वर्तमानकाल तत्तत्शब्दप्रयोगाधिकरण रूप है और तत्तत् शब्द तत्तद् आख्यात का अर्थ है। इसलिए जिस लट् का प्रयोग किया जा रहा है उसी लट् का काल ही धात्वर्थानुकूल कृति में बोधित होता है। अन्य काल वर्तमानकाल करके नहीं बोधित होते हैं। इसमें यह समस्या है कि तत्तत्काल विशेषों को लट् का वाच्य कैसे माना जाये? यदि कहें कि स्वप्रयोगाधिकंरण काल स्व से वाच्य है। तो स्वत्व का अनुगम न होने से शक्ति की अनन्तता होगा। साथ ही अपूर्वव्यक्ति में व्युत्पत्ति नं होने से- शक्तिग्रह न होने से अपूर्वव्यक्ति के भान की अनुपपत्ति होगी। इस के बारे में गदाधर ने 'शक्तिवाद' में सर्वनाम शक्ति के विषय में जो समाधान दिया है उसी के बारे में कह रहे हैं कि सर्वनाम शक्ति के बारे में दर्शित रीति से इसका समाधान करना चाहिए। इसविषय में शक्तिवाद' का विशेष काण्ड देखना चाहिए। वहाँ पर गदाधर का कथन है- **'स्वोच्चारणानुकूलबुद्धिप्रकारावच्छिन्नविषयताकत्वस्वजन्यत्वोभयसम्बन्धेन तदादिसर्वनामपदप्रकारकोबोधविषयकसङ्केतोऽभ्युपेयते'** (शक्तिवाद सविवृत्तिक पृ. 108) उसी प्रकार यहाँ पर लट् से विशिष्ट काल लट् से वाच्य होता है लट् का वैशिष्ट्य काल में स्वप्रयोगाधिकरणत्व सम्बन्ध से ले जाना है। इसमें भी स्वत्व सम्बन्ध घटकतया प्रविष्ट नहीं है बल्कि परिचायक मात्र है। अतः अननुगम नहीं होता है। चूँकि विशेष करके तत्तत् कालविशेष का बोध अनुभवसिद्ध है, अतः सर्वनाम शक्ति में बुद्धिस्थत्व की तरह लडादि शक्ति में शब्दप्रयोगाधिकरणत्व का उपलक्षण विधया प्रवेश करना चाहिए। अर्थात् यद्यपि काल शब्दप्रयोगाधिकरणत्वेन बोधित नहीं होता है फिर भी शब्दप्रयोगाधिकरणकाल ही बोधित

होता है। शब्द प्रयोगाधिकरण वृत्ति कालत्वव्याप्यधर्मत्वेन तत्तत्काल ही उपलक्षणीय हैं, अतः तत्तत्काल व्यक्तियों के तत्तत्कालत्वेन वाच्य न होने पर भी उनका भान होने में कोई अनुपपत्ति नहीं है।

अथ शब्दप्रयोगाधिकरणवृत्तिकालत्वव्याप्यधर्मो वर्षत्वादिकमपि, कालद्वयावृत्तिधर्मत्वनिवेशेऽप्येतद्रूपमासत्वादिव्यावर्तनमशक्यम्, क्षणद्वयावृत्तिक्षणवृत्तिधर्मत्वेन तद्व्यावर्तने चाध्ययनाद्यनधिकरणेऽप्यध्ययनाद्यधिकरणस्थूलकालान्तर्गतक्षणेऽसमाप्तारब्धाध्ययने पुंसि 'चिन्तामणिमयमधीते' इत्यादिप्रयोगानुपपत्तिः।

लेकिन शब्दप्रयोगाधिकरणवृत्ति कालत्वव्याप्य धर्म वर्षत्व आदि भी हैं (इसलिए किसी ने यदि एक घंटे पढ़ा है तो उसके लिए वर्ष भर **'अयं पठति'** प्रयोग की आपत्ति है या इस प्रयोग से पठनानुकूल कृति में वर्षवृत्तित्व बोधित होना चाहिए क्योंकि लट्प्रयोगाधिकरणकालवृत्ति कालत्वव्याप्यधर्मत्वेन तत्तत्काल भासता है और वैसा धर्म वर्षत्व भी है) कालद्वयावृत्तित्व निवेश करने पर भी एतद्रूप- शब्दप्रयोगाधिकरण वृत्तिकालत्वव्याप्य धर्म- मासत्वादि का व्यावर्तन अशक्य है (वर्ष के सखण्ड होने से वर्षत्व कालद्वयवृत्ति ही है बारह मासों का समूह वर्ष होता है इसलिए एकाधिक मासरूप काल में वर्षत्व रहता है। किन्तु मासत्व के अखण्ड कालोपाधि होने से मासत्व में तो कालद्वयावृत्तित्व ही है) क्षणद्वयावृत्ति क्षणवृत्तिधर्मत्वेन मासत्वादि का व्यावर्तन करने पर (मासत्व के क्षणद्वयवृत्ति होने से उसका व्यावर्तन हो जायेगा) तो अध्ययनादि के अनधिकरण में भी अध्ययनाद्यधिकरण स्थूल कालान्तर्गत क्षण में असमाप्त आरब्ध अध्ययन वाले पुरुष में **'चिन्तामणिमयम धीते'** इत्यादि प्रयोगों की अनुपपत्ति होगी। चिन्तामणि का अध्ययन बड़े समय तक चलेगा उतने समय तक ऐसा प्रयोग होता है, किन्तु बीच में कुछ क्षण ऐसे भी होते हैं जब पढ़ने वाला कुछ और कर रहा होता है। किन्तु उस समय भी ऐसा प्रयोग होता है यह अनुपपन्न होगा क्योंकि क्षणद्वयावृत्ति अध्ययन नहीं है। इसलिए इस तरह से आप इस आपत्ति का वारण नहीं कर सकते ।

यदि च स्वप्रागभावानधिकरणस्वाश्रयकर्तृकप्रकृतक्रियानाशप्रागभावाधिकरणशब्दप्रयोगाधिकरणकाल एव वर्तमानकाल आधेयता सम्बन्धेन कृतावन्वेत्यतो नोक्तस्थले 'चिन्तामणिमयमधीते' इत्यादि प्रयोगानुपपत्तिः, आरम्भावधिसमाप्तिपर्यन्तस्य स्थूलकालस्यापि तथात्वेन शब्दप्रयोगाधिकरणक्षणादिरूपान्तरालकालेऽध्ययनाद्यनुकूलकृतिविच्छेदेऽपि शब्दप्रयोगाधिकरणत्वोपलक्षिततादृशस्थूलकालवृत्तित्वस्यापि तादृशक्रियानुकूलकृतावबाधेन योग्यतानिर्वाह इत्युच्यते?

तदा यः समग्रचिन्तामणिमधीत्य किञ्चित्कालोत्तरं पुनश्चिन्तामणि मध्येष्यते तत्रान्तरालदशायामपि 'अयं चिन्तामणिमधीते' इति प्रयोगापत्तिः।

यदि स्तुतिपाठादिविच्छेददशायामपि 'प्रत्यहं स्तुतिं पठति' इत्यादि वदुक्तस्थलेपि दर्शितप्रयोग इष्ट एवेत्युच्यते? तदापि स्वपदेन विशिष्य तत्तत्कृ-तीनामुपादानेनाननुगमो दुरुद्धर एव,

यदि स्वप्रागभावानधिकरण स्वाश्रयकर्तृक प्रकृतक्रियानाशप्रागभावाधिकरण शब्दप्रयोगाधिकरण काल ही वर्तमान काल है और आधेयता सम्बन्ध से कृति में अन्वित होता है इसलिए उक्त स्थल में— असमाप्तारब्ध चिन्तामण्यध्ययनस्थल में **'चिन्तामणि मयमधीते'** इत्यादि प्रयोगों की अनुपपत्ति नहीं है क्योंकि आरम्भावधिसमाप्तिपर्यन्त स्थूल काल के वैसा होने के कारण शब्दप्रयोगाधिकरणक्षणादिरूप अन्तरालकाल में अध्ययना द्यनुकूल कृति का विच्छेद होने पर भी शब्दप्रयोगाधिकरणत्वोपलक्षित तादृशस्थूलकाल वृत्तित्व का भी तादृश क्रियानुकूल कृति में बाध न होने के कारण योग्यता निर्वाह हो जाता है— ऐसा कहा जाये ऐसा कहने पर उपर्युक्त अनुपपत्ति तो नहीं है। देखें— स्व माने कृति को समझना है। उक्त स्थल में अध्ययनानुकूलकृतिप्रागभाव का अनधिकरण अध्ययनानुकूल कृत्याश्रयेदंपदार्थकर्तृक अध्ययनक्रियानाश प्रागभाव का अधिकरण और शब्दप्रयोगाधिकरण काल वर्तमानकाल है। बीच का अन्तराल भी जब कि पढ़ने वाला कुछ और कर रहा है उस अन्तराल को बीच में लेते हुए स्थूल काल ही अध्ययनानुकूल कृति प्रागभाव का अनधिकरण और अध्ययनानुकूलकृत्याश्रयकर्तृकाध्ययननाशप्रागभाव का अधिकरण होगा क्योंकि अध्ययन नाश अभी नहीं हुआ है। इसलिए अन्तराल में भी वैसा प्रयोग उपपन्न होता है। क्योंकि अन्तराल काल में प्रयोग होने पर भी अध्ययनानुकूलकृति में स्वप्रागभावानधिकरण स्वाश्रय-कर्तृकाध्ययननाशप्रागभावाधिकरण शब्दप्रयोगाधिकरण काल वृत्तित्व रूप वर्तमानत्व अबाधित होने से बोधित हो सकता है।

तो जो व्यक्ति समग्र चिन्तामणि का अध्ययन करने के उपरान्त पुनः चिन्तामणि का कुछ काल के बाद अध्ययन करेगा उस समय भी अन्तरालदशा में **'अयं चिन्तामणिम धीते'** इस प्रयोग की आपत्ति आयेगी। क्योंकि प्रथम अध्ययनानुकूल कृति प्रागभाव का अनधिकरण भी अन्तराल है और आगे किये जाने वाले अध्ययन के नाश के प्रागभाव का अधिकरण व शब्दप्रयोगाधिकरण है। इसलिए तादृशकालवृत्तित्व रूप वर्तमानत्व अध्ययनानुकूल कृति में उससमय भी अबाधित है।

यदि स्तुतिपाठादि विच्छेददशा में भी **'प्रत्यहमयं स्तुतिं पठति'** इत्यादि की तरह उक्तस्थल में भी समग्र चिन्तामणि का अध्ययन करने के उपरान्त कुछ काल के बाद जो व्यक्ति अध्ययन करेगा उस व्यक्ति के लिए अन्तराल दशा में भी दर्शित प्रयोग **'अयं चिन्तामणिमधीते'** प्रयोग इष्ट ही है, ऐसा कहा जाये? तो भी स्वपद से विशेष करके तत्तत् कृतियों का उपादान करने पर अननुगम दुरुद्धर ही है।

इति चेत् ? न शब्दप्रयोगाधिकरणवृत्तिकालत्वव्याप्यधर्मत्वेनोप लक्षणेनानुगतीकृत्य तत्तत्क्षणदिनमासवर्षत्वाद्यवच्छिन्ने एव काले लटः शक्तिः। क्रियारम्भात् पूर्वं कर्मसमाप्त्युत्तरञ्च 'अधीते' 'पचति' इत्यादिप्रयोग

वारणाय कृत्यादिरूपव्यापारे तादृशकालस्य स्ववृत्तिप्रागभावाप्रतियोगित्व स्ववृत्तिध्वंसाप्रतियोगिप्रकृतक्रियाकर्तृनिष्ठत्वाभ्यां विशेषितेनाधेयता-सम्बन्धेनान्वयनियम उपगन्तव्यः, तत्तत्क्रियारम्भपूर्वमपि तत्समाप्त्युत्तरमपि वा वर्तते यस्तत्तत्क्रियानुकूलकृत्यधिकरणकालस्तस्य दर्शितविशिष्टा-धेयतासम्बन्धस्तादृशकृतौ बाधितोऽप्रसिद्धो वेति न शब्दप्रयोगाधिकरण-तादृशकालमादाय दर्शितप्रयोगापत्तिः। सम्बन्धे स्वपदार्थस्य विशिष्य निवेशेऽप्युपपत्तिश्चिन्त्या ।

तो ऐसा नहीं है शब्दप्रयोगाधिकरणवृत्ति कालत्वव्याप्यधर्मत्व रूप उपलक्षण से अनुगत करके तत्तत् क्षणदिनमास वर्षत्व आदि से अवच्छिन्न काल में ही लट् की शक्ति है अर्थात् कहीं पर वर्ष का कहीं पर मास का कहीं पर क्षण का लट् से बोध होता हैं और ये वर्ष, मास, क्षण आदिरूप काल शब्दप्रयोगाधिकरणवृत्ति कालत्वव्याप्यधर्मत्व से उपलक्षित हैं। क्रिया शुरु होने से पहले और क्रिया समाप्त होने के बाद **अधीते, पचति** इत्यादि प्रयोगों का वारण करने के लिए कृति आदि रूप व्यापार में (आख्यातार्थ कृति में) तादृशकाल का— शब्दप्रयोगाधिकरणवृत्तिकालत्वव्याप्यधर्मोपलक्षित काल का स्ववृत्तिप्राग-भावाप्रतियोगित्व, स्ववृत्तिध्वंसाप्रतियोगिप्रकृतक्रियाकर्तृनिष्ठत्व इन दोनों से विशेषित आधेयता सम्बन्ध से अन्वय का नियम स्वीकारना चाहिए, तत्तत् क्रिया की शुरुआत के पूर्व भी और उस क्रिया की समाप्ति के बाद भी जो तत्तक्रियानुकूल कृत्यधिकरण काल है, उस काल का दर्शित विशिष्टाधेयता सम्बन्ध वैसी कृति में बाधित है अथवा अप्रसिद्ध है, इसलिए शब्दप्रयोगाधिकरण वैसे काल को लेकर दर्शित प्रयोग की आपत्ति नहीं है। सम्बन्ध में स्व पदार्थ का विशेष करके निवेश में भी उपपत्ति चिन्त्य है।

यहाँ पर गदाधर बता रहे हैं कि लट् का अर्थ शब्दप्रयोगाधिकरण वृत्ति कालत्वव्याप्य धर्मत्वेन अनुगत कालत्वव्याप्यधर्म से अवच्छिन्न काल ही है। तथा उस काल का कृति में अन्वय सामान्यतः आधेयता सम्बन्ध से नहीं होता है बल्कि स्ववृत्तिप्रागभावाप्रतियोगित्व और स्ववृत्तिध्वंसाप्रतियोगि प्रकृतक्रियाकर्तृनिष्ठत्व से विशिष्ट आधेयता सम्बन्ध से होता है। जहाँ पर क्रिया शुरु नहीं हुई है वहाँ पर क्रियानुकूलकृति में कालवृत्ति प्रागभाव का प्रतियोगित्व ही है क्योंकि क्रियानुकूल कृति का प्रागभाव अभी मौज़ूद है। जहाँ पर क्रिया शुरु हो चुकी है वहाँ पर ही कृति में कालवृत्तिप्रागभाव का अप्रतियोगित्व रहेगा क्योंकि उस कृति का प्रागभाव तो नष्ट हो चुका। इसलिए क्रिया शुरु होने के पहले **पचति, अधीते** आदि प्रयोग नहीं होते हैं। जहाँ पर क्रिया समाप्त हो चुकी है वहाँ पर काल (शब्द प्रयोगाधिकरण काल) वृत्ति ध्वंस की अप्रतियोगी प्रकृत क्रिया नहीं होगी, प्रतियोगी ही होगी इसलिए कालवृत्ति ध्वंसाप्रतियोगि प्रकृतक्रियाकर्तृनिष्ठत्व कृति में न जायेगा, क्रिया समाप्त न होने पर ही जायेगा क्योंकि तभी प्रकृत क्रिया कालवृत्तिध्वंस की अप्रतियोगी होगी। क्रिया समाप्त होने पर तो कालवृत्तिध्वंसाप्रतियोगि प्रकृतक्रियाकर्तृनिष्ठत्व अप्रसिद्ध ही होगा। इसलिए क्रिया शुरु होने के पहले और क्रिया समाप्त होने के बाद **पचति, अधीते** इत्यादि प्रयोगों की आपत्ति नहीं है किन्तु इसमें एक समस्या है कि स्वपदार्थ का सम्बन्धघटकतया

निवेश होने से अननुगम होगा। इसके लिए गदाधर का कहना है कि इसके लिए उपपत्ति सोचनी चाहिए। इस विषय में गूढार्थतत्त्वालोककार का कहना है कि स्ववृत्तिप्रागभावप्रतियोगित्व सम्बन्ध से अवच्छिन्न स्वनिष्ठ अवच्छेदकताक प्रतियोगिताक भेद आदि की संसर्गता स्वीकारने पर स्वपदार्थ के संसर्गाघटक होने के कारण क्षति नहीं है। इसका आशय है कि उस कालवत् का भेद ही सम्बन्धतया विवक्षित है और स्ववृत्तिप्रागभाव प्रतियोगित्व सम्बन्ध से कालवत् लेना है अर्थात् 'स्ववृत्तिप्रागभावप्रतियोगित्वसम्बन्धेन कालवान्' इस भेद को सम्बन्ध मानेंगे। जिसका प्रागभाव काल में रहेगा वही इस सम्बन्ध से कालवत् होगा। इसलिए क्रिया शुरु होने के बाद कृति का प्रागभाव काल में न रहने से कृति इस सम्बन्ध से कालवत् नहीं होती है। तथा इस भेद से विशिष्ट आधेयता सम्बन्ध से काल का सम्बन्ध कृति में विवक्षित है। इस प्रकार अननुगम नहीं होता है। इसी प्रकार से स्ववृत्तिध्वंसाप्रतियोगिक्रियाकर्तृनिष्ठत्व का भी परिष्कार कर सकते हैं।

न च क्रियानुकूलकृतिशून्यान्तरालदशायां स्थूलकालमादाय 'पचति' 'अधीते' इत्यादिवत् तादृशकृत्यधिकरणक्षणेऽपि स्थूलकालावच्छिन्नाभावमादाय 'न पचति' 'नाधीते' इत्यादिप्रयोगः— तत्र नञो वर्तमानक्षणमात्रान्वित-तादृशक्रियानुकूलकृत्यभावबोधकतानियमात्, उक्तरीत्या विशिष्टशब्द-प्रयोगाधिकरणक्षणादिरूपकालस्यापि लट्प्रत्ययेन बोधनसम्भवात् ।

यदि कहो कि क्रियानुकूलकृतिशून्य अन्तरालदशा में स्थूल काल को लेकर जैसे **'पचति' 'अधीते'** इत्यादि प्रयोग होते हैं, उसी तरह क्रियानुकूल कृत्यधिकरण क्षण में भी स्थूल कालावच्छिन्न अभाव को लेकर **'न पचति' 'नाधीते'** इत्यादि प्रयोग होना चाहिए तो ऐसा नहीं है क्योंकि वहाँ पर नञ् की वर्तमानक्षणमात्रान्वित तादृशक्रियानुकूलकृत्यभाव बोधकता का नियम है और उक्त रीति से विशिष्ट शब्दप्रयोगाधिकरण क्षणादिरूप काल का भी लट् प्रत्यय से बोधन सम्भव है।

यहाँ पर आक्षेप करने वाले का पूछना है कि कोई व्यक्ति यदि अध्ययन आरम्भ कर चुका है और अभी अध्ययन समाप्त नहीं हुआ, इसी प्रकार अन्य क्रियाओं के विषय में भी क्रिया प्रारम्भ हो चुकी हो और समाप्त न हुई हो, तो बीच में अध्ययनादि क्रियानुकूल कृति न रहने पर भी उस बीच के समय में **'पचति' 'अधीते'** इत्यादि प्रयोग होते हैं। इसी प्रकार बीच में कुछ क्षण अध्ययन है, उसके आगे और पीछे अध्ययनानुकूल कृति नहीं है। ऐसी स्थिति में उस बीच के काल में, जिस काल में कि अध्ययनानुकूल कृति है **'नाधीते' 'न पचति'** इत्यादि प्रयोग स्थूल काल को आधार बनाकर क्यों नहीं होते हैं? इसका उत्तर यह दिया जा रहा है कि उक्त स्थल में नञ् के द्वारा वर्तमानक्षणमात्रान्वित तादृशक्रियानुकूल कृत्यभाव ही नियम से बोधित होता है और उक्तरीति से शब्द प्रयोगाधिकरणवृत्तिकालत्वव्याप्य धर्मत्वेन- विशेष करके शब्दप्रयोगाधिकरणक्षणादिरूप काल का भी प्रत्यायन सम्भव है। आशय यह है कि उक्त स्थल में चूँकि नियम से वर्तमान क्षण मात्र से अन्वित तादृशक्रियानुकूल कृत्यभाव ही बोधित होता है, वर्तमानकाल दिवसादि से अन्वित तादृश क्रियानुकूल कृत्य

भाव नहीं बोधित होता है। इसलिए स्थूल काल को आधार बनाकर 'नाधीते 'न पचति' प्रयोग नहीं होते हैं। यदि वर्तमान काल दिवसादि से अन्वित तादृशक्रियानुकूल कृत्यभाव बोधित होता तो उसे बोधित करने के लिए उक्त प्रयोग हो सकता था।

नञ्समभिव्याहारस्थलेऽपि प्रतियोगिन्येव कालान्वय इति तु न सत् तत्तत्क्षणवृत्तिपाकादिकृतेरभावस्यान्यक्षणावच्छेदेन तदानीतंनस्थूलकालावच्छेदेन तादृशकृतिमति सत्त्वेनोक्तातिप्रसङ्गस्य दुर्वारत्वात् ।

नञ् समभिव्याहारस्थल में भी प्रतियोगी में ही काल का अन्वय होता है ऐसा कहना तो सही नहीं है क्योंकि तत्क्षणवृत्तिपाकादिकृति के अभाव के अन्यक्षणावच्छेदेन तदानीन्तन स्थूल कालावच्छेदेन तादृश कृतिमत् में रहने के कारण अतिप्रसङ्ग दुर्वार होगा।

कुछ अन्य लोग उपर्युक्त आपत्ति का वारण करने के लिए कहते हैं कि नञ्समभिव्याहारस्थल में भी प्रतियोगी में ही कृति में ही काल का अन्वय होता है, कृत्यभाव में नहीं। इस कारण अध्यनानुकूल कृति के शब्दप्रयोगाधिकरण क्षण में रहने पर वर्तमान काल शब्दप्रयोगाधिकरण क्षण में वृत्ति अध्ययनानुकूल कृति का अभाव नहीं बोधित किया जा सकता है। इसलिए 'न पचति' 'नाधीते' इत्यादि प्रयोग की आपत्ति नहीं है। तो ऐसा कहना अनुचित है क्योंकि वहाँ पर भी वर्तमान काल शब्दप्रयोगाधिकरण क्षण में वृत्ति अध्ययनानुकूल कृति का अभाव तो स्थूल कालावच्छेदेन है ही, यह कुछ उसी तरह से है कि जैसे वृक्ष में शाखावच्छेदेन कपिसंयोग है और मूलावच्छेदेन नहीं है। उसी प्रकार वर्तमान क्षणमात्रान्वित अध्ययनानुकूल कृति का अभाव वर्तमाननक्षणावच्छेदेन नहीं होने पर भी वर्तमानदिवसावच्छेदेन तो है ही। वर्तमान दिवस भर तो वर्तमान क्षण मात्रान्वित अध्ययनानुकूल कृति नहीं है। इसलिए स्थूलकालावच्छेदेन—दिवसाद्यवच्छेदेन वर्तमानक्षणमात्रान्वित अध्ययनानुकूल कृति के अभाव के रहने के कारण 'न पचति' 'नाधीते' प्रयोग की आपत्ति यथावत् है।

न च कालानवच्छिन्नाधारतासम्बन्धेन नञर्थस्य पुरुषेऽन्वयान्नोक्तातिप्रसङ्ग इति वाच्यम्; तादृशस्थूलकाले यत्रात्मनि पाकादिकृतिस्तादृश कालान्तर्गततादृशकृत्यनधिकरणक्षणे 'न पचति' इत्यादिप्रयोगोपपत्तये तत्तत्क्षणावच्छिन्नपाकादिकृत्यभावबोधस्यैव तत्र तत्र स्वीकरणीयतया क्वचित् प्रतियोग्यप्रसिद्धेर्दुवारत्वात् ।

यदि कहो कि कालानवच्छिन्न आधारतासम्बन्ध से नञर्थ का पुरुष में अन्वय होने के कारण उक्त अतिप्रसङ्ग नहीं है क्योंकि वहाँ पर तो आप पाकाद्यनुकूल कृति के अभाव का स्थूल कालावच्छेदेन पुरुष में अन्वय कर रहे हैं। तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि वैसे स्थूल काल में— शब्दप्रयोगाधिकरणीभूत स्थूल काल में- जिस आत्मा में पाकादि कृति है तादृश कालान्तर्गत तादृश कृत्यनधिकरण क्षण में 'न पचति' इस प्रयोग की उपपत्ति के लिए तत्तत्क्षणावच्छिन्न पाकादिकृत्यभाव बोध के ही वहाँ स्वीकरणीय होने के कारण कहीं पर प्रतियोगी की अप्रसिद्धि दुर्वार होगी। उत्तर पक्षी का कहना है कि आप कालानवच्छिन्नआधारता

सम्बन्ध से नञर्थ का पुरुष में अन्वय नहीं स्वीकार कर सकते हैं क्योंकि ऐसा स्वीकारने पर शब्दप्रयोगाधिकरण स्थूल काल में जिस आत्मा में कृति है, उस काल के अन्तर्गत पाकानुकूल कृति के अनधिकरण क्षण में 'न पचति' प्रयोग नहीं हो सकेगा जोकि होता है। क्योंकि वहाँ पर तो पुरुष में शब्दप्रयोगाधिकरणीभूत स्थूलकालवृत्ति पाकानुकूल कृति का अभाव कालानवच्छिन्न आधारता सम्बन्ध से नहीं बोधित हो सकता है। और यदि कालावच्छिन्न आधारता सम्बन्ध से पुरुष में पाकाद्यनुकूल कृत्यभाव का अन्वय आप ने स्वीकार लिया तो कहीं पर प्रतियोगी की शब्दप्रयोगाधिकरणीभूतक्षणावच्छिन्न पाकाद्यनुकूलकृति की– अप्रसिद्धि दुर्वार ही होगी। जहाँ पर शब्दप्रयोगाधिकरण क्षण में पाकानुकूल कृति नहीं है वहीं पर आप शब्दप्रयोगाधिकरणक्षणवृत्ति तादृशकृतिप्रतियोगिक अभाव का बोध किञ्चित् क्षणावच्छेदेन स्वीकारेंगे किन्तु वहाँ पर तो शब्दप्रयोगाधिकरणक्षणवृत्तितादृशकृति ही अप्रसिद्ध होगी।

व्यापाराबोधकेन च लडादिप्रत्ययेन क्रियायामेव वर्तमानत्वान्वयो बोध्यते 'जानाति' इत्यादौ, न तु लडर्थाश्रयत्वादौ– ज्ञानाद्यसत्त्वेऽपि तदाश्रयत्वादिसम्बन्धे सति 'जानाति' इत्यादिप्रयोगापत्तेः। ज्ञानादिविशिष्ट आश्रयत्वादौ कालान्वयमुपगम्यातिप्रसङ्गवारणे विशेषणे ज्ञानादावपि तदन्व यस्यावश्यकत्वे तस्यैव स्वीकारौचित्यात् ।

व्यापारा बोधक— कृत्यबोधक— लडादि प्रत्यय के द्वारा क्रिया में ही वर्तमानत्व का अन्वय बोधित होता है 'जानाति' इत्यादि स्थलों में, लडर्थ आश्रयत्वादि में नहीं क्योंकि ज्ञानादि न रहने पर भी ज्ञानाश्रयत्वादि सम्बन्ध होने पर 'जानाति' इत्यादि प्रयोगों की आपत्ति होगी। ज्ञानादिविशिष्ट आश्रयत्व आदि में काल का अन्वय स्वीकार कर अतिप्रसङ्ग का वारण करने पर विशेषणीभूत ज्ञानादि में भी आख्यातार्थ काल का अन्वय आवश्यक होने के कारण उसी के स्वीकार का औचित्य है।

'जानाति' 'करोति' इत्यादि स्थलों में आख्यात का अर्थ आश्रयत्व है कृति नहीं। इन स्थलों में क्रिया में ही वर्तमानत्व लट् द्वारा बोधित होता है। क्योंकि सामान्यतः आश्रयत्व में वर्तमानत्वान्वय करने पर ज्ञानादि न रहने पर भी ज्ञानाद्याश्रयत्व के रहने के कारण 'जानाति' इत्यादि प्रयोगों की आपत्ति होगी। यदि ज्ञानाद्याश्रयत्व में वर्तमानत्व का अन्वय करें तो ज्ञानादि में भी करना आवश्यक होगा, अतः केवल ज्ञानादि में ही वर्तमानत्व का अन्वय उचित है।

'नश्यति' इत्यादौ क्रियायां कालान्वयस्वीकारे विनष्टादावपि 'नश्यति' इत्यादिप्रयोगः स्यादिति तत्रोत्पत्तेरपि लडाद्यर्थत्वमुपगम्य तत्रैव कालान्वयं दीधितिकृदुपजगाम।

वस्तुतस्तु- नाशत्वमुत्पत्तिमदभावत्वं तथा च धातुप्रति पाद्यतावच्छेद-कोत्पत्तावेव कालान्वय इत्येव साधीयः। वर्तमानकालस्योत्पत्ति सम्बन्धेन धात्वर्थेऽन्वय इत्यपि वदन्ति।

'नश्यति' इत्यादि स्थलों में क्रिया में काल का अन्वय स्वीकारने पर विनष्ट आदि में भी 'नश्यति' इत्यादि प्रयोग होने लगेंगे (क्योंकि नाशरूपा क्रिया तो विद्यमान ही है) इसलिए वहाँ पर उत्पत्ति के भी लडाद्यर्थत्व को स्वीकार करके उस उत्पत्ति में ही वर्तमान काल का अन्वय दीधितिकार ने स्वीकार किया है। इस प्रकार दीधितिकार के मत में **'घटो नश्यति'** से **'वर्तमानोत्पत्तिकनाशप्रतियोगि घटः'** ऐसा बोध होता है।

वस्तुतः तो नाश का अर्थ उत्पत्तिमदभाव है, इस प्रकार धातुप्रतिपाद्यतावच्छेदकीभूत उत्पत्ति में ही काल का अन्वय होता है यही उचित है। इस मत में **'वर्तमानोत्पत्तिमद भावप्रतियोगी घटः'** ऐसा बोध इस वाक्य से होता है।

वर्तमान काल का उत्पत्ति सम्बन्ध से धात्वर्थ में अन्वय होता है ऐसा भी कहते हैं। इसमत में **'उत्पत्तिसम्बन्धेन वर्तमानकालविशिष्टाभावप्रतियोगी घटः'** ऐसा बोध इस वाक्य से होता है।

लृट्प्रत्ययेन 'पक्ष्यति' इत्यादौ प्रत्ययार्थकृतौ 'ज्ञास्यति' इत्यादौ क्रियायां भविष्यत्त्वं प्रत्याख्यते। यद्यपि भुव उत्पत्त्यर्थकतयाऽनागतकालोत्पत्तिकत्वं भविष्यच्छब्दार्थस्तथापि 'पक्ष्यति' इत्यादौ प्रत्ययार्थकृत्यादावनागतत्वमात्रस्य प्रतीतिरुपेयते– उत्पत्तिप्रतीतेर्निष्फलत्वात्। 'भविष्यति' 'उत्पत्स्यते' इत्यादौ च धातुनैव तादृशोत्पत्तिः प्रत्याय्यते। 'नङ्क्ष्यति' इत्यादौ च दर्शिता गतिः। तथा च वर्तमानप्रागभावप्रतियोगित्वं प्रतियोगितासम्बन्धेनान्वयी वर्तमान-प्रागभावो वा लृट् प्रत्ययार्थः। प्रागभावानङ्गीकारे वर्तमानकालध्वंस एव तदर्थः ध्वंसस्य कालोपाधित्वेन स्वसमानकालपदार्थाधारतयाऽऽधेयता-सम्बन्धेन, अनागतकृतेवर्तमानकालध्वंसोत्पत्तिमत्तया उत्पत्तिसम्बन्धेन वा कृत्यादावन्वयः।

लृट् प्रत्यय के द्वारा **'पक्ष्यति'** इत्यादि स्थलों में प्रत्ययार्थ कृति में और **'ज्ञास्यति'** इत्यादि स्थलों में क्रिया में भविष्यत्त्व प्रत्याय्यित होता है। यद्यपि भू धातु के उत्पत्त्यर्थक होने के कारण भविष्यत् शब्द का अर्थ अनागतकालोत्पत्तिकत्व होता है तथापि **'पक्ष्यति'** इत्यादि स्थलों में प्रत्ययार्थ कृति आदि में (और **'ज्ञास्यति'** इत्यादि स्थलों में धात्वर्थ ज्ञानादिक्रिया में) अनागतत्व मात्र की प्रतीति स्वीकारी जाती ही (अनागत कालोत्पत्तिकत्व की प्रतीति नहीं स्वीकारी जाती है) क्योंकि उत्पत्ति प्रतीति निष्फल है। (बग़ैर उत्पत्ति प्रतीति के केवल अनागतत्व की प्रतीति से भी कृति और क्रिया का अनागतकालोत्पत्तिकत्व बोधित हो जाता है) **'भविष्यति' 'उत्पत्स्यते'** इत्यादि स्थलों में तो धातु के द्वारा ही उत्पत्ति की प्रतीति होती है (इसलिए यहाँ पर तो अनागतकालोत्पत्तिकत्व रूप भविष्यत्त्व की प्रतीति निरर्थक ही है केवल अनागतत्व प्रतीति से काम चल सकता है) **'नङ्क्ष्यति'** इत्यादि स्थलों के लिए तो मार्ग दिखा ही दिया है। (मार्ग दिखा देने का आशय यह है कि उत्पत्तिमदभाव नाश पदार्थ है, उसके एक देश उत्पत्ति में अनागतत्व का अन्वय होकर बोध हो जायेगा) इस प्रकार वर्तमानप्रागभावप्रतियोगित्व अथवा प्रतियोगितासम्बन्ध से अन्वयी

प्रागभाव ही लृट् प्रत्यय का अर्थ है। प्रागभाव का अङ्गीकार न करने पर वर्तमान कालध्वंस ही लृट् प्रत्यय का अर्थ है। ध्वंस के कालोपाधि होने से अपने समानकालीन पदार्थ का आधार होने के कारण आधेयतासम्बन्ध से अथवा अनागत कृति के वर्तमानकालध्वंसोत्पत्तिमत् होने के कारण उत्पत्ति सम्बन्ध से कृति आदि में अन्वय होता है।

लृट प्रत्यय के द्वारा सारतः अनागतत्व की प्रतीति होती है। तो अनागतत्व क्या चीज़ है? कैसा अनागतत्व लृट् के द्वारा प्रतीत होता है? तो इसका उत्तर दिया कि वर्तमान प्रागभावप्रतियोगित्व ही अनागतत्व और लृट्प्रत्यय का अर्थ है। अथवा वर्तमानप्रागभाव ही लृट् प्रत्यय का अर्थ है उसका कृति में प्रतियोगिता सम्बन्धं से अन्वय होने से अनागतत्व लब्ध हो जाता है। इस प्रकार या तो **'पक्ष्यति'** आदि से पाकानुकूलकृति में वर्तमान प्रागभावप्रतियोगित्व की प्रतीति होती है अथवा प्रतियोगितासम्बन्ध से वर्तमानप्रागभाव की प्रतीति होती है।

दीधितिकार ने प्रागभाव का सामान्यलक्षणाप्रकरण में खण्डन कर दिया है। उन्होंने स्पष्टतः कहा है कि- **'अथैवं जातो घट इत्यादिवदुत्पन्नो घटध्वंस इत्यादिविलक्षणप्रत्यय बलेन नाशोऽतिरिच्यतां न तु प्रागभावः'** (पृ. 219-220) तथा इसी कारण उन्होने **'भविष्यत्त्वं हि न वर्तमानप्रागभावप्रतियोगित्वम्'** (पृ. 203) के द्वारा वर्तमानप्रागभाव प्रतियोगित्व रूप भविष्यत्व का भी खण्डन कर दिया है। इसीलिए गदाधर यहाँ पर **'प्रागभावानङ्गीकारे'** प्रतीक से अन्य रीति से भी भविष्यत्त्व का निर्वचन कर रहे हैं। इस पक्ष में वर्तमानकालध्वंस ही अनागतत्व है। ध्वंस जन्य होने के कारण कालोपाधि है **'जन्यमात्रं कालोपाधिः'** कहा जाता है। कालोपाधि में कालिक सम्बन्ध से समान कालीन सभी पदार्थ रहते हैं। इसलिए अनागत कृति वर्तमानकालध्वंसात्मक कालोपाधि में रहेगी। इस कारण अनागत कृति आदि में वर्तमानकालध्वंस का आधेयता सम्बन्ध से अन्वय हो जायेगा। अथवा अनागत कृति आदि में वर्तमानकालध्वंस का अन्वय उत्पत्ति सम्बन्ध से हो जायेगा क्योंकि वर्तमानकालध्वंसात्मक कालोपाधि में अनागतकृति उत्पन्न होगी।

अथ पचमानेप्युदीच्यपाकानुकूलकृतिमादाय 'पक्ष्यति' इत्यादि प्रयोगापत्तिः। पाकानुकूलकृतित्वावच्छेदेन चानागतत्वस्वीकारो न सम्भवति– पूर्वपूर्वपाकानुकूलकृतौ तद्बाधात् पक्ष्यमाणेऽपि 'पक्ष्यति' इति प्रयोगानुपपत्तेः।

तत्तत्पाकानुकूलकृतित्वावच्छेदेनापि तदन्वयासम्भवः– तत्तपाकत्वेन पदादनुपस्थितेः।

नापि यत्किञ्चित्पाकानुकूलाद्यकृतित्वावच्छेदेन तदन्वयःआद्यत्वोपस्थापकपदाभावात्, तत्तद्व्यक्तिमनन्तर्भाव्य दुर्वचत्वाच्चेति चेत्?

न, प्रागभावस्य वर्तमानत्वम् = शब्दप्रयोगाधिकरणक्षणवृत्तित्वम्, वर्तमानप्रागभावस्य प्रत्ययार्थत्वे तस्य स्वविशिष्टकालवृत्तिकृतिजन्यपाकाननुकूलत्वविशिष्टप्रतियोगितासम्बन्धेन, वर्तमानकालध्वंसस्य तदर्थत्वे

च स्वपूर्वकालीनकृतिजन्यपाकाननुकूलत्वविशिष्टाधेयतासम्बन्धेन कृत्यंशेऽन्वयोपगम उदीच्यकृतौ वर्तममानप्रागभावादेर्दर्शितविशिष्टसम्बन्धासत्त्वेनातिप्रसङ्गविरहात् । ध्वंसपूर्वत्वञ्च तदनधिकरणत्वमेव।

लेकिन पाक कर रहे पुरुष में भी आगे की पाकानुकूलकृति को लेकर '**पक्ष्यति**' इत्यादि प्रयोगों की आपत्ति है। इस अक्षेप का आशय यह है कि एक ही पाकक्रिया के भीतर अनेक अवान्तर व्यापार होते हैं और तत्तद्व्यापारों के प्रति अनुकूल तत्तत् कृति होती है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति पाक रहा है तभी आगे की पाकानुकूल कृति को आधार बनाकर '**पक्ष्यति**' प्रयोग होना चाहिए क्योंकि प्रागभावप्रतियोगित्व आदि रूप उपर्युक्त भविष्यत्व तो उस पाकानुकूल उदीच्य कृति में भी है ही, अतः शाब्दबोध की तो अयोग्यता नहीं ही है।

पाकानुकूलकृतित्वावच्छेदेन तो अनागतत्व भान नहीं सम्भव है, नहीं स्वीकारा जा सकता है क्योंकि पूर्व पूर्व पाकानुकूल कृतियों में अनागतत्व का बाध होने के कारण पक्ष्यमाण में भी—जहाँ पर पाकानुकूल कृति वाकई भविष्यत् कालीन है वहाँ भी- '**पक्ष्यति**' इस प्रयोग की अनुपपत्ति होगी। क्योंकि पाकानुकूल कृतित्वावच्छेदेन तो अनागतत्व बाधित है।

तत्तत् पाकानुकूलकृतित्वावच्छेदेन भी अनागतत्व का अन्वय असम्भव है क्योंकि तत्तत्पाकत्वेन पदों से उपस्थिति नहीं होती है। यदि तत्तत्पाकत्वेन पदों से उपस्थिति होती हो तभी तत्तत्पाकानुकूलकृतित्वावच्छेदेन अनागतत्व का अन्वय सम्भव हो सकता है।

यत्किञ्चित् पाकानुकूल आद्यकृतित्वावच्छेदेन भी अनागतत्व का अन्वय नहीं हो सकता है क्योंकि आद्यत्व का उपस्थापक नहीं है और तत्तद् व्यक्ति का अन्तर्भाव किये विना आद्यत्व दुर्वच है।

इस प्रकार न तो आप पाकानुकूलकृतित्वावच्छेदेन अनागतत्व का अन्वयबोध स्वीकार सकते हैं, न तो तत्तत्पाकानुकूलकृतित्वावच्छेदेन स्वीकार सकते हैं और न तो यत्किञ्चित् पाकानुकूल आद्यकृतित्वावच्छेदेन स्वीकार सकते हैं। तो ऐसा नहीं है (इस प्रकार स्वीकार सकते हैं) प्रागभाव का वर्तमानत्व शब्दप्रयोगाधिकरणक्षणवृत्तित्व है। वर्तमान प्रागभाव की प्रत्ययार्थता मानने पर वर्तमानप्रागभाव का स्वविशिष्टकालवृत्तिकृतिजन्यपाकाननुकूलत्वविशिष्ट प्रतियोगितासम्बन्ध से कृति अंश में अन्वय स्वीकारते है। वर्तमानकालध्वंस की प्रत्ययार्थता मानने पर स्वपूर्वकालीनकृतिजन्यपाकाननुकूलत्वविशिष्ट आधेयता सम्बन्ध से वर्तमानकालध्वंस का कृत्यंश में अन्वय स्वीकारते हैं। इसलिए उदीच्यकृति में वर्तमान प्रागभावादि का दर्शित विशिष्ट सम्बन्ध न होने से अतिप्रसङ्ग नहीं होता है। ध्वंसपूर्वत्व तो ध्वंस का अनधिकरणत्व ही है।

वर्तमानप्रागभाव को प्रत्ययार्थ मानने पर वर्तमानप्रागभाव का वाकई भविष्यत्कालिक कृति होने पर इस प्रकार अन्वय होता है— स्वमाने वर्तमान प्रागभाव, वर्तमानप्रागभावविशिष्ट काल वर्तमानकाल, वर्तमानकालवृत्ति कृति से जन्य पाक के प्रति भविष्यत्कालीनकृति अनुकूल नहीं होती है। तथा वह कृति वर्तमानप्रागभाव की प्रतियोगी भी है। इस प्रकार स्वविशिष्टकालवृत्तिकृतिजन्यपाकाननुकूलत्वविशिष्टप्रतियोगिता सम्बन्ध से भविष्यत् कालिक कृति में वर्तमान प्रागभाव का अन्वय होता है, अतः '**पक्ष्यति**' प्रयोग उपपन्न

होता है। व्यक्ति जब पाक कर रहा है तब उदीच्यकृति को आधार बनाकर 'पक्ष्यति' ऐसा प्रयोग नहीं हो सकता है क्योंकि उदीच्यकृति वर्तमानप्रागभावविशिष्ट वर्तमानकाल में वृत्ति कृति से जन्य पाक के प्रति अनुकूल ही है अननुकूल नहीं, अतः तादृशाननुकूलत्वविशिष्ट प्रतियोगिता सम्बन्ध से उदीच्य कृति में वर्तमान प्रागभावरूप प्रत्ययार्थ अन्वित नहीं हो सकता है।

वर्तमानकालध्वंस को प्रत्ययार्थ मानने पर भविष्यत्कालिककृति में वर्तमान कालध्वंस का स्वपूर्वकालीनकृतिजन्यपाकाननुकूलत्वविशिष्ट आधेयता सम्बन्ध से अन्वय इस प्रकार होता है। स्व माने वर्तमान कालध्वंस, वर्तमानकालध्वंस पूर्वकालीन कृति वर्तमानकालीन कृति, उससे जन्य पाक के प्रति भविष्यत्कालिक कृति का अनुकूलत्व नहीं है अननुकूलत्व है तथा कालोपाधि वर्तमानकाल ध्वंस में भविष्यत्कालिककृति वृत्ति है। इसलिए भविष्यत्कालिक कृति में वर्तमानकालध्वंस का स्वपूर्वकालीनकृतिजन्यपाकाननुकूलत्त्वविशिष्ट आधेयता सम्बन्ध से अन्वय बोध सम्भव होता है। उदीच्यकृति में तो वर्तमानकालध्वंसपूर्वकालीन कृति जन्य पाक के प्रति अनुकूलत्व ही है। अतः उसमें वर्तमान कालध्वंस रूप प्रत्ययार्थ का उक्त सम्बन्ध से अन्वयबोध बाधित होने के कारण 'पक्ष्यति' प्रयोग नहीं होता है।

न चान्तरालिककृतिजन्यस्य पच्यर्थव्यापारस्य पूर्वव्यापारानुकूल कृत्यजन्यतयाऽऽन्तरालिककृतेः पूर्वकृतिजन्यपाकाननुकूलत्वमक्षतमेवेति तस्या अपि निरुक्तविशिष्टसम्बन्धेन वर्तमानप्रागभावादिमत्त्वमक्षतमेवेति वाच्यम्; कृतिजन्यंपाकेत्यत्र कृतिजन्यव्यापाराधीनपाकानुकूलव्यापारस्य विवक्षितत्वात्।

यदि कहो कि आन्तरालिक बीच की कृति से जन्य पच् धात्वर्थ पाकात्मक व्यापार के पूर्व व्यापारानुकूल कृति से अजन्य होने के कारण आन्तरालिककृति का पूर्वकृतिजन्य पाक के प्रति अननुकूलत्व अक्षत ही है, इसलिए आन्तरालिक-कृति का भी उपर्युक्त विशिष्ट सम्बन्ध से वर्तमान प्रागभावादिमत्त्व अक्षत ही है— वर्तमान प्रागभाव का भी उस आन्तरालिक कृति में स्वविशिष्टकालवृत्ति कृतिजन्य पाकाननुकूलत्वविशिष्ट प्रतियोगिता सम्बन्ध से अन्वय हो सकता है और वर्तमानकालध्वंस का भी स्वपूर्वकालीनकृतिजन्यपाकाननुकूलत्वविशिष्टाधेयतासम्बन्ध से अन्वय सम्भव है। अतः आन्तरालिक कृति को भी आधार बनाकर 'पक्ष्यति' प्रयोग होना चाहिए।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि कृतिजन्यपाक से यहाँ पर कृतिजन्य व्यापार के अधीन फलानुकूल ब्यापार विवक्षित है। आन्तरालिक कृति में कृतिजन्य व्यापाराधीन पाक के प्रति अनुकूलत्व ही है, अननुकूलत्व नहीं है। इसलिए 'पक्ष्यति' प्रयोग नहीं होता। सार रूप में पचमानकर्तृकव्यापारों में फलानुकूलत्व ही है फलाननुकूलत्व नहीं । इस कारण उस स्थिति में 'पक्ष्यति' प्रयोग नहीं होता है।

'पक्ता' इत्यादौ लुटोऽनद्यतनभविष्यत्त्वमर्थः। अनद्यतनभविष्यत्त्वञ्च शब्दप्रयोगाधिकरणदिवसावृत्तित्वे सति शब्दप्रयोगकालीनप्रागभाव-प्रतियोगित्वं शब्दप्रयोगाधिकरणदिवसध्वंसोत्पत्तिकत्वं वा।

'पक्ता' इत्यादि स्थलों में लुट् लकार का अनद्यतन भविष्यत्त्व अर्थ है। तथा अनद्यतनभविष्यत्त्व शब्दप्रयोगाधिकरणदिवसावृत्तित्वविशिष्ट (होते हुए) शब्दप्रयोगकालीन-

प्रागभावप्रतियोगित्व है अथवा शब्दप्रयोगाधिकरणदिवसध्वंसोपत्तिकत्व है। जब पाक अनद्यतनभविष्यत् काल में होगा तो पाकानुकूल कृति में शब्दप्रयोगाधिकरणीभूत दिवस में अवृत्तित्व के साथ-साथ शब्दप्रयोगकालीन प्रागभावप्रतियोगित्व भी है क्योंकि शब्द प्रयोग काल में अनद्यतन भविष्य कालिक पाकानुकूल कृति का प्रागभाव विद्यमान है। दूसरे कल्प के अनुसार शब्दप्रयोगाधिकरणीभूतदिनध्वंस के उपरान्त पाकानुकूल कृति होने से शब्द-प्रयोगाधिकरणीभूतदिवसध्वंसोत्पत्तिकत्व भी पाकानुकूल कृति में है।

केचित्तु भविष्यत्त्वमेव तस्यार्थः, क्रियायाः कृतेर्वा स्वरूपसदन-द्यतनत्वमेव तत्साधुतानियामकम्, असाधुत्वादेव 'अद्य पक्ष्यति' इत्यादौ 'पक्ता, न प्रयोग इत्याहुः। तन्न- तथा सति भविष्यत्त्वादिकमपि नाख्यातार्थः स्यात्, स्वरूपसद्भविष्यत्त्वादिकमेव लृडादिप्रत्ययस्य साधुतानियामकम्, असाधुत्वादेव 'पक्ष्यति' इत्यादौ 'पक्ता' इतिवत् 'पचति' इत्यादौ 'पक्ष्यति' इति प्रयोगविरहस्यापि वक्तुं शक्यत्वात् ।

'पचति' 'पक्ष्यति' इत्यादेरविलक्षणबोधजनकत्वमनुभवविरुद्धमिति कालविशेषबोध आवश्यक इति चेत्? तदा 'पक्ता' 'पक्ष्यति' इत्यादेरपि विलक्षणबोधजनकत्वस्यानुभविकतयाऽनद्यतनत्वान्वयबोधो दुर्वारः। यदि च 'पक्ष्यति' इत्यादि वाक्यजन्यबोधे सति भविष्यत्त्वादिसंशयानुदयाद् भविष्यत्त्वादेः शाब्दधीविषयत्वमावश्यकमित्युच्यते? तदानद्यतन बोधेपीदृशीमेव युक्तिं गृहाण।

कुछ लोग तो- भविष्यत्त्व ही लुट् का अर्थ है, क्रिया अथवा कृति का (ज्ञाता आदि स्थलों में ज्ञानादि रूप क्रिया का और अन्य कृति का) स्वरूपतः विद्यमान अनद्यतनत्व ही लुट् की साधुता का नियामक है। तथा असाधु होने के कारण ही **'अद्य पक्ष्यति'** इत्यादि स्थलों मे **'अद्य पक्ता'** ऐसा प्रयोग नहीं होता है। (अनद्यतनत्व के स्वरूपतः विद्यमान न होने के कारण लुट् की साधुता का नियामक नहीं है। अतः लुट् असाधु होता है। फलतः **'अद्य पक्ता'** ऐसा प्रयोग नहीं होता है)- ऐसा कहते हैं। वह ठीक नहीं है क्योंकि वैसा होने पर तो— अनद्यतनभविष्यत्त्व यदि लुट् का अर्थ नहीं है और स्वरूपतः विद्यमान होता हुआ लुट् की साधुता का नियामक है तो— भविष्यत्त्व आदि भी आख्यातार्थ न हों स्वरूपतः विद्यमान भविष्यत्त्वादिक ही लृट् आदि प्रत्यय की साधुता के नियामक हों, असाधु होने के कारण ही **'पक्ष्यति'** इत्यादि स्थलों में **'पक्ता'** प्रयोग की तरह **'पचति'** इत्यादि स्थलों में **'पक्ष्यति'** प्रयोग नहीं होता है, यह भी कहा जा सकता है। यहाँ पर पूर्वपक्षी का कहना था कि **'पक्ष्यति'** और **'पक्ता'** दोनों से सामान्यतः भविष्यत्त्व ही बोधित होता है किन्तु सामान्यतः भविष्यत्त्व के बोधक होने पर **'अद्य पक्ता'** इत्यादि प्रयोग इस कारण नहीं होते थे क्योंकि स्वरूपतः विद्यमान अनद्यतनत्व ही इस प्रयोग की साधुता का नियामक है। इसपर सिद्धान्ती का कहना है कि फिर यह भी मान लो कि **'पचति'** और **पक्ष्यति'** से भी एक ही जैसा बोध होता है और स्वरूपतः विद्यमान भविष्यत्त्व **'पक्ष्यति'** की साधुता का

नियामक होता है। इसलिए 'पचति' इस प्रयोग के स्थल में 'पक्ष्यति' प्रयोग नहीं होता है।

यदि 'पचति' 'पक्ष्यति' इत्यादि का अविलक्षण- समान-बोध जनकत्व अनुभव से विरुद्ध है, इसलिए कालविशेष बोध आवश्यक है (क्योंकि कालविशेष बोध से ही असमानबोधजनकत्व व्यवस्थापित किया जा सकता है) तब तो 'पक्ता' 'पक्ष्यति' इत्यादि से भी विलक्षणबोधजनकत्व के आनुभविक होने के कारण अनद्यतनत्व का अन्वयबोध भी दुर्वार है। (एक से अनद्यतनभविष्यत्त्व और दूसरे से भविष्यत्त्व मात्र बोध से ही विलक्षणबोधजनकत्व 'पक्ता' और 'पक्ष्यति' का व्यवस्थापित किया जा सकता है) तथा यदि 'पक्ष्यति' इत्यादि वाक्य से जन्य बोध रहने पर भविष्यत्त्वादि के संशय का उदय न होने के कारण भविष्यत्त्व आदि का शाब्दबोधविषयत्व आवश्यक है तो अनद्यतन बोध में भी इसी युक्ति को पकड़ो। 'पक्ता' इत्यादि वाक्य से जन्य बोध के रहने पर अनद्यतनभविष्यत्त्व के भी सन्देह का उदय नहीं होने के कारण अनद्यतन भविष्यत्त्व का भी शाब्दबोधविषयत्व आवश्यक है।' इसलिए लुट् लकार का अर्थ अनद्यतनभविष्यत्त्व ही मानना चाहिए।

एवम् 'न पक्ष्यति' इत्यादावभावेऽनागतकालावच्छिन्नत्वभानमावश्यकम्, अन्यथा पक्ष्यत्यपि वर्तमानवृत्तिपाककृत्यभावमादाय 'न पक्ष्यति' इत्यादिप्रयोगप्रसङ्गात् ।

इसी प्रकार- जैसे 'न पचति' इत्यादि स्थलों में नञर्थ अभाव में वर्तमान कालावच्छिन्नत्व का भान आवश्यक है उसी प्रकार- 'न पक्ष्यति' इत्यादि स्थलों में अभाव में अनागत कालावच्छिन्नत्व का भान आवश्यक है अन्यथा भविष्यत् कालिक पाककृति के रहने पर भी वर्तमान वृत्ति पाककृत्यभाव को लेकर 'न पक्ष्यति' इत्यादि प्रयोगों का प्रसङ्ग होगा। भाव यह है कि 'चैत्रो न पक्ष्यति' से शाब्दबोध होगा—'पाकानुकूला भविष्यत्कालीना या कृतिस्तदभाववान् चैत्रः' पाकानुकूल भविष्यत् कालिक कृति के अभाव वाला चैत्र है' यदि आप कृत्यभाव में भविष्यत्कालावच्छिन्नत्व का भान न स्वीकारें तो। भविष्यत् काल में चैत्र के पाक करने पर भी पाकानुकूल भविष्यत्कालीन कृति चैत्र में वर्तमान में नहीं है उस कृति का अभाव ही है । अतः चैत्र में उस अभाव का वैशिष्ट्य तो अबाधित है। फलतः भविष्यत् काल में चैत्र के पाक करने पर भी 'चैत्रो न पक्ष्यति' प्रयोग की आपत्ति है। इसलिए कृत्यभाव में भविष्यत्कालावच्छिन्नत्व का भान स्वीकारना चाहिए, भविष्यत् काल में चैत्र के पाक करने पर पाकानुकूल भविष्यत् कालिक कृत्यभाव के चैत्र में न रहने से 'भविष्यत्कालीनपाकानुकूलकृत्यभाववान् चैत्रः' 'पाकानुकूल कृति के भविष्यत् कालीन अभाव वाला चैत्र है' ऐसा शाब्दबोध बाधित है। अतः ऐसा प्रयोग नहीं होगा।

न च पक्ष्यत्यप्यनागतयत्किञ्चित्कालावच्छेदेन वर्तमानमभावमादाय 'न पक्ष्यति' इति प्रयोगो दुर्वार एवेति वाच्यम्; अनागतकालावच्छिन्नत्वं हि तत्र वर्तमानक्षणध्वंसावच्छिन्नत्वम्, तादृशध्वंसनिष्ठावच्छेदकता चानवच्छिन्ना ग्राह्या, अनागतकृतिमति च पुंसि तदभाववृत्तौ वर्तमानक्षणध्वंसरूपः कालः प्रतियोगिवृत्तावप्यवच्छेदक इति विरोधभञ्जनाय तादृशकृत्यनवच्छेदका-

वान्तरकाल एवावच्छेदक उपेय इति नोक्तातिप्रसङ्ग इति।

यदि कहो कि अभाव में अनागत कालावच्छिन्नत्व भान स्वीकारने पर भविष्यकालिक पाकानुकूल कृति के रहने पर भी (अनागत यत्किञ्चित् कालावच्छेदेन तो उस कृति का अभाव रहेगा ही इसलिए) अनागत यत्किञ्चित् कालावच्छेदेन विद्यमान उस कृति के अभाव को लेकर '**न पक्ष्यति**' ऐसा प्रयोग दुर्वार ही होगा क्योंकि इस वाक्य से अनागतकालावच्छेदेन पाकानुकूल कृत्यभाव बोधित होगा और अनागत यत्किञ्चित्कालावच्छेदेन पाकानुकूल कृत्यभाव है ही ?

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि अनागतकालावच्छिन्नत्व वहाँ पर वर्तमानक्षण ध्वंसावच्छिन्नत्व है और वर्तमानक्षणध्वंसनिष्ठ अवच्छेदकता निरवच्छिन्न लेनी चाहिए। अनागत कृति वाले पुरुष में उस कृति के अभाव की वृत्तिता में वर्तमानक्षणध्वंसरूपकाल प्रतियोगी की वृत्ति होने पर भी अवच्छेदक हो जायेगा, इस विरोध का भञ्जन करने के लिए वैसी कृति का अनवच्छेदक अवान्तरकाल ही उसका अवच्छेदक स्वीकारा जायेगा, इस कारण उक्त अतिप्रसङ्ग नहीं है।

यहाँ पर गदाधर ने कालोपाधि वर्तमानक्षणध्वंस से अवच्छिन्नत्व ही अनागतकालावच्छिन्नत्व है यह प्रतिपादित किया तथा वर्तमानक्षणध्वंस वर्तमानक्षण के ध्वंस में रहनेवाली अवच्छेदकता को निरवच्छिन्न लेने से उपर्युक्त आपत्ति का वारण कर रहे हैं। जब भविष्य में कभी पाकानुकूल कृति होगी तो भी पाकानुकूलकृत्यभाव की वृत्तिता वर्तमान क्षणध्वंस से अवच्छिन्न होगी, किन्तु यत्किञ्चित्कालरूप अवच्छेदक से अवच्छिन्न अवच्छेदकता वर्तमानकालध्वंस में होगी। जब भविष्य में कभी भी पाकानुकूल कृति न रहेगी तो पाकानुकूलकृत्यभाव की वृत्तिता वर्तमानक्षणध्वंस से अवच्छिन्न होगी और वर्तमानक्षण ध्वंस में रहने वाली अवच्छेदकता निरवच्छिन्न होगी। अवच्छेदक के भेद से ही एक ही अधिकरण में भाव और अभाव रह सकते हैं। वर्तमानक्षणध्वंस में यदि कृति और कृत्यभाव दोनों हैं तो कृति भी किञ्चित् कालावच्छेदेन रहेगी और कृत्यभाव भी अन्य किञ्चित् कालावच्छेदेन ही रहेगा। इस कारण कृति और कृत्यभाव दोनों की वृत्तिता सावच्छिन्न होगी। जब भविष्यकाल में पाकानुकूल कृति नहीं है तो पाकानुकूलकृत्यभाव की वृत्तिता निरवच्छिन्न होगी। इस स्थिति में भविष्य में पाकानुकूल कृति रहने पर पाकानुकूलकृत्यभाव में निरवच्छिन्नावच्छेदकताश्रयवर्तमानक्षणध्वंसावच्छिन्नत्व नहीं भासित हो सकता है और यही 'न पक्ष्यति' से बोधित होता है। अतः उक्त स्थिति में ऐसा प्रयोग नहीं होता है।

उक्तयुक्त्याऽनागतत्वस्य यथा लडाद्यर्थत्वं तथा 'अद्य पक्ष्यति न पक्ता' इत्यत्रानद्यतनकालावच्छिन्नत्वस्याभावेऽभाने श्वः पक्ष्यत्यप्यद्यतनानागतकालावच्छिन्नपाककृत्यभावमादाय ' न पक्ता' इति प्रयोगप्रसङ्गेन लुटोऽनद्यतनार्थत्वमावश्यकम्।

उपर्युक्त युक्ति से अनागतत्व का जैसे लृट् आदि का अर्थत्व है, वैसे ही '**अद्य पक्ष्यति न पक्ता**' यहाँ पर अनद्यतनकालावच्छिन्नत्व का अभाव में भान न होने पर कल पकाने की स्थिति में भी— कल पाकानुकूल कृति होने पर भी-अद्यतन अनागतकालावच्छिन्न

पाककृत्यभाव को लेकर 'न पक्ता' इस प्रयोग का प्रसङ्ग होने के कारण लुट् का अनद्यतनार्थत्व आवश्यक है। भाव यह है कि पाकानुकूलकृत्यभाव में अनागत कालावच्छिन्नत्व भासता है 'न पक्ष्यति' इत्यादि प्रयोगों से। इसी प्रकार 'न पक्ता' इत्यादि से अनद्यतनानागतकालावच्छिन्नत्व का पाकानुकूलकृत्यभाव में भान होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं मानोगे अनद्यतनानागतकालावच्छिन्न पाककृति का अभाव भासता है यह मानोगे तो कल पकायेगा तो भी अनद्यतनानागतकालावच्छिन्न पाककृति का अभाव भी आज चैत्रादि में होने के कारण 'श्वो न पक्ता चैत्रः' इत्यादि प्रयोग होने लगेगा। सार यह है कि ऌट् का अर्थ अनागतकालावच्छिन्नत्व है। नञ् रहित स्थल में कृति में और नञ्सहित स्थल में कृत्यभाव में वह भासता है। लुट् का अर्थ भी इसी प्रकार अनद्यतनानागतकालावच्छिन्नत्व है और उसका भी भान नञ्र हितस्थल में कृति में, नञ् सहित स्थल में कृत्यभाव. में मानो।

अनागतानद्यतनकालावच्छिन्नत्वमप्युक्तरीत्यातिप्रसङ्गवारणाय प्रकृतशब्दप्रयोगाधिकरणदिनध्वंसनिष्ठानवच्छिन्नावच्छेदकताकत्वरूपं ग्राह्यम्। अवच्छेद्यावच्छेदकभावश्च सम्बन्धविधया भासते ध्वंस एव पदार्थ इत्यव धेयम्।

अनागत अनद्यतनकालावच्छिन्नत्व भी उक्त रीति से अतिप्रसङ्ग वारण करने के लिए प्रकृतशब्दप्रयोगाधिकरणदिनध्वंसनिष्ठ अनवच्छिन्ना वच्छेदकताकत्व रूप ग्राह्य है। अवच्छेद्य अवच्छेदक भाव संसर्गविधया भासता है-ध्वंस ही पदार्थ है यह समझ लेना चाहिए।

यहाँ पर गदाधर ने पूर्वोक्त रीति से अनद्यतनानागतकालावच्छिन्नत्व भी निरवच्छिन्नावच्छेदकताक लेना है, ऐसा बताया। उसका कारण भी पूर्ववत् है कि पाकानुकूल कृत्यभाव में यत्किञ्चित् कालावच्छेदेन अनागतानद्यतनकालावच्छिन्नत्व है ही, अतः अनद्यतन पाकानुकूलकृति के रहने पर भी 'न पक्ता' प्रयोग की आपत्ति होगी। इसलिए निरवच्छिन्नावच्छेदकताकत्व की विवक्षा पूर्ववत् करनी चाहिए। जब अनद्यतन भविष्यकाल में कभी भी पाकानुकूल कृति नहीं रहेगी तभी पाकानुकूलकृत्यभाव वृत्तिता में निरवच्छिन्न अनद्यतनानागतकालवृत्तित्व आयेगा। इसलिए तभी 'न पक्ता' प्रयोग होगा अन्यथा नहीं।

एक दूसरी बात गदाधर ने यहाँ सिद्धान्तित की कि -लुट् और ऌट् दोनों का अर्थ क्रमशः वर्तमानदिनध्वंस और वर्तमानक्षणध्वंस मात्र ही है। इन दोनों का निरवच्छिन्नावच्छेदकताक वृत्तित्व सम्बन्ध से कृत्यभाव में नञ् घटित स्थल में भान होता है और नञ् रहित स्थल में स्वपूर्वकालीनकृतिजन्यपाकाननुकूलत्वविशिष्ट आधेयता सम्बन्ध से कृत्यंश में भान होता है।

अथ नञ्समभिव्याहारस्थलेऽपि कृतावेव कालान्वयोऽस्तु, अनागत कृतिश्च महाप्रलयस्याप्रामाणिकतया सर्वत्रैव प्रसिद्ध्यतीति न प्रतियोग्यप्रसिद्धिः, अभावान्वयश्चात्मनि कालानवच्छिन्नाश्रयतासम्बन्धेनोपगम्यतामिति चेत्? न—यदुत्तरकाले चैत्रीयौदनपाकादिकमप्रसिद्धं तदानीं 'चैत्र ओदनं न पक्ष्यति' इति प्रयोगानुपपत्तेः— अनागतचैत्रीयौदनकर्मकपाकानुकूलकृत्यप्रसिद्ध्या तदभावप्रत्यायनासम्भवात्।

यदि कहो कि नञ्समभिव्याहार स्थल में भी कृति में ही काल का अन्वय हो और

अनागतकृति महाप्रलय के अप्रामाणिक होने के कारण सर्वत्र ही प्रसिद्ध हो जाती है इसलिए

प्रतियोगी की अप्रसिद्धि नहीं होगी तथा अभाव का अन्वय आत्मा में कालानवच्छिन्नाश्रयता सम्बन्ध से स्वीकार कर लो? तो ऐसा नहीं कह सकते हैं क्योंकि जिसके उत्तर काल में चैत्रीय ओदनपाकादि अप्रसिद्ध हैं उस काल में **'चैत्र ओदनं न पक्ष्यति'** इस प्रयोग की अनुपपत्ति होगी क्योंकि अनागत चैत्रीय ओदनकर्मकपाकानुकूल कृति के अप्रसिद्ध होने के कारण उसके अभाव का प्रत्यायन असम्भव है।

यहाँ पर **अथ** से **चेत्** पर्यन्त पूर्वपक्ष इस आशय से उठाया गया है कि नञ् समभिव्याहार स्थल में कृति में पाक का अन्वय करने पर दो दोष आ रहे थे । पहली आपत्ति ये कि जिस प्रयोग के बाद अनागत कृति की अप्रसिद्धि है वैसा **'न पक्ष्यति'** आदि प्रयोग नहीं हो सकेंगे। महाप्रलय के पूर्वक्षण में प्रयुक्त **'न पक्ष्यति'** से शाब्दबोध न हो सकेगा क्योंकि इससे अनागत कृति का अभाव बोधित हो सकता है जोकि अनागत कृति रूप प्रतियोगी की अप्रसिद्धि से नहीं बोधित किया जा सकता है। दूसरी यह कि पाकानुकूल भविष्यत् कालिककृति का अभाव भी चैत्रादि में रहता ही है किसी न किसी कालावच्छेदेन इसलिए भविष्यत् कालिक कृति रहने पर भी **'न पक्ष्यति'** प्रयोग की आपत्ति है ये आपत्तियाँ तब भी नहीं हैं यदि कृति में ही काल का अन्वय नञ्समभिव्याहारस्थल में भी हो। क्योंकि महाप्रलय तो अप्रामाणिक है । अतः अनागत कृति कहीं पर भी अप्रसिद्ध न होगी। कृति के अभाव का हम कालानवच्छिन्न आश्रयता सम्बन्ध से कर्ता में अन्वय करेगे, अतः किञ्चित् कालावच्छेदेन कृति का अभाव रहने पर भी कालानवच्छिन्न आधारता सम्बन्ध से कृत्यभाव का अन्वय भविष्यत् कालिक कृति रहने पर सम्भव न होने से **'न पक्ष्यति'** प्रयोग नहीं होगा।

समाधान यह दिया जा रहा है कि **'चैत्र ओदनं न पक्ष्यति'** इत्यादि से अनागत चैत्रीय ओदनकर्मकपाकानुकूलकृति का अभाव बोधित होता है, जिस ऐसे प्रयोग के बाद चैत्रीय ओदन पाकादि अप्रसिद्ध है। उस प्रयोग से चैत्रीय ओदन पाकानुकूल कृति का अभाव नहीं बोधित किया जा सकेगा क्योंकि प्रतियोगी ही अप्रसिद्ध है। इसलिए ऐसा नहीं स्वीकारा जा सकता है।

न चाभावे कालान्वयोपगमेऽपि यत्तण्डुलव्यक्त्यादिकर्मकपाक एवाप्रसिद्धस्तद्व्यक्त्यादिपरस्य 'एतत्तण्डुलं न पक्ष्यति' इत्यादिवाक्यस्याप्रमाणत्वापत्तिः प्रतियोग्यप्रसिद्धेर्दुर्वारत्वादिति तत्र पाके तद्व्यक्तिकर्मकत्वाभाव एव नञा बोध्यत इत्युपगन्तव्यं तथा चोक्तस्थलेऽपि त्तत्तत्पाके चैत्रीयौदनकर्मकत्वाभावबोधोपगमेनोपपत्तिरितिवाच्यम्; पाके तत्कर्मकत्वाभावबोधोपगमे तादृशपाकानुकूलानागतकृतेः कर्तरि भानस्योपगन्तव्यतया तदुत्तरं कदाचिदपि येन न पक्ष्यते तादृशकर्तृसमभिव्याहृतदर्शित वाक्यस्य प्रामाण्योपपादनासम्भवात् । अगत्या तु यत्कर्मको यत्कर्तृकः पाकोऽप्रसिद्धस्तादृशकर्मकर्तृघटितार्थकनञ्पदवद्वाक्यस्यायोग्यतोपगम्यते।

यदि कहो कि अभाव में कालान्वय स्वीकारने पर भी यत्तण्डुल व्यक्ति आदि कर्मक पाक ही अप्रसिद्ध है, तद्व्यक्त्यादि परक **'एतत्तण्डुलं न पक्ष्यति'** इत्यादि वाक्य के

अप्रमाणता की आपत्ति प्रतियोगि की अप्रसिद्धि से दुर्वार होगी (तत्तण्डुलव्यक्तिकर्मक पाक की अप्रसिद्धि होने से तदनुकूल कृति भी प्रसिद्ध न होगी अतः तत्तण्डुलकर्मक पाकानुकूल कृति का अभाव नहीं बोधित किया जा सकता है) इसलिए वहाँ पर पाक में तद्व्यक्ति कर्मकत्वाभाव ही नञ् के द्वारा बोधित होता है यही स्वीकारना पड़ेगा (इस स्थिति में तत्तण्डुलाकर्मकपाकानुकूलकृतिमत्ता ही बोधित होगी) इसी प्रकार उक्त स्थल में- चैत्रीय ओदनकर्मक पाक की अप्रसिद्धि होने पर **'चैत्र ओदनं न पक्ष्यति'** इस प्रयोग स्थल में- भी तत्तत् पाक में चैत्रीय ओदनकर्मकत्वाभाव बोध स्वीकारने से ही उपपत्ति हो जायेगी (इस प्रकार चैत्रीय ओदनकर्मकपाकानुकूल कृतिमत्ता ही इस वाक्य से बोधित होगी)

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि पाक में तत्कर्मकत्वाभाव बोध स्वीकारने पर तादृशपाकानुकूल अनागत कृति का कर्ता में ही भान स्वीकरणीय होने के कारण उक्त प्रयोग के बाद कभी भी जिसके द्वारा नहीं पकाया जायेगा, ऐसे कर्ता से समभिव्याहृत **'चैत्र ओदनं न पक्ष्यति'** इत्यादि दर्शित वाक्य के प्रामाण्य का उपपादन असम्भव है। कोई मार्ग न रहने से यत्कर्मक यत्कर्तृक पाक अप्रसिद्ध है तादृशकर्मकर्तृघटितार्थक नञ् पदवत् वाक्य की अयोग्यता ही स्वीकारी जाती है।

सिद्धान्ती का अथन है कि नञ् पद एक बार आया है तो अभाव एक बार ही बोधित हो सकता है, कृति का अभाव बोधित होने पर वही अभाव पुरुष में अन्वित होगा, तत्तद्ओदनादिकर्मकत्वाभाव बोधित होने पर वही अभाव पाक में और पाकानुकूल कृति पुरुष में बोधित होगी। इस कारण चैत्रीय ओदनादिकर्मक पाक की अप्रसिद्धि होने पर भी हमारे मत में चैत्र में ओदनकर्मकपाकानुकूल कृत्यभाव या ओदनाकर्मकपाकानुकूलकृति का बोधन सम्भव है। यदि चैत्रीय पाकमात्र अप्रसिद्ध हो तब भी चैत्र में ओदनकर्मक पाकानुकूल कृति का अभाव बोधित हो सकता है क्योंकि अन्यकर्तृक तो ओदनकर्मक पाकानुकूल कृति प्रसिद्ध ही है। किन्तु पूर्वपक्षी के मत में मुश्किल है क्योंकि उसके मत में कृति के अभाव का कालानवच्छिन्न आश्रयता सम्बन्ध से अन्वय स्वीकारा जाता है, अतः चैत्रीय ओदनकर्मक पाकानुकूल कृति का अभाव बोधित होना चाहिए यह असम्भव है। क्योंकि ऐसी कृति अप्रसिद्ध है। चैत्र में पाकानुकूलानागतकृतिमत्ता अप्रसिद्ध होने के कारण पाक में तण्डुलकर्मकत्वाभाव भी नहीं अन्वित हो सकता है। अतः चैत्रीय ओदनाकर्मक पाकानुकूलानागतकृतिमत्ता का भी चैत्र में बोध नहीं हो सकता है। हमारे मत में ओदनकर्मक अन्यकर्तृक पाक प्रसिद्ध होने से बोध सम्भव है। यत्कर्मक और यत्कर्तृक पाक अप्रसिद्ध है वैसे कर्मकर्तृ घटितार्थक नञ् पदवाले वाक्य की तो अयोग्यता ही है। जैसे यत् तण्डुलकर्मक पाक अप्रसिद्ध है और चैत्रकर्तृक पाक भी अप्रसिद्ध है। उस तण्डुल को एतत्तण्डुल पद से लेकर **'एतत्तण्डुलं न पक्ष्यति चैत्रः'** इस वाक्य की अप्रमाणता ही स्वीकारी जाती है क्योंकि तण्डुलकर्मक पाकाप्रसिद्धि से तण्डुलकर्मक पाकानुकूलकृति का अभाव भी चैत्र में नहीं बोधित हो सकता है और चैत्र में पाकानुकूलकृतिमत्ता बाधित होने से तण्डुलाकर्मक पाकानुकूल कृतिमत्ता भी चैत्र में नहीं बोधित हो सकती है।

केचित्तु तत्रापि पाके तत्कर्मकत्वाभावस्य तादृशे च कर्तरि पाक-

कृत्यभावस्य बोधमुपगम्य प्रामाण्यमुपादयन्ति– तात्पर्यसत्त्वे एकेनापि नञाऽभावद्वयबोधनसम्भवात् ।

न चैवं तण्डुलमात्रं पचति पक्ष्यति वा चैत्रेऽपि 'तण्डुलमयं न पचति न पक्ष्यति' इति प्रयोगः स्यात्– तत्तण्डुलाकर्मकपाकानुकूलवर्तमानादिकृत्य भावाऽबाधादिति वाच्यम्; यतः सुबर्थप्रतियोगिकस्वार्थाभावान्वित क्रिया-कर्तृत्वाभावबोधकत्वं नञः 'आकाशं न पचति घटः' इत्यादावपि न स्वीक्रियते तादृशबोधजनकताया अव्युत्पन्नत्वाद् येनोक्तातिप्रसङ्गः स्यात्, किंतु 'पाक आकाशाकर्मकः पाककृत्यभाववान् घटः' इत्यादिसमूहालम्बन बोध एव, उक्तस्थले च चैत्रे पाककर्तृत्वाभावबाधान्न प्रामाण्यप्रसङ्गः।

अस्तु वा तत्राभावान्वितक्रियाकर्तृत्वाभावविषयकोऽसमूहालम्बनरूप एव बोधस्तथापि न दर्शितातिप्रसङ्गः- तादृशबोधेऽन्वयितावच्छेदकावच्छेदेन प्रथमाभावभाननियमात् पाकत्वावच्छेदेन च तण्डुलादिकर्मकत्वाभावान्वये योग्यताविरहात् । 'अन्ध आकाशं न पश्यति' इत्यादावपीदृशी गतिः।

कुछ लोग तो वहाँ पर भी-यत्कर्मक यत्कर्तृक पाक अप्रसिद्ध है ऐसे कर्मकर्तृघटितार्थकनञ् पदवद्वाक्य **'एतत्तण्डुलं चैत्रो न पक्ष्यति'** से भी पाक में तत्कर्मकत्वाभाव का-तत्तण्डुल कर्मकत्वाभाव का और वैसे- यत्कर्तृक पाक अप्रसिद्ध है वैसे कर्ता में पाक कृत्यभाव का बोध स्वीकार कर उक्त वाक्य का प्रामाण्य उपपादित करते हैं। क्योंकि तात्पर्य रहने पर एक भी नञ् से दो अभावों का बोधन सम्भव है। इस पक्ष में इस वाक्य से **'एतत्तण्डुलाकर्मक पाकानुकूलअनागतकृत्यभाववान् चैत्रः'** ऐसा बोध होगा। इसी प्रकार **'आकाशं न पचति घटः'** से भी समझना चाहिए।

यदि कहो कि इस प्रकार तो चैत्र के तण्डुल मात्र वर्तमान काल में अथवा भविष्य काल में पकाने की स्थिति में **'तण्डुलमयं न पचति' 'तण्डुलमयं न पक्ष्यति'** ऐसा प्रयोग हो क्योंकि तत्तण्डुलाकर्मक पाकानुकूलवर्तमानादि कृत्यभाव तो चैत्र में उस समय भी अबाधित है जबकि वह केवल तण्डुल पका रहा है या पकायेगा ।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंति सुबर्थ प्रतियोगिक स्वार्थ अभाव से अन्वित क्रियाकर्तृत्व का अभाव बोधकत्व नञ् का **'आकाशं न पचति घटः'** इत्यादिस्थलों में भी न स्वीकार किया जाता है क्योंकि नञ् की सुबर्थप्रतियोगिक स्वार्थ अभाव से विशेषित क्रिया-कर्तृत्वाभावबोधकता अव्युत्पन्न है। यदि ऐसा स्वीकारा जाता तभी उक्त अतिप्रसङ्ग होता उक्त आपत्ति आती। किन्तु इस वाक्य से भी **'पाक आकाशाकर्मकः, पाककृत्यभाववान् घटः'** ऐसा समूहालम्बनत्मक बोध ही स्वीकारा जाता है। (**'एतत्तण्डुलं चैत्रो न पक्ष्यति'** से भी इसी प्रकार **'पाक एतत्तण्डुलाकर्मकः, पाककृत्यभाववान् चैत्रः'** ऐसा बोध ही होता है **'एतत्तण्डुलाकर्मक पाकानुकूलकृत्यभाववान् चैत्रः'** ऐसा नहीं) उक्त स्थल में- जहाँ पर चैत्र तण्डुल मात्र पका रहा है वहाँ पर- चैत्र में पाक कर्तृत्वाभाव का बाध होने से शाब्दबोध के बाधितार्थक होने के कारण वाक्य के प्रामाण्य का प्रसङ्ग नहीं है।

अथवा यहाँ पर 'घट आकाशं न पचति' आदि स्थलों में अभावान्वित क्रियाकर्तृत्वाभाव विषयक असमूहालम्बन रूप ही 'आकाशाकर्मकपाकानुकूलकृत्यभाववान् घटः' ऐसा बोध हो तथापि दर्शित अतिप्रसङ्ग- चैत्र के तण्डुल मात्र पकाते रहने पर 'चैत्रः तण्डुलं न पचति' की आपत्ति नहीं है क्योंकि वैसे बोध में अन्वयितावच्छेदकावच्छेदेन प्रथमाभाव के भान का नियम है और पाकत्वावच्छेदेन तण्डुलादिकर्मकत्वाभाव के अन्वय में योग्यता नहीं है। ('घट आकाशं न पचति' में तो अन्वयितावच्छेदक पाकत्वावच्छेदेन आकाशाकर्मत्व का अन्वय हो सकता है, अतः योग्यता है और ऐसा प्रयोग सम्भव है। 'चैत्रः तण्डुलं न पचति' में तो पाकत्वावच्छेदेन तण्डुलाकर्मकत्व नहीं अन्वित हो सकता है, इसलिए अयोग्यता है) 'अन्ध आकाशं न पश्यति' इत्यादि स्थलों में भी ऐसी ही गति है। वहाँ पर भी चूँकि दर्शनत्वावच्छेदेन आकाशाकर्मकत्व का अन्वय हो सकता है। अतः 'आकाशाकर्मकदर्शनानुकूलकृत्यभाववान् अन्धः' ऐसा शाब्दबोध उपपन्न है।

अथ यत्तण्डुलादिकर्मको यत्पुरुषकर्तृकः पाकोऽप्रसिद्धस्तत्पुरुषेऽन्यकर्मकपाककर्तृत्वस्य तत्तण्डुलादौ चान्यपुरुषपच्यमानत्वादेर्भ्रमदशायां 'तण्डुलमयं न पचति' इत्यादिवाक्यस्य बोधकताया अनुभवसिद्धत्वेनापाकर्तुमशक्यत्वान्नोक्तप्रकारः साधीयान्- विरोधिनिश्चयसत्त्वेन तत्पुरुषे पाककर्तृत्वसामान्याभावस्य पाकत्वावच्छेदेन तण्डुलकर्मकत्वाभावस्य च प्रतीत्यसम्भवादिति चेत्? न, तत्र तादृशवाक्यस्यैकाभावावगाहिभ्रमजन्कत्वोपगमात् ।

यदि कहो कि यत्तण्डुलादिकर्मक यत्पुरुषकर्तृक पाक अप्रसिद्ध है उस पुरुष में अन्यकर्मक पाककर्तृत्व के और तत्तण्डुलादि में अन्यपुरुष पच्यमानत्वादि के भ्रम की दशा में 'तण्डुलमयं न पचति' इत्यादि वाक्य की बोधकता के अनुभवसिद्ध होने की वज़ह से उस वाक्य से बोध का प्रतिषेध अशक्य होने से उक्त प्रकार-उपर्युक्त तरीका-सही नहीं है क्योंकि विरोधि निश्चय रहने के कारण उस पुरुष में पाककर्तृत्व सामान्याभाव की और पाकत्वावच्छेदेन तण्डुलकर्मकत्वाभाव की प्रतीति असम्भव है तो ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि वहाँ पर उपर्युक्त भ्रम होने पर वैसे वाक्य का एक अभावावगाहि भ्रमजनकत्व स्वीकार किया जाता है। उक्त प्रकार से यहाँ पर आशय है प्रथमाभाव का अन्वयितावच्छेदकावच्छेदेन भान का नियम स्वीकारते हुए तादृशक्रियाकर्तृत्वाभाव का भान स्वीकारना। जब पुरुष में पाककर्तृत्व का भ्रम हो जायेगा तब तो पाककर्तृत्वाभाव नहीं बोधित हो सकेगा और जब तण्डुल में अन्यपुरुष पच्यमानत्व का भ्रम हो जायेगा तो पाकत्वावच्छेदेन तण्डुलाकर्मकत्व का अन्वय नहीं हो सकेगा। इसलिए या तो तण्डुलाकर्मक पाकानुकूलकृतिमत्ता या तण्डुलकर्मकपाकानुकूलकृत्यभाव बोधित होगा । इसपर गदाधर का समाधान है उक्त स्थल में एक अभावावगाही भ्रम ही उत्पन्न होता है। उससे उक्त वाक्य का प्रामाण्य नहीं उपपन्न होता है।

न च सर्वत्रैव तकुमारमौलिन्येन प्रयासवैफल्यमिति वाच्यम्; विशेष

दर्शिभिरप्रतारकैरपि तथाविधवाक्यप्रयोगात् तस्य प्रसिद्धार्थकतासम्पादनस्यावश्यकत्वात् ।

न च तत्तण्डुलादिकर्मत्वं तन्निष्ठविक्लितिजनकत्वं तदपि चाप्रसिद्धमिति कथं पाके तदभावप्रत्यय इति वाच्यम्; विक्लित्यादावेव तत्तद्वृत्तित्वाभावबोधोपगमात् ।

यदि कहो कि सर्वत्र ही एक ही अभावान्वय बोध के उपगम का औचित्य होने के कारण प्रयास की विफलता है, तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि विशेषदर्शियों और अप्रतारकों के द्वारा वैसे वाक्यों का प्रयोग होने के कारण उनके **'घट आकाशं न पचति'** आदि के प्रसिद्धार्थकता का सम्पादन आवश्यक है। इस कारण यह प्रयास कहीं कहीं एक ही नञ् से दो अभावों के बोध का प्रयास विफल नहीं है।

यदि कहो कि तत्तण्डुलादिकर्मत्व तत्तण्डुलनिष्ठविक्लितिजनकत्व है और वह भी अप्रसिद्ध है, इसलिए कैसे पाक में तण्डुलकर्मकत्व के अभाव का बोध हो सकता है, तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि विक्लिति आदि में तत्तद्वृत्तित्वाभाव के बोध का उपगम किया जाता है। इस प्रकार **'तण्डुलवृत्तित्वाभाववद्विक्लित्यनुकूलपाकानुकूलकृत्यभाववान् अयम्'** ऐसा ही बोध स्वीकारते हैं। तण्डुलवृत्तित्व भी प्रसिद्ध है और विक्लिति भी अन्यत्र प्रसिद्ध है।

विमर्श- यहाँ पर गदाधर ने **केचित्तु** प्रतीक से जो मत उठाया है वह उनको स्वीकार्य नहीं है, परन्तु इसका उन्होंने खण्डन नहीं किया है। वस्तुतः इसका खण्डन द्वितीया कारक में ही कर चुके हैं। इसमें मूल बात यह है कि **'चैत्र ओदनं न पचति'** और **'घट आकाशं न पचति'** को एक ही जैसा होना चाहिए, समानयोगक्षेम होना चाहिए। परन्तु इस मत में ऐसा नहीं है।

'अपाक्षीत्' इत्यादौ लुङोऽतीतकालोऽर्थः, तस्याप्याख्यातसामान्यार्थ कृत्यादावन्वयः तस्य च सम्बन्ध आधेयत्वम् । अथवा कालाविशेषण तयैवातीतत्वं लुङर्थ आश्रयतासम्बन्धेन च तस्य कृत्यादावन्वयः– कालान्तर्भावस्य व्यर्थत्वात् । अतीतत्वम् = वर्तमानध्वंसप्रतियोगित्वम् । वस्तुतो वर्तमानध्वंस एव लुङाद्यर्थस्तस्य प्रतियोगितासम्बन्धेन कृत्यादावन्वयः मध्यदशायामपाक्षीदित्यादिप्रयोगवारणमुक्तरीत्या बोध्यम् ।

'अपाक्षीत्' इत्यादि स्थलों में लुङ् का अतीत काल अर्थ है, उस अतीत काल का भी आख्यात के सामान्य अर्थ कृति आदि में अन्वय होता है तथा अतीत काल का कृति में आधेयत्व सम्बन्ध है। अथवा काल का अविशेषणतया ही अतीतत्व लुङ् का अर्थ है और उसका आश्रयतासम्बन्ध से कृति आदि में अन्वय होता है क्योंकि काल का अन्तर्भाव करना व्यर्थ है, निरर्थक है। अतीतत्व का अर्थ है वर्तमानध्वंसप्रतियोगित्व। (जो वस्तु बीत चुकी है उसका ध्वंस वर्तमान होगा और उसका प्रतियोगित्व उस वस्तु में आयेगा)

वस्तुतः वर्तमान ध्वंस ही लुङ् आदि का अर्थ है और उसका प्रतियोगिता सम्बन्ध

से कृति आदि में अन्वय होता है, मध्य दशा में '**अपाक्षीत्**' इस प्रयोग का वारण उक्त रीति से समझना चाहिए। इस अन्तिम पङ्क्ति का आशय यह है कि जब पाक क्रिया चल रही है उस समय भी कोई पाकानुकूल कृति तो नष्ट हो ही चुकी है। ऐसी स्थिति में वर्तमानध्वंस प्रतियोगिपाकानुकूलकृति का बोधन अबाधित होने के कारण '**अपाक्षीत्**' ऐसा प्रयोग होना चाहिए। ऐसा आपत्ति आती है। इसका वारण इसी प्रकार से करना चाहिए जैसे पहले किया था अर्थात् वर्तमानध्वंस का स्ववृत्तिकृतिजन्यपाकाननुकूलत्वविशिष्ट प्रतियोगिता सम्बन्ध से पाकानुकूल कृति में अन्वय करना चाहिए। स्व माने वर्तमान ध्वंस, उसके कालोपाधि होने के कारण तद्वृत्ति कृति उक्तस्थल में प्राप्त हो जायेगी। उस कृति से जन्य पाक के प्रति अनकूलत्व ही पाक क्रिया के चलते समय नष्ट हो चुकी पाकानुकूल कृति में है। अतः स्ववृत्तिकृतिजन्यपाकाननुकूलत्व विशिष्ट प्रतियोगिता सम्बन्ध से पाकानुकूल कृति वर्तमान ध्वंस से विशिष्ट नहीं हो सकती है। इस तरह शाब्दबोध के बाधित होने के कारण पाकक्रिया के चलते रहने पर नष्ट हो चुकी पाकनुकूल कृति को आधार बनाकर "**अपाक्षीत्**' ऐसा प्रयोग नहीं होता है। पाक क्रिया के पूर्ण हो जाने पर ही वर्तमान ध्वंस वृत्ति कृतिजन्य-पाकाननुकूलत्व और वर्तमानध्वंस के प्रतियोगित्व के पाकानुकूल कृति में रहने से तभी वर्तमान ध्वंस का स्ववृत्तिकृतिजन्यपाकाननुकूलत्वविशिष्टप्रतियोगितासम्बन्ध से अन्वय सम्भव होने से '**अपाक्षीत्**' ऐसा प्रयोग होता है।

लङ्प्रत्ययस्यातीतत्ववदनद्यतनत्वमप्यर्थः— अद्य पचति 'अपचत्' इत्यप्रयोगात्। ''अभून्नृपः'' इत्यादावनद्यतनत्वसत्त्वेऽपि तदविवक्षया न लङ्प्रत्ययेन लुङ्बाधः। अतोऽप्यनद्यतनत्वबोधकत्वं लङ्प्रत्ययस्यावश्यकम् स्वरूपसदनद्यतनत्वस्य लङ्साधुतानियामकत्वेऽनद्यतनत्वस्य वस्तुसतोऽविवक्षा मात्रेणोक्तस्थले लङ्वारणानुपपत्तेः। इदमप्यनद्यतनत्वम्= प्रकृतशब्द प्रयोगाधिकरणदिनावृत्तित्वम् । अथवा स्वातन्त्र्येणानद्यतनत्वं न लङर्थः किन्तु तादृशदिनाद्यक्षणवृत्तिध्वंसप्रतियोगित्वरूपमनद्यतनातीतत्वं विशिष्टमेव।

लङ् प्रत्यय का अतीतत्व की तरह अनद्यतनत्व भी अर्थ है क्योंकि आज जिसने पकाया उसके लिए '**अपचत्**' ऐसा प्रयोग नहीं होता है। (अतीतत्वमात्र के लङ् का अर्थ होने पर तो आज जिसने पकाया उसके लिए भी '**अपचत्**' ऐसा प्रयोग होने की आपत्ति है) '**अभून् नृपः**' इत्यादि स्थलों में अनद्यतनत्व होने पर भी अनद्यतनत्व की अविवक्षा से लङ् प्रत्यय से लुङ् का बाध नहीं होता है। अनद्यतनत्व की विवक्षा होने पर तो लङ् से लुङ् का बाध हो जाता । इस कारण भी लङ् का अनद्यतनत्व बोधकत्व स्वीकारना आवश्यक है क्योंकि स्वरूपतः विद्यमान अनद्यतनत्व के लङ् की साधुता का नियामक होने पर वस्तुतः विद्यमान अनद्यतनत्व की अविवक्षा मात्र से उक्त स्थल में लङ् वारण की अनुपपत्ति होगी। यहाँ पर कुछ अन्य लोगों का मत है कि लङ् का अर्थ भी केवल अतीतत्व होता है और स्वरूपतः विद्यमान अनद्यतनत्व उसकी साधुता का नियामक होता है। किन्तु इसमें मुश्किल यह है कि '**अभून्नृपः**' में लुङ् न होकर लङ् होना चाहिए क्योंकि लङ् की साधुता का नियामक अनद्यतनत्व तो स्वरूपतः विद्यमान ही है इस लङ् का वारण अनुपपन्न होगा।

अनद्यतनत्व को भी लङ् का अर्थ मानने पर तो अनद्यतनत्व की विवक्षा न होने से केवल अतीतत्व की विवक्षा से लुङ् होता है लङ् नहीं। अनद्यतनत्व विवक्षा होने पर ही लङ् सम्भव है। लुङर्थ अनद्यतनत्व से अतिरिक्त यह भी अनद्यतनत्व है प्रकृतशब्द प्रयोगाधिकरणदिनावृत्तित्व रूप। अथवा स्वातन्त्र्येण अनद्यतनत्व लङ् का अर्थ नहीं है। किन्तु तादृश— प्रकृतशब्दप्रयोगाधिकरणीभूत— दिनाद्यक्षणवृत्तिध्वंस प्रतियोगित्व रूप अनद्यतनातीतत्व लङ् अर्थ है।

वस्तुतः यहाँ पर भी प्रकृतशब्दप्रयोगाधिकरणीभूतदिनाद्यक्षणवृत्तिध्वंस ही लङ् का अर्थ मानना चाहिए और उसका स्ववृत्तिकृतिजन्यपाकाद्यननुकूलत्वविशिष्ट प्रतियोगिता सम्बन्ध से पाकाद्यनुकूल कृति में अन्वय करना चाहिए । नहीं तो कतिपय दिन लगातार चलने वाले पाकक्रिया में पूर्व कालीन कृति को आधार बनाकर **'अपचत्'** आदि प्रयोगों की आपत्ति आयेगी।

अतीतत्वमनद्यतनत्वं परोक्षत्वञ्च लिटोऽर्थः। ''अध्यास्त सर्वर्तुसुखामयोध्याम्'' इत्यादौ परोक्षत्वसत्त्वेऽपि परोक्षत्वाविवक्षया न लिट्। परोक्षत्वञ्च वक्तुः साक्षात्काराविषयत्वम् ।

अतीतत्व, अनद्यतनत्व और परोक्षत्व ये तीनों ही लिट् के अर्थ हैं। **'अध्यास्त सर्वर्तुसुखामयोध्याम्'** 'सभी ऋतुओं में सुख देने वाली अयोध्या में निवास किया' इत्यादि स्थलों में यद्यपि क्रिया में और क्रियानुकूल कृति में परोक्षत्व विद्यमान है तथापि परोक्षत्व की अविवक्षा से लिट् नहीं होता है। परोक्षत्व वक्ता के साक्षात्कार का अविषयत्व ही है। यहाँ पर अयोध्या में निवास वक्ता के साक्षात्कार का विषय नहीं है तथापि परोक्षत्व की अविवक्षा से लिट् नहीं होता है।

यहाँ पर यह ध्यान रखना चाहिए कि अतीतत्व और अनद्यतनत्व का अन्वय कृति में होने पर भी परोक्षत्व का अन्वय कृति में नहीं किया जा सकता है क्योंकि अन्यदीय कृति नियमतः परोक्ष ही होती है, साक्षात्काराविषय ही होती है। इसकारण कृति में परोक्षत्व का अन्वय करने पर प्रत्येक अनद्यतन अतीत क्रिया के स्थल में लिट् का प्रयोग होने लगेगा। अतः परोक्षत्व का अन्वय क्रिया में ही करना चाहिए। वह परोक्षत्व वक्ता के साक्षात्कार का अविषयत्व है।

केचित्तु वक्तृभिन्नकर्तृकत्वमेव परोक्षत्वम्, अत एव लिट उत्तमपुरुषासम्भवेनापरोक्षतायामपि लिटः साधुत्वे ''णलुत्तमो वा'' इत्यादेर्ज्ञापकत्वमुपायकारोक्तं सङ्गच्छते, अन्यथा निद्रादिदशायां स्वकर्तृकगमनादिक्रियायाः स्वपरोक्षत्वसम्भवेन ज्ञापकत्वासङ्गतेरित्याहुः।

कुछ लोग तो- वक्तृभिन्नकर्तृकत्व ही परोक्षत्व है उसीलिए लिट् का उत्तम पुरुष असम्भव होने के कारण अपरोक्षतादशा में भी लिट् की साधुता में **'णलुत्तमो वा'** पा॰ सू॰ 7/1/91 का उपायकार द्वारा कहा हुआ ज्ञापकत्व भी सङ्गत होता है अन्यथा निद्रादिदशा में स्वकर्तृकगमनादि क्रिया का स्वपरोक्षत्व सम्भव होने के कारण ज्ञापकत्व की असङ्गति होगी- ऐसा कहते हैं। दो प्रकार का परोक्षत्व हो सकता है वक्ता के साक्षात्कार का

अविषयत्वरूप और वक्ता से भिन्न कर्तृकत्व रूप । यदि वक्ता के साक्षात्कार का अविषयत्व परोक्षत्व है तो निद्रादि की स्थिति में स्वीयगमनादिक्रिया के, शैशवावस्था में माता के साथ कहीं गमन क्रियादि के स्वसाक्षात्कार का अविषय होने के कारण उत्तमपुरुषीय लिट् का प्रयोग भी हो सकता है और साधु होता है। इसीलिए काशिकाकार ने लिखा है कि— **'उत्तमविषयेऽपि चित्तव्याक्षेपात् परोक्षता सम्भवत्येव तद्यथा-सुप्तोऽहं किल विललाप'** काशिका **'परोक्षे लिट्'** पा॰ सू॰ 3/2/175 किन्तु वक्ता से भिन्नकर्तृकत्व रूप परोक्षत्व होने पर उत्तम पुरुष में लिट् साधु नहीं हो सकेगा। क्योंकि उत्तम पुरुष में वक्ता और कर्ता एक ही होते हैं तो जब उत्तम पुरुष में लिट् सम्भव नहीं है, तो **'णलुत्तमो वा'** यह सूत्र व्यर्थ हो जायेगा। व्यर्थ होकर ज्ञापन करेगा कि क्रिया के अपरोक्ष होने पर भी लिट् होता है। ऐसा उपायनामक किरणावली की टीका के लेखक वर्धमान का कहना है।

'कलिङ्गे दृष्टोऽसि? नाहं कलिङ्गान् जगाम' इत्यादावत्यन्तापह्नवस्थले सूत्रान्तरेण क्रियाया अपरोक्षत्वेऽपि लिड्विधानात् तादृशज्ञापकबलेन "व्यातेने किरणावलीम्" इत्यत्र लिटः साधुत्वोपपादनमुपायकृतामयुक्तमेवेति बोध्यम्। अत्यन्तापह्नवश्चाबाधितपरोक्तविपरीतबोधनाय तदुपपादकाभाव प्रतिपादनेच्छा कलिङ्गाधिकरणकदर्शनादेरुपपादकं कलिङ्गगमनादिकं तेन विना तदसम्भवात्। अत्यन्तापह्नवः स्वरूपसन्नेव लिट्साधुतानियामकः।

'कलिङ्गे दृष्टोऽसि? नाहं कलिङ्गान् जगाम्' 'कलिङ्ग में दिखे हो? मैं कलिङ्ग (कभी) नहीं गया' इत्यादि अत्यन्त अपह्नवस्थल में सूत्रान्तर से **'अत्यन्तापह्नवे लिड्वक्तव्यः'** इस वार्तिक से क्रिया के अपरोक्ष होने पर भी लिट् का विधान होने के कारण तादृश ज्ञापकबल से **'णलुत्तमो वा'** इस सूत्र की ज्ञापकता के बल से उपायकार के द्वारा **'व्यातेने किरणावलीम्'** यहाँ पर लिट् के साधुत्व का उपपादन अयुक्त ही है ऐसा समझना चाहिए।

उदयनाचार्य जी ने किरणावली के तृतीय मङ्गलाचरण श्लोक में **'व्यातेने किरणावलीमुदयनः सत्तर्कतेजोमयीम्'** ऐसा प्रयोग किया है । अब ये समस्या है कि यह प्रयोग साधु कैसे है? लिट् का प्रयोग तो ऐसे स्थल में असाधु होता है। इसीलिए वर्धमान प्रयासरत हैं कि इसकी साधुता का उपपादन किया जाये। इसके लिए उन्होने कहा कि उत्तम पुरुष में लिट् असम्भव है क्योंकि क्रिया के परोक्षता में ही लिट् हो सकता है अपरोक्षता में नहीं, यदि उत्तम पुरुष में लिट् नहीं हो सकता है तो **'णलुत्तमो वा'** यह सूत्र व्यर्थ हो जायेगा। व्यर्थ होकर ज्ञापन करेगा कि क्रिया की अपरोक्षता में भी लिट् होता है। इस प्रकार **'व्यातेने किरणावलीम्'** यहाँ पर क्रिया की अपरोक्षता में भी लिट् साधु होगा।

इस पर गदाधर का कहना है कि क्रिया की परोक्षता में ही लिट् का विधान नहीं है अत्यन्तापह्नव में भी है। अतः उत्तम पुरुष में लिट् असम्भव नहीं है। फलतः **'णलुत्तमो वा'** सूत्र न तो व्यर्थ होगा और न तो ज्ञापक होगा। इस कारण इस तरीके से **'व्यातेने किरणावलीम्'** प्रयोग की साधुता का सम्पादन नहीं हो सकता है। इस प्रयोग की साधुता या तो चित्तव्याक्षेप से या तो **'व्यातेने'** को तिङन्त प्रतिरूपक अव्यय मानकर ही हो सकती

है।

तथा अत्यन्तापह्नव अबाधित जो परोक्त उसके विपरीत का बोधन करने के लिए तदुपपादक अभाव प्रतिपादन की इत्छा ही है। कलिङ्गाधिकरणक दर्शनादि का उपपादक कलिङ्गगमनादिक है क्योंकि कलिङ्ग गमनादि के विना कलिङ्गाधिकरणकदर्शन असम्भव है। **'कलिङ्गे दृष्टोऽसि?** के द्वारा जो परोक्त कलिङ्गाधिकरणकदर्शन है, वह अबाधित है, उसके विपरीत बोधन के लिए कलिङ्गाधिकरणकदर्शन के उपपादक कलिङ्गगमन के अभाव के प्रतिपादन की इच्छा है, यही अत्यन्तापह्नव है।

अत्यन्तापह्नव लिट् का अर्थ नहीं है स्वरूपतः विद्यमान होता हुआ वह लिट् की साधुता का नियामक होता है।

विमर्श– अत्यन्तापह्नव का अर्थ ब्रतलाया कि अबाधितपरोक्त के विपरीतबोधन के लिए परोक्त के उपपादक के अभाव के प्रतिपादन की इच्छा ही अत्यन्तापह्नव है। ऐसा अत्यन्तापह्नव वहीं पर हो सकता है जहाँ पर परोक्त अबाधित होगा। वहीं पर ऐसे लिट् का प्रयोग साधु होगा। इस प्रकार जब उत्तर देने वाला झूठ बोल रहा हो, तभी ऐसा प्रयोग होता है यह प्राप्त हुआ। यही परम्परया माना जाता है। किन्तु मेरा ऐसा मानना है कि परोक्त के उपपादक के अभाव के प्रतिपादन की इच्छा को ही अत्यन्तापह्नव होना चाहिए। अन्यथा तो लिट् प्रयोग से ही सुनने वाले को कहने वाले की बात की असत्यता ज्ञात हो जायेगी और इस तरह का प्रयोग करने का प्रयोजन नहीं सिद्ध होगा। यदि व्यक्ति कलिङ्ग गया है तब भी और न गया है तब भी दोनों ही स्थितियों में परोक्त कलिङ्गाधिकरणक दर्शन के उपपादक कलिङ्ग गमनाभाव प्रतिपादन की इच्छा रूप अत्यन्तापह्नव होने से उक्त प्रयोग **'नाहं कलिङ्गान् जगाम'** साधु होगा। परम्परा से तो ऐसा कहने वाला यदि कलिङ्ग गया है तभी ऐसा प्रयोग साधु माना जाता है।

लिङ्लोटोर्विधिरर्थः परप्रवृत्त्यर्थं तत्प्रयोगात् । विधिः प्रवर्तकज्ञान विषयो धर्मः। सच धर्मो न्यायनये कृतिसाध्यत्वं बलवदनिष्टाननुबन्धित्वसहित मिष्टसाधनत्वञ्च ।'ओदनकामः पचेत्' 'स्वर्गकामो यजेत' इत्यादावोदनस्वर्गा- दिरूपं यत्फलं तत्साधनत्वं पाकयागादिक्रियायां प्रतीयते। तादृशफलानाञ्च तत्तद्रूपेण लिङादिशक्यतावच्छेदककोटिप्रवेशे शक्त्यानन्त्यं सर्वसाधारण्येन व्युत्पत्त्यनुदयेनापूर्वफलसाधनत्वबोधानिर्वाहश्चेतीष्टत्वेन तेषामनुगमः। इष्टत्वम् = समभिव्याहृतपदोपस्थापितकामनाविषयत्वम्, अतः 'स्वर्गकामः पचेत्' इत्यादौ शक्तिभ्रमशून्यस्य नौदनादिसाधनत्वधीः न वा तत्तत्पर्येण तथा प्रयोगः प्रामाणिकानाम् ।

लिङ् और लोट् का अर्थ विधि है क्योंकि पर की प्रवृत्ति के लिए लिङ् और लोट् का प्रयोग होता है। प्रवर्तकज्ञानविषयीभूत धर्म विधि है और वह धर्म प्रवर्तकज्ञानविषयी भूत धर्म न्यायमत में कृतिसाध्यत्व और बलवदनिष्टाननुबन्धित्व सहितेष्टसाधनत्व है। **'ओदनकामः पचेत्' 'स्वर्गकामो यजेत'** इत्यादि स्थलों में ओदन, स्वर्ग आदि रूप जो फल है तत्साधनत्व पाक और याग आदि क्रिया में प्रतीत होता है। वैसे फलों का तत्तद् रूप

ओदनत्व स्वर्गत्वादि रूप से लिङ्ग आदि के शक्यतावच्छेदक कोटि में प्रवेश करने पर शक्ति का आनन्त्य होगा अर्थात् ओदनसाधनत्व, स्वर्गसाधनत्व आदि में लिङ् की शक्ति स्वीकारने पर तो फलों के अनन्त होने से तत्तत्फल साधनत्व के भी अनन्त होने के कारण उन तत्तत्फलसाधनत्वं में रहने वाली शक्ति भी अनन्त होगी। साथ ही सर्वसाधारण्येन व्युत्पत्ति का उदय न होने के कारण- शक्ति का ग्रहण न होने के कारण अपूर्वफल के साधनत्व के बोध का निर्वाह नहीं हो सकेगा। इस कारण उन समस्त फलों का इष्टत्वेन अनुगम कर लिया जाता है। इष्टत्वेन अनुगत फलों का साधनत्व लिङ्, लोट् से प्रतीत होता है, इस प्रकार शक्ति की अनन्तता भी नहीं होती है और व्युत्पत्ति का उदय भी हो जाने के कारण अपूर्व फल के साधनत्व के बोध का भी निर्वाह हो जाता है।

इष्टत्व का अर्थ समभिव्याहृत पद से उपस्थापित कामना का विषयत्व है। इस कारण शक्तिग्रह से शून्य पुरुष को **'स्वर्गकामः पचेत्'** इत्यादि स्थलों में पाक में ओदनादिसाधनत्व की बुद्धि नहीं होती है और न ही प्रामाणिकों का ओदनादिसाधनत्वबोधन-तात्पर्य से वैसा प्रयोग ही होता है। चूँकि **'स्वर्गकामः पचेत्'** प्रयोग करने पर ओदन में समभिव्याहृत पदोपस्थापित कामनाविषयत्व नहीं है, समभिव्याहृतस्वर्गकामपदोपस्थापित कामना-विषयत्व स्वर्ग में हैं। इस कारण ओदन साधनत्व पाक क्रिया में होने पर भी ओदनसाधनत्व की प्रतीति नहीं हुआ करती है तथा वैसे तात्पर्य से ऐसा प्रयोग भी नहीं होता है।

इष्टत्वज्ञानस्याप्रवर्तकत्वेऽपि शक्यफलानुगमार्थं तस्य शक्यता। वस्तुतस्त्वशक्यस्यैव तस्य शक्यानुगमकता सर्वनामस्थले बुद्धिस्थत्ववत् तेन रूपेण फलानां सङ्केतविषयतां विना शक्त्यैक्यासम्भवात्। तस्य सङ्केत-विषयत्वोपगमेऽपि यथा न तस्य वाच्यता तथा प्रपञ्चितमन्यत्र। अत्र चेष्टत्वस्य शाब्दबोधेऽभानाद् विशिष्टेष्टतावच्छेदकस्वर्गत्वादिप्रकारेण शाब्दबोधोत्पत्त्या विधिवाक्यात् प्रवर्तकज्ञाननिर्वाहः।

इष्टत्वज्ञान के प्रवर्तक न होने पर भी शक्य फलों के अनुगम के लिए इष्टत्व की शक्यता होती है। भाव यह है कि इष्टसाधनत्वज्ञान प्रवर्तक है, फल का इष्टत्व ज्ञान नहीं, इष्टसाधनत्व ज्ञान के स्थान पर फल के इष्टत्वज्ञान को प्रवर्तक नहीं माना जा सकता है क्योंकि प्रवृत्ति इष्टसाधन में होती है इष्ट फल में नहीं। किन्तु इष्टत्व की शक्यता इस कारण स्वीकारी जा रही है क्योंकि इष्टत्व में शक्यता न मानने पर फलों का अनुगम न हो सकेगा।

वस्तुतः तो अशक्य ही इष्टत्व की शक्यानुगमता सर्वनामस्थल में बुद्धिस्थत्व की अनुगमकता की तरह स्वीकारी जाती है क्योंकि उस रूप से फलों की सङ्केत विषयता के विना शक्ति का ऐक्य असम्भव है। उसके सङ्केतविषयत्व का उपगम होने पर भी जैसे उसकी वाच्यता नहीं होती है वह अन्यत्र शक्तिवादादि में प्रपञ्चित है। यहाँ पर इष्टत्व का शाब्दबोध में भान न होने के कारण विशिष्ट इष्टतावच्छेदक स्वर्गत्वादि को प्रकार बनाकर शाब्दबोध की उत्पत्ति होने के कारण विधिवाक्य से प्रवर्तक ज्ञान का निर्वाह होता है।

यहाँ पर गदाधर ने **वस्तुतः** प्रतीक से जो पक्ष उठाया है उसके मूल में बात यह है कि यदि फलों में इष्टत्वेन रूपेण सङ्केतविषयता नहीं है, तब तो इष्ट तत्तत् फलों के अनन्त

होने से उनके साधनत्व और उनमें रहने वाली शक्तियाँ भी अनन्त होंगी। इससे पूर्व वाले पक्ष में भी यह बात मानी जा रही है। किन्तु फर्क़ दोनों में मात्र इतना है कि प्रथम कल्प में इष्टत्व में भी शक्यता है, वस्तुतः से उठाये गये कल्प में इष्ट में शक्यता होने पर भी इष्टत्व में शक्यता नहीं है। इस कारण इष्टत्व का शाब्दबोध में भान नहीं होता है। **'स्वर्गकामो यजेत'** आदि से याग में स्वर्गादि साधनत्व ही बोधित होता है, इष्टत्व नहीं भासता है। इष्टत्व की भी शक्यता होने पर इष्टत्व का भी भान होता । इसीलिए इस कल्प को सिद्धान्तित किया है। सर्वनामस्थल में जैसे बुद्धिस्थत्व के सङ्केतविषय होने पर भी बुद्धिस्थत्व की वाच्यता नहीं होती है, उसी प्रकार यहाँ पर भी इष्टत्व की वाच्यता नहीं होती है। यह शक्तिवाद में विस्तार से बताया गया है।

यत्तु इष्टत्वेन फलभानेऽपि स्वर्गकामादिपदैकदेशोपस्थितस्वर्गत्वावच्छिन्नस्य विध्यर्थैकदेशे इष्टेऽभेदान्वयात् प्रवर्तकज्ञाननिर्वाह इति, तन्न सत्; वृत्तिशब्दैकदेशे इतरानन्वयनियमात् स्वर्गत्वादिप्रकारेण कामनाधीनप्रवृत्तौ स्वर्गत्वादिविशेषितफलसाधनताज्ञानस्य हेतुतयाऽभेदेन स्वर्गादिविशेषितफलसाधनताज्ञानस्यानुपयोगित्वाच्च। अभेदेन स्वर्गादिप्रकारकस्वर्गादीष्टसाधनताज्ञानमपि स्वर्गत्वादिप्रकारकप्रवृत्तौ हेतुः, अत एव "स्वर्ग कामो यजेत" इत्यादितः प्रवृत्तिः इति युक्तम्– स्वर्गत्वप्रकारककामनाया अधिकारत्वानुपपत्तेः।

जो लोग यह कहते है कि इष्टत्वेन फल का भान होने पर भी स्वर्गकामादिपदैकदेशोपस्थित स्वर्गत्वावच्छिन्न का विध्यर्थैकदेश इष्ट में अभेदान्वय हो जाने के कारण प्रवर्तक ज्ञान का निर्वाह होता है। भाव यह है कि विध्यर्थ इष्टसाधनत्व के एकदेश इष्ट में स्वर्गकाम आदि पद के एकदेश स्वर्ग पद से उपस्थित स्वर्गत्वावच्छिन्न का अभेदान्वय हो सकता है, इस कारण यदि इष्टत्व में भी लिङ् की शक्ति स्वीकार ली जाये तो भी कोई क्षति नहीं है। इष्टत्व में भी शक्यता को स्वीकार ही लिया जाये। इस प्रकार प्रवर्तकज्ञान का स्वर्गाभिन्न इष्टसाधनत्व ज्ञान का निर्वाह हो जायेगा, उसी से प्रवृत्ति हो सकती है ।

तो यह ठीक नहीं है क्योंकि वृत्ति शब्द के एकदेश में इतर का अन्वय नहीं होता है, स्वर्गत्वादिप्रकारेण कामना के अधीन प्रवृत्ति में स्वर्गत्वादिविशेषित फलसाधनता ज्ञान के कारण होने से अभेदेन स्वर्गादिविशेषितफलसाधनताज्ञान अनुपयोगी होता है। अभेदेन स्वर्गादिप्रकारक स्वर्गादीष्टसाधनता ज्ञान भी स्वर्गत्वादिप्रकारक प्रवृत्ति में कारण है, इसीलिए **'स्वर्गकामो यजेत'** इत्यादि से प्रवृत्ति होती है यह कहना तो युक्तिसङ्गत नहीं है क्योंकि स्वर्गत्वप्रकारककामना के अधिकारत्व की अनुपपत्ति होगी।

गदाधर स्वर्गाभिन्नेष्टसाधनताज्ञान के प्रवर्तकत्व का खण्डन करने में दो युक्तियाँ दे रहे हैं। पहली बात तो यह है कि विध्यर्थेष्टसाधनत्व के एकदेश इष्ट में स्वर्गकामपदैकदेश स्वर्ग से उपस्थित स्वर्ग का अभेदेन अन्वय करने पर जो 'वृत्तिशब्दैकदेश में इतर पदार्थ का अन्वय नहीं होता है' ऐसा नियम है। इस नियम से विरोध होगा। क्योंकि वृत्तिशब्द के एक देश इष्ट में आप स्वर्ग का अन्वय कर रहे हैं। लिङ् की शक्ति तो इष्टसाधनत्व में है इस

कारण इष्ट तो वृत्त्येकदेश हुआ। उसमें आप स्वर्ग का अन्वय नहीं कर सकते हैं। दूसरी बात यह है कि स्वर्गत्वप्रकारेण स्वर्गविषयक कामना के अधीन प्रवृत्ति में स्वर्गत्वविशिष्ट फल साधनता ज्ञान ही कारण होता है, अभेदेन स्वर्गप्रकारक स्वर्गरूपफलसाधनताज्ञान कारण नहीं होता है। इसकारण यदि स्वर्गाभिन्नेष्टसाधनताज्ञान हो भी जाये तो उसका तो कोई उपयोग ही नहीं है।

यदि आप स्वर्गत्वप्रकारेण स्वर्गविषयक कामना के अधीन प्रवृत्ति में अभेदेन स्वर्ग प्रकारक स्वर्गादिरूप इष्टसाधनता ज्ञान को भी कारण मानना चाहो तो स्वर्गत्वप्रकारक कामना के अधिकारत्व की अनुपपत्ति होगी। यद्धर्मावच्छिन्नसाधनताज्ञान से प्रवृत्ति होती है, तत्प्रकारककामना का ही अधिकारत्व होता है। चूँकि स्वर्गत्वावच्छिन्नसाधनताज्ञान से **'स्वर्गकामो यजेत'** से आपके मतानुसार प्रवृत्ति नहीं हो रही है, बल्कि स्वर्गाभिन्नसाधनता ज्ञान से प्रवृत्ति हो रही है। इसलिए स्वर्गाभेदप्रकारक कामना का ही अधिकारत्व हो सकेगा। यह असङ्गत होगा। **'स्वर्गकामो यजेत'** में स्वर्गकाम पद से स्वर्गकाम का ही अधिकारित्व और स्वर्गत्वप्रकारक कामना का अधिकारत्व प्रतीत होता है। यही सिद्धान्त भी है।

अथेष्टत्वस्य शक्योपलक्षणत्वे तदंशाभाननिर्वाहेऽपि स्वर्गत्वादेरशक्यस्य भानं न सम्भंवति अशक्यस्य भानोपगमेऽति प्रसङ्गादिति चेत्? स्वर्गत्वाद्यवच्छिन्ने समभिव्याहृतकामनाविषयत्वज्ञानसहकृतस्य तादृशकामना-विषयतावच्छिन्नशक्तिज्ञानस्य स्वर्गत्वादिप्रकारकशाब्दधीहेतुत्वोपगमेऽति-प्रसङ्गानवकाशात् ।

लेकिन इष्टत्व के शक्य का उपलक्षण होने पर शब्दबोध में इष्टत्व अंश के अभान का निर्वाह होने पर भी स्वर्गत्वादि अशक्य का भान तो नहीं सम्भव है क्योंकि यदि अशक्य का भान शाब्दबोध में स्वीकार लिया जायेगा, तब तो अतिप्रसङ्ग होगा। इसी प्रकार अन्य भी पदार्थों का शाब्दबोध में भान का प्रसङ्ग होगा जोकि वस्तुतः शक्य ही नही है। **'स्वर्गकामो यजेत'** से होने वाले बोध में याग में स्वर्गत्वेन स्वर्गसाधनत्व प्रतीत होता है। इसका उपपादनं कैसे करोगे?

तो स्वर्गत्वाद्यवच्छिन्न में- स्वर्गत्वाद्यवच्छिन्नविषयक समभिव्याहृतकामनाविषयत्व ज्ञानसहकृत तादृश (समभिव्याहृतकामना) विषयत्वावच्छिन्न शक्तिज्ञान का स्वर्गत्वादि प्रकारक शाब्दवोध कारणत्व स्वीकार कर लेने से अतिप्रसङ्ग का अवकाश नहीं हैं। भाव यह है कि समभिव्याहृत कामनाविषयत्वावच्छिन्न शक्तिज्ञान स्वर्गत्वावच्छिन्न में है इसके साथ ही **'स्वर्गत्वावच्छिन्नः समभिव्याहृतकामनाविषयः'** इस प्रकार का ज्ञान भी है। लिङ् की शक्ति का ज्ञान है कि **'लिङ्पदं समभिव्याहृतकामनाविषयत्वावच्छिन्नबोधकम्'** इस प्रकार से यही शक्तिज्ञान जो कि समभिव्याहृतकामनाविषयत्वज्ञान से सहकृत है, स्वर्गत्वादि-प्रकारक शाब्दवोध में कारण है। इसलिए कोई मुश्किल नहीं है। अन्यपदार्थों के भान का प्रसङ्ग नहीं है।

वस्तुतस्तादृशकामनाविषयतावच्छेदकत्वोपलक्षितस्वर्गत्वादिविशिष्ट-साधनत्वे शक्तिस्वीकारात् सर्वसामञ्जस्यम् ।

वस्तुतः समभिव्याहृत कामनाविषयतावच्छेदकत्वोपलक्षित स्वर्गत्वादिविशिष्ट साधनत्व में लिङ् की शक्ति का स्वीकार होने के कारण सभी सामञ्जस्य है। स्वर्गत्वादि समभिव्याहृत कामनाविषयतावच्छेदकत्वोपलक्षित हैं, वैसे स्वर्गत्वादि से अवच्छिन्न का साधनत्व ही लिङ् लोट् आदि से प्रतीत होता है। इस कारण शाब्दबोध में इष्टत्व या समभिव्याहृत कामनाविषयत्व का भान नहीं होता है और स्वर्गत्व के भान का निर्वाह भी हो जाता है।

न च स्वर्गत्वादिविशिष्टसाधनत्वस्य विधिप्रत्ययवाच्यत्वं न सम्भवति- स्वर्गत्वादेर्गङ्गास्नानादिजन्यस्वर्गादिसाधारण्येन यागादिजन्यतानवच्छेदकतया यागादौ स्वर्गत्वादिविशिष्टसाधनत्वबाधात्, नहि जन्यतानवच्छेदकधर्मो जन्यत्वनिरूपके विशेषणमिति वाच्यम्; स्वर्गत्वादेः शक्यविशेषणत्वेऽपि तदुपलक्षितवैजात्यावच्छिन्ननिरूपितजन्यताया यागादावबाधितायाः स्वर्गादिजनकतात्वेन विधिप्रत्ययतो भानसम्भवात्। घटत्वादिविशिष्टवाचकपदघटितात् 'घटं द्रव्यत्वेनैव जानाति' इत्यादिवाक्याद् घटत्वाद्युपलक्षितघटादिविशेष्यकत्व- भानवत् ।

यदि कहो कि स्वर्गत्वादिविशिष्टसाधनत्व का विधि प्रत्ययवाच्यत्व सम्भव नहीं हैं क्योंकि स्वर्गत्वादि के गङ्गास्नानादिजन्य स्वर्गादि साधारण होने से यागादि का जन्यतानवच्छेदक होने के कारण यागादि में स्वर्गत्वादिविशिष्टसाधनत्व का बाध है। ऐसा तो होता नहीं है कि जन्यतानवच्छेदक धर्म भी जन्यता के निरूपक में विशेषण बन जाये। इस पूर्वपक्ष का आशय यह है कि आप बता रहे हैं कि स्वर्गत्वविशिष्टसाधनत्व याग में प्रतीत होता है। किन्तु यह तो तभी सम्भव है, यदि स्वर्गत्वावच्छिन्न जन्यता से निरूपित जनकता याग में हो परन्तु याग में स्वर्गत्वावच्छिन्न जन्यता से निरूपित जनकता नहीं है। क्योंकि स्वर्ग और याग का कार्यकारणभाव अगर बने तभी तो यह सम्भव होगा, इन दोनों का कार्यकारणभाव ही व्यभिचार होने से सम्भव नहीं है। बग़ैर याग के भी गङ्गास्नानादि से स्वर्ग प्राप्त होता है। इस कारण यागजन्यता का अवच्छेदक स्वर्गत्व नहीं है। अतः स्वर्गत्वविशिष्टसाधनत्व याग में नहीं प्रत्याय्यित किया जा सकता है क्योंकि वह तो बाधित की तरह है।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि स्वर्गत्वादि के शक्यविशेषण होने पर भी स्वर्गत्वादि से उपलक्षित वैजात्य से अवच्छिन्न से निरूपित जनकता के यागादि में अबाधित होने के कारण स्वर्गादिजनकतात्वेन विधि प्रत्यय से भान सम्भव है जैसे कि घटत्वादि विशिष्टवाचक घटपद से घटित **'घटं द्रव्यंत्वेनैव जानाति'** इत्यादि वाक्यों से घटत्वाद्युपलक्षित घटादिविशेष्यकत्व का भान होता है।

समाधान का आशय यह है कि वैसे तो घटपद घटत्वावच्छिन्न का वाचक होता है, इसीलिए **'घटं जानाति'** से घटत्वावच्छिन्न घटविशेष्यक ज्ञानाश्रयत्व बोधित होता है। किन्तु जब **'घटं द्रव्यत्वेनैव जानाति'** प्रयोग कोई व्यक्ति करता है तब घटत्वावच्छिन्न घटविशेष्यक बोध न होकर घटत्वोपलक्षित घटविशेष्यक बोध ही होता है। उसी प्रकार यहाँ पर भी स्वर्गत्वावच्छिन्नजन्यतानिरूपित जनकता का याग में बोध न होकर स्वर्गत्वोपलक्षित स्वर्गवृत्ति वैजात्य से अवच्छिन्न जन्यता से निरूपित जनकता के अबाधित होने के कारण

उसी का ही स्वर्गसाधनत्व से यागादि में बोध होता है। ऐसा ही स्वर्गादिजनकत्व विधिप्रत्यय से भासता है।

न च तद्धर्मावच्छिन्ननिरूपिततत्साधनत्वज्ञानं विना तद्धर्मप्रकारकफलेच्छाधीनप्रवृत्त्यनिर्वाह इति शङ्क्यम्; वह्नित्वादिप्रकारकेच्छातोऽपि तृणादिसमवधानेऽभ्रान्तप्रवृत्तेरानुभविकत्वात्, भूयः सुखार्थिनामपि भ्रमं विना क्रियाविशेषे प्रवृत्तेश्च तत्तद्धर्मावच्छिन्नफलार्थिप्रवृत्तौ तद्धर्मप्रकारेण भासमानफलं प्रति साधनताज्ञानस्यैव प्रवर्तकत्वात्। स च धर्मः कार्यतावच्छेदकतया भासतां कार्यांशे उपलक्षणतयैव वेत्यन्यदेतत्। न हि वह्नित्वादिकं तृणादिजन्यतावच्छेदकं व्यभिचारिसाधारणत्वात्, न वा भूयस्त्वादिकं कस्यचिज्जन्यतावच्छेदकम्— अर्थवशसम्पन्नत्वात्।

तद्धर्मावच्छिन्ननिरूपिततत्साधनत्व ज्ञान के विना तद्धर्मप्रकारकफलेच्छाधीन प्रवृत्ति का निर्वाह नहीं हो सकता है (इस कारण स्वर्गत्वावच्छिन्ननिरूपित स्वर्गसाधनत्व ज्ञान के विना स्वर्गत्वप्रकारक स्वर्गरूप फल की इच्छा के अधीन प्रवृत्ति नहीं हो सकेगी क्योंकि उपर्युक्त रीति से स्वर्गत्वावच्छिन्न स्वर्गसाधनत्वज्ञान याग में नहीं है) ऐसी आशङ्का तो नहीं करनी चाहिए क्योंकि वह्नित्वादिप्रकारक इच्छा से भी तृणादिसमवधान होने पर अभ्रान्त प्रवृत्ति आनुभविक है और भूयः सुख की इच्छा रखने वालों की भी क्रियाविशेष में प्रवृत्ति होती है। तद्धर्मप्रकारेण भासमान फल के प्रति साधनताज्ञान का ही तद्धर्मावच्छिन्न फलार्थि प्रवृत्ति में प्रवर्तकत्व है। वह धर्म चाहे कार्यतावच्छेदकतया भासे अथवा कार्यांश में उप लक्षणतया भासे । वह्नित्वादि तृणादि के जन्यतावच्छेदक नहीं है क्योंकि व्यभिचारिसाधारण हैं और न ही भूयस्त्व आदि ही किसी के जन्यतावच्छेदक हैं क्योंकि वे अर्थवशात् सम्पन्न होते हैं।

तद्धर्मावच्छिन्ननिरूपितसाधनत्व के ज्ञान के विना तद्धर्मप्रकारकफलेच्छा के अधीन प्रवृत्ति नहीं हो सकती है। यह कहना सही नहीं है क्योंकि तृण में वह्नित्वावच्छिन्ननिरूपित-साधनत्व नहीं है, वह्नि तृणादि से अजन्य अरणि आदि से जन्य भी होता है उसमें वह्नित्व है किन्तु उसमें तृणादिजन्यता नहीं है। अतः तृणादि जन्यतावच्छेदकत्व वह्नित्व में नहीं है। इस तरह वह्नित्वावच्छिन्ननिरूपितसाधनत्व का ज्ञान तृण नहीं है। परन्तु वह्नित्वप्रकारक वह्नीच्छा के अधीन तृण में प्रवृत्ति देखी जाती है। इसी प्रकार भूयः सुख की इच्छा होने पर तत्तत् क्रिया विशेष में प्रवृत्ति होती है। यहाँ पर भूयः सुखत्वावच्छिन्न साधनत्व ज्ञान तत्तत् क्रिया में न होने पर भी तत्तत् क्रिया में प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार भूयः सुखत्व प्रकारकफलेच्छाधीन प्रवृत्ति का निर्वाह भूयःसुखत्वावच्छिन्न निरूपित साधनत्वज्ञान के विना ही होता है। इस कारण यही मानना उचित है कि तद्धर्मप्रकारेण भासमान फल के प्रति साधनताज्ञान तद्धर्मावच्छिन्न फलार्थी की प्रवृत्ति में कारण है। वह धर्म कहीं पर कार्यता वच्छेदक होता है, कहीं पर नहीं होता है। इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता है। वह्नित्व, भूयः सुखत्वादि कार्यतावच्छेदकतया नहीं भासते हैं, कार्यांश में उपलक्षणतया ही भासते हैं उसी प्रकार स्वर्गत्व भी कार्यांश में उपलक्षणतया ही भासता है। फिर भी क्रमशः तृण में,

तत्तत्क्रिया में और यागादि में प्रवृत्ति का निर्वाह हो जाता है।

एवं सति घटत्वावच्छिन्नफलार्थी तन्त्वादौ कथं न प्रवर्तते? तन्त्वादेरपि घटत्वाद्युपलक्षितजन्यत्वाविशिष्टनिरूपितद्रव्यत्वावच्छिन्नसाधनतावत्त्वादिति चेत् ? फलानुपधानश्चियात् तस्य स्वातन्त्र्येण प्रवृत्तिं प्रतिबन्धकत्वात् । फलोपधायकसाधनत्वस्य वा विधिप्रत्ययार्थतया 'घटकामस्तन्तुमुपाददीत' इत्यादिर्न प्रयोगः।

ऐसा होने पर- तद्धर्म प्रकारेण भासमान फल के प्रति साधनता ज्ञान के तद्धर्मावच्छिन्न फलार्थि प्रवृत्ति के प्रति कारण होने पर- घटत्वावच्छिन्न फलार्थी तन्तुओं में क्यों नहीं प्रवृत्त होता है? क्योंकि तन्तु आदि की भी घटत्वाद्युपलक्षित जन्यत्वादिविशिष्ट द्रव्यत्वावचिछन्न साधनतावत्ता है ही। भाव यह है कि घटत्वप्रकांरेण भासमान जन्यत्वविशिष्टद्रव्यत्वावच्छिन्न साधनता तन्तु आदि में भी है, जन्यत्वविशिष्ट के प्रति द्रव्यत्वावच्छिन्न की कारणता है। घटत्वोपलक्षित जन्यत्वविशिष्ट निरूपित साधनता द्रव्यत्वावच्छिन्न की होती है, तन्तु भी द्रव्यत्वावच्छिन्न है। इस प्रकार घटत्वप्रकारेण भासमान जन्यत्वविशिष्टफल के प्रति साधनता तन्तु में होने से उस साधनताज्ञान से तन्तु में घटत्वावच्छिन्न फलार्थी की प्रवृत्ति होनी चाहिए क्यों नहीं होती है? तो इसका उत्तर है कि फलानुपधाननिश्चय होने से उक्त प्रवृत्ति नहीं होती है। फलानुपधाननिश्चय स्वतन्त्र रूप से प्रवृत्ति का प्रतिबन्धक होता है अथवा फलोपधायक साधनत्व की विध्यर्थता होने के कारण '**घटकामस्तन्तुमुपाददीत**' इत्यादि प्रयोग नहीं होते हैं। तन्तुओं में घटत्वावच्छिन्न फल का उपधायकत्व न होने से ऐसा प्रयोग नहीं होता है। याग में तो स्वर्गत्वावच्छिन्न स्वर्ग का उपधायकत्व है ही । अतः '**स्वर्गकामो यजेत**' इत्यादि प्रयोग तो होते हैं।

न च तथापि स्वर्गत्वादेर्यागनिष्ठकारणताघटकव्यापकतानिरूपकतानवच्छेदकतया स्वर्गत्वावच्छिन्ननिरूपितव्यापकताघटितकारणताया बाधः— स्वर्गादिनिष्ठकार्यतावच्छेदकवैजात्यस्य च कारणताग्रहोत्तरकालकल्प्यत्वेन प्रागनुपस्थित्या तदवच्छिन्ननिरूपितव्यापकताबोधासम्भव इति 'स्वर्गकामः' इत्यादौ विध्यर्थबोधानुपपत्तिर्दुर्वारैवेति वाच्यम्; स्वरूपसम्बन्धरूपाया एव कारणताया विध्यर्थत्वोपगमात् ।

यदि कहो फिर भी स्वर्गत्वादि के यागनिष्ठकारणताघटक व्यापकता निरूपकता का अवच्छेदक होने से स्वर्गत्वावच्छिन्ननिरूपितव्यापकताघटितकारणता का बाध है, स्वर्गादिनिष्ठकार्यतावच्छेदकवैजात्य के कारणताग्रहोत्तर काल में कल्प्य होने से पूर्व में अनुपस्थित होने से तदवच्छिन्न (तादृशवैजात्यावच्छिन्न) निरूपित, व्यापकता बोध असम्भव है, इसलिए '**स्वर्गकामः** इत्यादिस्थलों में विध्यर्थबोध की अनुपपत्ति दुर्वार ही है। आशय यह है कि याग में जो स्वर्गसाधनत्व प्रतीत हो रहा है वह कैसा स्वर्गसाधनत्व है? साधनता माने कारणता, कारणता व्यापकता से घटित होती है। उस व्यापकता का निरूपकतावच्छेदक कौन है? स्वर्गत्व तो हो नहीं सकता है क्योंकि स्वर्गत्वावच्छिन्न के प्रति याग की व्यापकता नहीं है। यदि कहो कि विजातीयस्वर्गत्व निरूपकतावच्छेदक है? तो यह भी कहना मुश्किल

है क्योंकि जब याग में स्वर्गकारणता का ग्रहण हो जायेगा, तब उस कारणता से निरूपित कार्यता के अवच्छेदक के रूप में विजातीयस्वर्गत्व की कल्पना की जा सकती है। अभी प्रश्न कारणताग्रह का है। कारणताघटकव्यापकता के विषय में प्रश्न है। इसलिए यहाँ पर 'स्वर्गकामो यजेत' से याग में स्वर्गसाधनता रूप विध्यर्थ का बोध फिर भी अनुपपन्न है। क्योंकि न तो स्वर्गत्व और न ही विजातीयस्वर्गत्व से अवच्छिन्ननिरूपिता व्यापकता याग में बोधित हो सकती है। व्यापकताबोधन असम्भव होने पर व्यापकताघटितकारणता भी नहीं याग की बोधित हो सकती है।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि स्वरूपसम्बन्धरूपा कारणता का विध्यर्थत्व स्वीकारा जाता है। याग में जो स्वर्गकारणत्व बतलाया जा रहा है, वह व्यापकतागर्भ नहीं है बल्कि स्वरूपसम्बन्ध विशेष है। अतः व्यापकताग्रह के विना भी याग में स्वरूपसम्बन्धात्मक स्वर्गकारणत्व बोधित हो सकता है।

अन्यथासिद्धिनिरूपकतानवच्छेदकनियतोत्तरवर्तितावच्छेदकधर्मवत्-स्वर्गकत्वमेव वा स्वर्गकारणत्वं नियतोत्तरवर्तितावच्छेदकश्च धर्मो विशिष्यो-त्तरकालकल्प्यो जातिविशेष एव नियतोत्तरवर्तितावच्छेदकत्वेन सामान्य-रूपेण शाब्दबुद्धौ भासते। नियतोत्तरवर्तितावच्छेदकत्वञ्च कारणतावच्छे-दकत्वाभिमतधर्मावच्छिन्नतद्व्यापारान्यतराभावाधिकरणताविशिष्टोत्पत्ति-क्षणावच्छिन्नाधिकरणतानिरूपकतानवच्छेदकत्वम्, अधिकरणतावैशिष्ट्यञ्च स्वावच्छेदकक्षणाव्यवहितोत्तरक्षणावच्छिन्नस्वाश्रयनिष्ठत्वसम्बन्धेन।

अथवा अन्यथासिद्धिनिरूपकतानवच्छेदकनियतोत्तरवर्तितावच्छेदक धर्मवत् स्वर्गकत्व ही स्वर्गकारणत्व है और नियतोत्तरवर्तितावच्छेदक धर्म, विशेष करके उत्तरकालकल्प्य जातिविशेष ही है। वह नियतोत्तरवर्तितावच्छेदकत्वेन सामान्य रूप से शाब्दबुद्धि में भासता है। तथा नियतोत्तरवर्तितावच्छेदकत्व कारणतावच्छेदकत्वाभिमतधर्मावच्छिन्न तद् व्यापारान्यतरा-भावाधिकरणताविशिष्ट उत्पत्ति क्षणावच्छिन्नाधिकरणतानिरूपकतानवच्छेदकत्व है, अधिकरणता का अधिकरणता में वैशिष्ट्य स्वावच्छेदकक्षणाव्यवहितोत्तरक्षणावच्छिन्न स्वाश्रयनिष्ठत्व सम्बन्ध से लेना है।

यहाँ पर गदाधर एक नये मार्ग का आविष्कार कर रहे हैं क्योंकि कारणता को स्वरूपसम्बन्धात्मक मानना उचित नहीं प्रतीत होता है। कहना है कि अन्यथासिद्धिनिरूपकता नवच्छेदकनियतोत्तरवर्तितावच्छेदक धर्मवत् स्वर्गनिरूपकत्व ही स्वर्गकारणत्व है। नियतोत्तर-वर्तितावच्छेदक धर्म विजातीयस्वर्गत्व आदि ही है जो कार्यकारणभावनिश्चय के अनन्तर विशेष रूप से कल्पित होते हैं। चूँकि इस वाक्य से शाब्दबोध के काल में कार्यकारणभाव निश्चय नहीं होता है, अतः नियतोत्तरवर्तितावच्छेदकत्वेन ही वे शाब्दबोध में भासते हैं। यह नियतोत्तरवर्तितावच्छेदकत्व कारणतावच्छेदकत्वेन अभिमत धर्मावच्छिन्न तद्व्यापारान्यतराभावा-धिकरणता से विशिष्ट उत्पत्तिक्षणावच्छिन्नाधिकरणतानिरूपकतानवच्छेदकत्व ही है। देखें— दण्ड घट के प्रति कारण होता है, कारणतावच्छेदकत्वेन अभिमत धर्म दण्डत्व है, उस दण्डत्व से अवच्छिन्न दण्ड व दण्डव्यापार अन्यतर (दोनों में से किसी एक) के अभाव की

अधिकरणता वहीं पर मिलेगी जहाँ पर न तो दण्ड हो न दण्ड व्यापार, कोई एक रहेगा तो अन्यतराभाव की अधिकरणता नहीं मिलेगी। उस अधिकरणता का स्वावच्छेदकक्षणाव्यवहितोत्तरक्षणावच्छेदेन आश्रय अन्यतराभावाधिकरण ही होगा लेकिन अग्रिमक्षण में उसमें रहने वाली अधिकरणता घटोत्पत्तिक्षणावच्छिन्न नहीं हो सकती है क्योंकि दण्ड, दण्डव्यापारान्यतराभावाधिकरण में घटोत्पत्ति असम्भव है। उस अधिकरणता की निरूपकता का अवच्छेदकत्व घटत्व में न जायेगा, अनवच्छेदकत्व ही जायेगा। इस प्रकार घटत्व ही यहाँ पर नियतोत्तरवर्तितावच्छेदक धर्म है। **'स्वर्गकामो यजेत'** यहाँ पर कारणतावच्छेदकत्वेन अभिमत धर्म यागत्व है। यागजन्य अदृष्टात्मक व्यापाराभावाधिकरणता विशिष्ट उत्पत्तिक्षणावच्छिन्न अधिकरणता स्वर्गोत्पत्तिक्षणावच्छिन्नाधिकरणता नहीं हो सकती है। अन्य किसी की उत्पत्तिक्षणावच्छिन्न अधिकरणता होगी उस अधिकरणता का निरूपकतावच्छेदक विजतीयस्वर्गत्व नहीं होगा अनवच्छेदक ही होगा। इस प्रकार वही धर्म नियतोत्तरवर्तितावच्छेदकत्वेन भासता है। याग और स्वर्ग का कार्यकारणभाव याग जन्य अदृष्ट द्वारा है। इसी कारण कारणतावच्छेदकत्वाभिमतधर्मावच्छिन्न तद्व्यापारान्यतराभाव का निवेश किया गया है।

वस्तुतः स्वर्गनिष्ठधर्मावच्छिन्ननिरूपितनियतपूर्ववर्तितावच्छेदकधर्मवत्त्वमेव स्वर्गकारणत्वम् । नियतपूर्ववर्तितावच्छेदकत्वञ्चाव्यवहितपूर्वकालावच्छिन्नवृत्तिकाभावघटितदैशिकव्यापकतायाः स्वाश्रयत्वस्वाश्रयनिरूपितव्यापारत्ववत्त्वान्यतरसम्बन्धेनावच्छेदकत्वमेव। व्यापकत्व निरूपकतावच्छेदकवैजात्यस्य विशिष्यानुपस्थितावपि स्वर्गधर्मत्वेन ज्ञानं सम्भवत्येव। व्यापकताघटकाभावप्रतियोगितायां स्वरूपतोऽवच्छेदककोटि प्रविष्टाया अपि जातेर्व्यापकताभाने स्वर्गधर्मत्वादिना भाने न बाधकम् स्वर्गधर्मत्वादेरुपलक्षणतया भानात् । प्रतियोगितासम्बन्धेन प्रतियोगिप्रकारक ज्ञान एव प्रतियोगिकोटावुपलक्षणप्रकाराभाननियमात्। प्रकृते च कारणताशरीर घटकाभावस्य प्रतियोगिताप्रकारेण भाननियमात् । अत एव स्वरूपतो वह्नित्वाद्यवच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावस्य वह्नित्वाद्यवच्छिन्नव्यापकतावच्छेदकत्वोपलक्षितधर्मावच्छिन्नाभावत्वेन लक्षणप्रवेशस्य सम्भवदुक्तिकता।

वस्तुतः स्वर्गनिष्ठधर्मावच्छिन्ननिरूपित नियतपूर्ववर्तितावच्छेदक धर्मवत्त्व ही स्वर्गकारणत्व है। तथा नियतपूर्ववर्तितावच्छेदकत्व अव्यवहितकालावच्छिन्नवृत्तिकाभावघटित दैशिकव्यापकता का स्वाश्रयत्व स्वाश्रयनिरूपितव्यापारत्ववत्त्व सम्बन्धों में अन्यतर सम्बन्ध से अवच्छेदकत्व ही है। व्यापकत्वनिरूपकतावच्छेदकवैजात्य के विशेष कर के उपस्थित न होने पर भी स्वर्गधर्मत्वेन उस वैजात्य का ज्ञान तो सम्भव ही है। व्यापकता घटक अभावप्रतियोगिता में स्वरूपतः अवच्छेदककोटि प्रविष्ट भी जाति का व्यापकता भान में स्वर्गधर्मत्वादिना भान होने में कोई बाधक नहीं है क्योंकि स्वर्गधर्मत्वादि का उपलक्षणतया भान होता है। प्रतियोगितासम्बन्धेन प्रतियोगि प्रकारक ज्ञान में ही प्रतियोगिकोटि में उपलक्षणीभूत प्रकार के

भान न होने का नियम है। प्रकृत स्थल में कारणताशरीरघटक अभाव का प्रतियोगिता प्रकारेण भान होता है। इसलिए स्वरूपतः वह्नित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक अभाव का वह्नित्वाद्यवनच्छिन्नव्यापकतावच्छेकत्वोपलक्षित धर्मावच्छिन्नाभावत्वेन लक्षणप्रवेश की सम्भवदुक्तिकता होती है।

वस्तुतः प्रतीक से गदाधर नये कल्प का उपस्थापन यहाँ पर कर रहे हैं। साधारणतः स्वर्गकारणत्व का भान होने में आपत्ति थी कि स्वर्गत्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपित कारणता याग में नहीं है और विजातीयस्वर्गत्वादि की उपस्थिति ही नहीं होने के कारण विजातीय-स्वर्गत्वाद्यवच्छिन्नकार्यतानिरूपित कारणता का भान नहीं हो सकता है। इस कल्प में कहना है कि स्वर्गकारणत्व स्वर्गनिष्ठधर्मावच्छिन्ननिरूपित नियतपूर्ववर्तितावच्छेदक धर्मवत्त्व ही है। नियतपूर्ववर्तितावच्छेदकत्व अव्यवहितपूर्वकालावच्छिन्नवृत्तिक अभाव से घटित दैशिकव्यापकता का अवच्छेदकत्व ही है। दैशिकव्यापकता का अवच्छेदकत्व स्वाश्रयत्व स्वाश्रयनिरूपितव्यापारत्ववत्त्व अन्यतर सम्बन्ध से लेना है।

घट के प्रति दण्ड कारण होता है क्योंकि घटनिष्ठघटत्वधर्मावच्छिन्न निरूपित नियत पूर्ववर्तितावच्छेदकधर्म दण्डत्व और तादृश दण्डत्ववत्त्व दण्ड में है। नियतपूर्ववर्तितावच्छेदक धर्म दण्डत्व इस तरह होता है। दण्ड का अभाव घट के अव्यवहितपूर्वकालावच्छेदेन नहीं प्राप्त हो सकता हैं। क्योंकि दण्ड घट के अव्यवहितपूर्वकालावच्छेदेन रहता ही है।अतः अव्यवहितपूर्वकालावच्छिन्न वृत्तिक अभाव से घटित दैशिकव्यापकता दण्ड में है। दण्डत्व भी उसी दण्ड में स्वाश्रयत्व सम्बन्ध से है। अतः दण्डत्व दण्डनिष्ठव्यापकता का अवच्छेदक होता है। अवच्छेदक और अवच्छेद्य के एक अधिकरण में रहने पर ही अवच्छेद्यावच्छेदक भाव सम्भव होता है।

याग स्वर्ग के प्रति कारण होता है क्योंकि स्वर्गनिष्ठ विजातीयस्वर्गत्वधर्मावच्छिन्न निरूपित नियतपूर्ववर्तितावच्छेदकत्व यागत्व में है तथा यागत्ववत्त्व याग में है। यागत्व नियत पूर्ववर्तितावच्छेदक धर्म इस प्रकार होता है। याग का अभाव तो विजातीयस्वर्ग के अव्यवहित पूर्वकालावच्छेदेन प्राप्त हो सकता है । क्योंकि विजातीयस्वर्ग के अव्यवहित पूर्वकालावच्छेदेन याग नहीं है। किन्तु यागजन्य अपूर्व का अभाव विजातीय स्वर्ग के अव्यवहितपूर्वकालावच्छेदेन नहीं प्राप्त हो सकता है क्योंकि यागजन्य अपूर्व तो विजातीय स्वर्ग के अव्यवहितपूर्वकालावच्छेदेन रहेगा ही। अतः अव्यवहितपूर्वकालावच्छिन्न वृत्तिक अभाव से घटित दैशिकव्यापकता यागजन्य अपूर्व में आ गयी। अपूर्व में व्यापकता है और उसी अपूर्व में यागत्व भी स्वाश्रयनिरूपितव्यापारत्ववत्त्व सम्बन्ध से है । स्व माने यागत्व, उसके आश्रय याग से निरूपित व्यापारत्व अपूर्व में है क्योंकि याग की स्वर्गकारणता में यागजन्यतया और यागजन्यस्वर्गजनकतया अपूर्व की व्यापारता होती है। इस प्रकार यागत्व अपूर्वनिष्ठ दैशिकव्यापकता का अवच्छेदक हो रहा है। यही है यागत्व का स्वर्गनिष्ठधर्मावच्छिन्न निरूपित नियतपूर्ववर्तितावच्छेदकधर्मवत्त्व रूप स्वर्गकारणत्व।

यहाँ पर अव्यवहितपूर्वकालावच्छिन्नवृत्तिकाभावघटितदैशिकव्यापकता का आशय कार्याधिकरणवृत्ति कार्याव्यवहितपूर्वकालावच्छिन्नवृत्तिक अभाव प्रतियोगितानवच्छेदक धर्मा-

वच्छिन्नत्व ही है। दण्ड और यागजन्य अपूर्व की ऐसी दैशिकव्यापकता होती है और उसका अवच्छेदक दण्डत्व स्वाश्रयत्व सम्बन्ध से और यागत्व स्वाश्रयनिरूपितव्यापारत्ववत्त्व सम्बन्ध से होता है।

इसमें प्रश्न उठ सकता है कि विजातीय स्वर्गत्व तो याग की स्वर्ग के प्रति कारणता सिद्धि के अनन्तर कल्प्य है उसका भान उसके पहले कैसे होगा? उसका उत्तर यह दे रहे हैं कि विजातीयस्वर्गत्वेन उसका ज्ञान सम्भव न होने पर भी स्वर्गधर्मत्वेन ज्ञान तो सम्भव ही है। व्यापकताघटक अभाव की कोटि में तो वह स्वरूपतः विजातीयस्वर्गत्वेन प्रविष्ट है, किन्तु व्यापकता भान में उसका भान विजातीयस्वर्गत्वेन स्वरूपतः नहीं होता है, अपितु स्वर्गधर्मत्वेन भान होता है। क्योंकि प्रतियोगितासम्बन्धेन प्रतियोगिप्रकारक भान में उपलक्षणीभूत धर्म का प्रकारतया भान नहीं होता है और प्रतियोगिता प्रकारक भान में उपलक्षणीभूत धर्म का भी प्रकारतया भान होता है। इसलिए व्यापकताभान में उपलक्षणीभूत धर्म का विजातीयस्वर्गत्व का प्रकारतया भान नहीं होगा, स्वर्गधर्मत्वेन भान होगा। किन्तु वह विजातीयस्वर्गत्व व्यापकताघटक अभाव प्रतियोगिता में स्वरूपतः विजातीयस्वर्गत्वेन अवच्छेदककोटिप्रविष्ट होगा। कार्याधिकरणवृत्ति कार्याव्यवहितपूर्वकालवृत्तिक अभाव प्रतियोगितानवच्छेदक धर्म विजातीयस्वर्गत्व से अवच्छिन्न की व्यापकता होगी। इसमें विजातीयस्वर्गत्व स्वरूपतः प्रविष्ट होगा।

इसी कारण यद्यपि वह्नित्वाद्यवच्छिन्नप्रतियोगिताक अभाव स्वरूपतः तो वह्नित्वावच्छिन्न प्रतियोगिताक होता है, किन्तु उसका लक्षण प्रवेश वह्नित्वाद्यवच्छिन्नव्यापकतावच्छेदकोपलक्षित धर्मावच्छिन्नाभावत्वेन भी करना सम्भव होता है। इस प्रकार कहने पर तादृशाभाव में यद्यपि वह्नित्व प्रतियोगितावच्छेदकत्वेन स्वरूपतः नहीं भासता है किन्तु प्रतियोगितावच्छेदक वह स्वरूपतः ही होता है।

इत्थमेव चेष्टतावच्छेदकधर्माणामुपलक्षणीभूतेनेष्टतावच्छेदकत्वेन व्यापकताघटकाभावप्रतियोगितावच्छेदककोट्यप्रविष्टेनापीष्टतावच्छेदक धर्माणां सर्वसाधारणशक्तिग्रहे भानमुपपद्यत इति।

इसी प्रकार ही इष्टतावच्छेदक धर्मों का उपलक्षणीभूत इष्टतावच्छेदकत्वेन व्यापकता घटक अभाव प्रतियोगितावच्छेदक कोट्यप्रविष्ट भी इष्टतावच्छेदक धर्मों का सर्व साधारण शक्तिग्रह में भान उपपन्न होता है।

इसी प्रकार का आशय यही है कि प्रतियोगिता सम्बन्ध से प्रतियोगिप्रकारक भान में उपलक्षणीभूत धर्म का प्रकारतया भान नहीं होता है और प्रतियोगिताप्रकारक भान में उपलक्षणीभूत धर्म का भी प्रकारतया भान होता है। इस कारण जैसे ऊपर उपपादित हुआ है उसी रीति से सर्वत्र सम्भव है। उपलक्षणीभूत इष्टतावच्छेदकत्वेन इष्टतावच्छेदकों का भान उनके व्यापकताघटकाभावप्रतियोगितावच्छेदक कोटि में प्रविष्ट न होने पर भी सर्वसाधारण शक्तिग्रह में भान सम्भव है।

विमर्श- इष्टसाधनता ज्ञान को विध्यर्थ मानने पर यागादि का स्वर्गादिकारणत्व किस प्रकार का है? इसके उत्तर में तीन समाधान गदाधर ने दिये (1) कारणत्व स्वरूपसम्बन्धविशेष है, वही विध्यर्थ है। (2) अन्यथासिद्धिनिरूपकतानवच्छेदकनियतोत्तरवर्तितावच्छेदक धर्मवत्

स्वर्गकत्व ही यागादि का स्वर्गादिकारणत्व है, वही विध्यर्थ है। (3) स्वर्गनिष्ठ धर्मावच्छिन्न-निरूपितनियतपूर्ववर्तितावच्छेदकधर्मवत्त्व ही स्वर्गादिकारणत्व है, वही विध्यर्थ है। इनमें तीसरे वाले कल्प को गदाधर ने सिद्धान्त पक्ष के रूप में प्रतिपादित किया है। इनमें अन्य विशेष निर्वचन तो निरूपण के अवसर पर ही किया जा चुका है।

एतेन– नियतोत्तरवर्तितावच्छेदकधर्मवत्स्वर्गकत्वस्य विध्यर्थतामते यागादिधर्मिकतादृशकारणताग्रहस्य प्रवृत्तिहेतुता वाच्या, तदपेक्षया च स्वर्गादिधर्मिकनियतोत्तरवर्तितावच्छेदकधर्मरूपयागादिसाध्यताज्ञानस्य प्रवृत्तिहेतुत्वे तादृशसाध्यताविशिष्टेष्टमात्रस्य विध्यर्थत्वे च लाघवम्, तादृशसाध्यताया निरुक्तसाधनतान्तर्गतत्वादितीष्टसाधनत्वस्य विध्यर्थत्वं प्रवर्तकत्वञ्च व्याहन्येत। एवं यत्र कारणतावच्छेदकधर्मोऽप्यनुपस्थितः, अतिप्रसक्तेन न्यूनवृत्तिना वा धर्मेण कारणमुपलक्षितं तत्र शब्दात् कारणताग्रहानुपपत्तिश्चेति निरस्तम्, व्यापकताघटितकारणतायाः साध्यतामपेक्ष्यागरीयस्या एवोक्तरीत्या प्रवर्तकत्वादिसम्भवात्, तादृशसाधनताशरीरे व्यापकतावच्छेदकत्वेनैव कारणतावच्छेदकप्रवेशात् तद्ग्रहे विशिष्य तदुपस्थित्यनुपयोगाच्चेति।

इस कारण = वस्तुतः कल्प से स्वर्गनिष्ठधर्मावच्छिन्ननिरूपित नियत पूर्ववर्तितावच्छेदक-धर्मवत्त्वरूप स्वर्गकारणत्व का निर्वचन करने के कारण नियतोत्तरवर्तितावच्छेदकधर्मवत् स्वर्गकत्व की विध्यर्थतामत में यागादिधर्मिक वैसे = नियतोत्तरवर्तितावच्छेदकधर्मवत्स्वर्गकत्वात्मक कारणताग्रह की प्रवृत्तिहेतुता कहनी पड़ेगी, तथा उसकी अपेक्षा स्वर्गादिधर्मिकनियतोत्तर-वर्तितावच्छेदकधर्मरूपयागादिसाध्यताज्ञान की प्रवृत्ति हेतुता स्वीकारने में और तादृश = नियतोत्तरवर्तितावच्छेदक धर्मरूप यागादि साध्यता से विशिष्ट इष्ट मात्र की विध्यर्थता स्वीकारने में लाघव है क्योंकि वैसी साध्यता के = नियतोत्तरवर्तितावच्छेदकधर्म रूप यागादि साध्यता के, निरुक्तसाधनता के = नियतोत्तरवर्तितावच्छेदकधर्मवत्स्वर्गकत्व रूप साधनता के अन्तर्गत होने के कारण इष्ट साधनत्व का विध्यर्थत्व और प्रवर्तकत्व व्याहत होगा। इसी प्रकार जहाँ पर कारणतावच्छेदक धर्म भी अनुपस्थित है अथवा अतिप्रसक्त या न्यूनवृत्ति धर्म के द्वारा कारण उपलक्षित हुआ वहाँ पर शब्द से कारणताग्रह की अनुपपत्ति भी होगी। यह निरस्त हो गया। क्योंकि व्यापकता घटित कारणता की ही साध्यता की अपेक्षा अगुरुभूता होने के कारण उक्त रीति से प्रवर्तकत्व आदि सम्भव है और तादृशसाधनता = स्वर्गनिष्ठ-धर्मावच्छिन्ननिरूपित नियतपूर्ववर्तितावच्छेदकधर्मवत्त्व रूप स्वर्गकारणता के शरीर में व्यापकतावच्छेदकत्वेन ही कारणतावच्छेदक का प्रवेश होने के कारण विशेष करके उसकी उपस्थिति का भी उपयोग नहीं होता है।

अन्यथासिद्धिनिरूपकतानवच्छेदकनियतोत्तरवर्तितावच्छेदकधर्मवत् स्वर्गकत्व रूप कारणता का जो द्वितीय कल्प के अनुसार निर्वचन किया गया था, उसमें कुछ लोगों का आक्षेप है कि इस प्रकार की साधनता के ज्ञान को प्रवृत्ति का कारण मानने और विधि का अर्थ मानने की अपेक्षा स्वर्गादिधर्मिकसाध्यताज्ञान को ही प्रवर्तक मान लेना और स्वर्गादि

धर्मिकसाध्यता से विशिष्ट इष्ट मात्र को विध्यर्थ मान लेना उचित है। क्यों? इस कारण—
(1) इष्टसाधनताज्ञान को प्रवर्तक और इष्ट साधनत्व को विध्यर्थ मानने पर याग के नियतोत्तरवर्तितावच्छेदकधर्मवत्स्वर्गकत्वरूप इष्टसाधनत्व का ज्ञान प्रवर्तक होगा। स्वर्गादि के साध्यता ज्ञान को प्रवर्तक और साध्यताविशिष्ट स्वर्ग को विध्यर्थ मानने पर स्वर्ग के नियतोत्तरवर्तितावच्छेदकधर्मवत्त्वरूप साध्यत्व का ज्ञान प्रवर्तक होगा। नियतोत्तरवर्तितावच्छेदक-धर्मवत्त्व नियतोत्तरवर्तितावच्छेदकधर्मवत्स्वर्गकत्व की अपेक्षा लघुभूत है। इसलिए उसी को विध्यर्थ व प्रवर्तक मानना चाहिए।
(2) नियतोत्तरवर्तितावच्छेदकधर्मवत्स्वर्गकत्व रूप कारणता के ग्रह को प्रवर्तक मानने पर जहाँ पर कारणतावच्छेदकधर्म भी अनुपस्थित है अथवा न्यूनवृत्ति या अतिप्रसक्तधर्म से कारण उपलक्षित होता है,वहाँ पर शब्द से कारणताग्रह की अनुपपत्ति होती है। इसलिए स्वर्गादिधर्मिक साध्यताज्ञान को प्रवर्तक और साध्यताविशिष्टेष्ट को ही विध्यर्थ मानना चाहिए।

वस्तुतः कल्प से स्वर्गनिष्ठधर्मावच्छिन्ननिरूपित नियतपूर्ववर्तितावच्छेदकधर्मवत्त्व रूप स्वर्गकारणत्व को विध्यर्थ मानने पर और उस कारणत्वज्ञान को प्रवर्तक मानने पर तो कोई गौरव आदि नहीं होता है। साध्यता नियतोत्तरवर्तितावच्छेदकधर्मवत्त्व रूप है और साधनता नियतपूर्ववर्तितावच्छेदकधर्मवत्त्व रूप है दोनों समान हैं कोई गुरु या लघु नहीं है। इसलिए इष्टसाधनताज्ञान को प्रवर्तक मानने में कोई दोष नहीं है। जहाँ पर कारणता-वच्छेदक धर्म अनुपस्थित है अथवा अतिप्रसक्त या न्यून वृत्तिधर्म के द्वारा कारण उपलक्षित है, वहाँ पर भी तादृशसाधनताशरीर में व्यापकतावच्छेदकत्वेन ही कारणतावच्छेदक का प्रवेश है और व्यापकतावच्छेदक के ग्रह के लिए विशेष करके कारणतावच्छेदक की उपस्थिति का कोई भी उपयोग नहीं होता है। इसलिए कारणतावच्छेदक की उपस्थिति न होने से भी कोई फर्क नहीं पड़ता है। उपर्युक्त दोनों आपत्तियों के निवारित हो जाने से स्वर्गादिकारणत्व को ही विध्यर्थ मानना उचित है। इष्ट की साध्यता को प्रवर्तक मानना उचित नहीं है।

यद्यपि नियतोत्तरवर्तितावच्छेदकधर्मवत्त्व रूप साध्यता और नियतपूर्ववर्तितावच्छेदक धर्मवत्त्व रूप साधनता के ज्ञान को प्रवर्तक मानना समान ही है। किसी में भी लाघव या गौरव नहीं है। तथापि इष्ट साधनता को विध्यर्थ मानने में साध्यताविशिष्ट को विध्यर्थ मानने की अपेक्षा कोई गौरव नहीं होने से इष्ट साधनता की विध्यर्थता का पक्ष पुष्ट होता है, उसका परित्याग करने में कोई युक्ति नहीं है।

केचित्तु विजातीयस्वर्गनिरूपितसमवाय एव स्वर्गादिनिष्ठया गादिजन्यतावच्छेदकसम्बन्धस्तथा च वैजात्यस्य सम्बन्धघटकतयैव व्यापकताशरीरे निवेशान्नोपस्थित्यपेक्षा न वा कारणताविघटकव्यभिचारा वकाश इत्याहुः; तदसत्—विजातीयस्वर्गनिरूपितसमवायत्वेन सम्बन्धतायां मानाभावात्, तादृशसम्बन्धघटितव्यापकताया विधिप्रत्ययार्थत्वे तस्य स्वर्गा-दिनिष्ठवैजात्यभेदेन शक्तिबाहुल्यप्रसङ्गात्, तादृशकार्यत्वघटितेष्ट

कारणतायाश्च प्रमाणान्तरेणाप्रत्ययात् तत्र शक्तिग्रहानुपपत्त्या शाब्दबुद्धौ तद्भानानुपपत्तेश्च ।

कुछ लोग तो— विजातीयस्वर्गनिरूपित समवाय ही स्वर्गादिनिष्ठयागादिजन्यता का अवच्छेदकीभूत सम्बन्ध है। इस प्रकार वैजात्य का सम्बन्धघटकतया ही व्यापकता के शरीर में प्रवेश होने के कारण उपस्थिति की अपेक्षा नहीं है और न ही कारणताविघटक व्यभिचार का ही अवकाश है— ऐसा कहते हैं, वह ग़लत है क्योंकि विजातीयस्वर्गनिरूपित समवायत्वेन संसर्गता में प्रमाण नहीं है, विजातीयस्वर्गनिरूपितसमवायघटित व्यापकता के विधि प्रत्यय का अर्थ होने पर स्वर्गादिनिष्ठवैजात्य के भेद से व्यापकता के भी भिन्न होने से शक्ति की बहुलता का प्रसङ्ग होगा तथा तादृशकार्यसम्बन्धघटितेष्टकारणता का प्रमाणान्तर से प्रत्यय न होने के कारण उसमें शक्तिग्रह की अनुपपत्ति से शाब्दबोध में उसके भान की अनुपपत्ति होगी।

स्वर्ग सुखविशेष है, यह आत्मा में समवायसम्बन्ध से रहेगा। स्वर्ग के प्रति याग को कारण मानने में मुश्किल यह थी कि गङ्गास्नान आदि से जन्य स्वर्ग भी होता है। इसलिए स्वर्गत्वावच्छिन्न समवाय सम्बन्ध से जहाँ-जहाँ है, वहाँ-वहाँ हर जगह उस स्वर्ग के पूर्वकालावच्छेदेन याग नहीं है। फलतः याग को स्वर्ग के प्रति कारण नहीं मान सकते हैं। यदि विजातीयस्वर्गसमवाय सम्बन्ध को जन्यता का अवच्छेदक माना जाये तो स्थिति यह बनेगी कि याग की विजातीयस्वर्गसमवाय सम्बन्ध से स्वर्ग के प्रति कारणता होगी। इस सम्बन्ध से स्वर्ग (यागजन्य स्वर्ग) जहाँ जहाँ रहेगा, वहाँ-वहाँ हर जगह उस स्वर्ग के पूर्वकालावच्छेदेन याग है। इसलिए कारणताविघटक व्यतिरेकव्यभिचार नहीं होता है। किन्तु इस कल्प में तीन आपत्तियाँ हैं, पहली यह कि विजातीयस्वर्गनिरूपितसमवायत्वेन समवाय को सम्बन्ध बनाने में कोई प्रमाण नहीं है और आप उसे ही सम्बन्ध बना रहे हैं। दूसरी यह कि विजातीय स्वर्गनिरूपित समवाय को संसर्ग बनाने पर इस सम्बन्ध से घटित व्यापकता रूपा कारणता विधि प्रत्यय का अर्थ होगा, तथा उस सम्बन्ध से घटित व्यापकता कारणता-स्वरूप विध्यर्थ तो स्वर्गादिनिष्ठ वैजात्य के भेद से भिन्न-भिन्न होगा, इस कारण शक्तियों की बहुलता प्रसक्त होगी। तीसरी यह कि विजातीय कार्य सम्बन्ध से घटित इष्ट कारणता का प्रमाणान्तर से प्रत्यायन सम्भव नहीं है। इस कारण उसमें शक्तिग्रह नहीं हो सकता है। और शक्तिग्रह की अनुपपत्ति से शाब्दबोध में विजातीय कार्य (स्वर्ग) सम्बन्ध से घटित व्यापकतारूपा कारणता का भान अनुपपन्न है क्योंकि शक्तिग्रह जिसमें होता है उसी का शाब्दबोध में भान सम्भव होता है।

न चेष्टतावच्छेदकत्वोपलक्षितस्वर्गत्वावच्छिन्ने कारणताघटकाधिकरणादिपदार्थे च खण्डशः शक्तिरुपेया, आकाङ्क्षावशाच्चाधिकरणरूपविध्यर्थे विजातीयस्वर्गनिरूपितसमवायस्य सम्बन्धतया भानात् तादृशकार्यसम्बन्धघटितकारणतायाः शाब्दबोधे भानमुपगन्तव्यं न तु तादृशसम्बन्धान्तर्भावेन शक्तिरिति न काचिदनुपपत्तिरिति वाच्यम्; एवं सत्यपि संसर्गतात्पर्यज्ञानानुरोधेन तादृशसंसर्गोपस्थित्यपेक्षायाः दुर्वारत्वात्।

यदि कहो कि विधिप्रत्यय की इष्टतावच्छेदकत्वोपलक्षित स्वर्गत्वावच्छिन्न में और कारणताघटक अधिकरण आदि पदार्थ में खण्डशः शक्ति स्वीकारनी चाहिए (चूँकि संसर्ग का भान आकाङ्क्षा से होता है और उसमें किसी की शक्ति स्वीकारने की आवश्यकता नहीं होती है, इसलिए इष्टतावच्छेदकत्वोपलक्षित स्वर्गत्वावच्छिन्न में और कारणता घटक अधिकरणादिपदार्थ में खण्डशः शक्ति स्वीकारने पर) आकाङ्क्षावशात् अधिकरण रूप विध्यर्थ में विजातीयस्वर्गनिरूपितसमवाय का सम्बन्धतया भान होने के कारण वैसे कार्यसम्बन्ध से घटित कारणता का शाब्दबोध में भान स्वीकार लेना चाहिए वैसे सम्बन्ध के अन्तर्भाव से शक्ति नहीं है। इसलिए कोई अनुपपत्ति नहीं है। प्रमाणान्तर से विजातीय स्वर्गनिरूपित समवाय से घटित कारणता का प्रत्यायन न होने से शक्तिग्रह की अनुपपत्ति से शाब्दबोध में उसके भान की अनुपपत्ति नहीं है क्योंकि संसर्ग का आकाङ्क्षावशात् भान होने के कारण उसमें शक्तिग्रह न होने पर भी शाब्दबोध मे भान सम्भव होता है।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि ऐसा होने पर भी संसर्गतात्पर्यज्ञान के अनुरोध से विजातीयस्वर्गनिरूपित संसर्ग की उपस्थिति अपेक्षा की दुर्वारता है। अर्थात् संसर्गतात्पर्यज्ञान के अनुरोध से विजातीयस्वर्गनिरूपित समवाय की उपस्थिति शाब्दबोध के पूर्व में आवश्यक होगी, उसकी उपस्थिति न होने से शाब्दबोध में उसका संसर्गविधया भान भी नहीं हो सकेगा।

न च तत्संसर्गेण विशेषणविशिष्टविशेष्यपरत्वज्ञानमेव संसर्गभान-नियामकं तत्रापि च संसर्गः संसर्ग एव न तु विशेषणमिति न ज्ञानापेक्षेति वाच्यम्; विशेषणविशिष्टस्य वाक्यार्थत्वेन पूर्वमनिश्चिततया तत्परत्वग्रहस्य शाब्दबोधात् पूर्वमसम्भवात्, तत्तत्सम्बन्धविषयतानिरूपितविशेषणादि विषयताशालिबोधपरत्वज्ञानस्यैव हेतुतया तत्र सम्बन्धस्य विशेषणतया तदुपस्थितेरावश्यकत्वात् । एवं विजातीयस्वर्गनिरूपितसमवायसम्बन्धेन स्वर्गत्वावच्छेदेन जन्यतोपगमे "स्वर्गत्वस्याश्वमेधजन्यत्वसामानाधिकरण्य मात्रमेव हि शब्देनापि प्रतीयते न तु स्वर्गत्वस्य जन्यतावच्छेदकत्व मसामर्थ्यादसम्भवाच्च" इत्यादिमिश्रग्रन्थविरोधः।

यदि कहो कि तत् संसर्ग से विशेषणविशिष्टविशेष्यपरत्वज्ञान ही संसर्ग भान का नियामक है और उसमें भी संसर्ग संसर्ग ही है न कि विशेषण, इसलिए संसर्ग के ज्ञान की = उपस्थिति की कोई अपेक्षा नहीं है। इस प्रकार विजातीयस्वर्गनिरूपितसमवाय का संसर्गतया भान होने के लिए उसकी उपस्थिति या उसके ज्ञान की कोई अपेक्षा नहीं है। तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि तत्संसर्ग से विशेषणविशिष्टविशेष्य के तो वाक्यार्थ होने के कारण पूर्व में निश्चित न होने के कारण तत्संसर्ग से विशेषणविशिष्टविशेष्यपरत्व ग्रह के शाब्दबोध के पूर्व में असम्भव होने के कारण तत्संसर्ग की विशेषणतया उपस्थिति आवश्यक होती है। अर्थात् तत्संसर्ग से विशेषणविशिष्टविशेष्यपरत्व ज्ञान को तो संसर्गभान का नियामक इसलिए नहीं माना जा सकता है क्योंकि तत्संसर्ग से विशेषण विशिष्ट विशेष्य तो वाक्यार्थ है, वाक्यार्थ शाब्दबोध से पूर्व में कभी निश्चित नहीं रहता है इस प्रकार कहीं

पर भी शाब्दबोध से पूर्व में उक्त तात्पर्य ज्ञान नहीं सम्भव होने से शाब्दबोध नहीं हो सकेगा। फलतः तत्सम्बन्धविषयतानिरूपितविशेषणादिविषयताशालिबोधपरत्वज्ञानरूप तात्पर्यज्ञान की ही कारणता होने से उसमें सम्बन्ध की विशेषणतया उपस्थिति आवश्यक होगी।

इसी प्रकार विजातीयस्वर्गनिरूपित समवाय सम्बन्ध से स्वर्गत्वावच्छेदेन जन्यता स्वीकारने पर **'स्वर्गत्वस्य...असम्भवाच्च'** 'शब्द से स्वर्गत्व का अश्वमेधजन्यत्व सामानाधिकरण्य मात्र ही प्रतीत होता है न कि स्वर्गत्व का जन्यतावच्छेदकत्व असामर्थ्य से और असम्भव होने से' इत्यादि मिश्रग्रन्थ मुरारि मिश्र ग्रन्थ से विरोध होगा क्योंकि आप तो जन्यता का अवच्छेदक स्वर्गत्व को मान रहे हो। इस प्रकार **केचित्तु** प्रतीक से उठाया हुआ मत खण्डित हो जाता है।

यत्तु वैजात्यमेव कार्यतावच्छेदकं तच्च सम्बन्धविधयैव कारणताघटकं कार्यतावच्छेदकधर्मविशिष्टनिरूपितकार्यतावच्छेदकसम्बन्धेन कार्यवन्निष्ठाभावाप्रतियोगित्वस्य कारणताशरीरे निवेश्यत्वादिति, तदप्यसत्– कार्यस्य कार्यतावच्छेदकरूपेणैव निवेशनीयतया तदुपस्थित्यपेक्षाध्रौव्यात् ।

न च सम्बन्धसङ्कोचे प्रमेयत्वेनैव कार्यप्रवेशः सम्भवतीति वाच्यम्, विजातीयस्वर्गवन्निष्ठाभावाप्रतियोगित्वस्यागुरोरवच्छेदकत्वसम्भवे विजातीयस्वर्गीयसमवायसम्बन्धेन प्रमेयवन्निष्ठाभावप्रतियोगितात्वरूपगुरुधर्मावच्छिन्नाभावाप्रसिद्धेः।

जो यह कहते हैं कि वैजात्य ही कार्यतावच्छेदक है और वह सम्बन्धविधया ही कारणता घटक है क्योंकि कार्यतावच्छेदकधर्मविशिष्टनिरूपित कार्यतावच्छेदक सम्बन्ध से कार्यवन्निष्ठाभावाप्रतियोगित्व का कारणताशरीर में निवेश करना चाहिए, इस पक्ष में कार्यतावच्छेदक धर्म का भान संसर्गमर्यादा से होता है, यह स्वीकारा जा रहा है। वैजात्य कार्यतावच्छेदक धर्म है किन्तु उसका शाब्दबोध में भान संसर्गमर्यादा से होता है। याग का स्वर्गकारणत्व कार्यतावच्छेदकधर्मविशिष्टनिरूपित कार्यतावच्छेदक सम्बन्ध से कार्यवन्निष्ठाभावाप्रतियोगित्व है।

वह भी ग़लत है क्योंकि कार्य के कार्यतावच्छेदक रूपेण ही निवेशनीय होने के कारण उसकी उपस्थिति की अपेक्षा ध्रुव है। कार्य स्वरूपः नहीं शाब्दबोध में भासित हो सकता है कार्यतावच्छेदकरूपेण ही भास सकता है। इसलिए कार्यवन्निष्ठाभावाप्रतियोगित्व रूप कारणता के शरीर में कार्य का कार्यतावच्छेदक वैजात्य रूप से प्रवेश करना पड़ेगा। अतः उपस्थिति आवश्यक होगी।

यदि कहो कि यदि सम्बन्ध का सङ्कोच कर दिया जाये तब तो प्रमेयत्वेन रूपेण भी कार्यकारणभाव सम्भव है। अतः कार्यतावच्छेदक रूप से ही कार्य भासेगा, इसका नियम नहीं रहा। तो ऐसा भी नहीं कहना चाहिए क्योंकि विजातीयस्वर्गवन्निष्ठाभावप्रतियोगितात्व का अगुरुभूत का अवच्छेदकत्व सम्भव होने पर विजातीयस्वर्गीयसमवाय सम्बन्ध से प्रमेयवन्निष्ठाभावप्रतियोगितात्व रूप गुरु धर्म से अवच्छिन्न अभाव की अप्रसिद्धि है।

इसका आशय यह है कि प्रमेयत्वेन कार्य का प्रवेश यदि आप करोगे और सम्बन्ध का सङ्कोच करोगे, तो इसमत में यागादि का स्वर्गकारणत्व विजातीयस्वर्गीयसमवायसम्बन्ध से प्रमेयवन्निष्ठाभावप्रतियोगित्वाभाव रूप होगा, प्रतियोगितावच्छेदक विजातीयस्वर्गीय समवायसम्बन्ध से प्रमेयवन्निष्ठाभाव प्रतियोगितात्व होगा। इसकी अपेक्षा यदि इस अभाव का प्रतियोगितावच्छेदक समवायसम्बन्ध से विजातीयस्वर्गवन्निष्ठाभावप्रतियोगितात्व को मान लिया जाये तो यह लघुभूत होगा। नियम है कि **'सम्भवति च लघौ गुरौ तदभावात्'** लघुधर्म में अवच्छेदकत्व सम्भव होने पर गुरु धर्म में अवच्छेदकत्व नहीं स्वीकारा जाता है। इसलिए वैजात्य का कार्यतावच्छेदकतया प्रवेश करना पड़ेगा और उसका सम्बन्धविधया भान नहीं स्वीकारा जा सकता है। यत्तु प्रतीक से उठाया गया मत खण्डित हो जाता है।

एतेन स्वर्गत्वमेव यागजन्यतावच्छेदकम्, अवच्छेदकताघटकसमवाय सम्बन्धसङ्कोचेन न व्यभिचार इत्यपि निरस्तम्– तादृशसम्बन्धविशेषेणेष्ट तावच्छेदकविशिष्टस्य प्रमाणान्तरावेद्यतया तत्र शक्तिनिश्चयासम्भवात्, न हि समभिव्याहृतफलबोधकपदोपस्थाप्यतावच्छेदकत्वरूपोपलक्षणधर्मेण यथा स्वर्गत्वादीनां शक्तिग्रहे भानं तथोपलक्षणीभूततादृशपदोपस्थाप्यतावच्छेदक-सम्बन्धत्वेन विजातीयस्वर्गनिष्ठसमवायादेरपि तत्र भानसम्भवः- स्वर्गपदाच्छुद्धसमवायेनैव स्वर्गत्वविशिष्टोपस्थितेः। विशिष्टसमवायेन स्वर्गत्वविशिष्टस्य स्वर्गपदार्थत्वोपगमे लक्षणाप्रसङ्गात् शुद्धसमवायेन स्वर्गत्व-विशिष्टविषयककामनावतोऽनधिकारप्रसङ्गात्।

इसी से- ऊपर प्रदर्शित दोषों से— स्वर्गत्व ही यागजन्यतावच्छेदक है अवच्छेदकता घटक समवाय सम्बन्ध के सङ्कोच से विज्यतीय स्वर्गीयसमवाय की सम्बन्धता से व्यभिचार नहीं होता है यह भी निरस्त हो जाता है। क्योंकि वैसे सम्बन्ध विशेष से- विजातीय स्वर्गीय समवायादि से इष्टतावच्छेदकविशिष्ट के प्रमाणान्तर से वेद्य न होने के कारण उसमें शक्ति निश्चय सम्भव नहीं है। समभिव्याहृतफलबोधकपदोपस्थाप्यतावच्छेदकत्व रूप उपलक्षण धर्म से जैसे स्वर्गत्वादि का शक्तिग्रह में भान होता है, वैसे ही उपलक्षणीभूततादृशपदोपस्थाप्य-तावच्छेदक सम्बन्धत्वेन विजातीयस्वर्गनिष्ठ समवायादि का भान वहाँ पर सम्भव नहीं है क्योंकि स्वर्गपद से शुद्ध समवाय से ही स्वर्ग की उपस्थिति होती है। विशिष्ट समवाय सम्बन्ध से स्वर्गत्वविशिष्ट की स्वर्गपदार्थता स्वीकारने पर तो लक्षणा का प्रसङ्ग होगा तथा शुद्ध समवाय सम्बन्ध से स्वर्गत्वविशिष्टविषयक कामनावाले के अनधिकार का प्रसङ्ग होगा।

स्वर्गत्व को यागजन्यतावच्छेदक मानने में और विजातीयस्वर्गीय समवाय सम्बन्ध आदि रूपों से समवाय सम्बन्ध का सङ्कोच करने में समस्या यह है कि विजातीयस्वर्गीय समवाय आदि सम्बन्धों से स्वर्ग प्रमाणान्तरवेद्य नहीं है, अतः उसमें शक्ति का ग्रह सम्भव नहीं है। चूँकि शुद्ध समवाय से स्वर्ग की उपस्थिति होती है, इसलिए उपलक्षणीभूत समभिव्याहृतपदोपस्थाप्यतावच्छेदक सम्बन्धत्वेन भी विजातीयस्वर्गनिष्ठ समवायादि का भान सम्भव नहीं है। विशिष्ट समवायसम्बन्ध से स्वर्गत्व विशिष्ट की स्वर्ग पदार्थता स्वीकारने पर तो लक्षणा का प्रसङ्ग होगा क्योंकि शुद्ध समवाय सम्बन्ध से स्वर्गत्वविशिष्ट की स्वर्गपदार्थता

है। इसके अतिरिक्त शुद्ध समवाय सम्बन्ध से स्वर्गविषयकामनावाले के अनधिकार का भी प्रसङ्ग है।

इस तरह पूर्व में वस्तुतः कल्प से जो मत उठाया गया है। वही सही है। वही सिद्धान्तित हुआ।

मीमांसकास्तु 'अहरहः सन्ध्यामुपासीत'' इत्यादौ नित्यतया निष्फले सन्ध्योपासनादाविष्टसाधनत्वस्यायोग्यत्वेनान्वयासम्भवान्नेष्टसाधनत्वं लिङर्थः।

मीमांसक तो 'अहरहः सन्ध्यामुपासीत' 'प्रतिदिन सन्ध्योपासन करना चाहिए' इत्यादि स्थलों में नित्य होने के कारण निष्फल सन्ध्योपासन आदि में इष्टसाधनत्व के अयोग्य होने के कारण अन्वय असम्भव होने से इष्टसाधनत्व लिङ् का अर्थ नहीं है।

मीमांसकों का आशय यह है कि काम्य कर्म तो इष्टसाधन होता है किन्तु नित्यकर्म इष्टसाधन नहीं होता है, संन्ध्योपासन आदि कर्म नित्यकर्म होने से इष्ट साधन नहीं है। इस कारण 'अहरहः सन्ध्यामुपासीत' इत्यादि स्थलों में विधि के द्वारा सन्ध्या का इष्ट साधनत्व बाधित होने से बोधित नहीं किया जा सकता है। इस कारण इष्टसाधनत्व को विध्यर्थ नहीं मानना चाहिए।

अथ सन्ध्यावन्दनादेरप्यर्थवादोपस्थापितब्रह्मलोकावाप्त्यादिफल साधनत्वमव्याहतम्, यत्र नित्येऽर्थवादादपि न फलोपस्थितिस्तत्रापि फलाभावनिश्चायकप्रमाणाभावत् योग्यतासंशयसम्भवेन फलसाधनत्वप्रत्ययो लिङादितः सम्भवत्येव। न च तद्बोधो नोपयोगी– निष्फलतया ज्ञाते चैत्यवन्दनादौ प्रवृत्तिवारणायेष्टसाधनताज्ञानस्य प्रवृत्तिहेतुतावश्यकत्वेन नित्यविधेः प्रवृत्तिनिर्वाहाय तस्य फलसाधनताबोधकताया आवश्यकत्वादिति चेत् ? न, ''सन्ध्यामुपासते ये तु सततं संशितव्रताः'' इति श्रुतौ 'सततं' इति श्रुतेः कदाचिद्यस्य सन्ध्यावन्दनादिबाधस्तेन स्वीयसन्ध्यावन्दने ब्रह्म लोकावाप्तिफलानुपधानस्य निश्चिततयाऽहरहः सन्ध्यावन्दने ब्रह्मलोकावाप्ति साधनताबोधनेऽपि तस्य सन्ध्यावन्दने प्रवृत्त्यनिर्वाहात्। यत्र च नित्ये विशिष्य फलबोधकोऽर्थवादादिर्नास्ति तत्र विधिप्रत्ययेनेष्टत्वेन फलसाधनताबोधस्य जननेपीच्छाविषयतावच्छेदकस्वर्गत्वादिरूपविशेषधर्मप्रकारेण फलविषयक-तत्साधनताबोधस्यानिर्वाहिण प्रवृत्त्यनिर्वाहात्। इष्टसाधनताज्ञानाघटितकारणस्तो-मात्मिकायाः सन्ध्यावन्दनाद्यभावगोचरनरकादिसाधनताज्ञानाधीनतद्गोचरद्वेष घटितसामग्र्या एव सन्ध्यावन्दनादौ प्रवर्तकताया उपगन्तव्यतया नित्यस्थल इष्टसाधनताबोधस्यानुपयोगिताया दुर्वारत्वात् ।

यदि कहो कि सन्ध्यावन्दन आदि का भी अर्थवादोपस्थापित ब्रह्मलोकावाप्ति आदि फलों का साधनत्व अव्याहत है (यहाँ पर अर्थवाद 'सन्ध्यामुपासते ये च सततं संशित व्रताः। विधूतपापास्ते यान्ति ब्रह्मलोकं सनातनम्, इत्यादि हैं ही सन्ध्यावन्दवादि में भी इन अर्थवादों से उपस्थापित ब्रह्मलोकावाप्ति आदि फलों का साधनत्व है ही) जिस नित्य

कर्म में अर्थवाद से भी फल की उपस्थिति नहीं होती है, वहाँ पर भी फलाभावनिश्चायक प्रमाण नहीं होने के कारण योग्यतासंशय सम्भव होने के कारण लिङ् आदि से फल साधनत्व का प्रत्यय सम्भव ही है[1]। इसमें यह नहीं कहा जा सकता है कि इष्टसाधनता का बोध प्रवृत्ति में उपयोगी नहीं होता है क्योंकि निष्फलतया ज्ञात चैत्यवन्दनादि में प्रवृत्ति का वारण करने के लिए इष्टसाधनताज्ञान की प्रवृत्तिहेतुता आवश्यक होने के कारण नित्य विधि से भी प्रवृत्ति का निर्वाह करने के लिए नित्य विधि की भी फलसाधनताबोधकता आवश्यक है।

तो यह ठीक नहीं है क्योंकि **'सन्ध्यामुपासते ये च सततं संशितव्रताः'** 'जो लोग लगातार संशित व्रत होकर सन्ध्योपासना करते हैं वे लोग पापों को धोकर सनातन ब्रह्मलोक चले जाते हैं' इस श्रुति में 'सततं' 'लगातार– निरन्तर' ऐसा सुनाई पड़ने के कारण कदाचित् जिसके सन्ध्यावन्दन आदि का बाध है, उसके द्वारा अपने सन्ध्यावन्दन में ब्रह्मलोकावाप्तिफल के अनुपधान के निश्चित होने के कारण सन्ध्यावन्दन में उक्त अर्थवाद से ब्रह्मलोकावाप्तिसाधनता का बोधन होने पर भी उस व्यक्ति का सन्ध्यावन्दन आदि में प्रवृत्ति का निर्वाह नहीं होता है। जहाँ पर नित्य में फलबोधक अर्थवाद आदि नहीं है वहाँ पर विधि प्रत्यय के द्वारा इष्टत्वेन फलसाधनताबोध को उत्पन्न करने पर भी इच्छाविषयतावच्छेदक स्वर्गत्वादिविशेषधर्म को प्रकार बनाकर फलविषयक इष्टसाधनताबोध का निर्वाह न होने के कारण प्रवृत्ति का निर्वाह नहीं होता है। इष्टसाधनताज्ञान से घटित कारणसमुदायात्मिका सन्ध्यावन्दनाद्यभावविषयक नरकादिसाधनताज्ञानाधीन सन्ध्यावन्दनाभावविषयक द्वेषघटित-सामग्री को ही सन्ध्यावन्दन आदि में प्रवर्तकता के स्वीकार्य होने के कारण नित्यस्थल में इष्टसाधनताबोध की अनुपयोगिता की दुर्वारता है।

सन्ध्योपासनादि में इष्टसाधनता विद्यमान है क्योंकि अर्थवाद से उपस्थापित ब्रह्मलोका-वाप्तिफलसाधनत्व का विधि के द्वारा बोधन हो सकता है। इसमें मुश्किल यह है कि उस अर्थवाद के द्वारा निरन्तर सन्ध्यावन्दवादि में ब्रह्मलोकावाप्तिसाधनत्व बोधित होता है। क्योंकि सततं पद का परिग्रह किया गया है।इस कारण जिस व्यक्ति का कभी एक आध बार सन्ध्या वन्दन नहीं हो सका, उस व्यक्ति के द्वारा स्वीयसन्ध्यावन्दन में ब्रह्मलोकावाप्ति फल का असाधनत्व निश्चित है, इस कारण यदि श्रुति के द्वारा विधि से सतत सन्ध्यावन्दन में ब्रह्मलोकावाप्तिसाधनत्व बोधित भी हो जाये, तब भी उस व्यक्ति की सन्ध्यावन्दन में प्रवृत्ति का निर्वाह नहीं हो सकता है।

जिस नित्य में अर्थवाद से फल की उपस्थिति नहीं होती है, उसमें योग्यतासंशय से फल साधनत्व का लिङ् द्वारा प्रत्यायन होता है। यह स्वीकारने में मुश्किल यह है कि वहाँ पर इष्टत्वेन फलसाधनताबोध होने पर भी इच्छाविषयतावच्छेदक स्वर्गत्वादि विशेष धर्म को प्रकार बनाकर फलविषयक इष्टसाधनताबोध का निर्वाह न होने से प्रवृत्ति का निर्वाह नहीं हो सकता है।

इसके अतिरिक्त नित्यस्थल में सन्ध्यावन्दनाभाव के नरकादिसाधन होने के कारण

1. शाब्दबोध में योग्यताज्ञान कारण होता है, वह योग्यता ज्ञान चाहे संशयात्मक हो और चाहे निश्चयात्मक। इसलिए योग्यता संशय होने पर भी लिङ् के द्वारा फल साधनत्व का प्रत्यायन किया जा सकता है।

सन्ध्यावन्दनाभावविषयक नरकादिसाधनता ज्ञान के अधीन सन्ध्यावन्दनाभावविषयक द्वेष से घटित सामग्री के द्वारा ही सन्ध्यावन्दनादि में प्रवृत्ति होती है। यही स्वीकारने से काम चल जाता है। सन्ध्यावन्दनादि की इष्टसाधनता के बोध की अनुपयोगिता तो इस प्रकार दुर्वार ही है। इस कारण इष्टसाधनत्व को विध्यर्थ मानना उचित नहीं है।

न च 'विश्वजिता यजेत'' इत्यत्रविशिष्टफलाश्रवणेऽपि यथा स्वर्गकाम पदस्याध्याहारेण तत्समभिव्याहाराद् विशेषरूपावच्छिन्नस्वर्गसाधनताबोधस्तथा नित्यस्थलेऽपि विशेषधर्मप्रकारकस्वर्गसाधनताबोधसम्भवादुक्तप्रवृत्ति सामग्र्यन्तरकल्पनमयुक्तमिति वाच्यम्; बहुवित्तव्यायाससाध्यविश्वजिद्यागे तत्तद्ग्रामपश्वादिफलोद्देशेन प्रवृत्त्यनुपपत्तेस्तद्विधेः स्वर्गफलतात्पर्यनिश्चयात्, सन्ध्यावन्दनादौ चाल्पायाससाध्ये ग्रामादिफलोद्देशेनापि प्रवृत्त्युपपत्तेस्तद्विधेः स्वर्गपरत्वनिश्चयायोगात्, स्वर्गादिफलकामनारहितैर्मुमुक्षुभिरपि सन्ध्यावन्दनाद्याचरणाद् उक्तप्रवृत्तिसामग्रीकल्पनस्यावश्यकत्वाच्च तादृशसामग्रीं विना प्रायश्चित्तादाविष्टासाधने प्रवृत्त्यनिर्वाहाच्च।

यदि कहो कि '**विश्वजिता यजेत**' इस स्थल में विशष्ट फल का श्रवण नहीं होने पर भी जैसे स्वर्गकाम पद के अध्याहार से और अध्याहृत स्वर्गकाम पद के समभिव्याहार से विशेषरूपावच्छिन्न स्वर्ग के प्रति साधनता का विश्वजित् याग में बोध होता है,वैसे ही नित्यस्थल में भी विशेषधर्मप्रकारक स्वर्गसाधनता बोध सम्भव होने के कारण उस प्रवृत्ति के लिए अलग तरीके की सामग्री की कल्पना करना अयुक्त है। तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि बहुत सारे वित्त के व्यय और आयास से साध्य विश्वजित् याग में तत्तत् ग्राम, पशु आदि फलों के उद्देश्य से प्रवृत्ति की अनुपपत्ति है (क्योंकि उससे अल्पतर वित्त के द्वारा वे खरीद कर ही प्राप्त किये जा सकते हैं फिर विश्वजित् याग करने की क्या ज़रूरत है?) इसलिए स्वर्ग रूप फल में तात्पर्य का निश्चय होता है। सन्ध्यावंदनादि तो अल्पायास साध्य है, उनमें ग्राम, पशु आदि फलों के उद्देश से भी प्रवृत्ति की उपपत्ति हेने के कारण उस विधि सन्ध्यावन्दनादि विधि के स्वर्गपरत्वनिश्चय का कोई योग नहीं है और स्वर्गादिफल की कामना से रहित मुमुक्षुओं के द्वारा भी सन्ध्यावन्दन आदि का आचरण होने के कारण उक्त प्रवृत्तिसामग्री— सन्ध्यावन्दनाभावविषयकनरकादिसाधनताज्ञानाधीन सन्ध्यावन्दनाभावविषयकद्वेषघटित सामग्री— की कल्पना आवश्यक है। तथा वैसी सामग्री के विना प्रायश्चित आदि में, जो कि इष्टासाधन हैं, प्रवृत्ति का निर्वाह नहीं हो सकता है।

काम्यस्थलों में इष्टसाधनताज्ञान से प्रवृत्ति होती है, इसी कारण '**विश्वजिता यजेत**' इस स्थल में विशिष्ट फल का श्रवण न होने पर भी जैसे स्वर्गकामपद के अध्याहार से विश्वजित् याग में विशेषरूपावच्छिन्न स्वर्ग के प्रति साधनता का बोध होता है। इस प्रकार नित्य स्थलों में भी विशेषरूपावच्छिन्न स्वर्गसाधनता का बोध होने के कारण सन्ध्यावन्दनादि में प्रवृत्ति होगी। सन्ध्यावन्दनादि में इष्टसाधनताबोध न स्वीकारने पर तो संध्यावन्दनादि प्रवृत्ति के प्रति सन्ध्यावन्दनाद्यभावविषयक नरकादिसाधनता ज्ञान के अधीन सन्ध्यावन्दनाभावविषयक द्वेष आदि से घटित सामग्री की भी कारणता स्वीकारनी पड़ेगी।

इसका समाधान यह है कि प्रायश्चित्त में जो प्रवृत्ति होती है उसके प्रति प्रायश्चित्ताभावविषयक नरकसाधनताज्ञान के अधीन प्रायश्चित्ताभावविषयक द्वेष आदि से घटित सामग्री की ही कारणता माननी पड़ेगी। इसलिए प्रवृत्ति के प्रति अतिरिक्त रूप में किसी सामग्री की कारणता की कल्पना नहीं करनी पड़ रही है। क्योंकि प्रायश्चित्त प्रवृत्ति में आप भी इसी सामग्री की ही कारणता स्वीकारेंगे। इसके अतिरिक्ति मुमुक्षु की प्रवृत्ति भी सन्ध्यावन्दनादि में होती है। उक्त मुमुक्षुप्रवृत्ति भी सन्ध्यावन्दनाभावविषयक नरकसाधनताज्ञानाधीन सन्ध्यावन्दनाभावविषयक द्वेषघटित सामग्री से ही उपपन्न होगी। ममुक्षु की स्वर्गसाधनताज्ञान के अधीन सन्ध्यावन्दनादि में प्रवृत्ति सम्भव नहीं है क्योंकि मुमुक्षु स्वर्ग कामना से रहित होता है। दूसरी बात यह है कि विश्वजित् याग के बहुत वित्तव्यय और बहुत आयास से साध्य होने से उसके लिए तो स्वर्ग को फल माना जा सकता है। सन्ध्यावन्दनादि के स्वल्पायास से भी साध्य होने के कारण ग्राम, पशु आदि उद्देशेन भी प्रवृत्ति सम्भव है। अतः नित्यकर्मों का स्वर्गादिफलसाधनत्व नहीं स्वीकारा जा सकता है। फलतः इष्टसाधनत्व को विध्यर्थ नहीं माना जा सकता है।

न च तत्रापि पापध्वंसरूपेष्टसाधनताज्ञानात् प्रवृत्तिर्निर्वहति; सुख दुःखाभावेतरगोचरेच्छायामिष्टसाधनताज्ञानस्य नियमतोऽपेक्षायां निष्फलपापध्वंसस्येष्टत्वासम्भवात्, नरकसाधनगोचरद्वेषस्य तद्ध्वंसगोचरेच्छाजनकत्वोपगमेऽस्मत्समीहितायामिष्टसाधनत्वज्ञानाघटितप्रवृत्तिसामग्र्यामविवादात्, कृतिसाध्यताज्ञानसहितेच्छासामान्यसामग्रीत श्चिकीर्षोत्पत्तेर्निष्फलेऽपि सन्ध्यावन्दनादौ निर्वाहेण प्रवृत्त्युपपत्तेः।

यदि कहो कि वहाँ पर पापध्वंसरूप इष्टसाधनताज्ञान से प्रवृत्ति का निर्वाह होता है- पापध्वंससाधनता ज्ञान से मुमुक्षु की सन्ध्यावन्दनादि में और सामान्य जन की प्रायश्चित्त में प्रवृत्ति का निर्वाह होता है, तो ऐसा भी नहीं है क्योंकि सुखदुःखाभावेतरविषयक (सुख और दुःखाभाव से अतिरिक्त वस्तु विषयक) इच्छा में इष्टसाधनताज्ञान की नियमतः अपेक्षा होने के कारण फलरहित पापध्वंस का इष्टत्व असम्भव है। नरकसाधन विषयक द्वेष का तद्ध्वंसविषयक इच्छा का जनकत्व स्वीकारने पर हमारे द्वारा समीहित इष्टसाधनत्वज्ञान से अघटित प्रवृत्तिसामग्री में कोई विवाद नहीं है और कृतिसाध्यताज्ञान से सहित इच्छा सामान्य सामग्री से चिकीर्षा की उत्पत्ति होने से निष्फल भी सन्ध्यावन्दन आदि में प्रवृत्ति का निर्वाह हो जाता है।

पापध्वंसरूप इष्ट के प्रति साधनता ज्ञान से प्रवृत्ति नहीं हो सकती है। इसमें कारण यह है कि एक साक्षात् इष्ट का साधन होता है दूसरा परम्परया। सुख और दुःखाभाव साक्षात् इष्ट हैं, इनका साधन साक्षादिष्टसाधन होगा। उसमें प्रवृत्ति सीधे-सीधे हो सकती है, सुख साधन और दुःखाभाव साधन परम्परया इष्ट होते हैं। सुख दुःखाभाव से इतर कामिनी आदि विषयक इच्छा में उनके कामिनी आदि के इष्टसाधनत्वज्ञान की अपेक्षा नियमतः होती है। पापध्वंस न तो सुख है न तो दुःखाभाव है, अतः पापध्वंस यदि किसी इष्ट का साधन हो तभी उसे इष्ट कह सकते हैं और उसका साधन जो नित्यकर्म है, उसमें प्रवृत्ति हो सकती

है। यदि नरकसाधनविषयक द्वेष को आप पापध्वंसविषयक इच्छाजनक मानें तब तो सन्ध्यावन्दनाभावविषयकनरकसाधनताज्ञान के अधीन द्वेष से घटित सामग्री को ही आप सन्ध्यावन्दनादि प्रवृत्ति में कारण मान रहे हैं, यही हम भी मान रहे हैं। इसलिए कोई झगड़ा ही नहीं रहा । तथा कृतिसाध्यताज्ञान से सहित इच्छासामान्यसामग्री से ही चिकीर्षा की उत्पत्ति व सन्ध्यावन्दन आदि में भी प्रवृत्ति का निर्वाह हो जायेगा। इसलिए इष्टसाधनताज्ञान से प्रवृत्ति का निर्वाह नहीं सम्भव है।

न च नरकानुत्पाद एव प्रायश्चित्तस्य सन्ध्यावन्दनादेश्च फलमितीष्टसाधनताज्ञानघटितैव प्रवृत्तिसामग्री नरकद्वेषवताञ्च तदनुत्पादे नियमत एवेच्छेति तेषां नित्यसन्ध्यावन्दनाद्यनुष्ठानमुपपद्यते, अन्यैश्च तन्नानुष्ठीयत इति वाच्यम्; नरकानुत्पादस्य तत्प्रागभावात्मकतया प्रतियोगिविकल्पग्रासेन फलत्वासम्भवात्, अत्यन्ताभावस्य प्रतियोगिविरोधितया कदाचित् पापान्तरेण यस्य नरकदुःखं जनितं जनिष्यते वा तदात्मन्यसत्त्वान्नित्यत्वेन चोभयोः फलत्वासम्भवात्, योगक्षेमसाधारणसाधनतायाः गुरुशरीरत्वेन प्रवृत्त्यनुपयोगित्वात् ।

यदि कहो कि प्रायश्चित्त और सन्ध्यावन्दनादि का फल नरकानुत्पाद ही है इस कारण इष्टसाधनताज्ञान से घटिता ही प्रवृत्ति सामग्री है। नरकद्वेषवालों की नरकानुत्पाद में नियमतः ही इच्छा होती है। इस कारण उनका नित्यसन्ध्यावन्दनादि अनुष्ठान भी उपपन्न होता है, अन्य के द्वारा उसका अनुष्ठान नहीं होता है। चूँकि नरक दुःखविशेष है और नरकानुत्पाद दुःखाभाव रूप। अतः उसका इष्टत्व सम्भव है। इसलिए नरकानुत्पादसाधनताज्ञान से प्रवृत्ति सम्भव है।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि नरकानुत्पाद नरकप्रागभाव रूप होता है,इस कारण प्रतियोगिविकल्प ग्रास से उसका फलत्व सम्भव नहीं है, अत्यन्ताभाव के प्रतियोगी का विरोधी होने के कारण कदाचित् पापान्तर से जिसको नरक दुःख उत्पन्न हुआ या उत्पन्न होगा उस आत्मा में न रहने के कारण और नित्य होने के कारण दोनों का ही फलत्व असम्भव है। योग क्षेमसाधारण साधनता तो गुरु शरीर होने के कारण प्रवृत्ति में अनुपयुक्त होती है।

नरकानुत्पाद नरकप्रागभाव रूप है। उसका इष्टत्व स्वीकारने में निम्न समस्याएँ हैं पहली बात तो कैसा नरकप्रागभाव प्रायश्चित्त व सन्ध्यावन्दन आदि का फल है? नरकसामान्य प्रागभाव या नरकविशेष प्रागभाव। नरकसामान्यप्रागभाव यदि सन्ध्यावन्दनादि का फल है तो परस्त्रीगमनादि से भी सन्ध्योपासक को नरक नहीं होना चाहिए। यदि नरकविशेषप्रागभाव सन्ध्यावन्दनादि का फल है। तो किस नरक का प्रागभाव सन्ध्यावन्दन का फल है? इसका निर्धारण नहीं है। इसलिए नरक प्रागभाव को सन्ध्यावन्दनादि का फल नहीं माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त एक और समस्या यह है कि जिस व्यक्ति को नरक होगा या है, उस आत्मा में नरकात्यन्ताभाव भी नहीं है तो नरकात्यन्ताभाव को सन्ध्यावन्दनादि का फल मानें या नरक प्रागभावरूप नरकानुत्पाद को? इस सन्देह का निवारण नहीं होता है क्योंकि दोनों

ही उस आत्मा में नहीं हैं और नित्य हैं, इसलिए दोनों का फलत्व असम्भव है। योग का मतलब अप्राप्त की प्राप्ति और क्षेम का अर्थ प्राप्त का परिरक्षण है, यागादि में योगरूप साधनता है और प्रायश्चित्तादि में क्षेमरूपा साधनता है क्योंकि यागादि अप्राप्त स्वर्गादि योग के साधन होते हैं और प्रायश्चित्त सन्ध्यावन्दनादि नरकानुत्पाद रूप प्राप्त अभाव का परिरक्षण करते हैं। ऐसी योगक्षेमसाधारण साधनता तो गुरु शरीर होने से प्रवृत्ति में ही उपयुक्त नहीं होती है। इसलिए इष्टसाधनता को विध्यर्थ नहीं माना जा सकता है।

यदपि "मण्डलीं कुर्यात्" इत्यादिवाक्यप्रामाण्यवारणायेष्टसाधनत्वस्य विध्यर्थत्वमावश्यकमिति, तदपि न- मण्डलीकरणादिजन्यतद्ध्वंसादिरूप-फलेऽपि कदाचित् कस्यचिदिष्टताभ्रमेणेच्छोत्पत्त्या मण्डलीकरणादावपीष्ट-साधनत्वाबाधेनेष्टसाधनत्व विध्यर्थतामंतेऽपि तद्वाक्यप्रामाण्यस्या-वश्यकतयेष्टापत्तेः। "स्वर्गकामो मण्डलीं कुर्यात्" इति वाक्यजन्यबोधे च स्वर्गकामनाया मण्डलीकरणादिनिष्ठकर्तव्यत्वप्रयोजकत्वभानेन तदर्थबाधेन तद्वाक्याप्रामाण्योपपत्तेः।

जो यह भी कहना है कि '**मण्डलीं कुर्यात्**' इत्यादि वाक्यों के प्रामाण्य का वारण करने के लिए इष्टसाधनत्व का विध्यर्थत्व आवश्यक है, इष्टसाधनत्व को विध्यर्थ न मानने पर मण्डलीकरण आदि में भी कृतिसाध्यत्व रहने से इस वाक्य का भी प्रामाण्य होने लगेगा, इष्टसाधनत्व को विध्यर्थ मानने पर तो मण्डलीकरणादि में इष्टसाधनत्व रूप विध्यर्थ का अन्वय बाधित होने के कारण इस वाक्य का प्रामाण्य नहीं प्रसक्त होता है।

तो वह भी ठीक नहीं है क्योंकि मण्डलीकरणादिजन्यतद्ध्वंसादि रूप फल में भी कदाचित् किसी की इष्टता का भ्रम होने से इच्छा की उत्पत्ति होती है, इसलिए मण्डली करणादि में भी इष्टसाधनत्व का बाध नहीं होने के कारण इष्टसाधनत्व की विध्यर्थता के मत में भी '**मण्डलीं कुर्यात्**' इस वाक्य का प्रामाण्य आवश्यक होने के कारण इष्टापत्ति ही है। '**स्वर्गकामो मण्डलीं कुर्यात्**' इस वाक्य से जन्य बोध में तो मण्डलीकरणादि निष्ठकर्तव्यत्वप्रयोजकत्व भान होने से उसके अर्थ का बाध होने से उक्त वाक्य के अप्रामाण्य की उपपत्ति होती है।

यदि किसी को '**मण्डलीकरणजन्यध्वंसो मदिष्टसाधनम्**' इस प्रकार मण्डली करण जन्य ध्वंस में इष्टसाधनता भ्रम हो जाये तो मण्डलीकरण विषयक इच्छा होगी। इस प्रकार मण्डलीकरण में इष्टसाधनत्व अबाधित है। ऐसी स्थिति में इष्टसाधनत्व को विध्यर्थ मानने पर भी '**मण्डलीं कुर्यात्**' इस वाक्य का प्रामाण्य इष्ट है। इसलिए इस वाक्य के प्रामाण्य का वारण करना और उसके लिए इष्टसाधनत्व को विध्यर्थ मानना व्यर्थ है। '**स्वर्गकामो मण्डलीं कुर्यात्**' इस वाक्य से जन्य बोध में तो स्वर्गकामना का मण्डलीकरणादि-निष्ठकर्तव्यत्वप्रयोजकत्व भासता है और स्वर्गकामना का मण्डलीकरणादिनिष्ठकर्तव्यत्व प्रयोजकत्व बाधित है। इस कारण इस वाक्य का प्रामाण्य वारित हो जाता है।

न चेष्टसाधनत्वस्य विधिप्रत्ययार्थत्वानुपगमे "स्वर्गकामो यजेत" इत्यादिवाक्याद् यागादौ प्रवृत्त्युनुपपत्तिः- तत्राभावगोचरद्वेषघटित

सामग्र्यसम्भवात्, यागाद्यभावस्य नरकादिरूपद्विष्टसाधनत्वाभावात् इष्ट-साधनत्वबोधकमानाभावेन तज्ज्ञानघटितसामग्र्या अपि भवन्मते दुर्घटत्वादिति वाच्यम्; इष्टसाधनत्वस्य विध्यर्थताविरहेऽपि 'स्वर्गासाधनं न स्वर्गकामनाधीन कृतिसाध्यम्' इतीतरबाधबलात् स्वर्गकामकृतिसाध्यतान्वयितावच्छेदकतया स्वर्गसाधनत्वस्योक्तविधिजन्यबोधे भानाद् यागादाविष्टसाधनताज्ञानादेव प्रवृत्तिनिर्वाहात् ।

इत्थञ्च सन्ध्यावन्दनादौ तत्कालावच्छिन्नशौचादिकमेवाधिकारो न तु फलकामनापि। अतः फलकामनाशून्यस्यापि शौचादिमतः सन्ध्यावन्दनाकरणं प्रत्यवायजनकम् । फलकामनायास्तत्राधिकारत्वे तच्छून्यस्यानधिकारितया तदकरणं न प्रत्यवायमावहेत् ।

यदि कहो कि इष्टसाधनत्व को विधि प्रत्यय का अर्थ न मानने पर **'स्वर्गकामो यजेत'** इत्यादि वाक्यों से यागादि में प्रवृत्ति की अनुपपत्ति होगी। वहाँ पर अभाव विषयक द्वेषघटित सामग्री असम्भव है क्योंकि यागाद्यभाव का नरकादिरूप द्विष्टसाधनत्व नहीं है। इष्टसाधनत्व बोधक प्रमाण न होने के कारण इष्टसाधनत्व ज्ञान से घटित सामग्री भी दुर्घट है। अभिप्राय यह है कि यदि इष्टसाधनत्त्व को विध्यर्थ न माना जांये तो **'स्वर्गकामो यजेत'** इत्यादि वाक्यों से यागादि में प्रवृत्ति नहीं हो सकेगी क्योंकि स्वर्गादि के इष्ट साधनत्व का बोधक प्रामाण न होने के कारण इष्टसाधनत्वज्ञान से घटित सामग्री तो संम्भव नहीं है। प्रायश्चित्त और सन्ध्यावन्दनादि में प्रवृत्ति के प्रति पायश्चित्ताद्यभावविषयक नरका दिसाधनताज्ञान के अधीन प्रायश्चित्ताभावविषयक द्वेष से घटित सामग्री कारण होती है। किन्तु यागादि में प्रवृत्ति के प्रति इस प्रकार की द्वेषघटितसामग्री भी नहीं सम्भव है क्योंकि यागाभाव विषयकनरकादिद्विष्टसाधनता ज्ञान नहीं है। इसकारण इष्टसाधनत्व को विध्यर्थ मानना चाहिए। तभी यागादि में प्रवृत्ति सम्भव हो सकती है।

तो ऐसा भी नहीं कहना चाहिए क्योंकि इष्ट साधनत्व की विध्यर्थता न होने पर भी-इष्टसाधनत्व को विध्यर्थ न मानने पर भी **'स्वर्गासाधनं न स्वर्गकामनाधीनकृति साध्यम्'** 'स्वर्गासाधन स्वर्गकामनाधीन कृति से साध्य नहीं है' इस प्रंकार के इतर बाध के बल से स्वर्गकामकृतिसाध्यतान्वयितावच्छेदकतया स्वर्गसाधनत्व का उक्त विधिजन्य बोध में भान होने से यागादि में इष्ट साधनताज्ञान से ही प्रवृत्ति का निर्वाह होता है। भाव यह है कि **'स्वर्गासाधनं न स्वर्गकामनाधीनकृतिसाध्यम्'** इस प्रकार बाध के बल से स्वर्गसाधनत्व का **'स्वर्गकामो यजेत'** इस विधि से जन्य बोध में स्वर्गकामकृति साध्यतान्वयितावच्छेदकतया भान होने के कारण इष्टसाधनत्व को विधिप्रत्यय का अर्थ न मानने पर भी यागादि में इष्ट-साधनताज्ञान सम्भव है। स्वर्गासाधनत्व का अभाव स्वर्गसाधनत्व रूप है, इस कारण यागादि का स्वर्गसाधनत्व यागादि में स्वर्गकामनाधीन कृति साध्यता का ज्ञान होने से ही ज्ञात हो जाता है। तथा उसी से यागादि में प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार इष्टसाधंनत्व को विधि प्रत्यय का अर्थ न मानने पर भी **'स्वर्गकामो यजेत'** इस वाक्य से प्रवृत्ति की अनुपपत्ति नहीं है।

इस प्रकार सन्ध्यावन्दनादि में तत्कालावच्छिन्न शौचादि ही अधिकार है न कि फल कामना भी, अतः फलकामनाशून्य भी शौचादिमान् का सन्ध्यावन्दनादि न करना भी प्रत्यवायजनक होता है। फलकामना का वहाँ पर अधिकारत्व होने पर फलकामनाशून्य के अनधिकारी होने के कारण फल कामनाशून्य शौचादिमान् का सन्ध्यावन्दन आदि न करना प्रत्यवाय को न उत्पन्न करता ।

न च मुमुक्षापवादेन स्वर्गादिरूपफलकामनायाः कदाचिदसम्भवेऽपि नरकाभावरूपफले नियमत एवेच्छा सम्भवतीति न शौचादिमतः सन्ध्या-वन्दनाद्यकरणस्य प्रत्यवायजनकत्वानुपपत्तिरिति वाच्यम्; नरकाद्यनुपस्थित्यैव तदभावाज्ञानेन तदिच्छाविरहोपपत्तेरित्याहुः।

यदि कहो कि मुमुक्षा के अपपाद से स्वर्गादिरूप फल कामना के कदाचित् सम्भव न होने पर भी नरकाभावरूप फल में नियमतः ही इच्छा सम्भव है, इसलिए शौचादिमान् का सन्ध्यावन्दनादि न करने के प्रत्यवायजनकत्व की अनुपपत्ति नहीं है।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि नरकादि की अनुपस्थिति होने से ही तदभाव का अज्ञान होने से तदिच्छाविरह की उपपत्ति होती है। ऐसा कहते हैं।

यहाँ पर मीमांसकों की ओर से नित्यकर्मादिस्थलों में नरकाभावरूप फल साधनता ज्ञान का भी प्रवर्तकत्व नहीं सम्भव है यह व्यवस्थापित किया गया। इसमें युक्ति यह दी गयी कि चूँकि नरकादि उपस्थित ही नहीं हैं, अतः नरकाभाव का ज्ञान नहीं है, फलतः नरकाभाव विषयक इच्छा नहीं सम्भव है। इस विषय में नैयायिकों का यह सिद्धान्त ध्यातव्य है कि **'ज्ञानजन्या भवेदिच्छा इच्छाजन्या भवेत् कृतिः'** 'इच्छा ज्ञान से जन्य होती है और कृति इच्छा से जन्य होती है।' इस स्थल में नरक की अनुपस्थिति से प्रतियोगी का ज्ञान न होने से नरकाभाव का ज्ञान, नरकाभाव ज्ञान न होने से उससे जन्य इच्छा तथा इच्छा न होने से उससे जन्य कृति भी सम्भव नहीं है। इसलिए इष्टसाधनता ज्ञान को प्रवर्तक और इष्ट साधनत्व को विध्यर्थ नहीं मानना चाहिए।

यहाँ पर आये हुए **इत्याहुः** का पृ. 847 पर आये **मीमांसकास्तु** के साथ अन्वय होता है। वहाँ से यहाँ तक के ग्रन्थ के द्वारा गदाधर ने इष्टसाधनत्व को विध्यर्थ नहीं मानने में मीमांसकों की युक्तियाँ दिखायी हैं।

तदसत्– ध्वंसादेरत्यन्ताभावविरोधिताया निष्प्रामाणिकतया नरकात्यन्ता भावस्यैव प्रायश्चित्तसन्ध्यावन्दनादिफलत्वसम्भवादिष्टसाधनताज्ञानाघटित प्रवृत्तिसामग्र्या असिद्धेः, कारणान्तरकल्पनापेक्षया गुरुशरीरक्षेमसाधारण साधनताज्ञानस्यैव सर्वत्र प्रवृत्तिहेतुतेति। 'दण्डाद् घटः' इत्यादिप्रतीतिबलात् स्वरूपसम्बन्धविशेषरूपस्य क्षेमसाधारणसाधनत्वस्योपगमे तच्छरीरगौरव स्याभावाच्चेति। नित्यस्थले शौचादिफलकामनयोरुभयोरधिकारत्वेऽपि प्रत्येकमपि तयोरधिकारता न तु मिलितयोरिति फलकामनाशून्यस्यापि शौचादिमतोऽधि-कारितया तथापि नित्याकरणं प्रत्यवायजनकम्।

वह ग़लत है- **मीमांसकास्तु** से प्रारब्ध और **इत्याहुः** से पूरा किया हुआ मीमांसकमत ठीक नहीं है, क्योंकि ध्वंसादि की अत्यंताभावविरोधिता के अप्रामाणिक होने से नरकात्यन्ताभाव का ही प्रायश्चित्त सन्ध्यावन्दनादि फलत्व सम्भव होने के कारण इष्टसाधनता ज्ञान से अघटित प्रवृत्ति सामग्री की असिद्धि है। इस कारण कारणान्तर कल्पना कीं अपेक्षा गुरुशरीरक्षेमसाधारण साधनताज्ञान की ही सर्वत्र प्रवृत्ति हेतुता है। **'दण्डाद् घटः'** इत्यादि प्रतीति के बल से स्वरूपसम्बन्धविशेष रूप क्षेमसाधारण साधनत्व का उपगम होने पर तो कारणता शरीर के गौरव का भी अभाव है। नित्यस्थल में शौचादि और फलकामना दोनों की अधिकारता होने पर भी एक-एक करके भी दोनों की अधिकारता है न कि मिले हुए दोनों की, इस कारण फलकामनाशून्य भी शौचादिमान् की अधिकारिता होने के कारण फलकामनाशून्य शौचादिमान् का भी नित्य सन्ध्यावन्दनादि का न करना प्रत्यवायजनक होता है।

'प्रागभावध्वंसयोरधिकरणे नात्यन्ताभावः' ऐसा न्यायवैशेषिक सम्प्रदाय का विवादास्पद सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त प्रागभाव और ध्वंस के अत्यन्ताभाव के साथ विरोध पर आधारित है। नवीन नैयायिक इस सिद्धान्त को नहीं मानते हैं क्योंकि प्रागभाव, ध्वंस के साध अत्यन्ताभाव का विरोध निष्प्रामाणिक है। मीमांसकों का कहना है कि प्रायश्चित्त, सन्ध्यावन्दनादि में प्रवृत्ति प्रायश्चित्ताभाव, सन्ध्यावन्दनाभावविषयक नरकसाधनताज्ञान के अधीन प्रायश्चित्ताभाव, सन्ध्यावन्दनाभाव विषयक द्वेष घटित सामग्री के अधीन होती है। क्योंकि प्रायश्चित्त और सन्ध्यावन्दनादि का कोई भी फल सम्भव नहीं है। इस पर गदाधर का कहना है कि प्रायश्चित्त, सन्ध्यावन्दनादि का फल नरकात्यन्ताभाव हो सकता है, इस प्रकार वहाँ पर भी नरकाभाव (नरक दुःख विशेष है, तदभाव) रूप इष्टसाधनताज्ञान से घटित ही सामग्री है अघटित नहीं । इस कारण यहाँ पर द्वेषघटित सामग्री रूप कारणान्तर द्वारा प्रवृत्ति नहीं होती है, यहाँ पर द्वेषघटितसामग्री की कारणता की कल्पना की अपेक्षा गुरुशरीर योगक्षेम साधारण साधनताज्ञान की ही कारणता है अथवा यदि **'दण्डाद् घटः'** इत्यादि प्रतीतियों के बल से स्वरूपसम्बन्धविशेषरूप योगक्षेमसाधारण साधनता का स्वीकार कर लें तो शरीर का गौरव भी नहीं है। मीमांसकों की आपत्ति यह भी थी कि नरकात्यन्ताभाव को सन्ध्यावन्दनादि का फ़ल मानने पर नरकात्यन्ताभावविषयक कामना का सन्ध्यावन्दनादि का फल मानने पर नरकात्यन्ताभावविषयक कामना का सन्ध्यावन्दनाधिकारत्व होगा, फलतः नरकात्यन्ताभावविषयककामनाशून्य का सन्ध्यावन्दन में अधिकार न होने से तादृश कामनाशून्य को सन्ध्यावन्दन न करने से प्रत्यवाय नहीं होगा। इसका जवाब गदाधर देते हैं कि नरकात्यन्ताभावविषयक कामना और शौचादि की अलग-अलग अधिकारता होने के कारण शौचादिमान् फलकामनाशून्य भी सन्ध्यावन्दन आदि का अधिकारी होता है। इस कारण यदि वह भी सन्ध्यावन्दन न करे तो उसे भी प्रत्यवाय होता ही है।

अथवा सन्ध्यावन्दनाकरणेन प्रत्यवायजननेऽधिकारैकदेशशौचादिमत्त्व मेव सहकारि न तु फलकामनापि, तदसत्त्वेऽपि प्रत्यवायोत्पत्तेः सर्वसिद्धत्वात्।

अथवा सन्ध्यावन्दन न करने से प्रत्यवाय उत्पन्न होने में अधिकार का एक देश शौचादिमत्त्व ही सहकारी है न कि फल कामना भी क्योंकि प्रत्यवाय की कामना न रहने पर भी प्रत्यवाय की उत्पत्ति सर्वसिद्ध है। अभिप्राय यह है कि फलकामना के प्रवर्तक होने पर भी फलोत्पत्ति के प्रति फलकामना कारण नहीं है फलकामना न होने पर भी प्रत्यवाय की उत्पत्ति होती ही है।

एतेन संवलिताधिकारानुपगमे शौचादिशून्यफलकामनावतो दैवान्नित्याकरणं प्रत्यवायं जनयेदिति निरस्तम् ।

ऐसा स्वीकारने से-संवलित अधिकार का स्वीकार न करने पर शौचादि शून्य फलकामनावान् के द्वारा दैववशात् नित्यकर्म का न करना भी प्रत्यवाय को उत्पन्न करे- यह भी निरस्त हो जाता है।

अभिप्राय यह है कि फ़लकामना और शौचादि दोनों का मिला हुआ अधिकारित्व मानना पड़ेगा। दोनों की मिली हुई अधिकारता न मानने पर जैसे फलकामना न रहने पर शौचादिमान् व्यक्ति यदि सन्ध्यावन्दनादि न करे तो प्रत्यवाय होता है, उसी प्रकार शौचादि शून्य फलकामनावान् व्यक्ति यदि सन्ध्यावन्दनादि न करे तो उसे भी प्रत्यवाय होना चाहिए। जबकि उसे प्रत्यवाय होना कोई भी नहीं स्वीकारता है। यह भी उपर्युक्त कथन से ही खण्डित हो जाता है क्योंकि सन्ध्यावन्दनाकरण से प्रत्यवायोत्पत्ति में शौचादि सहकारी कारण होते हैं किन्तु फलकामना सहकारी कारण नहीं होती है। इसलिए फ़लकामनावाले शौचादिशून्यव्यक्ति के द्वारा सन्ध्यावन्दनाकरण से प्रत्यवायोत्पत्ति नहीं होती है। साररूप में इस कल्प में नित्यकर्म में शौचादिमत्त्व भी अधिकारित्व है, फलकामना भी अधिकारान्तर्गत है। किन्तु प्रत्यवायोत्पत्ति में शौचादि की ही सहकारिता है, फल कामना की नहीं ।

अत एव नित्यकाम्यजयन्तीव्रतादौ फलकामनाया अधिकारत्वस्य सर्वसिद्धतया शौचादिमतः फलकामनारहितस्य तदकरणं प्रत्यवायं जनयति।

इसी कारण ही नित्य काम्य जयन्ती व्रतादि में फलकामना के अधिकारत्व के सर्वसिद्ध होने के कारण फलकामना से रहित शौचादिमान् का भी नित्यकाम्य जयन्ती व्रतादि का न करना प्रत्यवाय उत्पन्न करता है। क्योंकि शौचादि प्रत्यवायोत्पत्ति में सहकारी कारण होते हैं, फलकामना नहीं, इसलिए फलकामनावाले शौचादि शून्य व्यक्ति को प्रत्यवायोत्पत्ति नहीं होती है। तथा फलकामनाशून्य शौचादिमान् व्यक्ति को प्रत्यवायोत्पत्ति होती है।

अपरे तु 'चैत्यं न वन्देत' इति वाक्यप्रामाण्यानुरोधेनेष्टसाधनत्वस्य विध्यर्थत्वमावश्यकम्, कृतिसाध्यत्वादिमति चैत्यवन्दनादौ कृतिसाध्यत्वाद्यभावस्य नञा बोधने तद्वाक्यस्याप्रामाण्यापत्तेः। कृतिसाध्यतायाश्च विधित्वं निर्युक्तिकम्—तदनङ्गीकारेऽपि कृतेराख्यातसामान्यार्थतया विधिप्रत्ययस्यापि तदर्थकतया 'पचेत' इत्यादौ कृतेः पाकानुकूलत्वभानस्यावश्यकतयाऽर्थात् पाकादावपि कृतिसाध्यताभानात् कृतिसाध्यताया विधित्वे तत्तत्कालतत्तत्पुरुषविशेषविशेषितकृतिसाध्यताविषयकस्य प्रवर्तकज्ञानस्य

शाब्दबोधोत्तरमेव स्वीकरणीयतया विधिवाक्यजशाब्दबोधतः साक्षात् प्रवृत्त्यनिर्वाहात् ।

अन्यलोग तो— **'चैत्यं न वन्देत'** 'चैत्य की वन्दना न करे' इत्यादि वाक्यों के प्रामाण्य के अनुरोध से इष्टसाधनत्व का विध्यर्थत्व आवश्यक है क्योंकि (इष्टसाधनत्व को विध्यर्थ न मानने पर इस तरह के वाक्यों से कृतिसाध्यत्वादिमत् चैत्यवन्दनादि में कृतिसाध्यत्वाभाव ही बोधित होता है यह मानना पड़ेगा और) कृतिसाध्यत्वादिमत् चैत्यवन्दनादि में कृतिसाध्यत्वाद्यभाव का नञ् के द्वारा बोधन करने पर **'चैत्यं न वन्देत'** इत्यादि वाक्यों के अप्रामाण्य की आपत्ति होगी। तथा कृतिसाध्यता का तो विध्यर्थत्व निर्युक्तिक है क्योंकि कृतिसाध्यता का विध्यर्थत्व न स्वीकारने पर भी कृति के आख्यातसामान्य का अर्थ होने से विधिप्रत्यय के भी कृत्यर्थक होने के कारण **'पचेत'** इत्यादि स्थलों में कृति के पाकानुकूलत्व का भान आवश्यक होगा, इसकारण अर्थात् पाकादि में भी कृति साध्यता का भान होता है। क्योंकि कृतिसाध्यता को विधि मानने पर भी तत्तत्कालतत्तत्पुरुषविशेषविशेषित कृतिसाध्यताविषयक प्रवर्तक ज्ञान के शाब्दबोधोत्तर ही स्वीकरणीय होने के कारण विधिवाक्योत्पन्न शाब्दबोध से साक्षात् प्रवृत्ति का निर्वाह नहीं होता है।

इस कल्प से केवल इष्टसाधनत्व की विधिप्रत्ययार्थता व्यवस्थापित की जा रही है। कहना है कि कृतिसाध्यत्व को विध्यर्थ मानने पर **'चैत्यं न वन्देत'** इस वाक्य का प्रामाण्य नहीं हो सकेगा क्योंकि कृतिसाध्य चैत्यवन्दन में कृतिसाध्यत्वाभाव का बोधन बाधित है। इस कारण यहाँ पर इष्टसाधनत्व रूप विध्यर्थ का ही अभाव चैत्यवन्दन में बोधित होता है, यही स्वीकारना उचित है। इस कारण इष्टसाधनत्व को तो विध्यर्थ मानना ही पड़ेगा। कृतिसाध्यत्व को विध्यर्थ मानने में कोई युक्ति नहीं है। आख्यातसामान्य का अर्थ चूँकि कृति हुआ करती है। इसलिए आख्यातविशेष विधि प्रत्यय का भी अर्थ कृति होगी ही। इस कारण **'पचेत'** इत्यादि स्थलों में कृति के पाकानुकूलत्व का भान आवश्यक है। इस प्रकार कृति में पाकानुकूलत्व भान होने पर पाक की कृतिसाध्यता अर्थात् ही बोधित होती है। कृतिसाध्यता को विधिप्रत्यय का अर्थ मानने पर भी चूँकि तत्तत्कालविशिष्टतत्तत्पुरुषीय कृति साध्यता विषयक प्रवर्तक ज्ञान शाब्दबोधोत्तर ही स्वीकरणीय होगा, इसलिए विधिवाक्यजशाब्द बोध से साक्षात् प्रवृत्ति का निर्वाह फिर भी होता है। इसलिए कृतिसाध्यता को विध्यर्थ मानना व्यर्थ है।

अस्तु वा साध्यतासम्बन्धेनैवाख्यातसामान्यार्थकृतेः क्रियायां विधिप्रत्ययजन्यबोधे भानम्, प्रवर्तिका चिकीर्षापि साध्यतासम्बन्धेन कृति प्रकारिका क्रियेच्छैव ।

अथवा विधिप्रत्ययजन्य बोध में साध्यता सम्बन्ध से ही आख्यात सामान्यार्थ कृति का क्रिया में भान हो, प्रवर्तिका चिकीर्षा भी साध्यतासम्बन्ध से कृति प्रकारिका क्रिया की इच्छा ही है। भाव यह है कि जैसे कर्तृवाच्य लडादि स्थल में क्रिया का अनुकूलत्व सम्बन्ध से कृति में अन्वय होकर शाब्दबोध होता है, उसी प्रकार विधि प्रत्यय स्थल में कृति का साध्यता सम्बन्ध से ही क्रिया में अन्वय कर लेना चाहिए। साथ ही प्रवृत्त कराने वाली चिकीर्षा भी साध्यता

सम्बन्ध से कृति प्रकारक क्रियेच्छा ही है। इस लिए कृतिसाध्यत्व का जब इसी प्रकार से लाभ हो जाता है तो उसे विधि प्रत्यय का अर्थ मानने की कोई ज़रूरत ही नहीं है।

न च लडादिस्थल आख्यातार्थकृतेः क्रियाविशेष्यतयैव भानमिति व्युत्पत्तेः क्लृप्तत्वात् 'पचेत' इत्यादौ न तस्याः क्रियाविशेषणतया भानसम्भव इति वाच्यम्; व्युत्पत्तिवैचित्र्येण तदुपपत्तेः, शक्त्यभेदेऽपि व्युत्पत्तिभेदे बाधकाभावात्। अत एव प्राचीनैराख्यातार्थस्यैव कृतेः कर्मप्रत्ययस्थले क्रियाविशेषणतया भानमुपेयते। एवञ्च क्वचित् पाकादाविव सर्वत्रैव यागपाकादौ लौकिकप्रमाणादेव कृतिसाध्यताबोधो निर्वहतीति वदन्ति।

यदि कहो कि लडादि स्थल में आख्यातार्थ कृति का क्रियाविशेष्यतया ही भान होता है, ऐसी व्युत्पत्ति के स्वीकृत होने के कारण '**पचेत्**' इत्यादि स्थलों में उसका (कृति का) क्रियाविशेषणतया भान सम्भव नहीं है, तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि व्युत्पत्ति के वैचित्र्य से लडादिस्थल में आख्यातार्थ कृति का क्रियाविशेष्यतया भान होने पर भी '**पचेत**' इत्यादि स्थलों में आख्यातार्थ कृति का क्रियाविशेषणतया भान की उपपत्ति होती है, क्योंकि शक्ति का अभेद होने पर भी व्युत्पत्तिभेद में कोई बाधक नहीं है। आख्यातत्वेन आख्यातसामान्य की शक्ति कृति में होने पर भी लडादि रूप आख्यात के अर्थ कृति का क्रियाविशेष्यतया और लिङ् रूप आख्यात के अर्थ कृति का क्रियाविशेषणतया अन्वय होने में कोई आपत्ति नहीं है। कोई बाधक नहीं है। इसी कारण प्राचीनों के द्वारा आख्यातार्थ ही कृति का कर्म प्रत्ययस्थल में क्रियाविशेषणतया भान स्वीकारा जाता है। नवीन तो वहाँ पर कृति को तृतीयार्थ मानते हैं, आख्यातार्थ नहीं। इस प्रकार कहीं पर पाकादि में कृतिसाध्यता बोध की तरह सर्वत्र पाक, याग आदि में लौकिक प्रमाण से ही कृतिसाध्यताबोध का निर्वाह हुआ करता है। ऐसा कहते हैं। यहाँ पर आया हुआ **वदन्ति** पूर्व में आये हुए **अपरे तु** के साथ अन्वित होता है। इस प्रकार से इस मत के द्वारा कृतिसाध्यत्व को विध्यर्थ मानना व्यर्थ है यह प्रतिपादित किया गया। यह मत स्वीकारा जाये या नहीं, इसे स्वीकारने में कोई विप्रतिपत्ति है क्या? इस पर गदाधर ने कोई राय नहीं दी है। किन्तु **वदन्ति** ऐसा कहने से गदाधर का अस्वरस ही सूचित होता है। अस्वरस का बीज शायद शक्त्यभेद होने पर भी व्युत्पत्ति का भेद स्वीकारना ही है।

"न कलञ्जं भक्षयेत्" इत्यादिनिषेधविधेः प्रामाण्यानुरोधतो बलवदनिष्टाननुबन्धित्वस्य विध्यर्थप्रवेशः—निषिद्धेऽपि कलञ्जभक्षणादौ तृप्त्यादिरूपेष्टसाधनत्वसत्त्वेन तदभावस्य नञा बोधने प्रामाण्यानुपपत्तेः, बलवदनिष्टाननुबन्धित्वस्य विधित्वे तस्यैवाभावो बलवदनिष्टनरकानुबन्धिनि तत्तत्कर्मण्यबाधितो बोध्यत इति तत्प्रामाण्योपपत्तिः।

'**न कलञ्जं भक्षयेत्**' 'कलञ्ज'¹ का भक्षण नहीं करे' इत्यादि निषेधविधि के प्रामाण्य के अनुरोध से बलवदनिष्टाननुबन्धित्व का विध्यर्थ में प्रवेश करते हैं, क्योंकि (बल-

---

1. विषाक्तेनैव बाणेन हतौ यौ मृगपक्षिणौ। तयोर्मांसं कलञ्जं स्याच्छुष्कमांसमथापि वा।। विषाक्त बाण से मारे गये मृग और पक्षियों के मांस को अथवा सूखे मांस को कलञ्ज कहते हैं।

वदनिष्टाननुबन्धित को विध्यर्थ न मानने पर कलञ्ज भक्षणादि में इष्टसाधनत्व का अभाव ही बोधित होता है यह स्वीकारना पड़ेगा और) निषिद्ध भी कलञ्जभक्षणादि में तृप्ति आदि रूप इष्ट का साधनत्व रहने के कारण तृप्त्यादिरूपेष्टसाधनत्व का अभाव नञ् के द्वारा बोधन करने पर प्रामाण्य की अनुपपत्ति होती है। बलवदनिष्टाननुबन्धित्व को विध्यर्थ मानने पर बलवदनिष्टाननुबन्धित्व का ही अभाव बलवदनिष्टनरकानुबन्धी तत्तत् कलञ्जभक्षणादि कर्म में बोधित होता हैं और वह अबाधित है। अतः उसके प्रामाण्य की उपपत्ति होती है।

बलवदनिष्टाननुबन्धित्वस्येष्टसाधनताविशेषणतया वाच्यत्वे विशिष्टा भावस्यैव शाब्दबोधे भानम्, सोऽपि विशेषणाभावायत्तोऽबाधितः, कलञ्जभ क्षणादौ विशिष्टाभावबोधानन्तरमेव तल्लिङ्गकानुमानगम्यो बलवदनिष्टा-नुबन्धित्वरूपस्तदननुबन्धित्वाभावः, प्रवर्तकमिव निवर्तकमपि ज्ञानं श्रुतिवाक्यात् परम्परयैव न तु साक्षात् ।

बलवदनिष्टाननुबन्धित्व के इष्टसाधनता विशेषणतया वाच्य होने पर विशिष्टाभाव-बलवदनिष्टाननुबन्धित्वविशिष्टेष्टसाधनत्वाभाव का ही शाब्दबोध में भान हुआ करता है। वह विशिष्टाभाव भी बलवदनिष्टाननुबन्धित्व रूप विशेषण के अभाव के वशीभूत अबाधित है, (विशेषणाभाव रहने पर विशिष्टाभाव अवश्य ही रहता है, इसलिए बलवदनिष्टाननुबन्धित्वरूप विशेषण का अभाव होने पर उस विशेषण से विशिष्ट का अभाव भी रहेगा ही) कलञ्जभक्षणादि में विशिष्टाभाव बोध-बलवदनिष्टाननुबन्धित्वविशिष्टेष्ट साधनत्व बोध के अनन्तर ही तल्लिङ्गक अनुमान से बोध गम्य होता है बलवदनिष्टानुबन्धित्व रूप बलवदनिष्टाननुबन्धित्वाभाव। इस प्रकार प्रवर्तक की तरह निवर्तक भी श्रुतिवाक्य से जन्य ज्ञान परम्परया ही होता है साक्षात् नहीं होता है। मीमांसक श्रुतिवाक्यजज्ञान को साक्षात् प्रवर्तक मानते हैं, नैयायिकों का कहना है कि श्रुतिवाक्य से ज्ञान के अधीन चिकीर्षा और चिकीर्षा के अधीन प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार श्रुतिवाक्यज ज्ञान परम्परया ही प्रवर्तक होता है। इसी प्रकार श्रुतिवाक्यजज्ञान परम्परया ही निर्तक होता है। यहाँ पर तो बलवदनिष्टानुबन्धित्वरूप बलवदनिष्टाननुबन्धित्वाभाव विषयक ज्ञान ही श्रुति वाक्य से साक्षात् न होकर परम्परया होता है। यही ज्ञान निवर्तक होता है।

एतन्मते च न तादृशाभावस्य शाब्दबोधे भानम्— पदार्थैदेशतयेतर विशेषणतयोपस्थितत्वेन नञर्थविशेषणतयाऽनिष्टाननुबन्धित्वान्वयासम्भवात्।

वस्तुतो विशिष्टशक्तौ विशेष्यविशेषणभावे विनिगमनाविरहात् पृथगेव बलवदनिष्टाननुबन्धिताया वाच्यत्वम् ।

बलवदनिष्टाननुबन्धित्वविशिष्टेष्टसाधनत्व को विध्यर्थ मानने वाले मत में बलवद-निष्टाननुबन्धित्वाभाव का शाब्दबोध में भान नहीं होता है क्योंकि बलवदनिष्टाननुबन्धित्व के पदार्थैकदेश होने के कारण इतर-इष्टसाधनत्व विशेषणतया उपस्थिति होने से नञर्थ अभाव विशेषणतया अनिष्टाननुबन्धित्वान्वय असम्भव है। भाव यह है कि चूँकि बलवदनिष्टाननुबन्धित्व इष्टसाधनत्व का विशेषण बनकर उपस्थित है, इस कारण वह अभाव में विशेषणतया

अन्वित नहीं हो सकता है फलतः बलवदनिष्टाननुबन्धित्वाभाव का शाब्दबोध में भान नहीं हो सकता है। बलवदनिष्टाननुबन्धित्वाभाव अनुमान से ही गम्य होता है।

वस्तुतः विशिष्ट शक्ति स्वीकारने के कल्प में विशेष्यविशेषणभाव में विनिगमना-एकतरपक्षपातिनी युक्ति–न होने के कारण पृथक् ही बलवदनिष्टाननुबन्धित्व को विध्यर्थ कहना चाहिए। भाव यह है कि आप बलवदनिष्टाननुबन्धित्वविशिष्टेष्ट साधनत्व को विध्यर्थ मानना चाहिए और इष्टसाधनत्वविशिष्टबलवदनिष्टाननुबन्धित्व को विध्यर्थ नहीं मानना चाहिए इसमें कोई युक्ति नहीं दिखा सकते हैं। इस कारण जैसे इष्टसाधनत्व को आप अलग विध्यर्थ मानते हैं वैसे ही बलवदनिष्टाननुबन्धित्व को भी अलग विध्यर्थ मानो।

न च बलवदनिष्टाननुबन्धित्वस्येष्टसाधनत्वविशेष्यत्वे विधिवाक्यतः क्रियाविशेष्यकेष्टसाधनताज्ञानासम्भवात् क्रियागोचरचिकीर्षाद्यर्थं विधि-वाक्यजशाब्दबोधोत्तरमिष्टसाधनत्वप्रकारकक्रियाविशेष्यकज्ञानान्तरं कल्प-नीयमिति तदकल्पनप्रयुक्तलाघवमेव बलवदनिष्टाननुबन्धित्वस्य विशेषणत्वे विनिगमकमिति वाच्यम्; क्रियायां बलवदनिष्टासाधनत्वज्ञानस्यापि तद्गोचरेच्छा-हेतुतया बलवदनिष्टासाधनत्वस्येष्टसाधनत्वविशेषणत्वमते क्रियाविशेष्यक-तत्प्रकारकज्ञानान्तरस्य कल्पनीयतया मतद्वये कल्पनासाम्यात्।

यदि कहो कि बलवदनिष्टाननुबन्धित्व के इष्टसाधनत्व का विशेष्य मानने पर (इष्ट साधनत्वविशिष्ट बलवदनिष्टाननुबन्धित्व को विध्यर्थ मानने पर) विधि वाक्य से क्रियाविशेष्यक इष्टसाधनताज्ञान असम्भव होने के कारण क्रियाविषयक चिकीर्षा आदि के लिए विधिवाक्योत्पन्न शाब्दबोध के बाद इष्टसाधनत्वप्रकारक क्रियाविशेष्यक ज्ञानान्तर की कल्पना करनी पड़ेगी। (बलवदनिष्टाननुबन्धित्व विशिष्टेष्टसाधनत्व को विध्यर्थ मानने पर तो विधिवाक्य से ही क्रिया विशेष्यक इष्टसाधनताज्ञान सम्भव है, इसलिए क्रियाविशेष्यक इष्टसाधनत्व प्रकारक ज्ञानान्तर की कल्पना नहीं करनी पड़ेगी इसलिए उस ज्ञानान्तर के अकल्पन से प्रयुक्त लाघव ही बलवदनिष्टाननुबन्धित्व के विशेषण होने में विनिगमक है। यह लाघव ही इस पक्ष को सिद्ध करने वाली युक्ति है।

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि क्रिया में बलवदनिष्टासाधनत्व ज्ञान के भी क्रियाविषयक इच्छा के प्रति कारण होने की वज़ह से बलवदनिष्टाननुबन्धित्व रूप बलवदनिष्टा साधनत्व को इष्टसाधनत्व का विशेषण भानने वाले मत में क्रियाविशेष्यक बलवदनिष्टा साधनत्व (बलवदनिष्टाननुबन्धित्व) प्रकारक ज्ञानान्तर के कल्पनीय होने के कारण दोनों ही मतों में कल्पनासाम्य है।

बलवदनिष्टाननुबन्धित्वविशिष्ट इष्टसाधनत्व को विध्यर्थ मानने पर विधिवाक्योत्पन्न शाब्दबोध के बाद क्रियाविशेष्यक बलवदनिष्टासाधनत्वप्रकारक ज्ञान की कल्पना अतिरिक्त रूप से करनी पड़ेगी क्योंकि क्रियाविषयक इच्छा के प्रति बलवदनिष्टासाधनत्व ज्ञान भी कारण होता है और यह ज्ञान शाब्दबोध से नहीं सम्भव है।

इष्टसाधनत्वविशिष्ट बलवदनिष्टाननुबन्धित्व को विध्यर्थ मानने पर विधिवाक्योत्पन्न शाब्दबोध के बाद क्रियाविशेष्यक इष्टसाधनत्वप्रकारकज्ञान की कल्पना अतिरिक्त रूप से करनी पड़ेगी। इस प्रकार दोनों ही रीति से विशेष्यविशेषणभाव में गौरव लाघव समान है। इसलिए इस आधार पर कोई भी पक्ष नहीं सिद्धान्तित हो सकता है।

यदि च बलवदनिष्टसाधनत्वज्ञानमेव द्वेषसामग्रीत्वेन प्रतिबन्धकं न तु तदसाधनत्वज्ञानमिच्छाहेतुः? तदोक्तस्य विशेष्यविशेषणभावस्य विनिगमकस्य सम्भवेऽपि विशिष्टस्य वाच्यत्वे श्येने विध्यर्थबाधेन तद्विधायकश्रुतेरप्रामाण्यप्रसङ्ग इति शक्तिभेदस्य श्येने केवलेष्टसाधनताबोधस्य चोपगम आवश्यकः।

और यदि बलवदनिष्टसाधनत्व ज्ञान ही द्वेष सामग्री होने के कारण प्रतिबन्धक होता है न कि बलवदनिष्टासाधनत्व ज्ञान इच्छा का कारण है? (द्वेष सामग्रीत्वेन बलवदनिष्ट साधनत्व ज्ञान के प्रतिबन्धक होने पर प्रतिबन्धकाभाव के भी कारण होने से बलवदनिष्ट साधनत्व ज्ञानाभाव की ही इच्छा कारणता होती है) तब उक्त विशेष्यविशेषणभाव में विनिगमक सम्भव है क्योंकि बलवदनिष्टाननुबन्धित्वविशिष्ट इष्टसाधनत्व को विध्यर्थ मानने में बलवदनिष्टासाधनत्व ज्ञान के क्रिया विषयक इच्छा में कारण ही नहीं होने से ज्ञानान्तर की कल्पना नहीं करनी पडेगी और इष्टसाधनत्वविशिष्टबलवदनिष्टाननुबन्धित्व को विध्यर्थ मानने पर क्रियाविषयक इच्छा में इष्टसाधनत्व ज्ञान के कारण होने की वजह से क्रियाविशेष्यक इष्टसाधनत्व प्रकारक ज्ञानान्तर की कल्पना करनी पड़ेगी । अतः गौरव होगा, यही विनिगमक है। फिर भी विशिष्ट की वाच्यता मानने पर बलवदनिष्टाननुबन्धित्व विशिष्टेष्ट साधनत्व को विध्यर्थ मानने पर श्येन में विध्यर्थ का बलवदनिष्टाननुबन्धित्त्वविशिष्टेष्ट साधनत्व का बाध होने के कारण श्येनयाग विधायक श्रुति के अप्रामाण्य का प्रसङ्ग होगा, इसलिए इष्टसाधनता और बलवदनिष्टाननुबन्धित्व में विधि प्रत्यय की अलग-अलग शक्ति का स्वीकार आवश्यक हैं और श्येनयाग में केवल इष्टसाधनता बोध का स्वीकार आवश्यक है। अर्थात् श्येनयाग में बलवदनिष्टाननुबन्धित्व के बाधित होने से केवल इष्टसाधनत्व का बोध ही हुआ करता है।

मणिकृतापि तत्र बलवदनिष्टासाधनत्वस्याभानं लिखितम् । तदभानं विशिष्टशक्तिपक्षे न सम्भवति विशिष्टशक्तेर्विशेषणविनिर्मोकेण विशेष्यांशाभासकत्वात्, तत्तद्धर्मप्रकारेण पदार्थविषयकशाब्दबोधे तत्तद्धर्मांशे शक्यतावच्छेदकत्वपर्याप्त्यवगाहिज्ञानस्य हेतुत्वात्, अन्यथा विशिष्टस्वर्गादिवाचक स्वर्गादिपदाद् विना लक्षणां केवल सुखत्वादिप्रकारकशाब्दबोधापत्तेः।

मणिकार के द्वारा भी वहाँ पर 'श्येनेनाभिचरन् यजेत' इस स्थल में बलवदनिष्टासाधनत्व का भान नहीं होता है, ऐसा लिखा गया है। बलवदनिष्टाननुबन्धित्व का अभान विशिष्ट शक्ति के पक्ष में नहीं सम्भव है क्योंकि विशिष्ट शक्ति विशेषण के विनिर्मोक से विशेष्यांश की भासक नहीं होती है। इसमें कारण यह है कि तत्तद्धर्म प्रकारेण

पदार्थविषयक शाब्दबोध में तत्तद्धर्मांश में शक्यतावच्छेदकत्वपर्याप्त्यवगाही ज्ञान की कारणंता होती है। अन्यथा विशिष्टस्वर्गादिवाचक स्वर्गादि पद से लक्षणा के विना सुखत्वादिप्रकारक शाब्दबोध की आपत्ति आयेगी।

तत्तद्धर्मप्रकारेण पदार्थविषयक शाब्दबोध के प्रति तत्तद्धर्मांश में शक्यतावच्छेदकत्वपर्याप्त्यवगाहिज्ञान कारण होता है, इस कारण विशिष्टस्वर्गादिवाचक (सुखविशेष वाचक) स्वर्ग आदि पदों से विशिष्ट स्वर्गत्वादि प्रकारेण ही विशिष्ट सुख (सुखविशेष) विषयक शाब्दबोध हुआ करता है। विना लक्षणा के केवल सुखत्वादिप्रकारक शाब्दबोध नहीं होता है क्योंकि सुखत्व में शक्यतावच्छेदकत्व पर्याप्ति का अवगाहन करने वाला ज्ञान नहीं है। उसी प्रकार यदि विधि प्रत्यय की शक्ति बलवदनिष्टाननुबन्धित्वविशिष्टेष्ट साधनत्व में स्वीकारोगे तो बलवदनिष्टाननुबन्धित्वविशिष्टेष्टसाधनत्व प्रकारक ही शाब्दबोध हो सकता है इस तरह **'श्येनेन यजेत'** से श्येन में बलवदनिष्टाननुबन्धित्वविशिष्टेष्ट साधनत्व ही बोधित हो सकता है, जो कि बाधित है। श्येन में केवल इष्टसाधनत्व तो अबाधित है किन्तु इष्टसाधनत्वत्व को प्रकार बनाकर इष्टसाधनत्व विषयक बोध के प्रति इष्टसाधनत्वत्वांश में शक्यतावच्छेदकत्व पर्याप्त्यवगाही ज्ञान कारण होने से आवश्यक है और इष्टसाधनत्वत्व में शक्यतावच्छेदकत्वपर्यात्यवगाही ज्ञान नहीं है। बलवदनिष्टाननुबन्धित्वविशिष्टेष्टसाधनत्वत्व में ही शक्यतावच्छेदकत्व पर्याप्त्यवगाही ज्ञान है। इस कारण विशिष्ट शक्ति पक्ष में बलवद-निष्टाननुबन्धित्व का भी भान आवश्यक है और **'श्येनेन यजेत'** से वह बाधित है। इस वजह से बलवदनिष्टाननुबन्धित्व और इष्टसाधनत्व की अलग-अलग विध्यर्थता माननी चाहिए। इस प्रकार इस स्थल में श्येन में केवल इष्टसाधनत्वान्वयबोध सम्भव होता है। क्योंकि अलग-अलग शक्ति मानने पर इष्ट साधनत्वत्व में शक्यतावच्छेदकत्व पर्याप्त्यवगाही ज्ञान है।

यदि च केवलसुखत्वादिना स्वर्गादिरूपसुखबोधो लक्षणामन्तरेण स्वर्गादिपदादिष्यत एव, नेष्यते परं सुखान्तरबोधः तत्र शक्तिविरहादिति शक्यतावच्छेदकतापर्याप्त्यवगाहित्वमनुपयोगीत्युच्यते? तदापि बलवद-निष्टाननुबन्धित्वविशिष्टेष्टसाधनत्वस्य शक्यतायां श्येननिष्ठवैरिवध-साधनत्वस्य बलवदनिष्टसाधनत्वनियतत्वेन तदसाधनत्वविशिष्टत्वेन विधिप्रत्ययावाच्यतया सुतरां तत्र विध्यर्थत्वानिर्वाह एव।

और यदि केवल सुखत्वादिना स्वर्गादिरूप सुख का बोध लक्षणा के विना स्वर्गादिपद से इष्ट ही है, परन्तु सुखान्तर बोध नहीं इष्ट है क्योंकि सुखान्तर में स्वर्गादि पद की शक्ति ही नहीं है। इस प्रकार शक्यतावच्छेदकतापर्याप्ति का अवगाहित्व अनुपयोगी है— ऐसा कहा जाये? तो भी बलवदनिष्टाननुबन्धित्वविशिष्टेष्टसाधनत्व की शक्यता में श्येननिष्ठ वैरिवधसाधनत्व के बलवदनिष्टसाधनत्व नियत होने से बलवदनिष्टासाधनत्व विशिष्टत्वेन विधि प्रत्ययावाच्यता होने के कारण निश्चित रूप से वहाँ **'श्येनेन यजेत'** में विंध्यर्थता का निर्वाह नहीं होता है।

यहाँ पर यह कहा जा रहा है कि यदि तत्तद्धर्मप्रकारेण पदार्थविषयक शाब्दबोध के

प्रति तत्तद्धर्मांश में शक्यतावच्छेदकत्वपर्याप्त्यवगाहिज्ञान की कारणता न भी मानी जाये तो केवल सुखत्वादिना स्वर्गादिरूप सुख का बोध स्वर्गादि पद से लक्षणा के विना भी हो सकता है और सुखत्वादिना अवान्तरसुख का बोध उस सुख में स्वर्गादि पदों की शक्ति नहीं होने के कारण नहीं होता है। परन्तु ऐसा स्वीकारने पर भी बलवदनिष्टाननुबन्धित्वंविशिष्टेष्ट साधनत्व की शक्यता में चूँकि श्येननिष्ठ वैरिवधसाधनत्व बलवदनिष्टसाधनत्व नियत है, वैरिवधसाधन श्येनयाग बलवदनिष्टसाधन भी होगा ही। इसलिए बलवदनिष्टासाधनत्वविशिष्ट इष्टसाधनत्व का श्येनयाग में बोधन बाधित होने से अशक्य है। इसलिए श्येनयागस्थल में बलवदनिष्टाननुबन्धित्वविशिष्टेष्टसाधनत्व विधि प्रत्यय का अर्थ नहीं हो सकता है। इस प्रकार बलवदनिष्टाननुबन्धित्वविशिंष्टेष्टसाधनत्व को विधिप्रत्यय का अर्थ न मान कर बलवद-निष्टाननुबन्धित्व और इष्टसाधनत्व को अलग-अलग विध्यर्थ मानना चाहिए।

यत्तु श्येनस्यादृष्टाद्वारकत्वघटितहिंसालक्षणानाक्रान्ततया बलवद् दुःखाजनकत्वमिति मतान्तरम्, तदसत्- तथाहि श्येने सात्त्विक प्रवृत्तिवारणाय बलवद्दुःखाप्रयोजकत्वज्ञानस्यैव प्रवृत्तिहेतुताया उपगन्तव्यतया तस्यैव विध्यर्थताया आवश्यकत्वेन श्येने तद्बाधाच्छ्रुतेरप्रामाण्यप्रसङ्गतादवस्थ्यात्, श्येनस्य हिंसात्वविरहेऽप्यभिचारतया नरकजनकत्वस्य दुर्वारत्वाच्च।

जो यह मतान्तर है कि श्येन के अदृष्टाद्वारकत्वघटित हिंसालक्षण से अनाक्रान्त होने के कारण श्येनयाग में भी बलवद् दुःखाजनकत्व विद्यमान है अर्थात् बलवदनिष्टाननुबन्धित्व का अर्थ अदृष्टाद्वारक बलवद्दुःखाजनकत्व है। अतः अदृष्टाद्वारक बलवद्दुःखाजनकत्व रूप बलवदनिष्टाननुबन्धित्व श्येन में अबाधित है।

तो वह इस कारण ग़लत है क्योंकि श्येन में सात्त्विक प्रवृत्ति का वारण करने के लिए वलवद्दुःखाप्रयोजकत्वज्ञान की ही प्रवृत्तिहेतुता स्वीकारणीय होने से बलवद्दुःखा प्रयोजकत्व की ही विध्यर्थता आवश्यक होने के कारण श्येन में बलवद्दुःखाप्रयोजकत्व का बाध होने से श्रुति के आप्रामाण्य की आपत्ति तदवस्थ ही है, श्येन का हिंसात्व न होने पर भी अभिचारतया नरकसाधनत्व तो दुर्वार है।

आशय यह है कि चूँकि सात्त्विक प्रवृत्ति न हो इसलिए प्रवृत्ति के प्रति बलवद् दुःखाप्रयोजकत्व ज्ञान को ही कारण मानना पड़ेगा। इसलिए विशिष्टशक्तिस्वीकार पक्ष में बलवद्दुःखाप्रयोजकत्वविशिष्टेष्टसाधनत्व को ही विधि प्रत्यय का अर्थ मानना पड़ेगा। और श्येन में बलवद्दुःखाप्रयोजकत्वविशिष्टेष्टसाधनत्व बाधित है क्योंकि श्येन का हिंसात्व न होने पर भी अभिचार होने से श्येन का नरकजनकत्व दुर्वार ही है, श्येन बलवद् दुःख प्रयोजक ही है। बलवद्दुःखाप्रयोजक नहीं है। इस कारण अलग-अलग ही बलवद् दुःखाप्रयोजकत्व और इष्टसाधनत्व को विध्यर्थ मानना चाहिए।

यत्तु "अभिचरन्" इत्यस्य वैरिवधगोचरप्रबलकामनाविशिष्टार्थतया तादृशकामनाविशिष्टस्यैव पुरुषस्य बलवद्द्वेषविषयाजनकत्वरूपबलवद

निष्टाननुबन्धित्वघटकद्वेषानुदयात् तादृशकामनाविशिष्टवृत्तिबलवद्द्वेष विषयाजनकत्वं श्रुतिवाक्यात् प्रत्येतव्यं तच्च श्येनेऽबाधितमेव– वैरिवधे उत्कटरागवतस्तज्जन्यनरके बलवद्द्वेषानुत्पत्त्या तादृशनरकस्य वैरिव धोत्कटकामनाविशिष्टवृत्तिद्वेषाविषयत्वात् न ह्येकदैकत्रावर्तमानयोरेकतरमपर विशिष्टवृत्तीति मिश्राणां मूलाभिप्रायवर्णनन्, तदपि न– बलवद्द्वेषविषयदुःख जनकत्वप्रतियोगिकाभावस्यातिप्रसक्ततया बलवद्द्वेषविषयदुःखजनकत्वत्वा-वच्छिन्नाभावस्य वाच्यतास्वीकारेणान्यपुरुषस्य पुरुषविशेषीयबलवद्द्वेष-विषयदुःखजनकत्वाभावस्य प्रत्ययासम्भवात् तादृशदुःखजनकत्वेऽभावे च खण्डशक्तिस्वीकारे विशिष्टशक्तिस्वीकारपरित्यागात् ।

जो यह कहना है कि '**अभिचरन्** ' इसका वैरिवधगोचरप्रबलकामना विशिष्ट अर्थ होने के कारण वैरिवधविषयक प्रबलकामना विशिष्ट पुरुष को बलवद्द्वेषविषयाजनकत्व रूप बलवदनिष्टाननुबन्धित्व घटक द्वेष का उदय नहीं होता है, इस कारण तादृश कामना विशिष्टवृत्ति बलवद्द्वेषविषयाजनकत्व का श्रुतिवाक्य से प्रत्यायन होना चाहिए और वह श्येन याग में अबाधित ही है। क्योंकि वैरिवध में उत्कट रागवाले को वैरिवधजन्य नरक में बलवद्द्वेष की अनुत्पत्ति होने के कारण वैरिवधजन्यनरक का वैरिवधोत्कटकामनाविशिष्ट वृत्तिद्वेषविषयत्व नहीं है। एकदा एकत्र अवर्तमान दो पदार्थों में कोई एक अपर विशिष्ट वृत्ति नहीं होता है ऐसा मिश्रों के द्वारा मूलाभिप्राय वर्णन है।

वह भी सही नहीं है क्योंकि बलवद्द्वेषविषयदुखजनकत्वप्रतियोगिकाभाव के अतिप्रसक्त होने के कारण बलवद्द्वेषविषयदुःखजनकत्वत्वावच्छिन्न प्रतियोगिताकाभाव की विधि प्रत्यय-वाच्यता स्वीकार होने से अन्यपुरुष के पुरुषविशेषीय बलवद्द्वेषविषय दुःख जनकत्वाभाव का प्रत्यय असम्भव होने के कारण बलवद्द्वेषविषयदुःखजनकत्व और अभाव में खण्डशक्ति स्वीकारने पर विशिष्टशक्ति स्वीकार का परित्याग कर दिया जाता है।

यहाँ पूर्व पक्ष के द्वारा बलवदनिष्टाननुबन्धित्वविशिष्टेष्ट साधनत्व को विध्यर्थ मानने पर भी '**श्येनेन यजेत**' के प्रामाण्योपपादन का प्रयास किया गया है और उत्तर पक्ष से उसका खण्डन किया गया है। पूर्वपक्ष का कथन है कि श्रुति है '**श्येनेनाभिचरन् यजेत**' इसमें अभिचरन् का अर्थ है वैरिवधविषयकप्रबलकामनाविशिष्ट, वैरिवधविषयक प्रबलकामनाविशिष्ट पुरुष ही श्येन याग का अधिकारी है। वैरिवधविषयक प्रबल कामना से विशिष्ट पुरुष को द्वेष का उदय नहीं होता है। इस प्रकार श्रुति वाक्य से वैरिवध विषयक प्रबल कामनाविशिष्ट पुरुषवृत्ति बलवद्द्वेषविषयाजनकत्व ही श्येन याग में प्रत्याय्यित होता है जो कि श्येन याग में अबाधित है। क्योंकि वैरिवध में उत्कटरागवाले पुरुष को वैरिवधजन्य नरक में बलवद्द्वेष उत्पन्न नहीं होता है, अतः वैरिवधविषयक प्रबल कामनाविशिष्ट पुरुष वृत्ति बलवद्द्वेषविषयत्व श्येन में नहीं है। ऐसा तो है नहीं कि दो वस्तुएँ एक काल में एक जगह पर रहें नहीं फिर भी एक वस्तु दूसरी वस्तु से विशिष्ट जाये।

उत्तर पक्ष के द्वारा इसका खण्डन इस आशय से किया जा रहा है कि वैरिवध विषयकप्रबलकामनाविशिष्टपुरुषवृत्तिबलवद्द्वेषविषयाजनकत्व तादृशद्वेषविषयजनकत्वाभाव ही

है। इसका आशय क्या है? क्या तादृशद्वेषविषयजनकत्व प्रतियोगिक अभाव की वाच्यता है? यदि हाँ, तब तो उक्त वैरिविधविषयक प्रबलकामनाविशिष्टपुरुष वृत्ति द्वेषविषय- जनकत्व (घटोभय) प्रतियोगिक अभाव तो श्येन याग में नहीं है। इस कारण पुनः वैरिविध- विषयक प्रबल कामनाविशिष्ट पुरुषवृत्तिद्वेषविषयजनकत्वत्वावच्छिन्न प्रतियोगिताक अभाव की ही वाच्यता स्वीकारनी पड़ेगी। लेकिन इसमें मुश्किल यह है कि अन्य पुरुष को पुरुषविशेषीयबलवद्द्वेषविषयजनकत्वाभाव का प्रत्यय असम्भव है। इस कारण अन्ततः आपको वैरिविधविषयक प्रबलकामनाविशिष्ट पुरुषवृत्ति बलवद्वेषविषय दुःखजनकत्व में और अभाव में विधिप्रत्यय की खण्डशः शक्ति स्वीकारनी पड़ेगी और विशिष्टशक्ति स्वीकार का परित्याग करना पड़ेगा। इस कारण बेहतर यही है कि बलवदनिष्टाननुबन्धित्व और इष्टसाधनत्व में ही विधिप्रत्यय की खण्डशः शक्ति स्वीकार ली जाये।

एवं यत्रोत्कटरागो यदा तत्रैव नोत्कटद्वेषस्तदा, तज्जन्ये फल उत्कट रागदशायाञ्च तज्जन्यदुःखरूपफलान्तरे उत्कटद्वेषे न किञ्चिद्बाधकमिति वैरिविधे उत्कटरागदशायां श्येनजन्यनरके बलवद्द्वेषो दुरपवाद एव। अस्तु वा फलविषयोत्कटरागघटिता उपायगोचरोत्कटरागसामग्री तत्रैव तज्जन्यतया ज्ञाते फलान्तरेप्युत्कटद्वेषविरोधिनी तथापि नरकवैरिविधयोरेकतरं प्रति श्येनस्य हेतुत्वाग्रहदशायां तयोर्बलवद्द्वेषरागयोर्युगपत् सम्भव एव।

यत्तु से आरब्ध पूर्वपक्ष इस बात पर आधारित था कि वैरिविधविषयक प्रबल कामनाविशिष्ट पुरुषवृत्ति द्वेष का विषय तज्जन्य नरक नहीं होता है। क्योंकि जिस पुरुष में वैरिविध विषयक उत्कटराग है, उस पुरुष में वैरिविध जन्य नरक में उत्कटद्वेष नहीं हो सकता है। अग्रिम ग्रन्थ से इसका भी खण्डन कर रहे हैं—

इसी प्रकार ज़ब जहाँ पर (यद्विषयक) उत्कट राग होता है वहाँ पर (तद्विषयक) तभी उत्कट द्वेष नहीं होता है । किन्तु तज्जन्य फल में उत्कटराग होने की दशा में भी तज्जन्य दुःख रूप फलान्तर में उत्कट द्वेष होने में कोई बाधक नहीं है अर्थात् एक ही कारण से जन्य एक फल में उत्कट राग और दूसरे फल में उत्कटद्वेष होने में कोई बाधक नहीं है। इसलिए वैरिविध में उत्कट राग की दशा में श्येन जन्य नरक में बलवद्द्वेष दुरपवाद ही है। इसकारण वैरिविधविषयक प्रबल कामनाविशिष्ट वृत्ति बलवद्वेषविषय दुःखाजनकत्व का प्रत्ययायन उक्त श्रुतिवाक्य से सम्भव नहीं है क्योंकि नरकरूप दुःखविशेष में वैरिविधविषयक प्रबल कामनाविशिष्टपुरुषवृत्तिबलवद्द्वेष का विषयत्व ही है और उसका जनकत्व ही श्येन में है।

यदि फलविषयक उत्कटराग से घटित ही उपायविषयक उत्कटराग सामग्री होती है ऐसा मान लिया जाये और इसी प्रकार उसी उपाय से जन्यतया ज्ञात फलान्तर में उत्कट द्वेष से घटित सामग्री विरोधिनी होती है तो भी नरक और वैरिविध दोनों में से किसी एक के प्रति श्येन की कारणता के अग्रह की दशा में बलवद् द्वेष और राग दोनों युगपत् सम्भव ही हैं। अर्थात् उपाय :येनयाग विषयक उत्कट राग तभी हो सकता है, जब श्येन याग के फल वैरिविध विषयक उत्कटराग से घटित सामग्री हो। इसी प्रकार श्येनयागजन्यफलान्तर नरक

विषयक उत्कटद्वेषघटित सामग्री श्येनयागविषयक राग के प्रति प्रतिबन्धक होती है। ऐसी स्थिति में यदि श्येनयाग जन्य वैरिविधविषयक उत्कट राग हो तो श्येनयाग जन्य नरक विषयक उत्कट द्वेष नहीं हो सकता है। इस कारण श्रुतिवाक्य से वैरिविधविषयक प्रबल कामनाविशिष्ट वृत्ति बलवद्‌द्वेष का विषय नरकरूप दुःख नहीं होने से वैरिविधविषयक प्रबल कामनाविशिष्ट पुरुषवृत्ति द्वेष विषय दुःखाजनकत्व प्रत्यायन सम्भव है। किन्तु ऐसी स्थिति में भी यदि किसी को नरक और वैरिविध दोनों में से किसी एक के प्रति श्येन की हेतुता का ग्रह नहीं हो तो दोनों के प्रति भी क्रमशः उत्कट द्वेष और उत्कट राग सम्भव ही है। तथा ऐसी स्थिति में श्रुति वाक्य से वैरिविधविषयक प्रबलकामनाविशिष्ट वृत्ति द्वेषविषयाजनकत्व का श्येन में प्रत्यायन नहीं सम्भव है। इस कारण बलवदनिष्टाननुबन्धित्व और इष्ट साधनत्व दोनों को ही अलग-अलग विध्यर्थ मानना चाहिए।

यत्तु दीक्षाङ्गपशुघातस्य नरकासाधनतया 'मा हिंस्यात्'' इत्यत्रावैध हिंसैव विवक्षितेति श्येनस्य नरकासाधनत्वोपपादनम्, तदपि न- तावता प्यभिचारविधया तथात्वस्य दुर्वारत्वात् ।

जो दीक्षा के अङ्ग भूत पशुघात के नरक का असाधन होने के कारण **'मा हिंस्यात् सर्वभूतानि'** 'किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करनी चाहिए' यहाँ पर अवैध हिंसा ही विवक्षित है, इस कारण श्येन के नरकासाधनत्व का उपपादन है, वह भी सही नहीं है क्योंकि अभिचार विधया तो श्येन का फिर भी नरक साधनत्व दुर्वार है। अभिप्राय यह है कि यदि कोई कहे कि अवैध हिंसा ही नरक साधन होती है, इसी कारण दीक्षाङ्गपशुघात नरक का साधन नहीं होता है। श्येन भी चूँकि श्रुतिविहित है, वैध है, अतः हिंसा नहीं है। इसलिए श्येन में नरकसाधनत्व नहीं है। फलतः उस श्रुति से श्येन में अबाधित बलवद निष्टाननुबन्धित्वविशिष्ट वैरिविधसाधनत्व बोधित होने में कोई मुश्किल नही है।

तो इसका उत्तर यह दिया जा रहा है कि श्येन याग के हिंसा न होने पर भी अभिचार विधया श्येनयाग नरकसाधन होता है। इस कारण श्येनयाग में बलवदनिष्टाननुबन्धित्व विशिष्टेष्टसाधनत्व का प्रत्यायन नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार बलवदनिष्टाननुबन्धित्व और इष्टसाधनत्व में विधिप्रत्यय की खण्डशः ही शक्ति स्वीकारनी चाहिए।

अथ खण्डशक्तिमवलम्ब्यानिष्टासाधनत्वविनिर्मोकेण क्वचिद्विधि वाक्यजन्यबोधोपगमे ''श्वेतं छागमालभेत'' इत्यादावपि तत्परित्यागसम्भवाद-विरोधेन ''मा हिंस्यात्'' इत्यत्र श्रुत्यर्थसङ्कोचो न स्यादिति साङ्ख्यमतमेव साधीय इति चेत्? स्यादेव, अविरोधेऽपि ''ब्राह्मणेभ्यो दधि दीयतां तक्रं कौण्डिन्याय'' इत्यत्रेव सामान्यविधेर्विशेषेतरपरत्वं व्युत्पत्तिसिद्धमिति ''मा हिंस्यात्'' इत्यत्र सङ्कोचः।

लेकिन प्रश्न उठता है कि खण्ड शक्ति का अवलम्बन कर के अनिष्टासाधनत्व के विनिर्मोक परित्याग से कहीं पर विधिवाक्य से जन्य बोध का उपगम करने पर **'श्वेतं**

छागमालभेत' 'सफेद छाग (बकरे) का आलम्भन करे' इत्यादि स्थलों में भी अनिष्टासाधनत्व का परित्याग सम्भव होने के कारण '**मा हिंस्यात्**' इस स्थल में श्रुत्यर्थ का सङ्कोच नहीं होवे और इसप्रकार साङ्ख्य मत ही साधीयान् होगा? होगा ही, अविरोध होने पर भी '**ब्राह्मणेभ्यो दधि दीयतां तक्रं कौण्डिन्याय**' 'ब्राह्मणों को दही दो और कौण्डिन्य को मट्ठा दो' इस स्थल की तरह सामान्य विधि का विशेषेतरपरत्व व्युत्पत्ति सिद्ध है, इस कारण '**मा हिंस्यात्**' यहाँ पर श्रुत्यर्थसङ्कोच किया जाता है।

यहाँ पर प्रश्न का आशय यह है कि जैसे '**श्येनेन यजेत**' यहाँ पर आप श्येन याग में केवल इष्टसाधनत्व का भान स्वीकारते हैं, बाधित होने से बलवदनिष्टासाधनत्व का भान नहीं स्वीकारते हैं। इसी प्रकार '**श्वेतं छागमालभेत**' यहाँ पर भी श्वेतछागालम्भन (श्वेत छागघात) में इष्ट साधनत्व मात्र का भान स्वीकारो बलवदनिष्टासाधनत्व का भान नहीं स्वीकारो क्योंकि वह बाधित है। यहाँ पर नैयायिक '**मा हिंस्यात्**' इस श्रुति के अर्थ का सङ्कोच करते हैं और वैधहिंसातिरिक्त हिंसा का ही इस श्रुति से निषेध स्वीकारते हैं। श्रुत्यर्थ सङ्कोच के मूल में है '**मा हिंस्यात्**' और '**श्वेतं छागमालभेत**' इन दोनों तरह के विधिवाक्यों का विरोध। किन्तु उपर्युक्त रीति से तो दोनों में विरोध ही नहीं है। इस कारण इस श्रुति के अर्थ सङ्कोच की ज़रूरत ही नहीं है।अतः यह सांख्यमत ही श्रेयस्कर है कि विहित हिंसा का भी अनिष्टसाधनत्व है[1]। विहित हिंसा का अनिष्टसाधनत्व नहीं है यह न्यायमत उचित नहीं है।

उत्तर का आशय यह है कि इस प्रकार तो सांख्यमत ही उचित होगा। किन्तु विरोध न होने पर भी सामान्य विधि का विशेषेतरपरत्व स्वीकार किया जाता है। जैसे 'ब्राह्मणों को दही दो और कौण्डिन्य को मट्ठा दो' ऐसा प्रयोग करने पर सामान्य विधि ब्राह्मणों को दही दो और विशेषविधि कौण्डिन्य को मट्ठा दो, में कोई विरोध नहीं होता है। ब्राह्मण विशेष कौण्डिन्य को दही और मट्ठा दोनों ही दिया जा सकता है। इसमें कोई मुश्किल नहीं है। फिर भी 'ब्राह्मणों को दही दो' यह सामान्य विधि विशेष कौण्डिन्येतरपरत्वेन प्रवृत्त होती है, कौण्डिन्यातिरिक्त ब्राह्मण को ही दही देने का विधान उक्त सामान्य विधि से होता है। उसी प्रकार उपर्युक्त रीति से यद्यपि '**मा हिंस्यात्**' वा '**श्वेतं छागमालभेत**' इन दोनों तरह की विधियों में कोई विरोध नहीं है, तथापि '**मा हिंस्यात्**' यह सामान्य विधि श्वेत-छागाद्यालम्भनादिरूपविशेषेतर का ही नरकसाधनत्व बोधित करती है।

अथवा कथञ्चित् बाधकापनयसम्भवे नौत्सर्गिकार्थपरित्याग इति हिंसा-निषेधेनैवोपपत्तौ न ''श्वेतं छागमालभेत'' इत्यादौ विधिप्रत्ययस्य बलवदनिष्टा-साधनत्वार्थपरित्याग इत्याहुः।

अथवा किसी प्रकार बाधकापनय सम्भव होने पर औत्सर्गिक अर्थ का परित्याग नहीं होता है इसलिए हिंसा के निषेध से ही उपपत्ति होने पर '**श्वेतं छागमालभेत**' इत्यादि स्थलों में विधि प्रत्यय का बलवदनिष्टासाधनत्वार्थ का परित्याग नहीं होता है, ऐसा भी लोगों ने कहा है।

1. सांख्यमत में विहितहिंसा का भी अनिष्टसाधनत्व है। इस विषय में साङ्ख्यकारिका का. 2 और इसका गौड़पादभाष्य द्रष्टव्य है।

यहाँ पर श्वेत छागालम्भन विधि है और '**मा हिंस्यात्**' में हिंसा निषेध विधि है। दोनों में हिंसा निषेधविधि श्वेतछागालम्भन विधि की बाधिका है। इस बाधक कृत विरोध का परिहार दो तरह से हो सकता है या तो हिंसा निषेध विधि में वैधहिंसातिरिक्तत्वेन सङ्कोच कर लिया जाये, या तो '**श्वेतं छागमालभेत**' में श्वेतछागालम्भन में बलवदनिष्टाननुबन्धित्व के परित्याग से केवल इष्ट साधनता का बोध स्वीकारें। इसमें द्वितीय कल्प में विधिप्रत्यय के औत्सर्गिक अर्थ का परित्याग परना पड़ता है। प्रथम कल्प में यह नहीं करना पड़ता है। इसलिए वैधहिंसातिरिक्त हिंसा का निषेध ही '**मा हिंस्यात्**' से स्वीकारते हैं।

अथ यागपाकादिजन्यश्रमादावपि कदाचित् कस्यचिद् बलवद् द्वेषोदयात् 'यजेत' 'पचेत' इत्यादावप्रामाण्यप्रसङ्गो दुर्वारः।

ऊपर के समग्र विवेचन से बलवदनिष्टाननुबन्धित्व और इष्टसाधनत्व दोनों को तो विधि प्रत्यय का अर्थ मानना ही पड़ेगा, कृति साध्यता को या कृति को भी विधि प्रत्यय का अर्थ मानना पड़ेगा। इस प्रकार वहाँ पर क्रिया में बलवदनिष्टाननुबन्धित्व और इष्टसाधनत्व का भान होना चाहिए, जहाँ पर कि विधिप्रत्यय का प्रयोग किया जाये। अब इसमें प्रश्न उठाते हैं—

लेकन याग, पाकादि जन्य श्रम आदि में कदाचित् किसी के बलवद् द्वेष का उदय होने की स्थिति में '**यजेत**' '**पचेत**' इत्यादिस्थलों में अप्रामाण्य का प्रसङ्ग दुर्वार होगा। ऐसी स्थिति में याग, पाक आदि में बलवदनिष्टश्रमाद्यननुबन्धित्व का अन्वयबोध नहीं हो सकता है। क्योंकि याग, पाक आदि में बलवदनिष्ट श्रमानुबन्धित्व ही है।

यत्तु बलवदनिष्टासाधनत्वं न लौकिकविध्यर्थः किन्तु ''न कलञ्जम्'' इत्यादिश्रुतेः प्रामाण्योपपत्तये वैदिकलिङ एव तदर्थकता, तत्रापि बलवदनिष्टं नरकमेव ताद्रूप्येणार्थः, अत इष्टोत्पत्तिनान्तरीयकश्रमादेः कदाचिद्द्वेष विषयतया न यागादौ विध्यर्थबाध इति, तदपि न-''शाकं न भुञ्जीत'' इत्यादिवैद्यकवाक्यस्य बलवदनिष्टाजनकत्वनिषेधपरत्वं विना प्रामाण्यानुपपत्तेः।

जो यह कहना है कि बलवदनिष्टासाधनत्व लौकिक विधि का अर्थ नहीं है किन्तु '**न कलञ्जं भक्षयेत्**' इत्यादि वाक्यों के प्रामाण्य की उपपत्ति के लिए वैदिक लिङ् की ही बलवदनिष्टासाधनत्वार्थकता हैं, उसमें भी बलवदनिष्ट नरक ही बलवदनिष्ट नरकत्वेन रूपेण अर्थ है, अतः इष्टोत्पत्तिनान्तरीयकश्रमादि के कदाचित् द्वेष विषय होने के कारण यागादि में विध्यर्थ बाध नहीं है। ऊपर उठाये गये इस आरोप कि 'यागपाकादि जन्य श्रमादि में कदाचित् किसी के बलवद् द्वेष का उदय होने की स्थिति में '**यजेत**' '**पचेत**' इत्यादि स्थलों में अप्रामाण्य प्रसङ्ग दुर्वार होगा' का समाधान करने के लिए यहाँ पर यह कल्प उठाया गया है कि लौकिक विधि प्रत्यय का अर्थ यदि बलवदनिष्टासाधनत्व न हो तो '**यजेत**''**पचेत**' इत्यादि लौकिक वाक्यों का प्रामाण्य उपपन्न हो जायेगा क्योंकि पाकादि जन्य श्रमादि में बलवद् द्वेष का उदय होने पर भी पाकादि में इष्टसाधनत्व और कृतिसाध्यत्व तो अबाधित ही हैं। वैदिक लिङ् का अर्थ बलवदनिष्टासाधनत्व है किन्तु बलवदनिष्टत्वेन

वहाँ पर नरकादि ही गृहीत होता है श्रमादि नहीं। अतः यागजन्य श्रमादि में बलवद् द्वेष होने पर भी यागादि में बलवदनिष्टनरकासाधनत्व विद्यमान होने से वाक्य का प्रामाण्य उपपन्न होता है। इसी प्रकार **'न कलञ्जं भक्षयेत्'** से कलञ्जभक्षण में नरकासाधनत्व का अभाव नञ् से बोधित होता है। इसलिए इस वाक्य का प्रामाण्य उपपन्न होता है।

तो वह भी ठीक नहीं है क्योंकि **'शाकं न भुञ्जीत'** 'शाक नहीं खाये' इत्यादि वैद्यक वाक्य का प्रामाण्य बलवदनिष्टजनकत्व रूप विध्यर्थ के निषेध के विना नहीं उपपन्न हो सकता है। आशय यह है कि लौकिक विधि प्रत्यय का अर्थ आप बलवदनिष्टाजनकत्व नहीं मान रहे हैं। यह लौकिक वाक्य है, इस वाक्य में घटकीभूत विधि प्रत्यय का अर्थ इष्टसाधनत्व और कृतिसाध्यत्व होगा, नञ् के द्वारा इन्ही दोनों में से किसी एक का निषेध होना चाहिए। किन्तु शाक भक्षण में तृप्तिरूपेष्ट साधनत्व भी है और कृति साध्यत्व भी है। यदि बलवदनिष्टाजनकत्व को विध्यर्थ मानें तो नञ् के द्वारा उसी का निषेध स्वीकार कर इस वाक्य का प्रामाण्य उपपादित किया जा सकता है क्योंकि शाकभक्षण में बलवदनिष्ट रोगादिजनकत्व ही है।

तत्रापि रोगाजनकत्वं विध्यर्थस्तदभावो नञा बोध्यत इति चेत्? "रिक्तायां न गच्छेत्" "पुष्ये नोद्वहेत्" इत्यादिज्योतिःशास्त्रवचनस्य "नैकः पर्वतमारोहेत्" इत्यादिवाक्यस्य च का गतिः? तत्रापि विशिष्य तत्तदनिष्टासाधनत्वस्य विधिप्रत्ययार्थत्वे शक्त्यानन्त्यप्रसङ्गो व्युत्पत्त्यनुपपत्तिश्च।

यदि वहाँ पर भी रोगाजनकत्व विध्यर्थ है और उस रोगाजनकत्व का अभाव नञ् के द्वारा बोधित होता है ऐसा मानो? अर्थात् जैसे वैदिक लिङ् का अर्थ नरकासाधनत्व स्वीकार लिया, उसी प्रकार वैद्यकशास्त्रीय लिङ् का अर्थ रोगाजनकत्व स्वीकार लेंगे, नञ् के द्वारा उसी का अभाव बोधित होगा। इन दोनों से अतिरिक्त लिङ् का अर्थ केवल इष्ट साधनत्व और कृतिसाध्यत्व है।

तो **'रिक्तायां न गच्छेत्'** 'रिक्ता तिथि में यात्रा न करे' **'पुष्ये नोद्वहेत्'** 'पुष्यनक्षत्र में विवाह न करे' इत्यादि ज्योतिष शास्त्रीय वचन की और **'नैकः पर्वतमारोहेत्'** 'अकेले पर्वतारोहण न करे' इत्यादि वाक्यों की क्या गति होगी? इन स्थलों पर रिक्तातिथ्यधिकरणक गमन, पुष्यनक्षत्राधिकरणक विवाह, एक कर्तृक पर्वतारोहण आदि में उपर्युक्त रीति से इष्ट साधनत्व अथवा कृति साध्यत्व का अभाव ही बोधित होना चाहिए जो कि बाधित है।

यदि वहाँ पर भी विशेष करके तत्तदनिष्टासाधनत्व की विधिप्रत्ययार्थता स्वीकारी जाये तो विधि प्रत्यय की शक्ति के आनन्त्य का प्रसङ्ग होगा (क्योंकि एक ही विधि प्रत्यय की शक्ति कहीं पर रोगाजनकत्व में कहीं पर नरकाजनकत्व में कहीं पर किसी अन्य में है) और व्युत्पत्ति की भी अनुपपत्ति होगी, अनन्त शक्तियों का ज्ञान शक्य न होने के कारण अगृहीतशक्तिक पदार्थ का भान शाब्दबोध में न हो सकेगा।

अत्र वदन्ति–द्वेषविषयतावच्छेदकत्वोपलक्षितनरकत्वाद्याश्रयसाधनतात्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावकूटे तादृशाभावत्वेनानुगते एकैव विधि

प्रत्ययस्य शक्तिः। उपलक्षणीभूतद्वेषविषयतावच्छेदकत्वं परित्यज्य नरकाद्यसाधनत्वं प्रतीयते। कुत्रचिन्नरकासाधनत्वं कुत्रचिद्रोगासाधनत्वं प्रतीयत इत्यत्र तात्पर्यमेव नियामकम्। प्रतियोगितायाः प्रकारतया भानात् प्रतियोगितावच्छेदकघटकनरकत्वादौ द्वेषविषयतावच्छेदकत्वस्योपलक्षणतया शक्तिग्रहे भानमविरुद्धम् ।

यहाँ पर ऐसा कहते हैं (यह समाधान दिया जाता है)— द्वेषविषयतावच्छेदकत्वोपलक्षितनरकत्वाद्याश्रय साधनतात्वावच्छिन्न प्रतियोगिताक अभावकूट जो कि द्वेष विषयतावच्छेदकत्वोपलक्षित धर्माश्रयसाधनतात्वावच्छिन्न प्रतियोगिताक अभावत्वेन अनुगत है, में विधिप्रत्यय की एक ही शक्ति है। उपलक्षणीभूत द्वेषविषयतावच्छेदकत्व का परित्याग करके नरकाद्यसाधनत्व की प्रतीति होती है। कहीं पर नरकासाधनत्व प्रतीत होता है और कहीं पर रोगासाधनत्व प्रतीत होता है, इसमें तात्पर्य ही नियामक है। प्रतियोगिता का प्रकार तया भान होने से प्रतियोगितावच्छेदक घटक नरकत्वादि में द्वेषविषयतावच्छेदकत्व का उपलक्षणतया शक्तिग्रह में भान अविरुद्ध है।

'अथ' 'दुर्वारः' इस ग्रन्थ से जो आरोप लगाया उसे हटा रहे हैं। समाधान रूप में कहना है कि द्वेषविषयतावच्छेदकत्वोपलक्षित धर्माश्रयसाधनतात्वावच्छिन्न प्रतियोगिताक अभाव कूट में विधिप्रत्यय की एक ही शक्ति है। यह अभाव चूँकि द्वेषविषयतावच्छेदकत्वोपलक्षित धर्माश्रयसाधनतात्वावच्छिन्न प्रतियोगिताकाभावत्वेन अनुगत है। इसलिए उसमें एक शक्ति स्वीकारी जा सकती है। उसमें कोई हर्ज नहीं है। जैसे तत् पद प्रयोगस्थल में उपलक्षणीभूत बुद्धिविषयतावच्छेदकत्व का परित्याग करके (बुद्धिविषयतावच्छेदकीभूत) घटत्वादिरूप से घट का भान शाब्दबोध में होता है। उसी प्रकार यहाँ पर भी द्वेषविषयतावच्छेदकत्व का परित्याग करके द्वेषविषयतावच्छेदकीभूत नरकत्वाद्यश्रयासाधनत्व ही प्रतीत होता है। इसमें प्रश्न हो सकता है कि कहीं पर नरकासाधनत्व और कहीं पर रोगासाधनत्व क्यों प्रतीत होता है? इसका उत्तर यह है कि इसका नियामक तात्पर्य ही है। तात्पर्यवशात् कहीं पर नरकासाधनत्व और कहीं पर रोगासाधनत्व प्रतीत होता है।

चूँकि द्वेषविषयतावच्छेदकत्वोपलक्षित धर्माश्रयसाधनतात्वावच्छिन्न प्रतियोगिताक अभाव में विधि प्रत्यय की शक्ति है और इसमें अभाव में प्रतियोगिता स्वनिरूपकत्व सम्बन्ध से प्रकार बनती है। इस कारण प्रतियोगितावच्छेदकघटकीभूत नरकत्वादि में द्वेषविषयततावच्छेदकत्व का उपलक्षणतया शक्ति ग्रह में भान अविरुद्ध है। पूर्व में (पृ. 838) यह बता चुके हैं कि प्रतियोगिता जहाँ पर संसर्गतया प्रविष्ट होती है वहाँ पर प्रतियोगिकोटि में प्रविष्ट पदार्थों का उपलक्षणतया भान नहीं होता है। चूँकि यहाँ पर प्रतियोगिता प्रकारतया प्रविष्ट है, इसलिए प्रतियोगिकोटिप्रविष्ट नरकत्वादि में द्वेषविषयतावच्छेदकत्व का उपलक्षणतया शक्तिग्रह में भान होने में कोई मुश्किल नहीं है।

न च प्रमेयत्वादेरप्युपलक्षणतया भानमविरुद्धमिति प्रमेयत्वादेरुपलक्षणतया नरकत्वाद्यनुगमकत्वं कथं न स्वीक्रियते विनिगमकाभावादिति वाच्यम्; सुखाद्यसाधनत्वस्य विध्यर्थताविरहेण, प्रमेयत्वादेः सुखत्वादिसाधारण्यं

नोक्तरूपस्येत्यस्यैव विनिगमकत्वात् ।

यदि कहो कि प्रमेयत्वादि का भी उपलक्षणतया भान अविरुद्ध है, इसलिए प्रमेयत्वादि का उपलक्षणतया नरकत्वाद्यनुगमकत्व क्यों नहीं स्वीकारते हो? कोई विनिगमक तो है नहीं अर्थात् आप द्वेषविषयतावच्छेदकत्व को उपलक्षण मान रहे हैं और द्वेषविषयतावच्छेदकत्वोपलक्षित नरकत्वाद्याश्रयसाधनतात्वावच्छिन्नाभाव में विधि प्रत्यय की शक्ति स्वीकारते हैं। प्रमेयत्व को ही उपलक्षण मान लो और प्रमेयत्वोपलक्षित नरकत्वाद्यश्रयसाधनतात्वावच्छिन्नाभाव में विधि प्रत्यय की शक्ति मान लो। इसका परित्याग करके द्वेषविषयतावच्छेदकत्व को उपलक्षण मानने में क्या युक्ति है? तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि सुखाद्यसाधनत्व की विध्यर्थता नहीं होने के कारण प्रमेयत्वादि का सुखत्वादिसाधारण्य है द्वेषविषयतावच्छेदकत्व का सुखत्वादि साधारण्य नहीं है इसी की विनिगमकता है। भाव यह है कि प्रमेयत्व सुखत्व में भी है, सुखत्व प्रमेयत्वोपलक्षित है प्रमेयत्वोपलक्षितधर्माश्रयसाधनत्वाभाव सुखसाधनत्वाभाव भी है। इस कारण कहीं पर सुखसाधनत्वाभाव का भी विधि प्रत्यय से प्रत्यायन होने लगेगा, यदि प्रमेयत्व को आप उपलक्षण मानेंगे। सुखत्व द्वेषविषयतावच्छेदकत्वोपलक्षित नहीं हो सकता है। इसलिए सुखसाधनत्वाभाव द्वेषविषयतावच्छेदकत्वोपलक्षितधर्माश्रयसाधनत्वाभाव करके नहीं बोधित हो सकता है। इस कारण प्रमेयत्व का उपलक्षणतया भान नहीं स्वीकारते हैं, द्वेषविषयतावच्छेदकत्व का ही उपलक्षणतया भान स्वीकारते हैं।

न च तात्पर्याभावात् सुखाद्यसाधनत्वाबोधकत्वोपपत्तौ विध्यर्थत्वेऽपि क्षतिविरह इति वाच्यम्; तस्य विध्यर्थत्वे तत्तात्पर्येणाधुनिकानां "न भुञ्जीत" इत्यादिप्रयोगापत्तेः।

इति तर्कशास्त्रधुरन्धरमहामहोपाध्यायश्रीमद्गदाधरभट्टाचार्यविरचितः
व्युत्पत्तिवादः समाप्तः

यदि कहो कि तात्पर्य का अभाव होने से सुखाद्यसाधनत्वाबोधकत्व की उपपत्ति होने से सुखाद्यसाधनत्व का विध्यर्थत्व होने पर भी कोई क्षति नहीं है अर्थात् द्वेषविषयतावच्छेदकत्व को उपलक्षण मानने पर भी तात्पर्यवशात् ही कहीं पर नरकासाधनत्व और तात्पर्यवशात् ही कहीं पर रोगासाधनत्व प्रतीत होता है। 'शाकं न भुञ्जीत' प्रयोग से नरकासाधनत्व नहीं प्रतीत होता है, यद्यपि वह विध्यर्थ है। इसी प्रकार सुखासाधनत्व यदि विध्यर्थ हो भी जा रहा है, तो भी तात्पर्य नहीं होने से कहीं पर भी सुखासाधनत्व का विधि प्रत्यय से प्रत्यायन नहीं होगा। इस स्थिति में प्रमेयत्व को ही उपलक्षण मान लो। द्वेषविषयतावच्छेदकत्व को उपलक्षण मानने की ज़रूरत है?

तो ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि सुखासाधनत्व के विध्यर्थ होने पर उसके तात्पर्य से आधुनिकों के 'न भुञ्जीत' इत्यादि प्रयोगों की आपत्ति है। भाव यह है कि सुखासाधनत्व के विध्यर्थ होने पर सुखासाधनत्व के तात्पर्य से नञ् घटित आधुनिक प्रयोग तो होने ही चाहिए। इस वाक्य से सुखासाधनत्व रूप विध्यर्थ का अभाव भोजन में बोधित

होगा जो कि अबाधित है। ये ठीक है कि वैदिक आदि विधि प्रयोगों से सुखासाधनत्व विधि प्रत्यय से नहीं बोधित होगा क्योंकि वहाँ पर सुखासाधनत्व में विधिप्रत्यय का तात्पर्य ही नहीं है किन्तु 'न भुञ्जीत' ऐसा आधुनिक प्रयोग तो हो ही सकता है जिसमें विधिप्रत्यय का तात्पर्य भी सुखासाधनत्व में होगा। इस कारण द्वेषविषयतावच्छेदकत्व को उपलक्षण मानो और सुखासाधनत्व को विध्यर्थ न मानो।

इस प्रकार महामहोपाध्याय श्रीमद्गदाधरभट्टाचार्यविरचित व्युत्पत्तिवाद की श्री सच्चिदानन्द मिश्र विरचित सुनन्दाव्याख्या समाप्त हुई।

इत्युत्तरप्रदेशस्थबस्तीमण्डलान्तर्गतगानाग्रामवासिनां पं. श्री कुञ्जविहारि मिश्रमहोदयानां पौत्रेण व्याकरणाचार्यदर्शनाचार्योपाधिधारिणां पण्डितप्रवराणां श्रीरमाकान्तमिश्रमहोदयानां तनूजेन सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयाधीतविद्येन नव्यन्यायशाङ्करवेदान्ताचार्यपदवीमधितिष्ठता विद्यावारिध्युपाधिभाजा कवितार्किकेण सच्चिदानन्दमिश्रेण विरचितायां व्युत्पत्तिवादस्य सुनन्दाव्याख्यायां धातुप्रत्ययाः॥

समाप्तश्चायं ग्रन्थः

-----:0:----

परिशिष्ट -I

व्युत्पत्तिवाद में उद्धृत पाणिनीय सूत्रों की सूची

× × ×

परिशिष्ट-II

व्युत्पत्तिवाद में उद्धृत पा॰ सू॰ से अतिरिक्त वाक्यों की सूची

× × ×

परिशिष्ट-III

सन्दर्भसूची

ग्रन्थनाम	लेखक	प्रकाशन
1. अंमरकोष	अमर सिंह	
2. अष्टाध्यायी	पाणिनि	
3.आख्यातवाद रामभद्रसार्वभौमकृतव्याख्या सहित	रघुनाथ शिरोमणि	संस्कृत पुस्तक भण्डार 1979 कलकत्ता
4. कारकचक्रम् माधवी व बंगला अनुवाद सहित	भवानन्द सिद्धान्तवागीश	छात्र पुस्तकालय 1937 कलकत्ता
5. कारिकावली मुक्तावली, दिनकरी, रामरुद्री सहित	विश्वनाथ पञ्चानन	चौखम्बा सं. सी. 1982 वाराणसी
6. काव्यप्रकाश	मम्मट	
7. काशिका	वामन	
8. किरणावली गौरीनाथशास्त्रीकृत हिन्दी व्याख्यान सहित	उदयनाचार्य	सं॰सं॰ वि॰वि॰ वाराणसी
9. जागदीशी व्यधिकरण रामप्रपन्नाचार्यविरचित दीपिकाव्याख्यासहित	जगदीश तर्कालंकार	चौ॰सं॰ सी॰ आफिस 1958 वाराणसी
10. तर्कसंग्रह न्यायबोधिनी, पदकृत्य बालमनोरमा सहित	अन्नम्भट्ट	भार्गव पुस्तकालय 1950 वाराणसी
11. तर्कामृतम्	जगदीश तर्कालङ्कार	
12. न च रत्नमालिका	श्रीशास्तृशर्मा	सं॰सं॰ वि॰वि॰ वाराणसी
13. न्यायशास्त्रानुशीलनम्	डॉ॰ किशोर नाथ झा	इलाहाबाद 1998
14. न्यायसत्रम्	सं. डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी,	सागर विश्वविद्यालय, सागर 1984
15. न्यायसूत्र	गोतम	
16. परमलघुमञ्जूषा तत्त्वप्रकाशिकासहित	नागेश भट्ट	चौ. सं. सी. 1974 वाराणसी
17. रघुवंश	कालिदास	
18. लघुशब्देन्दुशेखर दीपक सहित	नागेशभट्ट	चौ. सं. सी. 1984 वाराणसी

19. वादवारिधिः			
20. विषयतावाद	गदाधर भट्टाचार्य	चौ॰ सं. सी. वाराणसी	
21. वैयाकरणभूषणसार प्रभादर्पणसहित	कौण्ड भट्ट	चौ. सं. सी. 1969	
22. व्युत्पत्तिवाद (आदर्श)	श्रीसुदर्शनाचार्य		
23. व्युत्पत्तिवाद (कृष्णम्भट्टीया)	कृष्णम्भट्ट		
24. व्युत्पत्तिवाद (गूढार्थतत्त्वालोक)	धर्मदत्त झा	कृष्णदासअकादमी 1978	
25. व्युत्पत्तिवाद (जया)	जयदेव मिश्र	डॉ. रमाकान्त मिश्र इलाहाबाद पुनः प्र. 1988	
26. व्युत्पत्तिवाद (प्रकाश)	लक्ष्मीनाथ झा	वाराणसी	
27. व्युत्पत्तिवाद (शास्त्रार्थकला)	वेणीमाधव शुक्ल		
28. शक्तिवाद (विवृति सहित)	गदाधर भट्टाचार्य	चौ. सं. सी. वाराणसी	1986
29. शब्दशक्तिप्रकाशिका कृष्णकान्ती सुबोधिनी सहिता	जगदीशतर्कालङ्कार	चौ. सं. सी. वाराणसी	1972
30. सांख्यकारिका	ईश्वरकृष्ण		
31. सिद्धान्तकौमुदी दाधिमथीटिप्पणीसहिता	भट्टोजिदीक्षित	खेमराजश्रीकृष्णदास मुम्बई	1914

× × ×



